ऋग्वेद

(तृतीय खण्ड)



श्रीराम शर्मा आचार्य,

गायत्री तपोभूमि, मथुरा ।

प्रथम संस्करण] १९६० [मूल्य-७) रुपया

प्रकाशक—
गायत्री प्रकाशन, गायत्री तपोभूमि, मथुरा।
मुद्रक—
रमनलाल वंसल, पुष्पराज प्रेस, मथुरा।

२६ सूक्त

(ऋषि-विश्वमना वैयश्वो व्यश्वो वाङ्गिरसः । देवता-अश्विनौ, वायुः । छन्द-उष्णिक्, गायत्री, अनुष्टुप्)

युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥१
युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या ।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥२
ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥३
आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
उप स्तोमान्तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥४
जुहुराणा चिदश्विना मन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥५ ॥२६

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों धनवान्, बलवान और वर्षणशील हो। तुम्हारे बल को नष्ट करने में कोई समर्थ नहीं हैं। मैं तुम्हारे रथ को स्तुति करने वालों के मध्य में आहूत करता हूँ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम कामनाओं के देने वाले, धनशाली एवं सत्य रूप हो। तुम जैसे राजा सुषामा को धन प्रदान करने के लिए आते थे, वैसे ही तुम अपने रक्षा साधनों सहित आगमन करो। हे वरु तुम ऐसी याचना करो ॥२॥ हे अन्न धन-सम्पन्न अश्विनीकुमारो ! प्रातःकाल होने पर हम तुम को हवि से आहूत करेंगे । ३ । हे अश्विनीकुमारो ! सब से अधिक वाहक तुम्हारा रथ यहाँ आवे। तुम स्तोता को अपना धन देने के लिए उसके स्तोत्रों को जानो ॥४॥ हे अश्विद्वय ! तुम कामनाओं के देने वाले हो। तुम रुद्र हो। कुटिल कार्य करने वाले शत्रुओं को अपने सामने सदा समझो और वैरियों को अर्धायन करो ॥५॥ (२६)

दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियञ्जिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥६

उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७

आ मे अस्य प्रतीव्य मिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥८

वयं हि वां हवामह उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥९

अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित्ते श्रवतो हवम् ।
नेदीयसः कूळयातः पणीरुँत ॥१०॥२७

हे अश्विद्वय ! तुम हर्ष प्रदायक कान्ति से सम्पन्न, सब के दर्शन-योग्य और जलों के पोषक हो। तुम अपने शीघ्रगामी सुन्दर घोड़ों से इस यज्ञ में आओ ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ? तुम वीर और अजेय हो। अतः संसार का भरण करने वाले धन के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हे अश्विद्वय ! तुम सब देवताओं सहित मेरे इस यज्ञ में अत्यन्त सेवाएं प्राप्त करने के लिए पधारो ॥ ८ ॥ धन प्राप्ति की कामना से व्यश्व के समान हम भी तुम्हें आहूत करते हैं। इसलिये यहाँ आगमन करो ॥ ९ ॥ हे ऋषि ! तुम्हारे आह्वानों को सुनते हुए अश्विनीकुमार पास रहने वाले शत्रुओं और पणियों का हनन करें। इसलिए उन अश्विद्वय की स्तुति करो ॥१०॥ (२७)

वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११

युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् १२

यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।

सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३
यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४
अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५ ॥२८

हे नेताओ ! वैयश्व का स्तोत्र श्रवण करो । मेरे आह्वान को जानो । मित्रावरुण और अर्यमा सदा संयुक्त रहते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम कामनाओं के देने वाले और स्तुतियों के योग्य हो । तुम स्तोताओं के लिए लाकर जो कुछ देते हो, वह मुझे भी नित्यप्रति प्रदान करो ॥१२॥ वस्त्र से ढकी हुई वधू के समान जो यजमान यज्ञ से ढका रहता है, उस पर दृष्टि रखने वाले अश्विद्वय उसका कल्याण करते हैं ॥ १३॥ हे अश्विनीकुमारो ! जो मनुष्य पीने के योग्य सोम-रस को देना जानता है, उस यजमान के घर में सोम पीने की इच्छा से आओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम धनवान और कामनाओं के देने वाले हो । तुम सोम-पान के लिए हमारे यहाँ आगमन करो । स्तोत्र द्वारा यज्ञ को सम्पूर्ण करो ॥१५॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　(२८)

वाहिष्ठो वां हवाना स्तोमो दूतो हुवन्नरा । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६
यददो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे । श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७
उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् । सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८
स्मदेतया सुकीर्त्याश्विना श्वेतया धिया । वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९
युक्ष्वा हि त्वं रथासहा युवस्व पोष्या वसो ।
आन्नो वायो मधु पिबास्माकं सवना गहि ॥ २० ॥२९

हे अश्विनीकुमारो ! स्तोत्र तुम्हारे पास पहुँच कर तुम्हें आहूत करें और हर्षित करें ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! द्युलोक के नीचे वाले समुद्र में या अन्न की कामना वाले यजमान के घर में यदि तुम हर्ष प्राप्त करना चाहो तो हमारी इस स्तुति को श्रवण करो ॥ १७ ॥ हिरण्यमार्ग वाली श्वेतयावरी

नाम्नी नदी स्तुतियों के द्वारा तुम्हारे पास पहुँचती हैं ॥ १८ ॥ हे अश्विनीकुमारो। तुम श्वेत वर्ण वाली, यशवती, पुष्टिदायिनी श्वेतयावरी को वहने वाली करो ॥१९॥ हे वायो ! वाहक अश्वों को रथ में संयुक्त करो। तुम वास देने वाले हो, पोषण करने योग्य अश्विद्वय को रणक्षेत्र में ले जाओ ! फिर हमारे हर्ष प्रदायक सोम रस को पीने के लिए तीनों सवनों में आगमन करो ॥२० ॥ (२९)

तव वायवृतस्पते त्वष्टुर्जामातरद्भुत। अवांस्या वृणीमहे ॥ २

त्वष्टुर्जामातरं वयमीशानं राय ईमहे ।

सुतावन्तो वायुं द्युम्ना जनासः ॥२२

वायो याहि शिवा दिवो वहस्वा सु स्वश्व्यम् ।

वहस्व महः पृथुपक्षसा रथे ॥ २३

त्वां हि सुप्सरस्तमं नृषदनेषु हूमहे । ग्रावाणं नाश्वपृष्ठं मंहना ॥२४

स त्वं नो देव मनसा वायो मन्दानो अग्रियः ।

कृधि वाजाँ अपो धियः ॥ २५ ॥३०

हे विचित्र कर्म वाले वायो ! तुम यज्ञ के स्वामी और त्वष्टा के जामाता हो। हम तुम्हारी रक्षाएं प्राप्त करें ॥२१॥ वायु सामर्थ्यवान् हैं, वे त्वष्टा के जामाता हैं। उनसे हम सोम को संस्कारित करने के पश्चात धन की याचना करते हैं। उनके धन देने से हम धनवान हो जाँयगे ॥ २२ ॥ हे वायो ! तुम महान् हो। अश्व से संयुक्त रथ को चलाते हुए द्युलोक में कल्याण को ले जाओ। इन स्थूल पार्श्व वाले अश्वों को अपने रथ में संयुक्त करो ॥ २३ ॥ हे वायो ! तुम अत्यन्त रूपवान् हो। तुम्हारे सभी अंग महिमा से सम्पन्न हैं। हम सोमाभिषव वाले पाषाण से युक्त हुए, तुम्हें यज्ञों में आहूत करते हैं ॥ २४ ॥ हे वायो ! तुम देवताओं में प्रमुख हो। तुम हृदय से प्रसन्न होते हुए हमको अन्न और जल दो तथा कर्मों में प्रयुक्त करो ॥२५॥ (३०)

२७ सूक्त

(ऋषि–मनुर्वैवस्वतः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द–बृहती, पंक्तिः)

अग्निरुक्थे पुरोहितो ग्रावाणो बर्हिरध्वरे ।

ऋचा यामि मरुतो ब्रह्मणस्पतिं देवाँ अवो वरेण्यम् ॥१
आ पशुं गासि पृथिवीं वनस्पतीनुषासा नक्तमोषधीः ।
विश्वे च नो वसवो विश्ववेदसो धीनां भूत प्रावितारः ॥२
प्र सू न एत्वध्वरो३ग्ना देवेषु पूर्व्यः ।
आदित्येषु प्र वरुणे धृतव्रते मरुत्सु विश्वभानुषु ॥ ३
विश्वे हि ष्मा मनवे विश्ववेदसो भुवन्वृधे रिशादसः ।
अरिष्टेभिः पायुभिर्विश्ववेदसो यन्ता नोऽवृकं छर्दिः ॥४
आ नो अद्य समनसो गन्ता विश्वे सजोषसः ।
ऋचा गिरा मरुतो देव्यदिते सदने पस्त्ये महि ॥५ ॥३१

इस स्तोत्रों वाले यज्ञ में सोमाभिषव के निमित्त पाषाण तथा अग्रभाग में कुशा बिछाई गई है । मैं ब्रह्मणस्पति, मरुद्गण तथा अन्य सब देवताओं से स्तुतियों के द्वारा रक्षा माँगता हूँ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हमारे यज्ञ में तुम पशु, वनस्पति और पृथिवी का सामीप्य प्राप्त करते हो और प्रातः काल तथा रात्रि में भी सोम का अभिषव हमारे कर्मों की रक्षा करें ॥२॥ अग्नि तथा अन्य देवताओं के पास प्राचीन यज्ञ उत्तमता से जाय तथा मरुद्गण, व्रतधारी वरुण और आदित्यों के पास भी पहुँचे ॥ ३ ॥ विश्वेदेवा शत्रुओं का नाश करने वाले तथा बहुत से धनों के स्वामी हैं । वह मनु की वृद्धि करने वाले हों । हे सब के जानने वाले देवताओ ! तुम हमारी रक्षा करते हुए बाधा-हीन घर दो ॥ ४ ॥ हे विश्वेदेवाओ ! आज के इस यज्ञ में समान मन वाले होकर तथा परस्पर सुसंगत होते हुए ऋचा रूप वाणी के सहित हमारे पास आगमन करो । हे अदिति देवी और हे मरुद्गण ! तुम भी हमारे इस यज्ञ गृह में विराजमान होओ ॥ ५ ॥ (३१)

अभि प्रिया मरुतो या वो अश्व्या हव्या मित्र प्रयाथन ।
आ बर्हिरिन्द्रो वरुणस्तुरा नर आदित्यासः सदन्तु नः ॥६
वयं वो वृक्तबर्हिषो हितप्रयस आनुषक् ।
सुतसोमासो वरुण हवामहे मनुष्वदिद्धाग्नयः ।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८
वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥९
अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१० ॥३२

हे मरुद्गण ! तुम अपने प्रिय अश्वों सहित इस यज्ञ में आगमन करो हे मित्र देवता ! इस हवि के निमित्त आओ । रणक्षेत्र में शत्रु-वध में शीघ्रता करने वाले आदित्य और इन्द्रावरुण भी हमारे यज्ञ में आकर कुशाओं पर विराजमान हों ॥ ६ ॥ हे वरुण ! हम भी मनु के समान सोम को संस्कारित करके और अग्नि को प्रदीप्त करते हुए, हवि स्थापित कर तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुतो ! हे विष्णो ! पूषा और अश्विनीकुमारों के सहित मेरी स्तुति सुनते ही यज्ञ में आओ । इन्द्र भी इन देवताओं के मध्य प्रथम आवें । इन्द्र की कामना करने वाले स्तोता उन्हें वृत्रहन कहते हुए स्तुति करते हैं ॥८ हे देवताओ ! मुझे बाधा रहित घर दो । तुम्हारे द्वारा दिये हुए वरणीय गृह को कोई पास से या दूर से भी आकर नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ हे देवताओ ! तुम शत्रुओं का भक्षण करने में समर्थ हो । तुम बन्धु-भाव से पूर्ण हो । तुम हमारे अभ्युदय के लिए और अभिनव धन के लिए शीघ्र ही आज्ञा करो ॥ १० ॥ (३२)

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥११
उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२
देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥१३
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वारिवोविदः ॥१४
प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥३३

हे देवताओ ! तुम सब धनों के स्वामी हो। मैं तुमसे अन्न माँगता हूँ। जो कर्म अभी तक किसी ने नहीं किया, वैसा कर्म तुम्हारे भोग्य धन को पाने के लिए करता हूँ ॥ ११ ॥ हे चारु स्तोत्र मरुद्गण ! तुम में ऊपर को गमन करने वाले एवं कर्म प्रेरक सूर्य जब उदित होते हैं तब मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ तुम में से महान् देवता को हम अपनी स्तुतियों द्वारा कर्म की रक्षा के लिए आहूत करते हैं। अभीष्ट प्राप्ति के लिए हम तेजस्वी देवता को आहूत करते हैं। हम अन्न प्राप्ति के लिए दिव्य देवता का आह्वान करते हैं ॥ १३ ॥ विश्वेदेवता मुझ मनु को धनादि देने के लिए समान बुद्धि वाले होकर एक साथ प्रवृत्त हों। वे मुझे और मेरे पुत्र के लिए नित्यप्रति वरणीय धन प्रदान करने वाले हों ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! स्तोत्र के आश्रित इस यज्ञ मे मैं तुम्हारी अतीव स्तुति करता हूँ। हे मित्रावरुण ! जो व्यक्ति तुम्हारे निमित्त हवि रखता है, उसे शत्रुओं के हिंसक कर्म बाधक नहीं होते ॥ १५ ॥ हे देवो ! जो यजमान तुम्हें धन की कामना से हवि प्रदान करता है, वह अपने गृह और अन्न की वृद्धि करने वाला होता है। वह संतानों से संपन्न होता हुआ समृद्धि को प्राप्त करता है। उसे कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥ १६॥ (३३)

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषस ॥१७
अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥१८
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।

आ प्र यात मरुतो विष्णो अश्विना पूषन्माकीनया धिया ।
इन्द्र आ यातु प्रथमः सनिष्युभिर्वृषा यो वृत्रहा गृणे ॥ ८
वि नो देवासो अद्रुहोऽच्छिद्रं शर्म यच्छत ।
न यद्दूराद्वसवो नू चिदन्तितो वरूथमादधर्षति ॥९
अस्ति हि वः सजात्यं रिशादसो देवासो अस्त्याप्यम् ।
प्र णः पूर्वस्मै सुविताय वोचत मक्षू सुम्नाय नव्यसे ॥१० ॥३२

हे मरुद्गण ! तुम अपने प्रिय अश्वों सहित इस यज्ञ में आगमन करो हे मित्र देवता ! इस हवि के निमित्त आओ । रणक्षेत्र में शत्रु-वध में शीघ्रता करने वाले आदित्य और इन्द्रावरुण भी हमारे यज्ञ में आकर कुशाओं पर विराजमान हों ॥ ६ ॥ हे वरुण ! हम भी मनु के समान सोम को संस्कारित करके और अग्नि को प्रदीप्त करते हुए, हवि स्थापित कर तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुतो ! हे विष्णो ! पूषा और अश्विनीकुमारों के सहित मेरी स्तुति सुनते ही यज्ञ में आओ । इन्द्र भी इन देवताओं के मध्य प्रथम आवें । इन्द्र की कामना करने वाले स्तोता उन्हें वृत्रहन कहते हुए स्तुति करते हैं ॥८ हे देवताओ ! मुझे बाधा रहित घर दो । तुम्हारे द्वारा दिये हुए वरणीय गृह को कोई पास से या दूर से भी आकर नष्ट करने में समर्थ नहीं है ॥ ९ ॥ हे देवताओ ! तुम शत्रुओं का भक्षण करने में समर्थ हो । तुम बन्धु-भाव से पूर्ण हो। तुम हमारे अभ्युदय के लिए और अभिनव धन के लिए शीघ्र ही आज्ञा करो ॥ १० ॥ (३२)

इदा हि व उपस्तुतिमिदा वामस्य भक्तये ।
उप वो विश्ववेदसो नमस्युराँ असृक्ष्यन्यामिव ॥११
उदु ष्य वः सविता सुप्रणीतयोऽस्थादूर्ध्वो वरेण्यः ।
नि द्विपादश्चतुष्पादो अर्थिनोऽविश्रन्पतयिष्णवः ॥ १२
देवन्देवं वोऽवसे देवन्देवमभिष्टये ।
देवन्देवं हुवेम वाजसातये गृणन्तो देव्या धिया ॥१३
देवासो हि ष्मा मनवे समन्यवो विश्वे साकं सरातयः ।

ते नो अद्य ते अपरं तुचे तु नो भवन्तु वारिवोविदः ॥१४
प्र वः शंसाम्यद्रुहः संस्थ उपस्तुतीनाम् ।
न तं धूर्तिर्वरुण मित्र मर्त्यं यो वो धामभ्योऽविधत् ॥१५
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दाशति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्पर्यरिष्टः सर्व एधते ॥ १६ ॥३३

हे देवताओ ! तुम सब धनों के स्वामी हो। मैं तुमसे अन्न माँगता हूँ। जो कर्म अभी तक किसी ने नहीं किया, वैसा कर्म तुम्हारे भोग्य धन को पाने के लिए करता हूँ ॥ ११ ॥ हे चारु स्तोत्र मरुद्गण ! तुम में ऊपर को गमन करने वाले एवं कर्म प्रेरक सूर्य जब उदित होते हैं तब मनुष्य, पशु, पक्षी आदि सभी कर्मों में प्रवृत्त हो जाते हैं ॥ १२ ॥ तुम में से महान् देवता को हम अपनी स्तुतियों द्वारा कर्म की रक्षा के लिए आहूत करते हैं। अभीष्ट प्राप्ति के लिए हम तेजस्वी देवता को आहूत करते हैं। हम अन्न प्राप्ति के लिए दिव्य देवता का आह्वान करते हैं ॥ १३ ॥ विश्वेदेवता मुझ मनु को धनादि देने के लिए समान बुद्धि वाले होकर एक साथ प्रवृत्त हों। वे मुझे और मेरे पुत्र के लिए नित्यप्रति वरणीय धन प्रदान करने वाले हों ॥ १४ ॥ हे देवताओ ! स्तोत्र के आश्रित इस यज्ञ में मैं तुम्हारी अतीव स्तुति करता हूँ। हे मित्रावरुण ! जो व्यक्ति तुम्हारे निमित्त हवि रखता है, उसे शत्रुओं के हिंसक कर्म बाधक नहीं होते ॥ १५ ॥ हे देवो ! जो यजमान तुम्हें धन की कामना से हवि प्रदान करता है, वह अपने गृह और अन्न की वृद्धि करने वाला होता है। वह संतानों से संपन्न होता हुआ समृद्धि को प्राप्त करता है। उसे कोई हिंसित नहीं कर सकता ॥ १६॥ (३३)

ऋते स विन्दते युधः सुगेभिर्यात्यध्वनः ।
अर्यमा मित्रो वरुणः सरातयो यं त्रायन्ते सजोषसः ॥१७
अज्रे चिदस्मै कृणुथा न्यञ्चनं दुर्गे चिदा सुसरणम् ।
एषा चिदस्मादशनिः परो नु सास्रेधन्ती वि नश्यतु ॥१८
यदद्य सूर्य उद्यति प्रियक्षत्रा ऋतं दध ।

यन्निम्रुचि प्रबुधि विश्ववेदसो यद्वा मध्यन्दिने दिवः ॥१९
यद्वाभिपित्वे असुरा ऋतं यते छर्दिर्येम वि दाशुषे ।
वयं तद्वो वसवो विश्ववेदस उप स्थेयाम मध्य आ ॥२०
यदद्य सूर उदिते यन्मध्यन्दिन आतुचि ।
वामं धत्थ मनवे विश्ववेदसो जुह्वानाय प्रचेतसे ॥२१
वयं तद्वः सम्राजः आ वृणीमहे पुत्रो न बहुपाय्यम् ।
अश्याम तदादित्या जुह्वतो हविर्येन वस्योऽनशामहै ॥२२ ॥३४

वह पुरुष मित्र, वरुण और अर्यमा द्वारा रक्षित होता हुआ, युद्ध के बिना ही धन प्राप्त करता है तथा गमनशील सुन्दर अश्वों के द्वारा मार्ग पर चला जाता है ॥ १७ ॥ हे देवताओ ! न जाने योग्य अथवा कठिनता से जाने योग्य मार्ग को सुगम करो । यह आयुध हम में से किसी की हिंसा न करता हुआ स्वयं ही नाश को प्राप्त हो ॥१८॥ हे देवताओ ! आज तुम सूर्योदय होने पर मंगल-मय गृह को धारण करो । तुम सब धनों से सम्पन्न हो, अतः सायंकाल, प्रातः काल और मध्याह्न काल में भी मनु के लिए सब धनों को धारण करो ॥१९॥ हे देवो ! तुम्हारे लाभ की प्राप्ति के निमित्त तुम्हें हवि देने वाले यजमान को तुम यदि घर देते हो तो हम तुम्हारे उसी कल्याणकारी घर में तुम्हारी उपासना करेंगे ॥ २० ॥ हे देवो ! तुम सब धनों के स्वामी हो । तुम सूर्योदय होने पर, मध्याह्न काल में और सायंकाल में जो रमणीय धन मुझ हविदाता मेधावी मनु के निमित्त धारण करते हो, तुम्हारे पुत्रों के समान हम उसी उपभोग्य धन को पावेंगे । हे आदित्यो ! हम यज्ञ करते हुए तुम्हारे उसी धन से धनवान हो जायेंगे ॥ २१-२२ ॥ (३४)

२८ सूक्त

(ऋषि—मनुर्वैवस्वतः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

ये त्रिंशति त्रयस्परो देवासो बर्हिरासदन् । विदन्नह द्वितासनन् ॥१
वरुणो मित्रो अर्यमा स्मद्रातिषाचो अग्नयः । पत्नीवन्तो वषट्कृताः ।२
ते नो गोपा अपाच्यास्त उदक्त इत्था न्यक् । पुरस्तात्सर्वया विशा ॥३

यथा वशन्ति देवास्तथेदसत्तदेषां नकिरामिनत्। अरावा चन मर्त्यः ॥४
सप्तानां सप्त ऋष्टयः सप्त द्युम्नान्येषाम्। सप्तो अधि श्रियो धिरे ।५ ।३५

कुशाओं पर विराजमान तैंतीसों देवता हमको जानें और बारम्बार धन प्रदान करें ॥१॥ वरुण, मित्र, अर्यमा देव पत्नियों सहित हविदाता यजमानों के विभिन्न वषट्कारों से आहूत किये गए हैं ॥२॥ हे वरुणादि देवताओ! तुम अपने सभी गणों सहित सब ओर से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ देवताओं की जो इच्छा होती है, वही होता है, उनकी इच्छा को कोई मिटा नहीं सकता। अदानशील भी याद में यदि हविदाता बन जाय तो, उसे भी कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ४ ॥ मरुद्गण के सात प्रकार के आयुध, सात आभरण और सात प्रकार के ही तेज हैं ॥ ५ ॥   (३५)

२९ सूक्त

(ऋषि—मनुर्वैवस्वतः, कश्यपो वा मारीचः। देवता—विश्वेदेवाः छन्द—गायत्री)

बभ्रुरेको विषुणः सूनरो युवाञ्ज्यङ्क्ते हिरण्ययम् ॥१
योनिमेक आ ससाद द्योतनोऽन्तर्देवेषु मेधिरः ॥२
वाशीमेको बिभर्ति हस्त आयसीमन्तर्देवेषु निध्रुविः ॥३
वज्रमेको बिभर्ति हस्त आहितं तेन वृत्राणि जिघ्नते ॥४
तिग्ममेको बिभर्ति हस्त आयुधं शुचिरुग्रो जलाषभेषजः ॥५
पथ एकः पीपाय तस्करो यथां एष वेद निधीनाम् ॥६
त्रीण्येक उरुगायो वि चक्रमे यत्र देवासो मदन्ति ॥७
विभिर्द्वा चरत एकया सह प्र प्रवासेव वसतः ॥८
सदो द्वा चक्राते उपमा दिवि सम्राजा सर्पिरासुती ॥९
अर्चन्त एके महि साम मन्वत तेन सूर्यमरोचयन् ॥१० । ३६

रात्रियों के नेता, सरल सोम देवता हिरण्यमय प्रकाश को प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ अग्नि देवता प्रदीप्ति सम्पन्न और ज्ञानी हैं, वे अपने स्थान को प्राप्त

होते हैं ॥ २ ॥ देवताओं के मध्य में विराजमान त्वष्टा अपने हाथों में लौह निर्मित कुठार ग्रहण किये हुए हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र अकेले ही वज्र धारण करके वृत्रादि का संहार करते हैं ॥ ४ ॥ पवित्र, एवं सुखदाता एवं विकराल रुद्र अपने हाथों में तीक्ष्ण आयुध धारण करते हैं ॥५॥ जैसे चोर सब के धनों को जानते हैं, वैसे ही पूषा सब के धनों के जानने वाले हैं, वे मार्ग के रक्षक हैं ॥६ विष्णु ने तीन पैरों में त्रैलोक्य को नाप लिया । उनके इस कर्म से देवता हर्षित हुए । वे अनेकों की स्तुति के पात्र हैं ॥ ७ ॥ अश्विद्वय सूर्या के साथ, प्रवासी के समान वास करते हैं, वे अश्वों द्वारा गमन करते हैं ॥ ८ ॥ मित्रावरुण घृत रूप हवि से सम्पन्न तथा अत्यन्त दैदीप्यमान हैं । वे स्वर्ग का मार्ग बनाने वाले हैं । स्तुति करने वाले विद्वान् साम-गानों द्वारा सूर्य को तीक्ष्ण बनाते हैं ॥ ९—१० ॥ (३६)

३० सूक्त

(ऋषि-मनुर्वैवस्वत. । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्)

नहि वो अस्त्यर्भको देवासो न कुमारकः विश्वे सतोमहान्त इत् ॥१
इति स्तुतासो असथा रिशादसो ये स्थ त्रयश्च त्रिंशच्च ।
मनोर्देवा यज्ञियासः ॥२
ते नस्त्राध्वं तेऽवत त उ नो अधि वोचत ।
मा नः पथः पित्र्यान्मानवादधि दूरं नैष्ट परावतः ॥ ३
ये देवास इह स्थन विश्वे वैश्वानरा उत ।
अस्मभ्यं शर्म सप्रथो गवेऽश्वाय यच्छत ॥४ ॥३७

हे विश्वेदेवाओ ! तुम में कोई भी बालक नहीं है, तुम सभी महान् हो ॥ १ ॥ हे देवो ! तुम शत्रुओं के भक्षक और यज्ञार्ह हो । तुम तेंतीस देवताओं के रूप में स्तुत होते हो ॥ २ ॥ हे देवताओ ! राक्षसों से हमारी रक्षा करो। धन आदि के द्वारा हमारा पालन करो। तुम हम से अनुग्रह वाक्य कहो। मनु से चले आते हुए सन्मार्ग से तथा दूर स्थित मार्ग से तुम हमको

मत कर देना ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! हे यज्ञ से प्रकट अग्ने ! तुम यहाँ स्थित होकर हमको गौ अश्व आदि धन का सुख दो ॥४॥　　　　[३०]

३१ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि—मनुर्वैवस्वतः । देवता—इन्द्र्यादयो, यजमानप्रशंसा च दम्पती, दम्पत्योराशिषः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, पंक्तिः)

ो यजाति यजात इत्सुनवच्च पचाति च । ब्रह्मेदिन्द्रस्य चाकनत् ॥१
ोडाशं यो अस्मै सोमं ररत आशिरम् । पादित्तं शक्रो अंहसः ॥२
स्य द्युमां असद्रथो देवजूत. स शूशुवत् । विश्वा वन्वन्नमित्रिया ॥३
स्य प्रजावती गृहेऽसश्चन्ती दिवेदिवे । इळा धेनुमती दुहे ॥४
ा दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः देवासो नित्ययाशिरा ।५ ।३८

जो यजमान बारम्बार यज्ञ करता हुआ सोमाभिषव तथा पुरोडाश पाक रता है और इन्द्र की स्तुति करने की बारम्बार इच्छा करता है, जो जमान पुरोडाश और गव्य मिश्रित सोम इन्द्र को देता है, इन्द्र उसकी पाप रक्षा करते हैं ॥१-२ ॥ देवताओं द्वारा भेजा गया दमकता हुआ रथ उसी जमान का होता है और वह शत्रुओं की बाधाओं को नष्ट करता हुआ ऐश्वर्यों हित समृद्धि को प्राप्त करता है ॥ ३ ॥ इस यजमान के घर में पुत्रादि से म्पन्न अविनाशी धन प्रतिदिन प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे देवगण ! जो पति-त्नी यजमान समान मन वाले होकर अभिषव करते और दुग्ने से सोम को ान कर उसमें गव्यादि का मिश्रण करते हुए मधुर बनाते हैं ···॥५॥[३८]

नि प्राशव्या इतः सम्यञ्चा बर्हिराशाते । न ता वाजेषु वायतः ॥६
देवानामपि ह्नुतः सुमतिं न जुगुक्षत. श्रवो बृहद्विवासतः ॥७
पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः उभा हिरण्यपेशसा ॥८
ीतिहोत्रा कृतद्वसू दशस्यन्तामृताय कम् ।
ूधो रोमशं हतो देवेषु कृणुतो दुवः ॥९
। शर्म पर्वतानां वृणीमहे नदीनाम् । आ विष्णोः सचाभुवः ।१० ।३९

वे उपभोग्य अन्न आदि पाते हैं। उन्हें अन्न के निमित्त किसी के पास नहीं जाना पड़ता ॥ ६ ॥ वे दम्पति देवताओं की उपेक्षा नहीं करते और महान् अन्न के द्वारा ही तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ७ ॥ वे पुत्रवान् होकर स्वर्णादि धन से सुसज्जित होते हुए पूर्ण आयु वाले होते हैं ॥ ८ ॥ यज्ञ कर्म वाले इन दम्पति की स्तुतियाँ देवताओं की इच्छा करती हैं, वे देवताओं को रूप अन्न देते हैं। वे संतान-लाभ के लिए रोमश और ऊध को संयुक्त करते हैं। वे देवताओं की उपासना करने वाले होते हैं ॥ ९ ॥ हम देवताओं सहित विष्णु से सुख माँगते हैं। हम पर्वत और नदी से भी सुख की कामना करते हैं ॥ १०॥ [३९]

ऐतु पूषा रयिर्भगः स्वस्ति सर्वधातमः । उरुरध्वा स्वस्तये ॥११

अरमतिरनर्वणो विश्वो देवस्य मनसा । आदित्यानामनेह इत् ॥१२

यथा नो मित्रो अर्यमा वरुणः सन्ति गोपाः सुगा ऋतस्य पन्था ॥१३

अग्निं वः पूर्व्यं गिरा देवमीळे वसूनाम् ।
सपर्यन्तः पुरुप्रियं मित्रं न क्षेत्रसाधसम् ॥१४

मक्षू देववतो रथः शूरो वा पृत्सु कासु चित् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१५

न यजमान रिष्यसि न सुन्वान न देवयो ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१६

नकिष्टं कर्मणा नशन्न प्र योषन्न योषति ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१७

असदत्र सुवीर्य मुत त्यदाश्वश्व्यम् ।
देवानां य इन्मनो यजमान इयक्षत्यभीदयज्वनो भुवत् ॥१८ ॥४०

पूषा धन प्रदान करने वाले तथा सबके पोषक हैं, वह अपनी शक्तियों सहित आगमन करें और उनका विस्तृत मार्ग हमारे लिए कल्याणकारी हो ॥११॥ पूषा की स्तुति करने वाले श्रद्धा सहित स्तुति करते हैं। पू किसी के भी वश में न आने वाले हैं। आदित्यों का दान पाप से रहित

है ॥ १२ ॥ जैसे मित्र, वरुण और अर्यमा हमारी रक्षा करते हैं, वैसे ही यज्ञ के सभी मार्ग हमारे लिए सुगम हों ॥१३॥ हे देवताओ ! तुम में प्रमुख अग्नि देवता की मैं धन प्राप्ति के लिये स्तुति करता हूँ। तुम्हारे सेवक अनेकों के प्रिय होते हैं। वे मित्र के समान ही यज्ञ को सिद्ध करने वाले अग्नि का पूजन करते हैं ॥१४॥ जैसे वीर किसी सेना में प्रविष्ट होता है, वैसे ही देवोपासक मनुष्य का रथ दुर्ग में शीघ्र प्रविष्ट हो जाता है। जो याज्ञिक देवताओं की पूजन-कामना करता है, वह अयाज्ञिक को पराजित करता है ॥ १५॥ हे यजमान ! तुम सोम का अभिषव करने वाले हो, तुम हिंसित नहीं हो सकते। तुम देवताओं की कामना करने वाले हो, इसलिए नाश को प्राप्त नहीं होगे। जो यजमान देवताओं की पूजा करता है, वह अयाज्ञिक को परास्त करने में समर्थ होता है ॥ १६ ॥ देव-यज्ञ करने वाले यजमान को कर्म द्वारा व्याप्त करने में समर्थ कोई नहीं होता। वह स्थानच्युत नहीं हो सकता और पुत्रादि से भी हीन नहीं होता। जो यजमान देवताओं की स्तोत्र से पूजा करता है वह अयाज्ञिक को परास्त करने वाला होता है ॥१७॥ देवताओं के मन को प्रसन्न करने की कामना वाला यजमान सुन्दर पुत्रवान् होता है। उसे [illegible] से युक्त धन प्राप्त होता है। जो यजमान स्तुतियों के द्वारा देव-पूजन की कामना करता है, वह अयाज्ञिक को परास्त करने में समर्थ होता है ॥१८॥

प्रेरित करने वाले पराक्रमी इन्द्र ने अनर्शनि, पिप्रु, सृविन्द, दास, और अहीशुव का संहार किया ॥२॥ हे इन्द्र ! वृत्र का छेदन करो। इस वीर-कर्म में तत्पर होओ ॥३॥ हे स्तुति करने वालो ! मेघ से जल की याचना करने के समान ही शत्रुओं का नाश करने वाले इन्द्र से तुम्हारी रक्षा की प्रार्थना करता हूँ ॥४ हे वीर इन्द्र ! जब तुम प्रसन्न होते हो तब जैसे तुमने शत्रु-पुरों के द्वार खोले थे, वैसे ही स्तुति करने वालों के लिए गौ और अश्वादि के स्थान का द्वार खोल देते हो ॥५॥ [१]

यदि मे रारणः सुत उक्थे वा दवसे चनः । आरादुप स्वधा गहि ॥६
वयं घा ते अपि ष्मसि स्तोतार इन्द्र गिर्वणः । त्वं नो जिन्व सोमपाः ॥७
उत नः पितुमा भर संरराणो अविक्षितम् । मघवन्भूरि ते वसु ॥८
उत नो गोमतस्कृधि हिरण्यवतो अश्विनः । इळाभिः सं रभेमहि ॥९
बृवदुक्थं हवामहे सृप्रकरस्नमूतये । साधु कृण्वन्तमवसे ॥१० ॥२

हे इन्द्र ! मेरे अभिषुत सोम और स्तोत्र की कामना करते हो तो मुझे अन्न देने के लिए दूर देश से भी अन्न के सहित यहाँ आगमन करो ॥६ ॥ हे इन्द्र ! हे सोमपाये ! हम तुम्हारी स्तुति करने वाले हैं, तुम हमको हर्षित करते हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हम पर प्रसन्न होओ। क्षीण न होने वाला अन्न हमको प्रदान करो, क्योंकि तुम अपरिमित धन वाले हो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हम अन्न से सम्पन्न हों। हमें गौ, अश्व और सुवर्ण आदि धनों से भी सम्पन्न करो ॥९॥ इन्द्र अपनी भुजाओं को जगत की रक्षा के लिए फैलाते हैं और पोषण के लिए हितकर कार्यों को करते हैं। हम उन्हीं उक्थ वाले इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ १० ॥ [२]

यः संस्थे चिच्छतक्रतुरादीं कृणोति वृत्रहा । जरितृभ्यः पुरूवसुः ॥११
स नः शक्रश्चिदा शकद्दानवाँ अन्तराभरः इन्द्रो विश्वाभिरूतिभिः ॥१२
यो रायो वनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा । तमिन्द्रमभि गायत ॥१३
आयन्तारं महि स्थिरं पृतनासु श्रवोजितम् । भूरेरीशानमोजसा ॥१४
नकिरस्य शचीनां नियन्ता सूनृतानाम् । नकिर्वक्ता न दादिति ॥१५ ॥३

रणक्षेत्र में बहुकर्मा हुए इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हैं, वे वृत्रहन इन्द्र ही स्तुति करने वालों के धनों के ईश्वर हैं ॥११॥ इन्द्र दानशील हैं, वे अपने रक्षण सामर्थ्यों द्वारा हमारे छिद्रों को भरते हैं। वे इन्द्र हमको शक्तिशाली बनावें ॥ १२ ॥ जो इन्द्र सोमाभिषव करने वाले के मित्र हैं, जो सुन्दरता से पार लगाने वाले तथा धनों के रक्षक हैं, उन्हीं इन्द्र की प्रार्थना करो ॥ १३ ॥ जो इन्द्र रणक्षेत्र में विचलित नहीं होते, जो अन्नों को जीतने वाले हैं, वह इन्द्र अपरमित धनों के स्वामी हैं ॥१४॥ इन्द्र को कोई अदाता नहीं कहता और उनके सुन्दर कार्यों को कोई रोक नहीं सकता ॥१५॥ [३]

न नूनं ब्रह्मणामृणं प्राशूनामस्ति सुन्वताम् । न सोमो अप्रता पपे ॥१६
पन्य इदुप गायत पन्य उक्थानि शंसत । ब्रह्मा कृणोत पन्य इत् ॥१७
पन्य आ दर्दिरच्छता सहस्रा वाज्यवृतः । इन्द्रो यो यज्वनो वृधः ॥१८
वि षू चर स्वधा अनु कृष्टीनामन्वाहुवः । इन्द्र पिब सुतानाम् ॥१९
पिब स्वधैनवानामुत यस्तुग्र्ये सचा । उतायमिन्द्र यस्तव ॥२० ॥४

सोम का अभिषव करने वाले और सोम पान करने वाले ब्राह्मण देवऋण से मुक्त नहीं हैं, जिसके पास असीमित दिव्य धन है, वही सोम पीने में समर्थ होता है ॥१६॥ स्तुतियों के योग्य इन्द्र के लिए स्तुति गाओ, उनके लिए ही स्तोत्र उच्चारण करो और उन्हीं इन्द्र के लिए स्तोत्रों की रचना करो ॥१७ पराक्रमी इन्द्र ने सहस्रों शत्रुओं को मार डाला। शत्रु उन्हें आच्छादित नहीं कर सकते। वे यज्ञ करने वाले यजमान की वृद्धि करते हैं ॥१८॥ इन्द्र आह्वान के पात्र हैं। हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों की हवियों के पास घूमो और सुसंस्कारित सोम का पान करो ॥१९॥ हे इन्द्र ! जल से मिश्रित तथा गाय के परिवर्तन में क्रय किये गये इस सोम को पीओ ॥ २०॥ [४]

अतीहि मन्युषाविणं सुषुवांसमुपारणे । इमं रातं सुतं पिब ॥२१
इहि तिस्रः परावत इहि पञ्च जनाँ अति । धेना इन्द्रावचाकशत् ॥२२
सूर्यो रश्मिं यथा सृजा त्वा यच्छन्तु मे गिरः । निम्नमापो न सध्र्यक् ॥२३
अध्वर्यवा तु हि षिञ्च सोमं वीराय शिप्रिणे । भरा सुतस्य पीतये २४

य उद्नः फलिगं भिनन्न्य क्सिन्धूँरवासृजत् ।
योगोषु पक्वं धारयत् ॥२५ ॥५

हे इन्द्र ! जो अनुपयुक्त स्थान में अथवा क्रोध पूर्ण मुद्रा में सोम का अभिषव करे उसे लांघते हुए हमारे द्वारा अभिषुत इस सोम का पान करो ॥२१ हे इन्द्र ! तुम दूर से हमारे पास आगे, पीछे या बगल में आगमन करो। तुमने हमारे स्तोत्र को समझ लिया है अतः पितरों, गंधर्वों, देवताओं और राक्षसों को भी लाँघ कर यहाँ आओ ॥ २२॥ हे इन्द्र ! जैसे सूर्य रश्मियों को प्रदान करते हैं, वैसे ही तुम हमको धन प्रदान करो। जैसे जल नीची भूमि में प्राप्त होता है, वैसे ही मेरे स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हों ॥ २३ ॥ हे अध्वर्यो ! तुम इन सुन्दर जबड़े वाले इन्द्र के लिए सोम को शीघ्र ही निष्पन्न करो और इन्द्र को सोम-पान के निमित्त सुन्दरता से आहूत करो ॥ २४ ॥ जिन इन्द्र ने जल के लिये मेघ को विदीर्ण किया, जिन्होंने अन्तरिक्ष से जल को पृथिवी पर प्रेरित किया और जिन्होंने गौओं में सुमधुर दूध भरा, इन सब कर्मों के कर्त्ता इन्द्र ही हैं ॥२५॥

[५]

अहन्वृत्रमृचीषम और्णवाभमहीशुवम् । हिमेनाविध्यदर्बुदम् ॥२६
प्र व उग्राय निष्टुरेऽषाळ्हाय प्रसक्षिणे । देवत्तं ब्रह्म गायत ॥२७
यो विश्वान्यभि व्रता सोमस्य मदे अन्धसः इन्द्रो देवेषु चेतति ॥२८
इह त्या सधमाद्या हरी हिरण्यकेश्या । वोळ्हामभि प्रयो हितम् ॥२९
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥३० ।

इन्द्र ने और्णनाभ, अहीशुव और वृत्र का संहार किया और तुषार-जल के द्वारा मेघ को विदीर्ण कर डाला ॥२६॥ हे सामगायको ! जो इन्द्र पराक्रमी, कठोर, शत्रुओं के हराने वाले हैं, उन इन्द्र के निमित्त देवताओं को प्रसन्न करके प्राप्त किये सुन्दर स्तोत्रों का गान करो ॥ २७॥ सोम का हर्ष उत्पन्न होने पर इन्द्र सब देवताओं को अपने सब कर्मों की सूचना देते हैं ॥ २८ ॥ समान शक्ति वाले, स्वर्णिम केश वाले हर्यश्व इस सोमयाग में इन्द्र को हमारे अन्न के सामने लावें ॥ २९ ॥ इन्द्र अनेकों द्वारा स्तुत हैं,

अश्विनीकुमार प्रियमेध के द्वारा स्तुत हैं, वे हमारे सोम को पीने के लिये सामने आवें ॥३६॥ [६]

३३ सूक्त

(ऋषि–मेधातिथिः काण्वः । देवता–इन्द्रः । छन्द–बृहती, गायत्री, अनुष्टुप्)

वयं घ त्वा सुतावन्त आपो न वृक्तबर्हिषः ।
पवित्रस्य प्रस्रवणेषु वृत्रहन् परि स्तोतार आसते ॥१
स्वरन्ति त्वा सुते नरो वसो निरेक उक्थिनः ।
कदा सुतं तृषाण ओक आ गम इन्द्र स्वब्दीव वंसगः ॥२
कण्वेभिर्धृष्णवा धृषद्वाजं दर्षि सहस्रिणम् ।
पिशङ्गरूपं मघवन् विचर्षणे मक्षू गोमन्तमीमहे ॥३
पाहि गायान्धसो मद इन्द्राय मेध्यातिथे ।
यः संमिश्लो हर्योर्यः सुते सचा वज्री रथो हिरण्ययः ॥४
यः सुषव्यः सुदक्षिण इनो यः सुक्रतुर्गृणे ।
य आकरः सहस्रा यः शतामघ इन्द्रो यः पूर्भिदारितः ॥५ ॥७

हे वृत्रहन ! हमने सोम को संस्कारित किया है। उसके सम्पन्न होने पर कुशाएं बिछाते हुए स्तोतागण, जल के समान तुम्हारे समक्ष जाते हुए तुम्हें पूजते हैं ॥ १ ॥ हे वासक इन्द्र ! सोम के अभिषुत होने पर उक्थ गायक स्तुति करते हैं कि इन्द्र वृषभ के समान शब्द करते हुए यहाँ कब आगमन करेंगे।२। हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का दमन करने वाले हो, कण्व गोत्री ऋषियों को सहस्र संख्यक अन्न प्रदान करो। तुम धनवान से हम पीलेरङ्ग के धन और गवादि युक्त अन्न माँगते हैं ॥३॥ हे मेधातिथि ! सोम को पीओ। जो इन्द्र हर्यश्वों को रथ में संयुक्त करते हैं, जिनका रथ सोने का है, सोम से हर्ष उत्पन्न होने पर उन्हीं वज्रधारी इन्द्र का स्तव करो ॥४॥ जिनका मस्तक और दक्षिण हस्त सुन्दर हैं, जो मेधावी और सहस्रकर्मा हैं, जो अत्यन्त धनी हैं, जो शत्रु पुरियों के ध्वंसक हैं, जो यज्ञ में स्थिर रहते हैं, उन इन्द्र की स्तुति करो ॥५॥ [७]

यो भृपितो योऽवृतो यो अस्ति श्मश्रुषु श्रितः ।
विभूतद्युम्नश्च्यवनः पुरुष्टुतः क्रत्वा गौरिव शाकिनः ॥६
क ईं वेद सुते सचा पिबन्तं कद्वयो दधे ।
अयं यः पुरो विभिनत्त्योजसा मन्दानः शिप्र्यन्धसः ॥७
दाना मृगो न वारणः पुरुत्रा चरथं दधे ।
नकिष्ट्वा नि यमदा सुते गमो महांश्चरस्योजसा ॥८
य उग्रः सन्ननिष्टृत स्थिरो रणाय संस्कृतः ।
यदि स्तोतुर्मघवा शृणवद्धवं नेन्द्रो योषत्या गमत् ॥९
सत्यमित्था वृषेदसि वृषजूतिर्नोऽवृतः ।
वृषा ह्युग्र शृण्विषे परावति वृषो अर्वावति श्रुतः ॥१० ॥८

जो प्रचुर धनवान, शत्रुओं के धर्षक और सोम पीने वाले हैं वे बहुतों के द्वारा स्तुत इन्द्र अपने कर्म में लगे रहने वाले यजमान के लिए दूध देने वाली गाय के समान हैं। उसकी ही पूजा करो ॥ ६ ॥ जो इन्द्र सोम से तृप्त होते हैं, जिनके जबड़े सुन्दर हैं, जो शत्रुपुरों को तोड़ते हैं, उन सोम पीने वाले इन्द्र को जानने वाला कौन है ? उनके निमित्त अन्न धारण कौन करता है ॥ ७॥ जैसे शत्रुओं की खोज करने वाला हाथी मदमस्त हो जाता है, वैसे ही इन्द्र भी यज्ञ मे हर्षयुक्त भाव को धारण करते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हें कोई नहीं रोक सकता। तुम अपने बल से सर्वत्र विचरण करने वाले हो। तुम इस अभिषुत सोम की ओर आगमन करो ॥८॥ जब इन्द्र पराक्रम में भर जाते हैं, तब उन्हें कोई भी दबा नहीं सकता। वे संग्राम के लिए शस्त्रों द्वारा सुसज्जित रहते हैं। वे यज्ञ आह्वान सुनते हैं तो अन्यत्र न जाकर, वहीं पहुँचते हैं ॥९ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम कामनाओं वालों की ओर खिंच जाते हो। तुमको शत्रु आच्छादित नहीं कर सकते। तुम पास में और दूर में भी कामनाओं के वर्षक रूप से प्रसिद्ध हो ॥१०॥ [८]

वृषणस्ते अभीशवो वृषा कशा हिरण्ययी ।
वृषा रथो मघवन्वृषणा हरी वृषा त्वं शतक्रतो ॥११

[ ]

वृषा सोता सुनोतु ते वृषन्नृजीपिन्ना भर ।
वृषा दधन्वे वृषणं नदीष्वा तुभ्यं स्थातर्हरीणाम् ॥१२
एन्द्र याहि पीतये मधु शविष्ठ सोम्यम् ।
नायमच्छा मघवा शृणवद् गिरो ब्रह्मोक्था च सुक्रतुः ॥१३
वहन्तु त्वा रथेष्ठामा हरयो रथयुजः ।
तिरश्चिदर्यं सवनानि वृत्रहन्नन्येषां या शतक्रतो ॥१४
अस्माकमद्यान्तमं स्तोमं धिष्व महामह ।
अस्माकं ते सवना सन्तु शन्तमा मदाय द्युक्ष सोमपाः ॥१५ ॥६

हे इन्द्र ! तुम्हारे घोड़ों की लगाम और चाबुक कामनाओं की वर्षा करने वाली हैं, तुम्हारे अश्व अभीष्टवर्षक हैं और तुम भी इच्छाओं की वृष्टि करने वाले हो ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम का संस्कार करने वाला कामनाओं की वर्षा करने वाला होता हुआ सोमाभिषव करे। तुम्हारे लिए जल में सोम को संस्कृत करने वाले ऋत्विज ने सोम-धारण किया था। हे इन्द्र ! हमको धन प्रदान करो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम आए बिना स्तुति, स्तोत्र और उक्थों को श्रवण नहीं करते। अतः इस मधुर सोम का पान करने के लिए आगमन करो ॥ १३ ॥ हे मेधावी इन्द्र ! तुम रथ-सम्पन्न, वृत्र हनन कर्त्ता और ईश्वर हो। तुम्हारे अश्व अन्यों को लाँघ कर तुम्हें हमारे यज्ञ-स्थान में पहुँचावें ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे निकटस्थ सोमों को धारण करो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिये सुखकारी हो१५॥ [६]

नहि षस्तव नो मम शास्त्रे अन्यस्य रण्यति ।
यो अस्मान्वीर आनयत् ॥१६
इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत्स्त्रिया अशास्यं मनः । उतो अह क्रतुं रघुम् ॥१
सप्ती चिद् घा मदच्युता मिथुना वहतो रथम् ।
एवेद्धूर्वृष्ण उत्तरा ॥१८
अधः पश्यस्व मोपरि संतरां पादकौ हर ।
मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥१९ ॥१०

इन्द्र हमारे प्रभु हैं। वे हमारे, तुम्हारे या अन्य किसी के वश में रहना स्वीकार नहीं करते ॥ १६ ॥ इन्द्र का कथन था कि "स्त्री के मन पर नियंत्रण करना दुष्कर कार्य है क्योंकि स्त्री चंचल मन वाली होती है"॥१७ सोम के सामने पहुँचने वाले इन्द्र के दोनों घोड़े रथ का वहन करते हैं। इन्द्र कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं, इसलिए उनका रथ अश्वों की समानता में श्रेष्ठ है ॥१८॥ इन्द्र ने कहा—हे प्रायोगि ! तुम स्तोता होते हुए भी स्त्री बन गए हो। अतः अपने पैरों को मिलाये रक्खो, तुम्हारे ओष्ठ प्रान्त और कटि से नीचे के भाग को कोई देख न सके ॥१९॥ [१०]

३४ सूक्त

(ऋषि-नीपातिथिः काण्वः, सहस्र वसुरोचिषोऽङ्गिरसः। देवता-इन्द्रः। छन्द-अनुष्टुप् गायत्री)

एन्द्र याहि हरिभिरुप कण्वस्य सुष्टुतिम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१
आ त्वा ग्रावा वदन्निह सोमी घोषेण यच्छतु ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥२
अत्रा वि नेमिरेषामुरां न धूनुते वृकः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥३
आ त्वा कण्वा इहावसे हवन्ते वाजसातये ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥४
दधामि ते सुतानां वृष्णे न पूर्वपाय्यम् ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥५ ॥११

हे इन्द्र ! कण्व गोत्री महर्षियों की स्तुतियों के प्रति तुम अपने अश्वों सहित आगमन करो। तुम स्वर्ग के शासक हो, अतः स्वर्गलोक को गमन करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोम का अभिषव करने वाले पाषाण शब्द करते हुए तुम्हें इस यज्ञ में सोम दें। तुम दीप्ति हवि से सम्पन्न हो और स्वर्ग का शासन करने वाले हो, अतः स्वर्ग लोक को गमन करो॥ २ ॥ अभिषव करने वाला

पापाय इस यज्ञ भूमि में सिंह द्वारा मेढ़ को कँपाने के समान कम्पित करता है। दीप्ति हवियों से सम्पन्न इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, अतः हे इन्द्र! स्वर्ग लोक को गमन करो ॥३॥ कण्व गोत्री ऋषि अन्न और रक्षा पाने की कामना करते हुए इस यज्ञ में इन्द्र को आहूत करते हैं। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, हे सुन्दर हवियों से सम्पन्न इन्द्र! तुम स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ ४ ॥ जैसे कामनाओं की वर्षा करने वाले वायु को प्रथम सोम रस देते हैं, वैसे ही मैं तुम्हारे लिए भी संस्कृत सोम रस दूँगा। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं। हे हविर्वान इन्द्र! तुम स्वर्गलोक को गमन करो ॥५॥　　[११]

स्मदुरश्मिर्न आ गहि विश्वतोधोर्न ऊतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥६
आ नो याहि महेमते सहस्रोते शतामघ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥७
आ त्वा होता मनुर्हितो देवत्रा वक्षदीड्यः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥८
आ त्वा मदच्युता हरी श्येनं पक्षेव वक्षतः।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥९
आ याह्यर्य आ परि स्वाहा सोमस्य पीतये।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१० ॥१२

हे इन्द्र! तुम्हारे बांधव स्वर्ग के निवासी हैं, तुम हमारे पास आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं, हे हवियुक्त इन्द्र! तुम स्वर्ग लोक को गमन करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम अत्यन्त मेधावी, महान् ऐश्वर्यवान् और सहस्रों रक्षा-साधनों से सम्पन्न हो। तुम हमारे पास आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, हे हविर्वान् इन्द्र! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥७॥ हे इन्द्र! मनुष्यों के द्वारा घरों में होता रूप में प्रतिष्ठित अग्निदेव देवताओं द्वारा स्तुत हैं, वही तुम्हें वहन करें। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं, हे हविर्वान् इन्द्र! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥ ८॥ हे इन्द्र! जैसे बाज अपने दोनों पंखों को

वहन करता है, वैसे ही शक्तिशाली दोनों घोड़े तुम्हें वहन करें। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं। हे इन्द्र! तुम स्वर्गलोक में गमन करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र! तुम सब ओर से आगमन करो। तुम्हारे पान के निमित्त सोम रूप हवि देता हूँ। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं। हे दीप्त हवि से सम्पन्न इन्द्र! तुम स्वर्ग लोक को प्रस्थान करो ॥१०॥ [१२]

आ नो याह्युपश्रुत्युक्थेषु रणया इह ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥११
सरूपैरा सु नो गहि संभृतैः सम्भृताश्वः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१२
आ याहि पर्वतेभ्यः समुद्रस्याधि विष्टपः ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१३
आ नो गव्यान्यश्व्या सहस्रा शूर दर्दृहि ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१४
आ नः सहस्रशो भरायुतानि शतानि च ।
दिवो अमुष्य शासतो दिवं यय दिवावसो ॥१५
आ यदिन्द्रश्च दद्वहे सहस्रं वसुरोचिषः । ओजिष्ठमश्व्यं पशुम् ॥१६
य ऋज्रा वातरंहसोऽरुषासो रघुष्यदः । भ्राजन्ते सूर्या इव ॥१७
पारावतस्य रातिषु द्रवच्चक्रेष्वाशुषु । तिष्ठं वनस्य मध्य आ ॥१८॥१३

हे इन्द्र! तुम इस उक्थों वाले यज्ञ में हमारे पास आकर हमको हर्षित करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करते हैं। हे दीप्त हवियों वाले इन्द्र! तुम स्वर्ग लोक को प्रस्थान करो ॥११॥ हे इन्द्र! तुम्हारे अश्व हृष्ट पुष्ट हैं, तुम उन एक से रूप वाले दोनों अश्वों के सहित आगमन करो। इन्द्र स्वर्ग का शासन करने वाले हैं। हे सुन्दर हवियों वाले इन्द्र! तुम स्वर्गलोक में प्रस्थान करो ॥१२॥ हे इन्द्र! तुम अन्तरिक्ष से अथवा पर्वत से आगमन करो। तुम स्वर्ग के शासक हो। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र! तुम स्वर्गलोक के लिए गमन करो ॥१३ हे इन्द्र! तुम हमको सहस्र संख्यक धेनु और अश्व प्रदान करो। इन्द्र स्वर्ग

के शासक हैं। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक के लिए गमन करो ॥१४॥ हे इन्द्र ! हमको सौ, सहस्र और दश सहस्र प्रकार की वस्तुऐं दो। इन्द्र स्वर्ग के शासक हैं। हे श्रेष्ठ हवियों से सम्पन्न इन्द्र ! तुम स्वर्गलोक को गमन करो ॥ १५ ॥ हम सहस्र संख्यक हैं, हम और हमारा नेतृत्व करने वाले इन्द्र बलिष्ट घोड़े आदि पशुओं का पालन करते हैं। इस प्रकार हम धन के द्वारा प्रतिष्ठा को प्राप्त करते हैं। १६ ॥ वायु के समान वेग वाले, सरलता से चलने वाले, मनोहर अश्व सूर्य के समान तेजस्वी हैं ॥ १७ ॥ रथ के पहियों को चलाने में समर्थ बनाने वाले इन इन्द्रों को जब पारावत ने दिया था, तब मैं वन में था ॥१८॥ [१३]

३५ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्वः । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनादित्यै रुद्रैर्वसुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥१
विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याद्रिभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥२
विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३
जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥४
स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५
गिरो जुषेथामध्वरं जुषेथा विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥६ ॥१४

हे अश्विनीकुमारो ! आदित्यों, रुद्रों, वसुओं, विष्णु, अग्नि, इन्द्र, वरुण, उषा और सूर्य के सहित तुम सोम पीओ ॥ १ ॥ पराक्रमी अश्विनीकुमारो ! सब प्राणियों, प्रजाओं, स्वर्ग, पृथिवी, पर्वत, उषा और सूर्य के

सहित तुम सोम पान करो ॥२॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम तैंतीस देवताओं, भृगुओं, मरुतों, उषा और सूर्य के सहित सोम-पान करो ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मेरे आह्वान को समझते हुए, मेरे यज्ञ का सेवन करो । इस यज्ञ के सब सवनों में रहो और उषा तथा सूर्य के सहित हमारे हविरन्न को स्वीकार करो ॥४॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे कन्याओं के (स्वयंवर में) बुलाने को युवक स्वीकार करते हैं, वैसे ही इस यज्ञ के स्तोमों को तुम स्वीकार करो । तुम इस यज्ञ के सब सवनों में रहो ! उषा और सूर्य के सहित हमारे हविरन्न को स्वीकार करो ॥५॥ हे अश्विनीकुमारो ! हमारी स्तुतियों और यज्ञ का सेवन करो । इस यज्ञ के सब सवनों में रहो । उषा और सूर्य के सहित हमारे हवि रूप अन्न का भी सेवन करो ॥६॥ [१४]

हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७
हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥८
श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥९
पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥ १०
जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥११
हतं च शत्रून्यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१२ ॥१५

जैसे दो पक्षी जल की ओर झुकते हैं, वैसे ही इस संस्कारित सोम की ओर तुम दोनों झुको । सोम को दो भैंसों के समान जानो । हे अश्विद्वय ! तुम उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्ग गामी होओ ॥७॥ तुम दो हंसों और दो प्यासे पथिकों के समान संस्कारित सोम की ओर आओ और उसे दो भैंसों के

समान समझो। हे अश्विनीकुमारो! उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्गगामी होओ॥८॥ हे अश्विनीकुमारो! दो यात्रों के समान संस्कारित सोमरस की ओर आगमन करो और उसे दो भैंसों के समान समझो। उषा और सूर्य के सहित त्रिमार्गगामी होओ॥६॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम सोम पीकर तृप्ति को प्राप्त करो। यहाँ आकर धन, संतान दो। उषा और सूर्य के सहित तुम दोनों हमको बल प्रदान करो॥ १०॥ हे अश्विनीकुमारो! शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो। स्तुति करने वालों की रक्षा करते हुए, उनकी प्रशंसा करो। धन, संतान देते हुए उषा सूर्य के सहित हमको बल प्रदान करो॥११॥ हे अश्विनीकुमारो! मन्त्री महित रणक्षेत्र में आकर शत्रुओं को नष्ट करो। हमको धन, संतान दो। उषा और सूर्य के सहित तुम दोनों हमको बल प्रदान करो॥१२॥ [१२]

मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मिरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥१३
अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥१४
ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम्।
सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना॥१५
ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥१६
क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नृन्हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥१७
धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना॥१८॥१६

हे अश्विनीकुमारो! तुम मित्रावरुण, मरुद्गण और धर्म के सहित स्तुति करने वाले के आह्वान की ओर गमन करो। उषा और सूर्य को भी अपने साथ लेलो॥ १३॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम मरुद्गण, विष्णु, आंगिरस उषा और सूर्य को साथ लेकर स्तुति करने वाले के आह्वान की ओर गमन

करो ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम मरुद्गण, ऋभुगण, उषा और सूर्य को साथ लेकर स्तोता के आह्वान की ओर गमन करो ॥ १५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे स्तोत्र और कर्म पर अधिकार करो । दैत्यों का संहार करो । सोम अभिषव करने वाले के सामने, उषा और सूर्य के साथ आकर सोम को पीओ ॥ १६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम वीरों और उनके बल को आधीन करो । राक्षसों को वश में करते हुए उन्हें मार डालो । उषा और सूर्य के साथ अभिषुत सोम का पान करो ॥ १७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! विशों और उनके धन गौओं को अपने आधीन करो । दैत्यों को वश में करते हुए मारो । उषा और सूर्य के साथ मिलकर अभिषुत सोम का पान करो ॥१८॥ [१६]

अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥१९
सर्गां इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२०
रश्मींरिव यच्छतमध्वरां उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२१
अर्वाग्रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२
नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३
स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४ ॥१७

हे अश्विनीकुमारो ! तुम शत्रुओं के अहंकार को नष्ट करने में समर्थ हो । अत्रि के समान ही मुझ श्यावाश्व की स्तुति भी सुनो । प्रातः सवन में उषा और सूर्य के साथ सोम को पीओ ॥ १९ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! आभरण के समान ही इस सुन्दर स्तोत्र को ग्रहण करो । मुझ श्यावाश्व के प्रातः यज्ञ में उषा और सूर्य के साथ आकर सोम का पान करो ॥ २० ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मुझ श्यावाश्व के यज्ञ की ओर लगाम के समान आओ । मेरे इस

प्रातः सवन में उषा और सूर्य के सहित आकर अभिषुत सोम रस का पान करो ॥२१॥ हे अश्विनीकुमारो ! अपने रथ को हमारे सामने लाकर सोम पियो। मेरे यज्ञ में सोम के सामने आओ। मैं तुम्हें रक्षा की कामना से आहूत करता हूँ। मुझ हविदाता को रत्न-धन दो ॥२२॥ हे अश्विनीकुमारो ! मेरे इस यज्ञ में किये जाते हुए नमस्कारों के प्रति आकर सोम पान करो। मैं तुम्हें रक्षा की कामना करता हुआ आहूत करता हूँ। मुझ हविदाता को रत्न-धन दो ॥२३ हे अश्विनीकुमारो ! इस अभिषुत सोम की दी गई आहुति से तुम तृप्त होओ। मैं रक्षा की कामना करता हुआ तुम्हें आहूत करता हूँ। इसलिए इस यज्ञ में आकर मुझ हवि देने वाले को रत्न धन प्रदान करो ॥२४॥ [१७]

३६ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्वः। देवता-इन्द्रः। छन्द - शक्वरी, जगती)

अवितासि सुन्वतो वृक्तबर्हिषः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन्विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥१
प्राव स्तोतारं मघवन्नव त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥२
ऊर्जा देवाँ अवस्योजसा त्वां पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥३
जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥४
जनिताश्वानां जनिता गवामसि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥५

अत्रीणां स्तोममद्रिवो महस्कृधि पिबा सोमं मदाय कं शतक्रतो ।
यं ते भागमधारयन् विश्वाः सेहानः पृतना
उरु ज्रयः समप्सुजिन्मरुत्वाँ इन्द्र सत्पते ॥६
श्यावाश्वस्य सुन्वतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र ब्रह्माणि वर्धयन् ॥७ ॥१८

हे इन्द्र ! तुम अनेक कर्मों के करने वाले हो। सोम का अभिषव करने वाले और कुश बिछाने वाले यजमान की तुम रक्षा करते हो। तुम सत्य के स्वामी और मरुद्गण से युक्त हो, तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने निश्चित किया है, उस सोम-भाग को शक्ति के निमित्त सब शत्रुओं को हराते हुए पान करो ॥१। हे इन्द्र ! सोम पीकर अपने को पुष्ट करो और स्तुति करने वाले का भी पोषण करो। तुम सत्य के स्वामी और मरुद्गण से युक्त हो। तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को शक्ति के लिए, शत्रुओं को हराते हुए पान करो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम बल के द्वारा अपने को पुष्ट करते हो और अन्न के द्वारा देवताओं का पोषण करते हो। तुम अनेक कर्मों के करने वाले, सत्य के स्वामी तथा मरुतों से युक्त हो। तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए जल के मध्य विजय प्राप्त करते हुए, उस सोम भाग को हर्ष के निमित्त पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग और पृथिवी के उत्पन्न-कर्त्ता, सत्य के स्वामी, बहुत से कर्मों के करने वाले और मरुतों से युक्त हो। तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए और जल में विजय प्राप्त करते हुए शक्ति के लिए पान करो ॥ ४॥ हे इन्द्र ! तुम गौओं और घोड़ों के पिता हो। बहुत कर्म करने वाले, सत्य के स्वामी और मरुतों से युक्त हो। तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने कल्पित किया है, उस सोम-भाग को, शत्रुओं के वेग को दबाते हुए तथा जल में विजय प्राप्त करते हुए शक्ति के निमित्त पियो ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम पर्वतों और मरुतों से युक्त हो। तुम सत्य के स्वामी और अनेक कर्मों के कर्त्ता हो। तुम्हारे लिए सोम का जो भाग देवताओं ने

कल्पित किया है, तुम शत्रुओं के भीषण वेग को वशीभूत करते हुये और जल के मध्य विजय प्राप्त करते हुये उस सोम भाग का शक्ति के निमित्त पान करो ॥ ६॥ हे इन्द्र ! यज्ञानुष्ठान करने वाले महर्षि अत्रि की स्तुति के समान ही सुम्फ सोम का अभिषव करने वाले श्यावाश्व की भी स्तुति सुनो ! एक मात्र तुमने ही रणक्षेत्र में स्तोत्रों के फल को बढ़ाते हुए, त्रसदस्यु की रक्षा की थी ॥ ७॥ [१८]

३७ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती)

प्रेदं ब्रह्म वृत्रतूर्येष्वाविथ प्र सुन्वतः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥१
सेहान उग्र पृतना अभि द्रुहः शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥२
एकराळस्य भुवनस्य राजसि शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥३
सस्थावाना यवयसि त्वमेक इच्छचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥४
क्षेमस्य च प्रयुजश्च त्वमीशिषे शचीपत इन्द्र विश्वभिरूतिभि. ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ॥५
क्षत्राय त्वमवसि न त्वमाविथ शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य वृत्रहन्ननेद्य पिबा सोमस्य वज्रिवः ।६
श्यावाश्वस्य रेभतस्तथा शृणु यथाशृणोरत्रेः कर्माणि कृण्वतः ।
प्र त्रसदस्युमाविथ त्वमेक इन्नृषाह्य इन्द्र क्षत्राणि वर्धयन् ॥७ ॥१९

हे यज्ञ के स्वामी इन्द्र ! अपने सब रक्षा-साधनों द्वारा इस स्तोत्र की संग्राम में रक्षा करो । तुम निन्दा-रहित, वज्रधारी और वृत्र हन्ता . मेरे सोमाभिषव कर्म की रक्षा करते हुए माध्य सवन में आकर सोम-प

हे इन्द्र ! तुम सब कर्मों के स्वामी, और विकराल कर्म वाले हो । शत्रु-सेनाओं को अपने सब रक्षा साधनों द्वारा हरा कर इस स्तोत्र की रक्षा करो । तुम निन्दा-रहित, वज्रधारी और वृत्र हन्ता हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥२॥ हे यज्ञ-स्वामी इन्द्र ! तुम इस लोक के एक मात्र स्वामी होते हुए सब रक्षा-साधनों से सम्पन्न रहते हो, अतः, इस स्तोत्र को रक्षित करो । तुम निन्दा रहित, वज्र के धारण करने वाले और वृत्र हन्ता हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥३ ॥ हे यज्ञ स्वामी इन्द्र ! तुम इन दोनों लोकों को पृथक करते हुए दोनों में ही समान रूप से अवस्थित रहते हो । तुम निन्दा-रहित, वृत्र-हन्ता और वज्रधारी हो । मान्ध्य सवन में आकर सोम-पान करो ॥४ हे यज्ञपते ! हे इन्द्र ! तुम सब रक्षा-साधनों से सम्पन्न अखिल विश्व, सब कल्याणों एवं प्रयोगों के स्वामी हो । तुम निन्दा-रहित, वृत्रहनन कर्त्ता, और वज्र के धारण करने वाले हो । मांध्यन्दिन में आकर सोम-पान करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब रक्षाओं से सम्पन्न होकर बलवान होते हो । तुम्हें किसी की रक्षा प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती । तुम वृत्रहन, वज्रधारी और अनिंद्य हो । मांध्य सवन में सोम-पान करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! अनुष्ठाता अत्रि की स्तुति सुनने के समान ही मुझ श्यावाश्व की स्तुति सुनो । एक मात्र तुमने ही स्तोत्रों को प्रवृद्ध करते हुए रणक्षेत्र में त्रसदस्यु की रक्षा की थी ॥७॥ [१६]

३८ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्वः । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द—गायत्री)

यज्ञस्य हि स्थ ऋत्विजा सस्नी वाजेषु कर्मसु ।
इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥१
तोशासा रथयावाना वृत्रहणापराजिता । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥२
इदं वा मदिरं मध्वधुक्षन्नद्रिभिर्नरः । इन्द्राग्नी तस्य बोधतम् ॥३
जुषेथां यज्ञमिष्टये सुतं सोमं सधस्तुती । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥४
इमा जुषेथां सवना येभिर्हव्यान्यूहथुः । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥५ ।२०

हे इन्द्राग्ने ! तुम पवित्र और ऋत्विक् हो । यज्ञों में और संग्रामों में मुझ

यजमान के स्तोत्र को समझो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम शत्रु को हिंसा करने वाले, रथ के द्वारा विचरण करने वाले, वृत्रहन्ता और अजेय हो । तुम मुझ यजमान को जानो ॥ २॥ हे इन्द्राग्ने ! यज्ञ में पाषाण के द्वारा यह हर्षकारी सोम रस दुहा गया है । तुम मुझ यजमान को जानो ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारी एक साथ स्तुति की जाती है, तुम इस यज्ञ का सेवन करो और अभिषुत सोम की ओर आगमन करो ॥४॥ हे नेता इन्द्राग्ने ! तुम यहाँ आओ, जिसके द्वारा तुम सोम का वहन करते हो, उस सवन को सेवन करो ॥५ ॥ [२०]

इमां गायत्रवर्तनिं जुषेथां सुष्टुतिं मम । इन्द्राग्नी आ गतं नरा ॥६

प्रातर्यावभिरा गतं देवेभिर्जेन्यावसू । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥७

श्यावाश्वस्य सुन्वतोऽत्रीणां शृणुतं हवम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥८

एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः । इन्द्राग्नी सोमपीतये ॥९

आहं सरस्वतीवतोरिन्द्राग्न्योरवो वृणे । याभ्यां गायत्रमृच्यते ।१०।२१

हे इन्द्राग्ने ! तुम इस गायत्री छन्द वाली सुन्दर स्तुति को आकर सुनो ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम धन के विजेता हो । तुम प्रातः सवन में देवताओं सहित आकर सोम-पान करो ॥७॥ हे इन्द्राग्ने ! सोम का अभिषव करने वाले श्यावाश्व के ऋत्विजों का सोम पीने के लिये आह्वान सुनो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! जैसे प्राचीन विद्वानों ने तुम्हें आहूत किया था वैसे रक्षा के लिए और सोम-पान के लिए तुम्हें आहूत करता हूँ ॥९॥ जिन इन्द्राग्नि के निमित्त साम-गान किया जाता है उन्हीं से मैं रक्षा की याचना करता हूँ ॥१०॥ [२१]



(ऋषि—नाभाकः काण्वः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अग्निमस्तोष्यृग्मियमग्निमीळा यजध्यै ।

अग्निर्देवाँ अनक्तु न उभे हि विदथे

कविरन्तश्चरति दूत्यं नभन्तामन्यके समे ॥१

न्यग्ने नव्यसा वचस्तनूषु शंसमेषाम् ।

न्यराती रराव्णां विश्वा अर्यो अरातीरितो
युच्छन्त्वामुरो नभन्तामन्यके समे ॥२
अग्ने मन्मानि तुभ्यं कं घृतं न जुह्व आसनि ।
स देवेषु प्र चिकिद्धि त्वं ह्यसि पूर्व्यः
शिवो दूतो विवस्वतो नभन्तामन्यके समे ॥३
तत्तदग्निर्वयो दधे यथायथा कृपण्यति ।
ऊर्जाहुतिर्वसूनां शं च योश्च मयो दधे
विश्वस्यै देवहूत्यै नभन्तामन्यके समे ॥४
स चिकेत सहीयसाग्निश्चित्रेण कर्मणा ।
स होता शश्वतीनां दक्षिणाभिरभीवृत
इनोति च प्रतीव्यं नभन्तामन्यके समे ॥५ ॥२२

मैं यज्ञ के लिए ऋक् मन्त्रों के पात्र अग्नि की स्तुति करता हूँ। वे अग्नि हमारे यज्ञ में हवियों से देवताओं को पूजें। जो विद्वान् अग्नि स्वर्ग और पृथिवी में दौत्य-कर्म करते हैं, वे हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ १ ॥ हे अग्ने! हमारे प्रति शत्रुओं में जो हिंसा-भावना व्याप्त है उसे अभिनव स्तोत्र द्वारा भस्म करो। हम हवि देने वालों के शत्रुओं को भस्म कर डालो। सभी मूढ़ शत्रु यहाँ से पलायन करें। अग्नि देवता हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ २ ॥ हे अग्ने! मैं तुम्हारे मुख में सुखकारी घृत युक्त हव्य को स्तोत्र द्वारा डालता हूँ। तुम प्राचीन, सुखकर, और देवदूत हो। देवताओं के मध्य हमारे स्तोत्र को जानो और हमारे सब-शत्रुओं का संहार कर डालो ॥ ३ ॥ स्तुति करने वाले जिस अन्न की कामना करते हैं, अग्निदेव उन्हें वही अन्न देते हैं। हवियों द्वारा आहूत अग्नि यजमानों को उपभोग के योग्य तथा मंगल करने वाला सुख प्रदान करते हैं। सब देवताओं के आह्वान में रहने वाले अग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥४॥ वे अग्नि सब देवताओं के होता हैं, विविध कर्मों द्वारा वे जाने जाते हैं। वे शत्रुओं के सामने जाने वाले अग्नि हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥५॥ [२२]

अग्निर्जाता देवानामग्निर्वेद मर्तानामपीच्यम् ।
अग्निः स द्रविणोदा अग्निर्द्वारा व्यूर्णुते
स्वाहुतो नवीयसा नभन्तामन्यके समे ॥६
अग्निर्देवेषु संवसुः स विक्षु यज्ञियास्वा ।
स मुदा काव्या पुरु विश्वं भूमेव पुष्यति
देवो देवेषु यज्ञियो नभन्तामन्यके समे ॥७
यो अग्निः सप्तमानुषः श्रितो विश्वेषु सिन्धुषु ।
तमागन्म त्रिपस्त्यं मन्धातुर्दस्युहन्तममग्निं
यज्ञेषु पूर्व्यं नभन्तामन्यके समे ॥८
अग्निस्त्रीणि त्रिधातून्या क्षेति विदथा कविः ।
स त्रींरेकादशाँ इह यक्षच्च पिप्रयच्च नो
विप्रो दूतः परिष्कृतो नभन्तामन्यके समे ॥९
त्वं नो अग्न आयुषु त्वं देवेषु पूर्व्य वस्व एक इरज्यसि ।
त्वामापः परिस्रुतः परि यन्ति स्वसेतवो नभन्तामन्यके समे ॥ १० ॥२३

मनुष्यों में जो रहस्य है, उसे अग्नि जानते हैं, वे देवताओं की उत्पत्ति के भी जानने वाले हैं। वे धन देने वाले अग्नि हवियों द्वारा बुलाए जाकर धन का द्वार खोलते हैं। वही अग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ६ ॥ वह अग्नि देवताओं में निवास करते हैं, वे प्रजाओं में भी व्याप्त रहते हैं। पृथिवी जैसे सब संसार का पोषण करती है, वैसे ही अग्नि भी सब कार्यों को पुष्ट करते हैं। वे देवताओं में यज्ञ के पात्र अग्नि हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥ ७॥ अग्नि सातों प्रदेशों के मनुष्यों और सब नदियों में व्याप्त हैं। वे तीनों स्थानों में समान रूप से रहते हैं। उन्होंने यौवनाश्व पुत्र मान्धाता के निमित्त राक्षसों का नाश किया। यज्ञों में मुख्य अग्नि हमारे सब शत्रुओं की हिंसा करें ॥ ८॥ तीनों स्थानों में निवास करने वाले अग्नि इस यज्ञ में दौत्य कर्म से सम्पन्न,मेधावी और सुशोभित होते हुए तेंतीस देवताओं का यजन करें। वे हमारी कामनाओं की पूर्ति करते हुए सब शत्रुओं की हिंसा करें ॥९

हे अग्ने ! तुम प्राचीन हो । देवताओं और मनुष्यों के तुम स्वामी हो । यह जल तुम्हारे चारों ओर गमन करता है । वह अग्नि सब शत्रुओं का संहार करें ॥१०॥ [२३]

४० सूक्त

(ऋषि—नाभाकः काण्वः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्, शक्वरी, जगती)

इन्द्राग्नी युवं सु नः सहन्ता दासथो रयिम् ।
येन दृळ्हा समत्स्वा वीळु चित्साहिषीमह्यग्निर्वनेव
वात इन्नभन्तामन्यके समे ॥१
नहि वां वव्रयामहे्ऽथेन्द्रमिद्यजामहे शविष्ठं नृणां नरम्
स नः कदा चिदर्वता गमदा वाजसातये
गमदा मेधसातये नभन्तामन्यके समे ॥२
ता हि मध्यं भराणामिन्द्राग्नी अधिक्षितः ।
ता उ कवित्वना कवी पृच्छ्यमाना सखीयते
सं धीतमश्नुतं नरा नभन्तामन्यके समे ॥३
अभ्यर्च नभाकवदिन्द्राग्नी यजसा गिरा ।
ययोर्विश्वमिदं जगदियं द्यौः पृथिवी
मह्युपस्थे विभृतो वसु नभन्तामन्यके समे ॥४
प्र ब्रह्माणि नभाकवदिन्द्राग्निभ्यामिरज्यत ।
या सप्तबुध्नमर्णवं जिह्मवारमपोर्णुत इन्द्र
ईशान ओजसा नभन्तामन्यके समे ॥५
अपि वृश्च पुराणवद् व्रततेरिव गुष्पितमोजो दासस्य दम्भय ।
वयं तदस्य सम्भृतंवस्विन्द्रेण वि भजेमहि नभन्तामन्यके समे ॥६ ॥२४

हे इन्द्राग्ने ! शत्रुओं को पराजित करो और हमको धन प्रदान करो । अग्नि जैसे वायु के द्वारा जङ्गल को दबाते हैं, वैसे ही हम भी शत्रुओं को वशीभूत करेंगे । यह इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥१॥ हे

इन्द्राग्ने ! हम तुमसे धन नहीं माँगते। हम नेताओं के नेता एवं महाबली इन्द्र के लिए यज्ञ करते हैं। वे इन्द्र कभी यज्ञ की प्राप्ति को और कभी अन्न की प्राप्ति को आगमन करते हैं। वे इन्द्राग्नि सब शत्रुओं का नाश करें ॥२॥ हे नेताओ ! तुम ही मित्रता के इच्छुक यजमान द्वारा किए गए कर्म को व्याप्त करते हो। जो इन्द्राग्नि रणक्षेत्र में वास करते हैं, वह सब शत्रुओं को हिंसित करें ॥ ३॥ इन्द्राग्नि में सब जगत विद्यमान है, उन इन्द्र और अग्नि को यज्ञ तथा स्तुतियों से प्रसन्न करो। इनकी ही गोद में स्वर्ग और महिमामयी पृथिवी धन को धारण करते हैं। वही इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥४ यह इन्द्राग्नि सात मूल वाले, बल के द्वारा ईश्वर, अपने तेज से समुद्र के आच्छादक और अवरुद्ध द्वार वाले हैं। इन इन्द्राग्नि के लिये, नाभाक के समान ऋषिगण स्तुतियाँ करते हैं। वे इन्द्र और अग्नि हमारे सब शत्रुओं का वध कर डालें ॥५॥ हे इन्द्र ! तुम दस्युओं के बल को नष्ट करो। लता की शाखाएं जैसे काटी जाती हैं, वैसे ही हमारे सब शत्रुओं को काट डालो। इन्द्र की कृपा से हम एकत्रित धन को बाँट लेंगे। वे इन्द्र और अग्नि हमारे सब शत्रुओं को मार डालें ॥६॥ [२४]

यदिन्द्राग्नी जना इमे विह्वयन्ते तना गिरा ।
अस्माकेभिर्नृभिर्वयं सासह्याम पृतन्यतो
वनुयाम वनुष्यतो नभन्तामन्यके समे ॥७
या नु श्वेताववो दिव उच्चरात उप द्युभिः ।
इन्द्राग्न्योरनु व्रतमुहाना यन्ति सिन्धवो यान्त्सी
बन्धादमुञ्चतां नभन्तामन्यके समे ॥८
पूर्वीष्ट इन्द्रोपमातयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः सूनो हिन्वस्य हरिवः ।
वस्वो वीरस्यापृचो या नु साधन्त नो धियो नभन्तामन्यके समे ॥९
तं शिशीता सुवृक्तिभिस्त्वेषं सत्वानमृग्मियम् ।
उतो नु चिद्य ओजसा शुष्णस्याण्डानि
भेदति जेषत्स्वर्वतीरपो नभन्तामन्यके समे ॥१०
तं शिशीता स्वध्वरं सत्यं सत्वानमृत्वियम् ।

उतो नु चिद्य ओहत आण्डा शुष्णस्य भेदत्यजैः ।
स्वर्वातीरपो नभन्तामन्यके समे ॥११
एवेन्द्राग्निभ्यां पितृवन्नवीयो मन्धातृवदङ्गिरस्वदवाचि ।
त्रिधातुना शर्मणा पातमस्मान् वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥१२॥२५

जो व्यक्ति अपने धन और स्तुतियों से इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं, उनमें से हम सेनाओं वाले व्यक्ति अपने वीरों को साथ लेकर शत्रुओं को पराजित करेंगे और हम में से जो स्तोता हैं, वह शत्रुओं को पकड़ लेंगे ॥७॥ जो इन्द्र-अग्नि दीप्ति के द्वारा आकाश के लिए ऊर्ध्वगमन करते हैं, हवि वाहक यजमान उनके लिये ही यज्ञ-कर्म करते हैं। उन इन्द्र और अग्नि ने ही प्रसिद्ध सिंधु आदि नदियों को खोला था। वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ८ ॥ हे वज्रिन्! तुम स्नेह करने वाले, धनवान् और हर्यश्ववान् हो तुम्हारी प्राचीन स्तुतियाँ बहुत हैं। यह स्तोत्र हमारी बुद्धि को प्रवृद्ध करें। वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥ ६ ॥ हे स्तुति करने वालो! धन के भंडार, दैदीप्यमान और मन्त्र योग्य इन्द्र को श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा प्रवृद्ध करो। शुष्मासुर की संतानों के वध करने वाले इन्द्र ही दिव्य जलों को वश में करते हैं। वे इन्द्राग्नि हमारे सब शत्रुओं का संहार करें ॥१०॥ हे स्तुति करने वालो! इन्द्र यजनीय, अविनाशी, ऐश्वर्यवान् और सुन्दर कर्म वाले हैं, उन्हें स्तुतियों द्वारा बढ़ाओ। वे इन्द्र शुष्म के अण्डों को नष्ट करते, दिव्य जलों को अभिभूत करते और यज्ञ में व्याप्त होते हैं। वह इन्द्र-अग्नि हमारे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ ११ ॥ इन्द्र और अग्नि के निमित्त मैंने अपने पिता मान्धाता और अङ्गिरा के समान ही अभिनव स्तोत्रों का उच्चारण किया है। वे हमको तीन पर्वों वाला घर दें। उनकी कृपा से ही हम ... बनेंगे ॥१२॥ [२५

४१ सूक्त

(ऋषि-नाभाकः काण्वः । देवता-वरुणः । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

अस्मा ऊ षु प्रभूतये वरुणाय मरुद्भ्योऽर्चा विदुष्टरेभ्यः ।
यो धीता मानुषाणां पश्वो गाइव रक्षति नभन्तामन्यके समे ॥ १

ग्रमू पु समना गिरा पितृणां च मन्मभिः ।
नाभाकस्य प्रशस्तिभिर्यः सिन्धूनामुपोदये
सप्तस्वसा स मध्यमो नभन्तामन्यके समे ॥२
॥ शपः परि षस्वजे न्यु स्रो मायया दधे स विश्वं परि दर्शतः ।
तस्य वेनीरनु व्रतमुषस्तिस्रो अवर्धयन्नभन्तामन्यके समे ॥३
यः ककुभो निधारयः पृथिव्यामधि दर्शतः ।
म माता पूर्व्यं पदं तद्वरुणस्य सप्त्यं
। हि गोपा इवेर्यो नभन्तामन्यके समे ॥४
ो धर्ता भुवनानां य उस्राणामपीच्या वेद नामानि गुह्या ।
। कविः काव्या पुरु रूपं द्यौरिव पुष्यति नभन्तामन्यके समे ॥५ ॥२६

हे स्तोताओ ! इन्द्र, वरुण और मरुद्गण की, धन-प्राप्ति के निमित्त स्तुति करो । वरुण, मनुष्यों के सब पशुओं की, गौओं की रक्षा करने के समान ो रक्षा करते हैं । वह हमारे शत्रुओं का वध करें ॥१॥ सुन्दर स्तोत्रों से रुण का स्तव करता हूँ । श्रेष्ठ स्तोत्रों से पितरों की स्तुति करता हूँ । मैं ाभाक के स्तोत्रों से उन सात बहनों वाले, नदियों के पास आविर्भूत होने वाले की स्तुति करता हूँ । वह मेरे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ २॥ दर्शनीय वरुण ात्रियों से मिलते हैं, वे ऊर्ध्वगामी होते हुए कर्म के द्वारा जगत को धारण करते हैं । उनके कर्म की इच्छा वाले पुरुष तीन उषाओं को बढ़ाते हैं । वह सब शत्रुओं का वध करें ॥ ३ ॥ वे दर्शनीय वरुण पृथिवी पर दिशाओं को धारण करते हैं । हमारे विचरण स्थान पृथिवी और स्वर्ग के वह स्वामी हैं। वे हमारी गौओं के रक्षक, स्वामी तथा निर्माता हैं । वह सब शत्रुओं का वध रें ॥ ४॥ सब भुवनों के धारक और रश्मियों में निहित नामों के ज्ञाता वरुण ी आकाश के समान कवि-कर्मों को पुष्ट करते हैं । वह सब शत्रुओं का वध रें ॥ ५ ॥

[२६]

यस्मिन् विश्वानि काव्या चक्रे नाभिरिव श्रिता ।
त्रितं जूती सपर्यत व्रजे गावो न संयुजे

युजे अश्वां अयुक्षत नभन्तामन्यके समे ॥६
य आस्वत्क आशये विश्वा जातान्येषाम् ।
परि धामानि मर्मृशद्वरुणस्य पुरो गये विश्वे
देवा अनु व्रतं नभन्तामन्यके समे ॥७
स समुद्रो अपीच्यस्तुरो द्यामिव रोहति नि यदासु यजुर्दधे ।
स माया अर्चिना पदास्तृणान्नाकमारुहन्नभन्तामन्यके समे ॥८
यस्य श्वेता विचक्षणा तिस्रो भूमीरधिक्षितः ।
त्रिरुत्तराणि पप्रतुर्वरुणस्य ध्रुवं सदः स सप्तानामिरज्यति
नभन्तामन्यके समे ॥९

य श्वेताँ अधिनिर्णिजश्चक्रे कृष्णाँ अनु व्रता ।
स धाम पूर्व्यं ममे यः स्कम्भेन वि रोदसी
अजो न द्यामधारयन्नभन्तामन्यके समे ॥१० ॥२७

चक्र-नाभि के समान सभी काव्य जिन वरुण के आश्रित हैं, उन तीन स्थान वाले वरुण की सेवा करो। गौ जैसे गोष्ठ में जाती है, वैसे ही शत्रु हमको पराजित करने के उद्देश्य से संग्राम के लिए घोड़ों को जोतते हैं, उन सब शत्रुओं को वह मारें ॥ ६ ॥ सब दिशाओं में व्याप्त वरुण शत्रुओं के चारों ओर बने नगरों को ध्वस्त करते हैं। सब देवता वरुण के रथ के सामने ही कर्म करते हैं। वह वरुण हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥७॥ समुद्र रूप में अप्रत्यक्ष वरुण आदित्य के समान ही द्यौ पर आरूढ़ होकर सब दिशाओं में अवस्थित प्रजाओं को दान देते हैं। वे अपने प्रतिष्ठित पद से माया को नष्ट करते हुए स्वर्ग को जाते हैं। वह वरुण हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥८॥ वरुण अन्तरिक्ष में निवास करते हैं, उनके अद्भुत और उज्ज्वल तीन तेज तीनों लोकों में प्रख्यात हैं। वह निश्चल स्थान वाले, सातों नदियों के स्वामी हैं। वह हमारे सब शत्रुओं का वध करें ॥ ९॥ जिनकी किरणें दिन में श्वेत और रात्रि में काले वर्ण की होती हैं, उन वरुण ने आकाश और अन्तरिक्ष को अपने कर्म के लिये रचा। जैसे सूर्य स्वर्ग को धारण करते हैं, वैसे ही वरुण

भी आकाश पृथिवी को अन्तरिक्ष के द्वारा धारण करते हैं। वह सब शत्रुओं का वध करें ॥१०॥ [२७]

४२ सूक्त

(ऋषि–नाभाकः काण्व अर्चनाना वा । देवता-वरुणः, अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अस्तभ्नाद् द्यामसुरो विश्ववेदा अमिमीत वरिमाणं पृथिव्याः ।
आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ॥१
एवा वन्दस्व वरुणं बृहन्तं नमस्या धीरममृतस्य गोपाम् ।
स नः शर्म त्रिवरूथं वि यंसत्पात नो द्यावापृथिवी उपस्थे ॥२
इमां धियं शिक्षमाणस्य देव क्रतुं दक्षं वरुण सं शिशाधि ।
ययाति विश्वा दुरिता तरेम सुतर्माणमधि नावं रुहेम ॥ ३
आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥४
यथा वामत्रिरश्विना गीर्भिर्विप्रो अजोहवीत् ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥५
एवा वामह्व ऊतये यथाहुवन्त मेधिराः ।
नासत्या सोमपीतये नभन्तामन्यके समे ॥६ ॥२८

वरुण सब के जानने वाले और बलवान हैं, उन्होंने पृथिवी को विस्तीर्ण किया और आकाश को स्थिर किया। वह सब लोकों के अधीश्वर होते हुए प्रतिष्ठित हुए। वरुण के ऐसे ही अनेक कर्म हैं ॥१॥ हे स्तोता ! वरुण बृहत् हैं, वे धीर अमृत की रक्षा करते हैं उन्हें नमस्कार पूर्वक पूजो। वह वरुण हमको तीन पर्वों का भवन प्रदान करें। हम उनके अङ्क में निर्भीक रहते हैं। आकाश और पृथिवी हमारा पालन करने वाले हों ॥ २॥ हे वरुण ! मेरे

कर्म ज्ञान और बल को प्रवृद्ध करो। सर्व दुष्कर्मों से पार लगाने वाली नाव पर हम आरूढ़ होंगे ॥ ३ ॥ अश्विनीकुमार सत्य रूप वाले हैं। वह ऋत्विज के सब प्रस्तरों और तुम्हारे कर्मों के सामने पहुँचते हैं। यह दोनों हमारे शत्रुओं का वध करें ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे महर्षि अत्रि ने अपने स्तोत्र द्वारा तुम्हें सोम-पान के निमित्त आहूत किया था, वैसे ही मैं भी तुम्हारा आह्वान करता हूँ। वह अश्विद्वय मेरे शत्रुओं को नष्ट करें ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे विद्वानों ने तुम्हें सोम पीने के लिए आहूत किया था, वैसे ही मैं भी अपनी रक्षा के लिये तुम्हें आहूत करता हूँ। अश्विनीकुमार मेरे सब शत्रुओं को नष्ट करें ॥६॥ [२८]

४३ सूक्त (छठवां अनुवाक)

(ऋषि-विरूप आंगिरसः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

इमे विप्रस्य वेधसोऽग्नेरस्तृतयज्वनः। गिरः स्तोमास ईरते ॥१
अस्मै ते प्रतिहर्यते जातवेदो विचर्षणे। अग्ने जनामि सुष्टुतिम् ॥२
आरोकाइव घेदह तिग्मा अग्ने तव त्विषः। दद्भिर्वनानि बप्सति ॥३
हरयो धूमकेतवो वातजूता उप द्यवि। यतन्ते वृथगग्नयः ॥४
एते त्ये वृथगग्नय इद्धासः समदृक्षत। उषसामिव केतवः ॥५ ॥२९

अग्नि ही विधाता हैं। वह मेधावी अपने यजमान को कभी हिंसित नहीं करते। हमारे स्तोता उन्हीं अग्नि की पूजा करते हैं ॥ १ ॥ हे दर्शनीय अग्ने ! मैं तुम्हारे निमित्त सुन्दर स्तोत्र करता हूँ, क्योंकि तुम देने वाले हो ॥२ हे अग्ने ! जैसे पशु दांतों द्वारा तृणादि का भक्षण करता है वैसे ही तुम्हारी तीक्ष्ण ज्वालाएं वन का भक्षण करती हैं ॥ ३ ॥ धूम्र रूप ध्वज वाले अग्नि हरणशील हैं, वह वायु द्वारा प्रेरित होकर पृथक-पृथक रूप से अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥ ४ ॥ यह समिद्ध अग्नि, होताओं द्वारा उषा की ध्वजा के समान दर्शनीय होते हैं ॥५॥ [२९]

कृष्णा रजांसि पत्सुतः प्रयाणे जातवेदसः। अग्निर्यद्रोधति क्षमि ॥६
धासिं कृण्वान ओषधीर्बप्सदग्निर्न वायति। पुनर्यन्तरुणीरपि ॥७

जिह्वाभिरह नन्नमदर्चिषा जञ्जणाभवन् । अग्निर्वनेषु रोचते ॥८
अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे । गर्भे सञ्जायसे पुनः ॥९
उदग्ने तव तद् घृतादर्ची रोचत आहुतम् । निसानं जुह्वो मुखे ॥१०॥३०

जब उत्पन्न प्राणियों के ज्ञाता अग्नि पृथिवी के सूखे हुए काठ के आश्रित होते हैं, तब उनके जाते समय, धूलें कृष्ण वर्ण की हो जाती हैं ॥६॥ औषधियों को अन्न मान कर उन्हें खाने मात्र से ही अग्नि तृप्त नहीं होते, यह तरुणावस्था प्राप्त औषधियों में व्याप्त होते हैं ॥७॥ वनस्पतियों को अपनी जीभ से चाटते हुए अग्नि अपने तेज से प्रदीप्त होते हुए सुशोभित होते हैं ॥८॥ हे अग्ने ! तुम जल में प्रविष्ट होते हो, तुम औषधियों को स्थित कर उन्हीं के गर्भ से प्रकट होते हो ॥९॥ हे अग्ने ! तुम घृताक्त जुहू के मुख को चाटते हो तब तुम्हारी ज्वाला अत्यन्त सुशोभित होती है ॥ १० ॥ [३०]

उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे । स्तोमैर्विधेमाग्नये ॥११
उत त्वा नमसा वयं होतर्वरेण्यक्रतो । अग्ने समिद्भिरीमहे ॥१२
उत त्वा भृगुवच्छुचे मनुष्वदग्न आहुत । अङ्गिरस्वद्धवामहे ॥१३
त्वं ह्यग्ने अग्निना विप्रो विप्रेण सन्त्सता । सखा सख्या समिध्यसे ॥१४
स त्वं विप्राय दाशुषे रयिं देहि सहस्रिणम् ।
अग्ने वीरवतीमिषम् ॥१५ ॥३१

जिनका अन्न कामना करने योग्य तथा हव्य भक्षण करने योग्य है, उन सोम पीठ वाले अग्नि की सुन्दर स्तोत्रों से सेवा करते हैं ॥ ११॥ हे प्रज्ञाग्ने ! तुम वरणीय एवं देवाह्वाक हो। हम समिधा प्रदान करने वाले तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥१२॥ हे अग्ने ! तुम्हें भृगु और मनु ने जिस प्रकार बुलाया था, उसी प्रकार हम भी आहूत करते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम मित्र, संत एवं मेधावी हो। तुम इन्हीं गुण वाली अग्नियों के द्वारा प्रज्वलित किये जाते हो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम हविदाता विद्वान् को सहस्रों धन और पुत्रादि से सम्पन्न अन्न प्रदान करो ॥१५॥ [३१]

अग्ने भ्रातः सहस्कृत रोहिदश्व शुचिव्रत । इमं स्तोमं जुषस्व मे ॥१६

उत त्वाग्ने मम स्तुतो वाश्राय प्रतिहर्यते । गोष्ठं गाव इवाशत ॥१७
तुभ्यं ता अङ्गिरस्तम विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । अग्ने कामाय येमिरे।१८
अग्निं धीभिर्मनीषिणो मेधिरासो विपश्चितः । अद्मसद्याय हिन्विरे ॥१९
तं त्वामज्मेषु वाजिनं तन्वाना अग्ने अध्वरम् ।
वह्निं होतारमीळते ॥२० ॥३२

हे यजमानों के सखा, रोहिताश्व, वाले, बलोत्पन्न पावक ! तुम हमारे स्तोत्र पर प्रतिष्ठित होओ ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! जैसे शब्द करते हुए बछड़ों की ओर गौएं जाती हैं, वैसे ही हमारे स्तोत्र तुम्हारी ओर गमन करते हैं ॥१७॥ हे अग्ने ! तुम अङ्गिराओं में श्रेष्ठ हो । अभीष्ट की प्राप्ति के लिए सब प्रजाएं तुम्हारी कामना करती हैं ॥१८॥ सभी चतुर, विद्वान् पुरुष अन्न पाने के लिए, इन अग्नि देवता को प्रदीप्त करते हैं ॥१९॥ हे अग्ने ! तुम होता हो, पराक्रमी एवं हवियों के वहन करने वाले हो । जो स्तोता अपने घर में अनुष्ठान करते हैं, वह तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥२०॥ [३२]

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः । समत्सु त्वा हवामहे।।२१
समीत्स्व य आहुतोऽग्निर्विभ्राजते घृतैः । इमं नः शृणवद्धवम् ॥२२
तं त्वा वयं हवामहे शृण्वन्तं जातवेदसम् । अग्ने घ्नन्तमप द्विषः ॥२३
विशां राजानमद्भुतमध्यक्षं धर्मणामिमम् । अग्निमीळे स उ श्रवत्॥२४
अग्निं विश्वायुवेपसं मर्यं न वाजिनं हितम् ।
सप्तिं न वाजयामसि । २५ ॥३३

हे अग्ने ! तुम सब को समान देखने वाले, सर्वव्याप्त और स्वामी हो । युद्ध के अवसर पर हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २१ ॥ घृत की आहुतियों से अग्नि प्रदीप्त होते हैं, वे हमारे आह्वान को सुनते हैं । हे स्तोताओ ! उनका स्तव करो ॥२२॥ हे अग्ने ! तुम शत्रुओं का वध करने में समर्थ हो, तुम उत्तम हुयों में धन देने वाले हो और तुम हमारे आह्वान को भी सुनते हो । अतः हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ २३॥ अग्नि महान् कर्मों के स्वामी, मनुष्यों के पति हैं मैं उनका स्तोत्र करता हूँ ॥२४॥ अग्नि मनुष्यों के समान हित करने

वाले, शक्तिशाली और सर्वत्र गमन करने वाले हैं। उस अग्नि को हम अश्व के समान बलवान बनावेंगे ॥ २५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　[३३]

घ्नन्मृध्राण्यप द्विषो दहन् रक्षांसि विश्वहा । अग्ने तिग्मेन दीदिहि ।२६
यं त्वा जनास इन्धते मनुष्वदङ्गिरस्तम । अग्ने स बोधि मे वचः । २७
यदग्ने दिविजा अस्यप्सुजा वा सहस्कृत । तं त्वा गीर्भिर्हवामहे ॥२८
तुभ्यं घेत्ते जना इमे विश्वाः सुक्षितयः पृथक् । धासिं हिन्वन्त्यत्तवे ॥२९
ते घेदग्ने स्वाध्योऽहा विश्वा नृचक्षसः । तरन्तः स्याम दुर्गहा ।३०।३४

हे अग्ने ! तुम राक्षसों को भस्म करते हुए तथा हिंसाशील पापियों को नष्ट करते हुए अपने तेज से प्रवृद्ध होओ ॥२६॥ हे अग्ने ! तुम अङ्गिराओं में श्रेष्ठ हो। जैसे तुम्हें मनु ने प्रदीप्त किया था, वैसे ही यह मनुष्य करते हैं। मेरी स्तुति को भी तुम उन्हीं के समान समझो ॥२७॥ हे अग्ने तुम अन्तरिक्ष से उत्पन्न बल से प्रकट हुए हो। हम तुम्हें स्तोत्रों द्वारा आहूत करते हैं ॥२८॥ हे अग्ने ! सब प्राणी तुम्हारे भक्षणार्थ हविरन्न को पृथक्-पृथक् प्रदान करते हैं ॥२९॥ हे अग्ने ! हम सुन्दर कर्म वाले और सर्वदर्शी होते हुए सभी दुर्गम स्थलों को लाँघ जाँयगे ॥३०॥　　　　　　　　　　　　　　　　[३४]

अग्निं मन्द्रं पुरुप्रियं शीरं पावकशोचिषम् । हृद्भिर्मन्द्रेभिरीमहे ॥३१
स त्वमग्ने विभावसुः सृजन्त्सूर्यो न रश्मिभिः । शर्धन्तमांसि जिघ्नसे ।३२
तत्ते सहस्व ईमहे दात्रं यन्नोपदस्यति । त्वदग्ने वार्यं वसु ॥३३ ॥३५

वे अग्नि पवित्र दीप्ति वाले, बहुतों के प्रिय और यज्ञ में शयन करने वाले हैं। हम प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों द्वारा उन्हें हर्षित करते हैं ॥३१॥ हे अग्ने ! जैसे रश्मियों द्वारा सूर्य बल को बढ़ाते हैं, वैसे ही अपनी लपटों द्वारा तुम भी बल की वृद्धि करते हुए अन्धकार का नाश कर देते हो ॥ ३२ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा धारण करने योग्य तथा दान-योग्य धन सदा अक्षुण्ण रहता है। उसी धन की हम याचना करते हैं ॥३३॥　　　　　　　　　　　　　　　　[३५]

४४ सूक्त

(ऋषि-विरूप आंगिरसः । देवता-अग्निः । छन्द—गायत्री)

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् । आस्मिन् हव्या जुहोतन ॥१

अग्निः शुचिव्रततमः शुचिर्विप्रः शुचिः कवि. । शुची रोचत आहुतः ॥२१
उत त्वा धीतयो मम गिरो वर्धन्तु विश्वहा । अग्ने सख्यस्य वोधि नः॥२२
यदग्ने स्यामहं त्वं त्वं वा घा स्या अहम् । स्युष्टे सत्या इहाशिषः ॥२३
वसुर्वसुपतिर्हि कमस्य ने विभावसुः । स्याम स्याम ते सुमतावपि ॥२४
अग्ने धृतव्रताय ते समुद्रायेव सिन्धवः । गिरो वाश्रास ईरते ॥२५॥४०

अग्नि मेधावी, पवित्र, शुभ कर्म वाले तथा कवि हैं। वह आहुतियों द्वारा सुशोभित होते हैं ॥२१॥ हे अग्ने ! मेरे अनुष्ठान और स्तुतियाँ तुम्हारी वृद्धि करें। तुम हमारे वन्धु-भाव को सदा जानो ॥२२॥ हे अग्ने ! मैं अत्यन्त ऐश्वर्यवाला होकर भी तुम्हारे लिए पूर्ववत् ही रहूँगा। तुम्हारे आशीर्वाद सदा सुफल हों ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! तुम धन के स्वामी और वासदाता हो। हम तुम्हारी कृपा प्राप्त करें ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम कर्मों के धारणकर्त्ता हो। नदियाँ जैसे समुद्र की ओर जाती है, वैसे ही मेरी सुन्दर शब्द वाली स्तुतियाँ तुम्हारी ओर जाती हैं ॥२५॥ [४०]

युवानं विश्पतिं कविं विश्वादं पुरुवेपसम् । अग्निं शुम्भामि मन्मभिः॥२६
यज्ञानां रथ्ये वयं तिग्मजम्भाय वीळवे । स्तोमैरिषेमाग्नये ॥२७
अयमग्ने त्वे अपि जरिता भूतु सन्त्य । तस्मै पावक मृळय ॥२८
धीरो ह्यस्यद्मसद् विप्रो न जागृविः सदा । अग्ने दीदयसि द्यवि ॥२९
पुराग्ने दुरितेभ्यः पुरा मृध्रेभ्यः कवे । प्र ण आयुर्वसो तिर ॥३०॥४१

अनेक कर्म वाले अग्नि लोकों के स्वामी, सदा तरुण, सर्व भक्षक और और कवि हैं। मैं उन्हें स्तोत्र से वढ़ाता हूँ ॥२६॥ तीक्ष्ण ज्वाला वाले, पराक्रमी, यज्ञ के नेता अग्नि की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करने की हम कामना करते हैं ॥२७॥ हे अग्ने ! तुम पवित्र करने वाले हो। हमारा स्तोता तुम्हारी उपासना करे, तुम उसका कल्याण करो ॥ २८ ॥ हे अग्ने ! विद्वान् हविदाता के समान वैठे हुए तुम सदा चैतन्य रहते हुए अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हो ॥२९ हे अग्ने । तुम निवासप्रद हो। पापियों और हिंसकों से हमारी रक्षा करो और हमारी आयु की भी वृद्धि करो ॥३०॥ (४१)

४५ सूक्त

(ऋषि–त्रिशोकः काण्वः । देवता—इन्द्राग्नी, इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

आ घा ये अग्निमिन्धते स्तृणन्ति बर्हिरानुषक् ।
येषामिन्द्रो युवा सखा ॥१
बृहन्निदिध्म एषां भूरि शस्तं पृथुः स्वरुः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥२
अयुद्ध इद्युधा वृतं शूर आजति सत्वभिः । येषामिन्द्रो युवा सखा ॥३
आ बुन्दं वृत्रहा ददे जातः पृच्छद्वि मातरम् । क उग्राः के ह शृण्विरे ॥४
प्रति त्वा शवसी वदद् गिरावप्सो न योधिषत् ।
यस्ते शत्रुत्वमाचके ॥५ ॥४२

जिन ऋषियों की तरुण इन्द्र से मैत्री है और अग्नि को भले प्रकार चैतन्य करते हैं, वे सब कुशाएं बिछाते हैं ॥१॥ इन ऋषियों की महिमा मयी समिधाएं हैं, यह प्रचुर स्तोत्रों वाले हैं और इनका यश भी महान् है। यह सब तरुण इन्द्र से मित्रता रखते हैं ॥ २ ॥ शत्रुओं द्वारा आच्छादित कौन-सा निर्बल मनुष्य अपने बल से बली होकर शत्रुओं का तिरस्कार करता है ॥३॥ इन्द्र ने उत्पन्न होते ही बाण ग्रहण किया और अपनी माता से पूछा कि जगत में अत्यन्त पराक्रमी कौन-कौन हैं ॥ ४ ॥ बल से सम्पन्न माता ने कहा कि तुम्हारा शत्रु दर्शनीय हाथी के समान पर्वत में संग्राम करता है ॥५॥ [४२]

उत त्वं मघवञ्छृणु यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । यद्वीळयासि वीळु तत् ॥६
यदाजिं यात्याजिकृदिन्द्रः स्वश्वयुरुप । रथीतमो रथीनाम् ॥७
वि षु विश्वा अभियुजो वज्रिन्विष्वग्यथा वृह । भवा नः सुश्रवस्तमः ॥८
अस्माकं सु रथं पुर इन्द्रः कृणोतु सातये । न यं धूर्वन्ति धूर्तयः ॥९
वृज्याम ते परि द्विषोऽरं ते शक्र दावने । गमेमेदिन्द्र गोमतः ॥१०॥४३

हे इन्द्र ! तुम स्तोता को अभीष्ट देते हो, तुम जिसे दृढ़ कर देते हो वही [illegible] हो जाता है। अतः हमारी भी स्तुति सुनो ॥६॥ वह इन्द्र जब अश्व की कामना करते हुए रणक्षेत्र में गमन करते हैं तब वे रथियों में महारथी होते

हैं ॥ ७ ॥ हे वज्रिन् ! सभी कामना करने वाली प्रजाएं जिससे बढ़ें, वैसे ही तुम बढ़ो। तुम हमारे निमित्त अधिक अन्नवान होओ ॥८॥ हिंसक जिन्हें हिंसित नहीं कर सकते, वह इन्द्र हमको इच्छित प्रदान करने के लिए अपने सुन्दर रथ को सामने लावें ॥९॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे शत्रुओं के पास नहीं रहते। जब तुम बहुत सी गौओं से युक्त काम्य धन प्रदान करते हो, तब हम तुम्हारे पास उपस्थित रहें ॥ १० ॥ [४३]

शनैश्चिचन्तो अद्रिवोऽश्वावन्तः शतग्विनः । विवक्षणा अनेहसः ॥११

ऊर्ध्वा हि ते दिवेदिवे सहस्रा सूनृता शता । जिरतृभ्यो अग्नि विमंहते॥१२

विद्मा हि त्वा धनञ्जयमिन्द्र दृळ्हा चिदारुजम् ।

आदारिणं यथा गयम् ॥१३

ककुहं चित्त्वा कवे मन्दन्तु धृष्णविन्दवः । आ त्या पणि यदीमहे ॥१४

यस्ते रेवाँ अदाशुरिः प्रममर्ष मघत्तये । तस्य नो वेद आ भर ।१५ ।४४

हे वज्रिन् ! हम अश्वों से सम्पन्न, अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, अद्भुत और युद्ध में वीर होंगे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करने वाले विद्वानों को यह यजमान नित्य प्रति सौ और हजार संख्यक प्रिय वस्तुएं प्रदान करता है ॥१२॥ हे इन्द्र ! हम तुमको धनों के विजेता, शत्रुओं के हननकर्त्ता और उपद्रवों से घर के समान रक्षा करने वाला जानते हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ, धर्षक, कवि और वणिक् हो। हम जब तुमसे अपने इच्छित की याचना करते हैं तब यह सोम तुम्हारे लिए हर्ष प्रदायक और मधुर हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! जो दाता होकर भी तुमसे ईर्ष्या करता है अथवा जो धनी होकर भी दानशील नहीं है, ऐसे दोनों प्रकार के पुरुषों का धन लेकर हमारे पास आओ ॥१५॥ (४४)

इम उ त्वा वि चक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः । पुष्टावन्तो यथा पशुम् ॥१६

उत त्वावधिरं वयं श्रुत्कर्णं सन्तमूतये । दूरादिह हवामहे ॥१७

यच्छुश्रूया इमं हवं दुर्मर्षं चक्रिया उत । भवेरापिर्नो अन्तमः ॥ १८

यच्चिद्धि ते अपि व्यथिर्जगन्वांसो अमन्महि । गोदा इदिन्द्र बोधि नः॥१

आ त्वा रम्भं न जिव्रयो ररम्भा शवसस्पते ।

उश्मसि त्वा सधस्थ आ ॥२० ॥४५

हे इन्द्र ! घास लाकर पशु स्वामी अपने पशु को देखता है, वैसे हमारे यह मित्र सोम को संस्कारित करके तुम्हें देखते हैं ॥१६॥ हे इन्द्र ! तुम श्रोत्रेन्द्रिय से सम्पन्न हो, तुम बधिर नहीं हो। अतः हम अपनी रक्षा के निमित्त दूर देश से भी तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! हमारे आह्वान को सुन कर शत्रुओं के लिए अपना बल असाध्य बनाओ और हमारे निकटस्थ बन्धु होओ ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! जब हम निर्धन होकर तुम्हारी शरण को प्राप्त हों, तब तुम हमको गौऐं देने के लिए चैतन्य होना ॥१६॥ हे बल के स्वामी इन्द्र ! हम दुर्बल होकर दण्ड के समान तुम्हें पायेंगे यज्ञ में हम तुम्हारी इच्छा करेंगे ॥ २० ॥ (४५)

स्तोत्रमिन्द्राय गायत पुरुनृम्णाय सत्वने। नकिर्यं वृण्वते युधि ॥२१
अभि त्वा वृषभा सुते सुतं सृजामि पीतये। तृम्पा व्यश्नुही मदम् ॥२२
मा त्वा मूरा अविष्यवो मोपहस्वान आ दभन्।
माकीं ब्रह्मद्विषो वनः ॥२३
इह त्वा गोपरीणसा महे मन्दन्तु राधसे। सरो गौरो यथा पिब ॥२४
या वृत्रहा परावति सना नवा च चुच्युवे।
ता संसत्सु प्र वोचत ॥२५ ॥४६

हे स्तोता ! इन्द्र महान् ऐश्वर्य वाले और दानशील हैं, तुम उनके लिए स्तुतियाँ उच्चारण करो। संग्राम में उन्हें कोई जीत नहीं सकता ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम बलवान हो। मैं यह संस्कारित सोम तुम्हें पीने के लिए देता हूँ, इस हर्ष प्रदायक को पीकर तृप्त होओ ॥२२॥ हे इन्द्र ! रक्षा की कामना वाले मूर्ख तुम पर व्यंग न करें, वे तुम्हारी हिंसा न करें। ब्राह्मणों से द्वेष करने वालों को तुम अपनी शरण कभी भी प्रदान न करना ॥२३॥ हे इन्द्र ! महा धन की प्राप्ति वाले हम यज्ञ में तुम्हारे निमित्त सोम को पीकर हर्षयुक्त होओ। जैसे मृग सरोवर में जल पीकर तृप्त होता है, वैसे ही तुम सोम पीकर तृप्त होओ ॥२४॥ हे वृत्रघ्न ! जिस नवीन और प्राचीन धन में प्रेरणा किया है, उनका हम यज्ञ में कीर्तन करें ॥२५॥

अपिवत् कद्रुवः सुतमिन्द्रः सहस्रबाह्वे । अत्रादेदिष्ट पौंस्यम् ॥२६
सत्यं तत्तुर्वशे यदौ विदानो अह्नवाय्यम् । व्यानट् तुर्वणे शमि ॥२७
तरणिं वो जनानां त्रदं वाजस्य गोमतः । समानमु प्र शंसिषम् ॥२८
ऋभुक्षणं न वर्तव उक्थेषु तुग्रयावृधम् । इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥२९
यः कृन्तदिद्वि योन्यं त्रिशोकाय गिरिं पृथुम् ।
गोभ्यो गातुं निरेतवे ॥३० ॥४७

हे इन्द्र ! तुमने रुद्र ऋषि के संस्कारित सोम को पिया और सहस्र-बाहु वाले शत्रु को मारा । उस समय तुम्हारा बल अत्यन्त दीप्त होगया ॥२६ हे इन्द्र ! तुमने यादवों के प्रसिद्ध कर्मों को यथार्थ मान कर संग्राम में अन्ह-वाय्य को व्याप्त कर डाला ॥ २७ ॥ हे स्तोताओ ! तुम्हारे पुत्रादि का मंगल करने वाले, शत्रुओं का मर्दन करने वाले, गौओं से सम्पन्न अन्न के देने वाले इन्द्र का पूजन करो ॥२८॥ मैं जलों को प्रवृद्ध करने वाले इन्द्र की; धन-दान के लिए सोम के संस्कारित होने पर उक्थों द्वारा स्तुति करता हूँ ॥ २९ ॥ जिन इन्द्र ने जल निकालने के लिए मेघ को द्वार रूप से तोड़ा था, त्रिशोक ऋषि के स्तोत्र पर उन्होंने ही जल के प्रवाहित होने का मार्ग निर्मित किया था ॥२०॥ [४७]

यद्दधिषे मनस्यसि मन्दानः प्रेदियक्षसि । मा तत्करिन्द्र मृळय ॥३१
दभ्रं चिद्धि त्वावतः कृतं शृण्वे अधि क्षमि । जिगात्विन्द्र ते मनः ॥३२
तवेदु ताः सुकीर्तयोऽसन्नुत प्रशस्तयः । यदिन्द्र मृळयासि नः ॥३३
मा न एकस्मिन्नागसि मा द्वयोरुत त्रिषु । वधीर्मा शूर भूरिषु ॥३४
बिभया हि त्वावत उग्रादभिप्रभाङ्गिणः । दस्मादहमृतीषहः ॥३५ ॥४८

हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर जो धारण करते हो, जो देते हो, जो पूजते हो, वह सब कर्म हमारे लिए क्यों नहीं करते ? हे इन्द्र ! हमारा कल्याण करो ।३१। हे इन्द्र ! तुम्हारी कृपा से स्वल्पकर्मा मनुष्य भी पृथिवी में प्रसिद्धि प्राप्त करता है । अतः तुम्हारा मन मेरी ओर आकर्षित हो ॥ ३२ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी जिन स्तुतियों को प्राप्त करके हमको सुख देते हो, वह

स्तुतियाँ तुम्हीं को प्राप्त हों ॥ ३३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे द्वारा एक अपराध होने पर हमको हिंसित न करना । दूसरी या तीसरी बार के अपराध पर भी हमारी हिंसा मत करना ॥३४॥ हे इन्द्र ! तुम उग्र, शत्रु हिंसक, पापियों के संहारक और शत्रुओं द्वारा प्रेरित हिंसा-कर्मों के सहने वाले हो, मैं तुमसे भयभीत न होऊँ ॥ ३५॥ [४८]

मा सख्युः शूनमा विदे मा पुत्रस्य प्रभूवसो । आवृत्वद्भूतु ते मनः ॥३६
को नु मर्या अमिथितः सखा सखायमब्रवीत् । जहा को अस्मदीषते ॥३७
एवारे वृषभा सुतेऽसिन्वन्भूर्यावयः । श्वघ्नीव निवता चरन् ॥३८
आ त एता वचोयुजा हरी गृभ्णे सुमद्रथा । यदी ब्रह्मभ्य इद्ददः ॥३९
भिन्धि विश्वा अप द्विषः परि बाधो जही मृधः । वसु स्पार्हं तदा भर॥४०
यद्वीळाविन्द्र यत्स्थिरे यत्पर्शाने पराभृतम् । वसु स्पार्हं तदा भर ॥४१
यस्य ते विश्वमानुषो भूरेर्दत्तस्य वेदति । वसु स्पार्हं तदा भर ।२।१९

हे इन्द्र ! तुम्हारे धन का परिमाण नहीं है । मैं तुमसे तुम्हारे मित्र और उसके पुत्र की बात कहता हूँ, वह मैं समृद्ध होऊँ, तुम्हारा मन मुझसे विरक्त न होवे ॥ ३६॥ हे मनुष्यो ! इन्द्र के सिवाय अन्य कौन द्वेष न करने वाला सखा है जो प्रश्न करने से पहिले कह दे कि "मैंने किसे मारा, कौन मुझसे भयभीत होकर भाग जायगा ?" ॥ ३७ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित देने वाले हो । संस्कारित होने पर सोम तुम्हारी ओर ही गमन करता है । देवता तुम्हारे सामने से नीचा मुख करके चले गए ॥३८॥ मन्त्र द्वारा सुन्दर रथ में योजित होने वाले इन्द्र के दोनों घोड़ों को आकर्षित करता हूँ । हे इन्द्र ! तुम ब्राह्मणों को धन प्रदान करते हो ॥ ३९ ॥ हे इन्द्र ! सब शत्रुओं को विदीर्ण करो और युद्ध की समाप्ति पर अभिलाषा के योग्य सब धनों को ले आओ ॥४० हे इन्द्र ! तुमने जिस धन को, दृढ़ स्थान पर, स्थिर स्थान पर और संदिग्ध स्थान पर रक्खा है, उस कामना के योग्य धन को लेकर यहाँ आगमन करो ॥४१॥ हे इन्द्र ! तुमने जो धन अनजाने में अन्य पुरुषों को दिया कामना के योग्य धन यहाँ लाओ ॥४२॥

४६ सूक्त

(ऋषि–वशोऽश्व्यः । देवता–इन्द्रः, पृथुश्रवसः कानीतस्य: दानस्तुतिः, वायुः । छन्द–गायत्री, उष्णिक्, बृहती, अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

त्वावतः पुरूवसो वयमिन्द्र प्रणेतः । स्मसि स्थातर्हरीणाम् ॥१
त्वां हि सत्यमद्रिवो विद्म दातारमिषाम् । विद्म दातारं रयीणाम् ॥२
आ यस्य ते महिमानं शतमूते शतक्रतो । गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ॥३
सुनीथो घा स मर्त्यो यं मरुतो यमर्यमा । मित्रः पान्त्यद्रुहः ॥४
दधानो गोमदश्ववत्सुवीर्यमादित्यजूत एधते ।
सदा राया पुरुस्पृहा ॥५ ॥१

हे ऐश्वर्यवान्, कर्मों में लगाने वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे समान सम्पन्न देवता के ही आत्मीय हैं। तुम हर्यश्वों के स्वामी हो ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! तुम अन्न प्रदान करने वाले हो, ऐसा हम जानते हैं । तुम धन देने वाले हो, यह भी जानते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुकर्मा हो । स्तोता तुम्हारी उस महिमा का बखान स्तुतियों से करते हैं ॥ ३ ॥ जिस पुरुष की मरुद्गण, मित्र और अर्यमा रक्षा करते हैं, वही यज्ञवान होता है ॥४ ॥ सूर्य की कृपा से ही यजमान गौ, अश्व और वीर्यादि वाला होकर वृद्धि को पाता है । वह कामना किए हुए असंख्य धन से प्रवृद्ध होता है ॥५॥ (१)

तमिन्द्रं दानमीमहे शवसानमभीर्वम् । ईशानं राय ईमहे ॥६
तस्मिन्हि सन्त्यूतयो विश्वा अभीरवः सचा ।
तमा वहन्तु सप्तयः पुरूवसुं मदाय हरयः सुतम् ॥७
यस्ते मदो वरेण्यो य इन्द्र वृत्रहन्तमः ।
य आददिः स्वर्नृभिर्यः पृतनासु दुष्टरः ॥८
यो दुष्टरो विश्ववार श्रवाय्यो वाजेष्वस्ति तरुता ।
स नः शविष्ठ सवना वसो गहि गमेम गोमति व्रजे ॥९
गव्यो षु णो यथा पुराश्वयोत रथया । वरिवस्य महामह ॥१०

भय रहित, बल वाले, मद के स्वामी इन्द्र से ही हम धन माँगते हैं ॥६॥ यह मरुद्गण रूप सर्वत्र गमन करने वाली, भय रहित सेना इन्द्र की ही है। असीमित धन प्रदान करने वाले इन्द्र को उनके वेगवान् घोड़े हमारे सोम के समीप लावें ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी जिस शक्ति से युद्ध में शत्रुओं को मारते हो, तुम्हारी वह शक्ति वरण करने योग्य है। वह मद तुम्हें शत्रुओं से धन प्राप्त कराने वाला और युद्ध में पार लगाने वाला है ॥ ८ ॥ सब के द्वारा वरणीय, शत्रुओं को लाँघने वाले, सब से पराक्रमी और प्रसिद्ध इन्द्र उसी शौर्य के साथ हमारे यज्ञ में आगमन करें, तभी हम गौओं से सम्पन्न गोष्ठ में प्रतिष्ठित होंगे ॥ ९ ॥ हे ऐश्वर्य-सम्पन्न इन्द्र ! गौ, अश्व और रथ की प्राप्ति-कामना करने पर हमको सब कुछ पहिले के समान ही प्रदान करना ॥१०॥(२)

नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सत्रा ।
दशस्या नो मघवन्नू चिदद्रिवो धियो वाजेभिराविथ ॥११
य ऋष्वः श्रावयत्सखा विश्वेत्स वेद जनिमा पुरुष्टुतः ।
तं विश्वे मानुषा युगेन्द्रं हवन्ते तविषं यतस्रुचः ॥१२
स नो वाजेष्ववीता पुरूवसुः पुरःस्थाता । मघवा वृत्रहा भुवत् ॥१३
अभि वो वीरमन्धसो मदेषु गाय गिरा महा विचेतसम् ।
इन्द्रं नाम श्रुत्यं शाकिनं वचो यथा ॥१४
ददी रेक्णस्तन्वे ददिर्वसु ददिर्वाजेषु पुरुहूत वाजिनम् । नूनमथ ॥१५।३

हे इन्द्र ! तुम्हारा धन यथार्थ ही असीम है, अतः हमको धन प्रदान करो। हे वज्रिन् ! धन देकर हमारे कर्म की अन्न के द्वारा रक्षा करो ॥ ११ ॥ इन्द्र दर्शनीय हैं, ऋत्विज उनके मित्र हैं, वे संसार के सब जीवों के ज्ञाता और अनेकों द्वारा स्तुत हैं। सब मनुष्य हवियों द्वारा उन्हीं इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥१२॥ वह वृत्रहन्ता इन्द्र अपरिमित धन से सम्पन्न हैं, रणक्षेत्र में वे हमारे आगे चलते हुए रक्षा करें ॥१३॥ हे स्तोताओ ! सोम से हर्षित होने पर अपनी वाणी की स्फूर्ति के अनुसार महान् स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करो। वह इन्द्र शत्रुओं को पतित करने वाले, शक्तिशाली, सर्व विख्यात, अत्यन्त मेधावी, महान् हैं ॥१४॥ हे इन्द्र ! तुम मुझे धन देने वाले होओ। युद्ध के अवसर पर अन्न

से सम्पन्न धन दो । हमारे पुत्रों द्वारा आहूत किये जाने पर उन्हें भी धन देने वाले होओ ॥१५॥ (३)

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः ।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥१६

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मीळ्हुषे अरङ्गमाय जग्मये ।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७

ये पातयन्ते अज्मभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम् ।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८

प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर ।
ज्येष्ठं चोदयन्मते रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ॥१९

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत ।
प्रासहा सम्राट सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२० ॥४

स्तोताओ ! समस्त धनों के स्वामी, युद्ध को कम्पायमान करने वाले और शत्रुओं को परास्त करने वाले इन्द्र की स्तुति करो, क्योंकि हमें धनवान् बनाने में वही समर्थ हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हें बुलाना चाहता हूँ क्योंकि तुम सर्वत्र गमन करने वाले और वर्षक हो । मैं अपने यज्ञ में स्तुतियों से तुम महान् की स्तुति करता हूँ । तुम सब प्राणियों के ईश्वर और मरुद्गण के नेता हो । मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा गुणानुवाद करता हूँ ॥१७॥ जो मरुद्गण मेघ के बलकारी प्राचीन जलों के साथ गमन करते हैं, उन गर्जनशील मरुतों के निमित्त यज्ञ करते हुए हम उनसे जो कल्याण प्राप्त हो सकेगा, उसे लेंगे ॥१८ ॥ हे इन्द्र ! तुम पाप बुद्धि वालों का नाश करते हो । तुम्हारी मति धन को प्रेरित करने में लगी रहती है । अतः हम तुमसे धन माँगते हैं हमारे लिए श्रेष्ठ धनों को लेकर आगमन करो ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हराने वाले, पराक्रमी, सत्यभाषी, दाता और सब के प्रिय तथा स्वामी हो । तुम हमको युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराभूत करने वाला धन प्रदान करना ॥२०॥ (४)

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥२३
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन् मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४
आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥२५ ॥५

कन्या-पुत्र पृथुश्रवा से जिस अश्व-पुत्र वश ने धन पाया था, वे वश यहाँ आगमन करें ॥ २१ ॥ मैंने साठ सहस्र और दस सहस्र अश्वों को, दो सहस्र ऊँटों को और एक सहस्र कृष्णवर्ण वाली अश्वियों को प्राप्त किया है तथा श्वेत रंग वाली दस सहस्र धेनु भी तीन स्थानों में प्राप्त की हैं ॥२२॥ दस काले घोड़े रथ की नेमि को खींचते हैं। वे घोड़े अत्यन्त वेग वाले, बली और मथने वाले हैं ॥२३॥ कन्या-पुत्र पृथुश्रवा अत्यन्त धनी हैं, इनके दान में सुवर्ण का रथ भी मिला है। वे महान् दानी हैं इसीलिए उन्होंने महान् कीर्ति का अर्जन किया है ॥२४॥ हे वायो! पूजनीय बल तथा बृहद् धन के निमित्त हमारे पास आओ। हम तुम्हारा स्तव करते हैं, क्योंकि तुम महान् दानी हो। तुम्हारे आगमन पर हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि तुम असीम धन देने वाले हो ॥ २५॥ (५)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६
यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥२७
उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।

से सम्पन्न धन दो। हमारे पुत्रों द्वारा आहूत किये जाने पर उन्हें भी धन देने वाले होओ ॥१५॥ (३)

विश्वेषामिरज्यन्तं वसूनां सासह्वांसं चिदस्य वर्पसः।
कृपयतो नूनमत्यथ ॥१६

महः सु वो अरमिषे स्तवामहे मोळ्हुषे अरङ्गमाय जग्मये।
यज्ञेभिर्गीर्भिर्विश्वमनुषां मरुतामियक्षसि गाये त्वा नमसा गिरा ॥१७

ये पातयन्ते अजमभिर्गिरीणां स्नुभिरेषाम्।
यज्ञं महिष्वणीनां सुम्नं तुविष्वणीनां प्राध्वरे ॥ १८

प्रभङ्गं दुर्मतीनामिन्द्र शविष्ठा भर।
ज्येष्ठं चोदयन्मते रयिमस्मभ्यं युज्यं चोदयन्मते ॥१९

सनितः सुसनितरुग्र चित्र चेतिष्ठ सूनृत।
प्रासहा सम्राट सहुरिं सहन्तं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ॥२० ॥४

स्तोताओ! समस्त धनों के स्वामी, युद्ध को कम्पायमान करने वाले और शत्रुओं को परास्त करने वाले इन्द्र की स्तुति करो, क्योंकि हमें धनवान् बनाने में वही समर्थ हैं ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! मैं तुम्हें बुलाना चाहता हूँ क्योंकि तुम सर्वत्र गमन करने वाले और वर्षक हो। मैं अपने यज्ञ में स्तुतियों से तुम महान् की स्तुति करता हूँ। तुम सब प्राणियों के ईश्वर और मरुद्गण के नेता हो। मैं तुम्हें नमस्कार करता हुआ सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा गुणानुवाद करता हूँ ॥१७॥ जो मरुद्गण मेघ के नलकारी प्राचीन जलों के साथ गमन करते हैं, उन गर्जनशील मरुतों के निमित्त यज्ञ करते हुए हम उनसे जो कल्याण प्राप्त हो सकेगा, उसे लेंगे ॥१८॥ हे इन्द्र ! तुम पाप बुद्धि वालों का नाश करते हो। तुम्हारी मति धन को प्रेरित करने में लगी रहती है। अतः हम तुमसे धन माँगते हैं हमारे लिए श्रेष्ठ धनों को लेकर आगमन करो ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के हराने वाले, पराक्रमी, सत्यभाषी, दाता और सब के प्रिय तथा स्वामी हो। तुम हमको युद्ध क्षेत्र में शत्रुओं को पराभूत करने वाला धन प्रदान करना ॥२०॥ (४)

आ स एतु य ईवदाँ अदेवः पूर्तमाददे ।
यथा चिद्वशो अश्व्यः पृथुश्रवसि कानीतेऽस्या व्युष्याददे ॥२१
षष्टिं सहस्राश्व्यस्यायुतासनमुष्ट्राणां विंशतिं शता ।
दश श्यावीनां शता दश त्र्यरुषीणां दश गवां सहस्रा ॥२२
दश श्यावा ऋधद्रयो वीतवारास आशवः मथ्रा नेमिं नि वावृतुः ॥२३
दानासः पृथुश्रवसः कानीतस्य सुराधसः ।
रथं हिरण्ययं ददन् मंहिष्ठः सूरिरभूद्वर्षिष्ठमकृत श्रवः ॥२४
आ नो वायो महे तने याहि मखाय पाजसे ।
वयं हि ते चकृमा भूरि दावने सद्यश्चिन्महि दावने ॥२५ ॥५

कन्या-पुत्र पृथुश्रवा से जिन अश्व-पुत्र वश ने धन पाया था, वे वश यहाँ आगमन करें ॥ २१ ॥ मैंने साठ सहस्र और दश सहस्र अश्वों को, दो सहस्र ऊँटों को और एक सहस्र कृष्णवर्ण वाली अश्वियों को प्राप्त किया है तथा श्वेत रंग वाली दश सहस्र धेनु भी तीन स्थानों में प्राप्त की हैं ॥२२॥ दस काले घोड़े रथ की नेमि को खींचते हैं । वे घोड़े अत्यन्त वेग वाले, बली और नमने वाले हैं ॥२३॥ कन्या-पुत्र पृथुश्रवा अत्यन्त धनी हैं, इनके दान में सुवर्ण का रथ भी मिला है । वे महान् दानी हैं इसीलिए उन्होंने महान् कीर्ति का अर्जन किया है ॥२४॥ हे वायो ! पूजनीय बल तथा बृहत् धन के निमित्त हमारे पास आओ । हम तुम्हारा स्तव करते हैं, क्योंकि तुम महान् दानी हो । तुम्हारे आगमन पर हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, क्योंकि तुम असीम धन देने वाले हो ॥ २५॥ (५)

यो अश्वेभिर्वहते वस्त उस्रास्त्रिः सप्त सप्ततीनाम्
एभिः सोमेभिः सोमसुद्भिः सोमपा दानाय शुक्रपूतपाः ॥ २६
यो म इमं चिदु त्मनामन्दच्चित्रं दावने ।
अरट्वे अक्षे नहुषे सुकृत्वनि सुकृत्तराय सुक्रतुः ॥२७
उचथ्ये वपुषि यः स्वराळुत वायो घृतस्नाः ।

अश्वेषितं रजेषितं शुनेषितं प्राज्म तदिदं नु तत् ॥२८
अध प्रियमिषिराय षष्टिं सहस्रासनम् । अश्वानामिन्न वृष्णाम् ॥२९
गावो न यूथमुप यन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रयः ॥३०
अध यच्चारथे गणे शतमुष्ट्राँ अचिक्रदत् ।
अध श्वित्नेषु विंशतिं शता ॥३१
शतं दासे वल्बूथे विप्रस्तरुक्ष आ ददे ।
ते ते वायविमे जना मदन्तीन्द्रगोपा मदन्ति देवगोपाः ॥ ३२
अध स्या योषणा मही प्रतीची वशमश्व्यम् ।
अधिरुक्मा वि नीयते ॥३३ ॥६

सोम को पीने वाले, दीप्त वायु पृथुश्रवा के घोड़ों के साथ आकर घर में रहते हैं और सप्त सप्तति की तिगुनी गायों के साथ गमन करते हैं। वे सोम का अभिषव करने वालों से मिलकर सोम प्रदान करने के लिए ही सोमवान् हुए हैं ॥२६॥ जो पृथुश्रवा गौ, अश्व आदि के दान का विचार करते हुए प्रसन्न हुए थे, उन श्रेष्ठ कर्म वाले पृथुश्रवा ने अपने विभागाध्यक्ष अक्ष, नहुष, सुकृत्व और अष्ट्व को इसका आदेश दिया ॥२७॥ उचथ्य और वपु नामक राजाओं के भी राजा वायु ने अश्वों, ऊँटों और श्वानों के द्वारा जो अन्न भेजा जाता है, "वह तुम्हारा ही है" ऐसा कहा ॥ २८ ॥ धन आदि को प्रेरित करने वाले राजा की कृपा से मैंने साठ सहस्र गौओं को भी प्राप्त किया ॥२९॥ गौएं जैसे अपने झुण्डों को प्राप्त होती हैं, वैसे ही पृथुश्रवा प्रदत्त वृषभ मुझे प्राप्त होते हैं ॥३०॥ जब ऊँट जङ्गल में प्रेषित किये गए, तब एकसौ ऊँट और दो सहस्र गौऐं मेरे लिए लाये थे ॥३१॥ मैं गौ-घोड़ों का पालक ब्राह्मण हूँ। मैंने वल्बूथ से सौ गौ और घोड़े प्राप्त किये थे। हे वायो! यह सब तुम्हारे ही हैं। इन्द्रादि देवताओं की रक्षा प्राप्त करके यह सब सुखी रहते हैं ॥३२॥ राजा पृथुश्रवा के दान के साथ प्रदत्त सुवर्ण भूषणों से सुसज्जित पूजनीय कन्या को वे अश्व-युक्त वश के अभिमुख लाते हैं ॥३३॥ (६)

४७ सूक्त

(ऋषि—त्रित आप्त्यः । देवता—आदित्याः, आदित्या उषाश्च ।
छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

महि वो महतामवो वरुण मित्र दाशुषे ।
यमादित्या अभि द्रुहो रक्षथा नेमघं नशदनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥१

विदा देवा अघानामादित्यासो अपाकृतिम् ।
पक्षा वयो यथोपरि व्यस्मे शर्म यच्छतानेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥२

व्यस्मे अधि शर्म तत्पक्षा वयो न यन्तन ।
विश्वानि विश्ववेदसो वरूथ्या मनामहेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥३

यस्मा अरासत क्षयं जीवातुं च प्रचेतसः ।
मनोर्विश्वस्य घेदिम आदित्या राय ईशतेऽनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥४

परि णो वृणजन्नघा दुर्गाणि रथ्यो यथा ।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मण्यादित्यानामुतावस्यनेहसो व ऊतयः सुऊतयो
व ऊतयः ॥५ ॥७

हे मित्रावरुण ! हविदाता के निमित्त तुम्हारे रक्षा साधन महान् हैं। तुम जिसे चाहो, वह शत्रु के हाथ में नहीं पड़ता और पाप भी उसे नहीं छू सकता। तुम्हारे द्वारा रक्षित व्यक्ति को उपद्रव व्यर्थ होता है, तुम्हारी रक्षाएं सुन्दर हैं। ।१।। हे आदित्यो ! तुम दुःख दूर करना जानते हो। जैसे चिड़ियायें पंख फैला कर अपने बच्चों को सुख देती हैं, वैसे ही सुख प्रदान करो। तुम्हारा रक्षण सामर्थ्य शोभनीय है, उसके पास होने पर किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ।।२।। पक्षियों के पंख के समान जो सुख तुम्हारे पास है उसे

हे आदित्यो ! किनारे के नीचे के पदार्थों को जैसे मनुष्य देखता है वैसे ही ऊपर से तुम हमको देखो। जैसे घोड़े को रमणीक घाट पर ले जाते हैं, वैसे ही तुम हमको सुन्दर स्थान प्राप्त कराओ। तुम्हारे रक्षा-साधन श्रेष्ठ हैं, उनके रहते किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ॥११॥ हे आदित्यो ! हमारी हिंसा करने की इच्छा वाले सुखी न हों। गौ, पशु और अन्न की कामना वाले हम सुखी हों। तुम्हारे रक्षात्मक साधन उत्तम हैं। उनको पाकर किसी उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१२॥ हे आदित्यो ! प्रकट वा अप्रकट पाप मुझे कोई भी प्राप्त न हो। मुझसे इन्हें दूर ही रक्खो। तुम्हारे रक्षात्मक साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें प्राप्त करने पर कोई उपद्रव नहीं होता ॥१३॥ हे सूर्य पुत्री उषे ! हमारी गौओं के दुःस्वप्न को दूर करो। तुम्हारे रक्षा साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें पाकर उपद्रव का भय नहीं रहता ॥ १४ ॥ हे उषे ! जो मालाकार में दुःस्वप्न है, उसे पृथक् करो। तुम्हारे रक्षा साधन श्रेष्ठ हैं, उन्हें प्राप्त कर लेने पर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१५॥ (६)

तदन्नाय तदपसे तं भागमुपसेदुषे ।
त्रिताय च द्विताय चोषो दुष्ष्वप्न्यं ... सुऊतयो

कराया होगा, आज हम विजय प्राप्त करेंगे । हे उषे ! हम दुःस्वप्न से भयभीत हैं, तुम्हारे श्रेष्ठ रक्षा साधनों को पाकर किसी प्रकार के उपद्रव का भय नहीं रहता ॥१८॥ (१०)

४८ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः । देवता-सोमः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

स्वादोरभक्षि वयसः सुमेधाः स्वाध्यो वरिवोवित्तरस्य ।
विश्वे यं देवा उत मर्त्यासो मधु ब्रुवन्तो अभि सञ्चरन्ति ॥१
अन्तश्च प्रागा अदितिर्भवास्यवयाता हरसो दैव्यस्य ।
इन्दविन्द्रस्य सख्यं जुषाणः श्रौष्टीव धुरमनु राय ऋध्याः ॥२
अपाम सोममृता अभूमागन्म ज्योतिरविदाम देवान् ।
किं नूनमस्मान्कृणवदरातिः किमु धूर्तिरमृत मर्त्यस्य ॥३
शं नो भव हृद आ पीत इन्दो पितेव सोम सूनवे सुशेवः ।
सखेव सख्य उरुशंस धीरः प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः ॥४
इमे मा पीता यशस उरुष्यवो रथं न गावः समनाह पर्वसु ।
ते मा रक्षन्तु विस्रसश्चरित्रादुत मा स्रामाद्यवयन्त्विन्दवः ॥५ ॥११

मैं श्रेष्ठ बुद्धि, उत्तम कर्म और अध्ययन से सम्पन्न हूँ । मैं अत्यन्त पूजनीय स्वादिष्ट अन्न का स्वाद ले सकूँ । विश्वेदेवा और मनुष्य इस अन्न को सेवनीय कह कर ग्रहण करते हैं ॥१॥ हे सोम ! तुम हृदय प्रदेश में जाते हो । तुम देवताओं को क्रोध-रहित करते हो । तुम इन्द्र से सख्य भाव पाकर, अश्व के समान हमारे धन को वहन करो ॥२॥ हे सोम ! तुम अमृतत्व वाले हो । हम तुम्हारा पान करके ही अमर होंगे । फिर हम स्वर्ग में जाकर देवताओं को जानेंगे । मैं मनुष्य हूँ, हिंसक शत्रु मेरा क्या कर सकेगा ॥ ३ ॥ हे सोम ! पुत्र के लिए पिता के समान सुखकारी तुम पान करने पर प्रसन्नतादायक होओ । हे मेधावी प्रशंसित सोम ! तुम अधिक जीवन के निमित्त हमारी आयु-वृद्धि करो ॥४॥ जैसे अश्वों को रथ में बाँधा जाता है, वैसे ही

यो जरितृभ्यो मघवा पुरूवसुः सहस्रेणेव शिक्षति ।।१
शतानीकेव प्र जिगाति धृष्णुया हन्ति वृत्राणि दाशुषे
गिरेरिव प्ररसा अस्य पिन्विरे दत्राणि पुरुभोजसः ।।२
आ त्वा सुतास इन्दवो मदा य इन्द्र गिर्वणः ।
आपो न वज्रिन्नन्वोक्यं सरः पृणन्ति शूर राधसे ।।३
अनेहसं प्रतरणं विवक्षणं मध्वः स्वादिष्ठमीं पिब ।
आ यथा मन्दसानः किरासि नः प्र क्षुद्रेव त्मना धृषत् ।।४
आ नः स्तोममुप द्रवद्धियानो अश्वो न सोतृभिः ।
यं ते स्वधावन्त्स्वदयन्ति धेनव इन्द्र कण्वेषु रातयः ।।५ ।।१४

हे स्तोताओ ! शोभन-धन इन्द्र को अभिमुख कर पूजन करो । वे स्तुति करने वालों को सहस्त्रों प्रकार के धन प्रदान करते हैं ॥१॥ शत सैन्यों के अधिपति के समान इन्द्र गर्व सहित गमन करते हैं । हवि देने वालों के हित के लिए वे मेघ को विदीर्ण करते हैं । उनको दिया गया सोमरस पर्वत के सोम के समान ही हृष्टिप्रद है । इन्द्र अनेकों के रक्षक हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! हर्षप्रदायक सोम तुम्हारे लिए ही संस्कारित हुए हैं । हे वज्रिन् ! जल अपने आश्रय स्थान सरोवर को पूर्ण करता है, वैसे ही यह सोम तुम्हें पूर्ण करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग के देने वाले, पालक और पाप-रहित इस मधुर रस को पिओ । इसकी शक्ति से हर्षित होकर क्षुद्रा नामक दान देने वाली के समान तुम इच्छित प्रदान करते हो ॥ ४ ॥ हे अन्नवान् इन्द्र ! तुमने कण्व गोत्रियों को जो हर्षप्रद दान दिया था, वह दान स्तोम को मधुर करने वाला है । अभिषवकर्त्ताओं द्वारा आहूत होकर तुम उस स्तोम की ओर शीघ्रता से आगमन करो ॥५॥ (१४)

उग्रं न वीरं नमसोप सेदिम विभूतिमक्षितावसुम् ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो न सिञ्चते क्षरन्तीन्द्र धीतयः ।।६
यद्ध नूनं यद्वा यज्ञे यद्वा पृथिव्यामधि ।
अतो नो यज्ञमाशुभिर्महेमत उग्र उग्रेभिरा गहि ।।७

अजिरासो हरयो ये त आशवो वाताइव प्रसक्षिणः ।
येभिरपत्यं मनुषः परीयसे येभिर्विश्वं स्वर्दृशे ॥८
एतावतस्त ईमह इन्द्र सुम्नस्य गोमतः ।
यथा प्रावो मघवन् मेध्यातिथिं यथा नीपातिथिं धने ॥९
यथा कण्वे मघवन्त्रसदस्यवि यथा पक्थे दशव्रजे ।
यथा गोशर्ये असनोर्ऋजिश्वनीन्द्र गोमद्धिरण्यवत् ॥१० ॥१५

इन्द्र अश्वधन से सम्पन्न, पराक्रमी और विभूति रूप हैं, हम उन्हें नमस्कार करते हुए प्राप्त करेंगे । हे वज्रिन् ! जैसे जल से पूर्ण कूप खेतों को सींचता है, वैसे ही हमारे सब स्तोत्र तुम्हें सींचते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञ के समय पृथिवी में अथवा जहाँ भी हो, वहाँ से अपने शीघ्र गमन करने वाले हर्यश्व सहित हमारे इस यज्ञ स्थान में आगमन करो ।७। हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्यश्व शत्रुओं के जीतने वाले तथा द्रुतगामी हैं, तुम उन्हीं के द्वारा संसार के सब पदार्थों को देखने के लिए गमन करते हो ॥८॥ हे इन्द्र ! गौ से सम्पन्न धन की याचना करता हूँ । तुमने मेधातिथि और नीपातिथि की भी धन के द्वारा रक्षा की थी ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम्हीं ने त्रसदस्यु, ऋजिश्वा, गोशर्य, कण्व, पक्थ और दशव्रज आदि स्तोताओं को गौओं और सुवर्ण से सम्पन्न श्रेष्ठ धन प्रदान किया था ॥१०॥ [१५]

५० सूक्त

(ऋषि-पुष्टिगुः काण्वः । देवता-इन्द्रः । छन्द-बृहती, पंक्तिः)

प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वसु सहस्रेणेव मंहते ॥१
शतानीका हेतयो अस्य दुष्टरा इन्द्रस्य समिषो महीः ।
गिरिर्न भुज्मा मघवत्सु पिन्वते यदीं सुता अमन्दिषुः ॥२
यदीं सुतास इन्दवोऽभि प्रियममन्दिषुः ।
आपो न धायि सवनं म आ वसो दुघा इवोप दाशुषे ॥३

अनेहसं वो हवमानमूतये मध्वः क्षरन्ति धीतयः ।
आ त्वा वसो हवमानास इन्दव उप स्तोत्रेषु दधिरे ॥४
आ नः सोमे स्वध्वर इयानो अत्यो न तोशते ।
यं ते स्वदावन्त्स्वदन्ति गूर्तयः पौरे छन्दयसे हवम् ॥५ ॥१६

हे इन्द्र ! तुम सुन्दर धन से सम्पन्न एवं दान में प्रसिद्ध हो। स्तोता ! वह इन्द्र सहस्रों प्रकार के उपभोग्य धन प्रदान करते हैं, अतः उन्हें इन्द्र का पूजन करो ॥१॥ इन्द्र के सैकड़ों अश्व हैं, यह इन्द्र के ही अन्न प्रकट होते हैं। जब इन्द्र को संस्कारित सोम हर्षयुक्त करता है, तब यह पर्व के समान उपभोग्य पदार्थों को देते हुए धनी यजमानों को संतुष्ट करते हैं ॥२॥ जब सोम से इन्द्र प्रसन्न हुए तब गौओं के समान, हविदाता के लिए जल स्थित हुआ ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजो ! आहूत किए गए इन्द्र को यह सभी कर्म तुम्हारे निमित्त मधु से सींचते हैं। हे इन्द्र ! स्तोत्र किये जाने के समय सोम को तुम्हारे अभिमुख रखते हैं ॥४॥ अश्व के समान जाने वाले इन्द्र श्रेष्ठ यज्ञ में निष्पन्न सोम से प्रेरित हैं। हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं ने इस सोम को स्वादिष्ट बनाया है। तुम पुरु-पुत्र के आह्वान को सुनो ॥५॥ (१६)

प्र वीरमुग्रं विविचिं धनस्पृतं विभूतिं राधसो महः ।
उद्रीव वज्रिन्नवतो वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे ॥६
यद्ध नूनं परावति यद्वा पृथिव्यां दिवि ।
युजान इन्द्र हरिभिर्महेमत ऋष्व ऋष्वेभिरा गहि ॥७
रथिरासो हरयो ये ते अस्रिध ओजो वातस्य पिप्रति ।
येभिर्नि दस्युं मनुषो निघोषयो येभिः स्वः परीयसे ॥८
एतावतस्ते वसो विद्याम शूर नव्यसः ।
यथा प्राव एतशं कृत्व्ये धने यथा वशं दशव्रजे ॥९
यथा कण्वे मघवन् मेधे अध्वरे दीर्घनीथे दमूनसि ।
यथा गोशर्ये असिषासो अद्रिवो मयि गोत्रं हरिश्रियम् ॥१० ॥१७

इन्द्र महान् विभूति,युक्त पराक्रमी, विकराल और प्रसन्नता प्रदान करने वाले हैं। हम उनकी स्तुति करते हैं। हे वज्रिन्! जल से पूर्ण कूप के समान महान् धन सहित आकर हविदाता के सुख के निमित्त इस सोम को पियो ॥६ हे इन्द्र! तुम पृथिवी में, स्वर्ग में, दूर या पास कहीं भी हो, वहीं से अपने हर्यश्व युक्त रथ में आगमन करो ॥७॥ हे इन्द्र! तुम्हारे रथ को खींचने वाले अश्व अहिंसित और वायु के समान वेगवान् हैं। तुमने इनकी ही सहायता से सब पदार्थों को व्याप्त किया, दैत्यों का वध किया और मनु को प्रसिद्ध किया है ॥८॥ हे इन्द्र! तुम्हारे सब धनों को हम जानते हैं। तुमने एतश और दश व्रज वाले वश की धन के निमित्त रक्षा की ॥९॥ हे वज्रिन्! शत्रु के नाश की कामना करने वाले दीर्घनीथ और गोशर्य की, यज्ञ में जिस प्रकार रक्षा की थी, वैसे अश्वों सहित आकर हमारी भी रक्षा करो ॥१०॥ [१७]

५१ सूक्त

(ऋषि-श्रुष्टिगुः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द बृहती, पंक्तिः)

यथा मनौ सांवरणौ सोममिन्द्रापिबः सुतम्।
नीपातिथौ मघवन् मेध्यातिथौ पुष्टिगौ श्रुष्टिगौ सचा ॥१
पार्षद्वाणः प्रस्कण्वं समसादयच्छयानं जिव्रिमुद्धितम्।
सहस्राण्यसिषासद् गवामृषिस्त्वोतो दस्यवे वृकः ॥२
य उक्थेभिर्न विन्धते चिकिद्य ऋषिचोदनः।
इन्द्रं तमच्छा वद नव्यस्या मत्यरिष्यन्तं न भोजसे ॥३
यस्मा अर्कं सप्तशीर्षाणमानृचुस्त्रिधातुमुत्तमे पदे।
स त्विमा विश्वा भुवनानि चिक्रदादादिज्जनिष्ट पौंस्यम् ॥४
यो नो दाता वसूनामिन्द्रं तं हूमहे वयम्।
विद्मा ह्यस्य सुमतिं नवीयसीं गोमति व्रजे ॥५ ॥१८

हे इन्द्र! सावर्णि मनु की प्रार्थना पर जैसे तुमने शोधित सोम को पिया था और शीघ्रगामी गौ वाले मेधातिथि और नीपा[illegible] पिया था, उसी प्रकार आज भी सोम-पान करो ॥१॥ हे

ने प्रसुप्त वृद्ध प्रस्कण्व को पत्ती के समान ऊपर बैठा दिया था, तब तुमने अपनी रक्षाओं द्वारा उन्हें बचाया और सहस्र गौओं की भी रक्षा की ॥ २ ॥ जो उक्थों से प्राप्त होते हैं, ऋषियों की प्रेरणा से जो सबके जानने वाले हैं, जो रक्षा देने वाले हैं, उन इन्द्र के निमित्त अभिनव स्तोत्र करो ॥ ३ ॥ जिन इन्द्र के लिए सात शीर्षों और तीन स्थानों वाला स्तोत्र उच्चारित किया जाता है, उन इन्द्र ने बल को उत्पन्न करते हुए विश्व को शब्द से युक्त बनाया ॥४॥ हम उन धनदाता इन्द्र की कृपा बुद्धि को जानते हैं इसलिए उन्हें आहूत करते हैं। हे इन्द्र ! हम गौओं से पूर्ण गोष्ठ के स्वामी हों ॥५॥ [१८

यस्मै त्वं वसो दानाय शिक्षसि स रायस्पोषमश्नुते ।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुनावन्तो हवामहे ॥६
कदा चन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे ।
उपोपेन्नु मघवन् भूय इन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ॥७
प्र यो ननक्षे अभ्योजसा क्रिविं वधैः शुष्णं निघोषयन् ।
यदेदस्तम्भीत्प्रथयन्नमूं दिवमादिज्जनिष्ट पार्थिवः ॥८
यस्यायं विश्व आर्यो दासः शेवधिपा अरिः ।
तिरश्चिदर्ये रुशमे पवीरवि तुभ्येत् सो अज्यते रयिः ॥९
तुरण्यवो मधुमन्तं घृतश्चुतं विप्रासो अर्कमानृचुः ।
अस्मे रयिः पप्रथे वृष्ण्यं शवोऽस्मे सुवानास इन्दवः ॥१० ॥१९

हे इन्द्र ! तुम जिसे देना चाहते हो, वही तुमसे धनयुक्त रक्षा प्राप्त करता है। तुम्हारे इसी प्रभाव के कारण हम सोमाभिषव करने वाले तुम्हें आहूत करते हैं ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम देवता हो, तुम रचना से रहित कभी नहीं होते। तुम्हारा दान बारम्बार आकर मिलता है। तुम इस हविदाता यजमान से सुसंगत होओ ॥७॥ जिन इन्द्र ने अपने बल से शुष्ण को मार कर कूप भरा, जिन्होंने आकाश को आकृष्ट किया और जिन्होंने पृथिवी के सब पदार्थों को प्रकट किया ॥८॥ जिनके धन की रक्षा करने वाले सब स्तोता हैं जो पवीरु के अभिमुख होते हैं, वे धन देने वाले इन्द्र तुम्हारे साथ सुसंगत

.॥ विद्वान् ब्राह्मण मधु-कृत से सम्पन्न पूजा के मन्त्रों को पढ़ते हैं। इनके
; धन, बल और सोमरस प्रसिद्धि को प्राप्त होता है ॥१०॥ [१६]

५२ सूक्त

(ऋषि-आयुः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द-बृहती, पंक्तिः)

॥ मनौ विवस्वति सोमं शक्रापिबः सुतम् ।
॥ त्रिते छन्द इन्द्र जुजोषस्यायौ मादयसे सचा ॥१
'ध्रे मेध्ये मातरिश्वनीन्द्र सुवाने अमन्दथाः ।
॥ सोमं दशशिप्रे दशोण्ये स्यूमरश्मावृजूनसि ॥२
वश्या केवला दधे यः सोमं धृषितापिबत् ।
मी विष्णुस्त्रीणि पदा विचक्रम उप मित्रस्य धर्मभिः ॥३
:य त्वमिन्द्र स्तोमेषु चाकनो वाजे वाजिञ्छतक्रतो ।
रन्ता वयं सुदुघामिव गोदुहो जुहूमसि श्रवस्यवः ॥४
' नो दाता स नः पिता महाँ उग्र ईशानकृत् ।
यामन्नुग्रो मघवा पुरूवसुर्गोरश्वस्य प्र दातु नः ॥५ ॥२०

हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुमने विवस्वान् मनु का सोम पिया था और
त के मन को हर्षित किया था तथा शुक्र आयु के साथ हर्षयुक्त हुए
॥१॥ जैसे तुम मातरिश्वा के पृषध्र अभिषव से हर्षयुक्त होते हो और दश-
प्र के सोम को पीते हो ॥२॥ जो निर्भीक होकर सोम पीते हैं, जो उक्थों
' स्वीकार करते हैं, जिनके प्रति भ्रातृत्व मय कर्त्तव्य की पूर्ति के लिए विष्णु
तीन बार पद-प्रहार किया ॥३॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम जिसके यज्ञ में स्तुति
: कामना करते हो, उस यज्ञ में हम अन्न की कामना से, दोहनकर्त्ता जैसे
ओं को बुलाता है वैसे ही, तुम्हें आहूत करते हैं ॥४॥ वह इन्द्र हमको देने
ले पिता हैं, वे ऐश्वर्य के करने वाले एवं पराक्रमी हैं। वही विक्रान्त कर्मा
र महान् इन्द्र हमको गौ, अश्व आदि प्रदान करें ॥५॥ [२०]

ि वै त्वं वसो दानाय मंहसे स राय स्पोषमिन्वसि ।

वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्र हवामहे ॥६
कदा चन प्र युच्छस्युभे नि पासि जन्मनी ।
तुरीयादित्य हवनं त इन्द्रियमा तस्थावमृतं दिवि ॥७
यस्मै त्वं मघवन्निन्द्र गिर्वणः शिक्षो शिक्षसि दाशुषे ।
अस्माकं गिर उत सुष्टुतिं वसो कण्ववच्छृणुधी हवम् ॥८
अस्तावि मन्म पूर्व्यं ब्रह्मेन्द्राय वोचत ।
पूर्वीर्ऋतस्य बृहतीरनूषत स्तोतुर्मेधा असृक्षत ॥९
समिन्द्रो रायो बृहतीरधूनुत सं क्षोणी समु सूर्यम् ।
सं शुक्रासः शुचयः सं गवाशिरः सोमा इन्द्रममन्दिषुः ॥१० ॥२१

हे इन्द्र ! तुम्हारी देने की इच्छा होने पर ही धन का रक्षण प्राप्त होता है । स्तोतागण धन की कामना करके धनपति और यज्ञपति इन्द्र को आहूत करते हैं ॥६॥ हे आदित्य ! तुम्हारा आह्वान सूर्य मंडल में पहुँचता है, तुम कभी-कभी भ्रम में पड़कर दोनों प्रकार के प्राणियों का पोषण करने वाले हो जाते हो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम स्तवनीय, धनवान् और दाता हो । हम दाता को धन दो । तुमने जैसे कण्व के स्तोत्रों को सुना था, वैसे ही हमारे स्तोत्रों को सुनो ॥८॥ हे स्तोता ! इन्द्र के निमित्त प्राचीन स्तोत्रों का उच्चारण करो। प्राचीन स्तुतियों को कहो और अपनी बुद्धि को तीव्र करो ॥ ९ ॥ इन्द्र ने आकाश, पृथिवी, सूर्य, उज्ज्वल पदार्थ और धनों का प्रेरण किया है । इस इन्द्र को गव्य मिश्रित मधुर सोम ने भले प्रकार तृप्त किया था ॥१०॥ [२१]

५२ सूक्त

(ऋषि—मेध्यः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—बृहती, पंक्तिः)

उपमं त्वा मघोनाञ्ज्येष्ठञ्च वृषभाणाम् ।
पूर्भित्तमं मघवन्निन्द्र गोविदमीशानं राय ईमहे ॥१
य आयुं कुत्समतिथिग्वमर्दयो वावृधानो दिवेदिवे ।
तं त्वा वयं हर्यश्वं शतक्रतुं वाजयन्तो हवामहे ॥२

आ नो विश्वेषां रसं मध्वः सिञ्चन्त्वद्रयः ।
ये परावति सुन्विरे जनेष्वा ये अर्वावतीन्दवः ॥३
विश्वा द्वेषांसि जहि चाव चा कृधि विश्वे सन्वन्त्वा वसु ।
शीष्टेषु चित्ते मदिरासो अंशवो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ॥४ ॥२२

हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले देवताओं में बड़े, शत्रु-पुरों के ध्वंसक, धनवान् एवं सबके ईश्वर हो। मैं धन की कामना से तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥१॥ जिन इन्द्र ने नित्यप्रति बढ़ते हुए, कुत्स और अतिथिग्व को बचाया उन हर्यश्व वाले इन्द्र को हम धन की कामना वाले यजमान आहूत करते हैं ॥ २ ॥ दूर या पास जहाँ भी सोम को अभिषुत किया जाता है, उन सब सोमों का रस हमारे पाषाण द्वारा कूटे जाने पर निकल कर बाहर आवे ॥३ हे इन्द्र ! सोम पीकर तुम जिस स्थान पर हृष्ट होते हो, वहाँ के शत्रुओं को हराकर नष्ट कर देते हो। यह सोम तुम्हारे हर्ष के लिए है, यह उपभोग्य हो ॥४॥   [२१]

इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः ।
आ शन्तम शन्तमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः ॥५
आजिपतिं सत्पतिं विश्वचर्षणिं कृधि प्रजास्वाभगम् ।
प्र सू तिरा शचीभिर्ये त उक्थिनः क्रतुं पुनत आनुषक् ॥६
यस्ते साधिष्ठोऽवसे ते स्याम भरेषु ते ।
वयं होत्राभिरुत देवहूतिभिः ससवांसो मनामहे ॥७
अहं हि ते हरिवो ब्रह्म वाजयुराजिं यामि सदोतिभिः ।
त्वामिदेव तममे समश्वयुर्गव्युरग्रे मथीनाम् ॥८ ॥२३

हे इन्द्र ! तुम हमारा मंगल करने वाले निकटस्थ बंधु हो, तुम अतीव बुद्धि, काम्य धन और कल्याण करने वाले रक्षा-साधनों सहित हमारे पास आगमन करो ॥ ५ ॥ हे स्तोताओं ! सज्जनों के रक्षक, भुवनों के ईश्वर और विघ्नकारी प्रजाओं में इन्द्र की पूजा करो। वे इन्द्र कर्मों के सुन्दर फलों के

वाले हैं, वे हमारे यज्ञ का सम्पादन करें ॥६॥ हे इन्द्र ! रक्षा के लिये हम
रे ही आश्रित हैं। तुम्हारे पास जो सर्वश्रेष्ठ धन हैं, वह हमें प्रदान
। युद्ध के अवसर पर भी हम तुम्हारी स्तुति करते हुए तुम्हें बुलावेंगे ॥७
र्यश्व इन्द्र ! मैं अन्न, गौ और अश्व की कामना से तुम्हारी स्तुति करता हूँ
र तुम्हारे द्वारा रक्षित होकर रणक्षेत्र में जाता हूँ और भय प्राप्त होने पर
हें शत्रुओं के मध्य प्रतिष्ठित करता हूँ ॥८॥ [२३]

५४ सूक्त

(ऋषि-मातरिश्वा काण्वः । देवता-इन्द्रः, विश्वेदेवाः । छन्द-बृहती, पंक्तिः)

तत्त इन्द्र वीर्यं गीर्भिर्गृणन्ति कारवः ।
ते स्तोभन्त ऊर्जमावन् घृतश्चुतं पौरासो नक्षन्धीतिभिः ॥१
नक्षन्त इन्द्रमवसे सुकृत्यया येषां सुतेषु मन्दसे ।
यथा संवर्ते अमदो यथा कृश एवास्मे इन्द्र मत्स्व ॥२
आ नो विश्वे सजोषसो देवासो गन्तनोप नः ।
वसवो रुद्रा अवसे न आ गमञ्छृण्वन्तु मरुतो हवम् ॥३
पूषा विष्णुर्हवनं मे सरस्वत्यवन्तु सप्त सिन्धवः ।
आपो वातः पर्वतासो वनस्पतिः शृणोतु पृथिवी हवम् ॥४ ॥२४

हे इन्द्र ! स्तोताओं ने तुम्हारी स्तुति से बल प्राप्त किया था। प्रजाओं ने अपने कर्म से तुम्हें व्याप्त किया था। स्तोतागण तुम्हारे बल का सर्वत्र गान करते हैं ॥१॥ हे इन्द्र ! जिनके अभिषुत सोम द्वारा तुम हर्षयुक्त होते हो, वे यजमान अपने कर्म से तुम्हें व्याप्त करते हैं। जिस प्रकार तुमने संवर्त्त और कृश पर कृपा की थी, वैसी ही कृपा मुझ पर करो ॥ २ ॥ सब देवता हमारे अभिमुख हों। वे हम पर समान रूप से प्रसन्न होते हुए आवें। वसु, रुद्र और मरुद्गण हमारी रक्षा के लिए स्तुतियों को सुनें ॥३॥ विष्णु, पूषा, सात नदियाँ, सरस्वती, वनस्पति, जल, वायु और पर्वत सब मेरे यज्ञ की रक्षा करें और पृथिवी भी मेरे स्तोत्र को श्रवण करें ॥४॥ [२४]

यदिन्द्र राधो अस्ति ते माघोनं मघवत्तम ।

तेन नो बोधि सधमाद्यो वृधे भगो दानाय वृत्रहन् ॥५
आजिपते नृपते त्वमिद्धि नो वाज आ वक्षि सुक्रतो ।
वीती होत्राभिरुत देववीतिभिः ससवांसो वि शृण्विरे ॥६
सन्ति ह्यर्य आशिष इन्द्र आयुर्जनानाम् ।
अस्मान्नक्षस्व मघवन्नुपावसे धुक्षस्व पिप्युषीमिषम् ॥७
वयं त इन्द्र स्तोमेभिर्विधेम त्वमस्माकं शतक्रतो ।
महि स्थूरं शशयं राधो अह्रयं प्रस्कण्वाय नि तोशय ॥८ ॥२५

हे वृत्रहन्ता इन्द्र ! तुमने अपने धन के सहित हर्षित होकर हमें देने के लिए यहाँ आओ ॥५॥ हे राजन् ! तुम हमको रणभूमि में ले चलो । स्तोत्र और यज्ञ के समय देवगण अपनी रक्षा के लिए तुम्हारी स्तुति करने को आते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र के पास मनुष्यों की आयु और समृद्धि का आशीर्वाद है । हे इन्द्र ! तुम हमें पुष्ट करने वाला अन्न दो ॥७॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे हो । स्तुतियों से हम तुम्हारी उपासना करेंगे । तुमने प्रस्कण्व की रक्षा के लिए स्थूल और समृद्ध धन दिया है ॥८॥ [२५]

५५ सूक्त

(ऋषि-कृशः काण्वः । देवता-प्रस्कण्वस्य दानस्तुतिः । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

भूरीदिन्द्रस्य वीर्यं व्यख्यमभ्यायति । राधस्ते दस्यवे वृक ॥१
शतं श्वेतास उक्षणो दिवि तारो न रोचन्ते । मह्ना दिवं न तस्तभुः ॥२
शतं वेणूञ्छतं शुनः शतं चर्माणि म्लातानि ।
शतं मे बल्बजस्तुका अरुषीणां चतुःशतम् ॥३
सुदेवाः स्थ काण्वायना वयोवयो विचरन्तः । अश्वासो न चङ्क्रमत ॥४
आदित्साप्तस्य चर्किरन्नानूनस्य महि श्रवः ।
श्यावीरतिध्वसन्पथश्चक्षुषा चन सन्नशे ॥५ ॥२६

इन्द्र राक्षसों के लिए व्याघ्र के समान हैं । हम इनके असंख्य ... को

अग्ने कविर्वेधा असि होता पावक यक्ष्यः ।
मन्द्रो यजिष्ठो अध्वरेष्वीड्यो विप्रेभिः शुक्र मन्मभिः ॥३
अद्रोघमा वहोशतो यविष्ठ्य देवाँ अजस्र वीतये ।
अभि प्रयांसि सुधिता वसो गहि मन्दस्व धीतिभिर्हितः ॥४
त्वमित्सप्रथा अस्यग्ने त्रातर्ऋतस्कविः ।
त्वां विप्रासः समिधान दीदिव आ विवासन्ति वेधसः ॥५ ॥३२

हे अग्ने ! होता मान कर हम तुम्हारा वरण करते हैं । तुम अन्य अग्नियों के सहित आगमन करो । अध्वर्युओं द्वारा बिछाई हुई श्रेष्ठ कुशाओं पर प्रतिष्ठित कर हम तुम्हारा पूजन करें ॥१॥ हे अङ्गिरा-श्रेष्ठ अग्ने ! तुम बल से उत्पन्न हो । तुम्हारी प्राप्ति के लिए स्रुक गमन करती है । हम अत्यन्त दैदीप्यमान पुरातन अग्नि की स्तुति करते हैं ॥२॥ हे अग्ने ! तुम फलों का संपादन करने वाले हो । यज्ञ में विद्वान् ब्राह्मण तुम प्रसन्नताप्रद तेजस्वी की स्तुति करते हैं ॥३॥ हे सदा तरुणतम अग्ने ! देवगण मुझे चाहते हैं, क्योंकि मैं द्रोह रहित हूँ । तुम उन देवताओं को हवि-सेवन करने के लिए यहाँ लाओ । तुम सुन्दर वासप्रद हो इस हविरन्न के पास आकर स्तुतियों से हर्ष को प्राप्त होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारी रक्षा करने वाले, विद्वान्, प्रदीप्त और विस्तृत हो । यह स्तुति करने वाले सुन्दर मन्त्रों से तुम्हारी सेवा करते हैं ॥५॥ [३२]

शोचा शोचिष्ठ दीदिहि विशे मयो रास्व स्तोत्रे महाँ असि ।
देवानां शर्मन् मम सन्तु सूरयः शत्रूषाहः स्वग्नयः ॥६
यथा चिद्वृद्धमतसमग्ने सञ्जूर्वसि क्षमि ।
एवा दह मित्रमहो यो अस्मध्रुग् दुर्मन्मा कश्च वेनति ॥
मा नो मर्ताय रिपवे रक्षस्विने माघशंसाय रीरधः ।
अस्रेधद्भिस्तरणिभिर्यविष्ठ्य शिवेभिः पाहि पायुभिः ॥८
पाहि नो अग्न एकया पाह्युत द्वितीयया ।
पाहि गीर्भिस्तिसृभिरूर्जाम्पते पाहि चतसृभिर्वसो ॥९

पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः प्र स्म वाजेषु नोऽव ।
त्वामिद्धि नेदिष्ठं देवतातय आपिं नक्षामहे वृधे ॥१० ॥३३

हे अग्ने ! तुम प्रज्वलित होओ। हे पावक ! स्तोता के लिए तथा प्रजाओं के लिए कल्याण दो। यह स्तोता देवताओं का दिया हुआ सुख पावें और शत्रुओं को जीतने वाले बनें ॥ ६ ॥ हे मित्र-पूजक स्तोताओ ! तुम जैसे शुष्क काष्ठ को भस्म करते हो वैसे ही अग्नि की पूजा द्वारा हमारे वैरियों और पाप बुद्धि वाले हिंसकों को भस्म करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हमको बलवान हिंसकों के अधीन न करो। जो हमारा बुरा चाहते हैं, उनके वश में हमको मत दे देना। हे अग्ने ! तुम तरुणतम हो, अपने सुखकारी एवं उद्धार करने वाले रक्षा-साधनों से हमारे रक्षक होओ ॥८॥ हे अग्ने ! हमको एक, दो या तीन अर्कों से रक्षित करो। चार अर्कों से हमारी रक्षा करो ॥६॥ सब देवताओं और अदानियों से हमारी रक्षा करो। तुम हमारे निकटतम बन्धु हो। रणक्षेत्र में हमारी रक्षा करो। हम यज्ञ के लिए और ऐश्वर्य-प्राप्ति के लिए तुम्हारा आश्रय ग्रहण करेंगे ॥१०॥ (३३)

आ नो अग्ने वयोवृधं रयिं पावक शंस्यम् ।
रास्वा च न उपमाते पुरुस्पृहं सुनीती स्वयशस्तरम् ॥११
येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः ।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः ॥१२
शिशानो वृषभो यथाग्निः शृङ्गे दविध्वत् ।
तिग्मा अस्य हनवो न प्रतिधृषे सुजम्भः सहसो यहुः ॥१३
नहि ते अग्ने वृषभ प्रतिधृषे जम्भासो यद्वितिष्ठसे ।
स त्वं नो होतः सुहुतं हविष्कृधि वंस्वा नो वार्या पुरु ॥१४
शेषे वनेषु मात्रोः सं त्वा मर्तास इन्धते ।
अतन्द्रो हव्या वहसि हविष्कृत आदिद्देवेषु राजसि ॥१५ ॥३४

हे पावक ! हमको अन्न की वृद्धि करने वाला यशपूर्ण धन दो। तुम हमारे निकटतम मित्र और धन देने वाले हो। अतः अनेकों द्वारा ग्रहण करने

योग्य अत्यन्त यश प्रदान करने वाला धन हमको दो ॥११॥ जिस प्रकार बाण फेंक कर मारने वाले शत्रुओं से बचते हुए हम उन्हें मार सकें, ऐसा धन दो। तुम अपनी सुन्दर मति के द्वारा वास देने वाले हो। तुम हमें अन्न से बढ़ाओ। जिस कर्म से धन प्राप्त हो सके उस कर्म को दृढ़ करो ॥१२॥ बैल के समान अपने सींग रूप ज्वाला को बढ़ाते हुए अग्नि अपना सिर कम्पित करते हैं। उनके तीक्ष्ण हनु का निवारण करने में कोई समर्थ नहीं। वे बल के पुत्र एवं सुन्दर दाँत वाले हैं। १३॥ हे अग्ने! तुम वृष्टिकारक हो। तुम प्रदीप्त होते हो, तब तुम्हें कोई रोक नहीं सकता। तुम होता रूप से हमारी हवियों को व्याप्त करने वाले हो। हमको वरण योग्य धन प्रदान करो ॥१४॥ हे अग्ने! तुम दो अरणि रूप माताओं में विद्यमान हो। तुम मनुष्यों के द्वारा प्रवृद्ध होते हो। तुम प्रमाद-रहित होते हुए हमारी हवि को देवताओं के पास पहुँचाओ और फिर उन देवताओं में बैठ कर सुशोभित होओ ॥१५॥ [३४]

सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम् ।
भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ॥१६
अग्निमग्निं वो अध्रिगुं हुवेम वृक्तबर्हिषः ।
अग्निं हितप्रयसः शश्वतीष्वा होतारं चर्षणीनाम् ॥१७
केतन शर्मन्त्सचते सुषामण्यग्ने तुभ्यं चिकित्वना ।
इषण्ययाः नः पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥१८
अग्ने जरितर्विश्पतिस्तेपानो देव रक्षसः ।
अप्रोषिवान्गृहपतिर्महाँ असि दिवस्पायुर्दुरोणयुः ॥१९
मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो मा यातुर्यातुमावताम् ।
परोगव्यूत्यनिरामप क्षुधमग्ने सेध रक्षस्विनः ॥२० ॥३५

हे अग्ने! तुम इच्छित के देने वाले और प्रदीप्त हो। सात होता तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम अपने संतापक तेज से मेघ को विदीर्ण करते हो हे अग्ने! हमको लाँघ कर आगे बढ़ो ॥१६॥ हे स्तोताओ! हमने कुश उखाड़ लिया, हव्य सम्पन्न किया और अब हम अग्नि को आहूत करते हैं। वह अग्नि

इस यजमानों के होता हैं तथा कर्म के धारण करने वाले सभी लोकों में समान रूप में अवस्थित रहते हैं ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! सुखदायक यज्ञ में संतानवान मनुष्य के सहित यजमान तुम्हारी स्तुति करता है। तुम हमारी रक्षा के लिए विभिन्न प्रकार के रक्षा सहित यहाँ आओ ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुति के योग्य हो। तुम प्रजाओं के रक्षक और राक्षसों को सन्तापप्रद हो। तुम यजमान के घर की रक्षा करते हुए उसका कभी त्याग नहीं करते। तुम महान् हो ॥१९॥ हे अग्ने ! हमारे शरीर में पाप रूप राक्षस न घुस बैठें। पिशाचादि भी प्रवेश न करें। उन क्रूरकर्मा राक्षसों, पिशाच आदि को तथा निर्धनता को भी हमारे पास मत आने देना ॥२०॥ [३५]

६१ सूक्त

(ऋषि—भर्गः प्रागाथः। देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, पंक्तिः)

उभयं शृणवच्च न इन्द्रो अर्वागिदं वचः ।
सत्राच्या मघवा सोमपीतये धिया शविष्ठ आ गमत् ॥१
तं हि स्वराजं वृषभं तमोजसे धिषणे निष्टतक्षतुः ।
उतोपमानां प्रथमो नि षीदसि सोमकामं हि ते मनः ॥२
आ वृषस्व पुरूवसो सुतस्येन्द्रान्धसः ।
विद्मा हि त्वा हरिवः पृत्सु सासहिमधृष्टं चिद्दधृष्वणिम् ॥३
अप्रामिसत्य मघवन्तथेदसदिन्द्र क्रत्वा यथा वशः ।
सनेम वाजं तव शिप्रिन्नवसा मक्षू चिद्यन्तो अद्रिवः ॥४
शग्ध्यू षु शचीपत इन्द्र विश्वाभिरूतिभिः ।
भगं न हि त्वा यशसं वसुविदमनु शूर चरामसि ॥५ ॥३६

हे इन्द्र ! हमारे स्तुति वचनों को श्रवण करो। वह इन्द्र हमारे कर्मों से आकर्षित होकर सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करें ॥१॥ आकाश-पृथिवी ने इन्द्र को बल के निमित्त संस्कृत किया था। हे इन्द्र ! तुम देवताओं में प्रमुख होकर इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ, क्योंकि तुम्हारा मन सोम की कामना कर रहा है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम अपने उदर में सोम को सींचो। हम यह

जानते हैं कि तुम रणक्षेत्र में शत्रुओं को पराजित करने वाले और स्वयं किसी के वश में न पड़ने वाले हो ॥३॥ हे इन्द्र ! यथार्थ ही तुम हिंसित नहीं होते । हम जिस कर्म द्वारा फल पा सकें, वही कर्म हमें प्राप्त हो । हे वज्रिन् ! तुम्हारे द्वारा पोषित हम अन्न-सेवन करते हुए, शत्रुओं को शीघ्र ही भगा देंगे ॥४॥ हे इन्द्र ! तुम अपने सब रक्षा-साधनों सहित इच्छित फल दो । तुम अत्यन्त यश वाले और धनेश्वर हो । हम तुम्हारी उपासना भले प्रकार करते हैं ॥५॥ [३६]

पौरो अश्वस्य पुरुकृद् गवामस्युत्सो देव हिरण्ययः ।
नकिर्हि दानं परिमर्धिषत्त्वे यद्यद्यामि तदा भर ॥६
त्वं ह्येहि चेरवे विदा भगं वसुत्तये ।
उद्वावृषस्व मघवन् गविष्टय उदिन्द्राश्वमिष्टये ॥७
त्वं पुरू सहस्राणि शतानि च यूथा दानाय मंहसे ।
आ पुरन्दरं चकृम विप्रवचस इन्द्रं गायन्तोऽवसे ॥८
अविप्रो वा यदविधद् विप्रो वेन्द्र ते वचः ।
स प्र ममन्दत्त्वाया शतक्रतो प्राचामन्यो अहंसन ॥९
उग्रबाहुर्म्रक्षकृत्वा पुरन्दरो यदि मे शृणवद्धवम् ।
वसूयवो वसुपतिं शतक्रतुं स्तोमैरिन्द्रं हवामहे ॥१० ॥३७

हे इन्द्र ! तुम गौओं की वृद्धि करने वाले, घोड़ों को बढ़ाने वाले और सुवर्ण जैसे वर्ण वाले हो । तुम हमारे लिए जो कुछ देना चाहते हो, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता । अतः मैं तुमसे जो कुछ माँगता हूँ उसे लेकर यहाँ आओ ॥६॥ हे इन्द्र ! आओ, अपने उपासक को धन-दान के निमित्त श्रेष्ठ धन दो । मैं गौओं और अश्वों की भी कामना करता हूँ अतः यह सब मुझे प्रदान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम सैकड़ों हजारों गौएं दानशील यजमान को प्रदान करते हो । हम उन पुरों को ध्वस्त करने वाले इन्द्र की स्तुति करते हुए उन्हें यहाँ ले आवेंगे ॥८॥ हे सैकड़ों कर्म वाले इन्द्र ! तुम अजेय और युद्ध में अहंकार करने वाले हो । जो विद्वान् अथवा मूर्ख भी तुम्हारी उपासना करता है, वह तुम्हारी कृपा प्राप्त करके सुखी हो जाता है ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम राक्षसों

के हिंसक, पुरों के ध्वंसक और वज्रबाहु हो। यदि वे इन्द्र मेरे स्तोत्र को सुनें तो मैं उनका धन की कामना से आह्वान करूँगा ॥१०॥ (३७)

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहे ॥११
उग्रं युयुज्म पृतनासु सासहिमृणकातिमदाभ्यम्।
वेदा भृमं चित्सनिता रथीतमो वाजिनं यमिदू नशत् ॥१२
यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।
मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिर्वि द्विषो वि मृधो जहि ॥१३
त्वं हि राधस्पते राधसो महः क्षयस्यासि विधतः।
तं त्वा वयं मघवन्निन्द्र गिर्वणः सुतावन्तो हवामहे ॥१४
इन्द्र स्पळुत वृत्रहा परस्पा नो वरेण्यः।
स नो रक्षिषच्चरमं स मध्यमं स पश्चात्पातु नः पुरः ॥१५ ॥३८

हम इन्द्र को अग्नि-रहित, निर्धन और अब्रह्मचारी नहीं मानते। हम उनके लिए सोम को संस्कृत करके उन्हें अपना सखा बनावेंगे ॥११॥ इन्द्र का स्तोत्र ऋण के समान फलदायक है। वह रथ के स्वामी यज्ञों में अत्यन्त वेग वाले अश्व को जानते हैं। वह अनेक यजमानों में हमको ही प्राप्त हुए हैं। हम उन शत्रु-विजेता इन्द्र को प्रतिष्ठित करेंगे ॥१२॥ हे इन्द्र! जो हिंसक हमको भय दिखाता है, उसके भय से हमारी रक्षा करो। तुम हमको अभय देने के लिए अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारे हिंसक शत्रुओं को मार डालो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र! तुम धन के स्वामी, उपासकों के घरों को समृद्ध करने वाले एवं स्तुत्य हो। सोम का अभिषव करने के पश्चात् हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ १४ ॥ इन्द्र वृत्र के मारने वाले, मन के जानने वाले, पालक और वरण करने योग्य हैं। वे हमारे छोटे, बड़े, मध्य के पुत्रों की रक्षा करें। पीछे की ओर से या सामने से भी वे हमारे रक्षक हों ॥१५॥ (३८)

त्वं नः पश्चादधरादुत्तरात्पुर इन्द्र नि पाहि विश्वतः।
आरे अस्मत्कृणुहि दैव्यं भयमारे हेतीरदेवीः ॥१६

अद्याद्या श्वः श्व इन्द्र त्रास्व परे च नः ।
विश्वा च नो जरितॄन्त्सत्पते अहा दिवा नक्तं च रक्षिषः ॥१७
प्रभङ्गी शूरो मघवा तुवीमघः सम्मिश्लो वीर्याय कम् ।
उभा ते बाहू वृषणा शतक्रतो नि या वज्रं मिमिक्षतुः ॥१८ ॥३९

हे इन्द्र ! चारों दिशाओं से उपस्थित होने वाले भयों से हमको बचाओ । राक्षस या देवताओं के भय को भी हमसे दूर करो ॥१६॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे स्तोता हैं और तुम साधुजनों की रक्षा करने वाले हो । आज, कल परसों और पूरे दिन तुम हमारी रक्षा करने वाले होओ ॥ १७ ॥ यह इन्द्र अत्यन्त ऐश्वर्यवान् हैं, वह सबसे मेल करते हैं । हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे कामनाओं के देने वाले दोनों बाहु वज्र को ग्रहण करें ॥ १८ ॥ [३९]

६२ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः । देवता-इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, बृहती)

प्रो अस्मा उपस्तुतिं भरता यज्जुजोषति ।
उक्थैरिन्द्रस्य माहिनं वयो वर्धन्ति सोमिनो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१
अयुजो असमो नृभिरेकः कृष्टीरयास्यः ।
पूर्वीरति प्र वावृधे विश्वा जातान्योजसा भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥२
अहितेन चिदर्वता जीरदानुः सिषासति ।
प्रवाच्यमिन्द्र तत्तव वीर्याणि करिष्यतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥३
आ याहि कृणवाम त इन्द्र ब्रह्माणि वर्धना ।
येभिः शविष्ठ चाकनो भद्रमिह श्रवस्यते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥४
धृषतश्चिद्धृषन्मनः कृणोषीन्द्र यत्त्वम् ।
तीव्रैः सोमैः सपर्यतो नमोभिः प्रतिभूषतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥५
अव चष्ट ऋचीषमोऽवताँ इव मानुषः ।
जुष्ट्वी दक्षस्य सोमिनः सखायं कृणुते युजं भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥६॥४०

हे स्तोता ! सेवा करने वाले इन्द्र की स्तुति करो । उनके अन्न को

उक्थों के द्वारा प्रार्थित किया जाता है और उनका दिया हुआ धन मंगल करने वाला होता है ॥१॥ देवताओं में प्रमुख इन्द्र प्राचीन प्रजा को लाँघ कर आगे बढ़ते हैं, उनका दान मङ्गलकारी है ॥२॥ वे शौर्य देने वाले इन्द्र आनन्द की कामना करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सामर्थ्य के देने वाले हो, तुम्हारी महिमा प्रशंसा के योग्य है और तुम्हारा दान कल्याणों का देने वाला है ॥३॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे उन्माद को बढ़ाने वाले स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं, अतः यहाँ आओ। तुम अन्न की कामना करने वाले स्तोता का कल्याण चाहते हो। हे महाबली इन्द्र ! तुम्हारा दान कल्याण प्रदान करने वाला है ॥४॥ हे इन्द्र ! जो यजमान सोम का अभिषव करके नमस्कारों द्वारा तुम्हारा पूजन करता है, तुम उसे अपरमित फल प्रदान करते हो। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥५॥ हे इन्द्र ! जैसे मनुष्य कूप को देखता है, वैसे ही तुम हमारी स्तुतियों से आकर्षित होकर हमको देख रहे हो। तुम सोम-सम्पन्न यजमान के बन्धु हो। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥६॥ [४०]

विश्वे त इन्द्र वीर्यं देवा अनु क्रतुं ददुः ।
भुवो विश्वस्य गोपतिः पुरुष्टुत भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥७
गृणे तदिन्द्र ते शव उपमं देवतातये ।
यद्धंसि वृत्रमोजसा शचीपते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥८
समनेव वपुष्यतः कृणवन्मानुषा युगा ।
विदे तदिन्द्रश्चेतनमध श्रुतो भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥९
उज्जातमिन्द्र ते शव उत्त्वामुत्तव क्रतुम् ।
भूरिगो भूरि वावृधुर्मघवन्तव शर्मणि भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥१०
अहं च त्वं च वृत्रहन्त्सं युज्याव सनिभ्य आ ।
अरातीवा चिदद्रिवोऽनु नौ शूर मंसते भद्रा इन्द्रस्य रातयः ॥११
सत्यमिद्वा उ तं वयमिन्द्रं स्तवाम नानृतम् ।
महाँ असुन्वतो वधो भूरि ज्योतींषि सुन्वतो भद्रा इन्द्रस्य
रातयः ॥१२ ॥८२

हे इन्द्र ! तुम्हारे वीर्य और बुद्धि के अनुसार ही सब देवता वीर्यवान् और बुद्धिमान् होते हैं । तुम प्रसिद्ध स्तुतियों के अधीश्वर तथा अनेकों द्वारा द्वारा स्तुत हो । तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥७॥ हे इन्द्र ! यज्ञ के निमित्त मैं तुम्हारे उपमा योग्य बल की प्रशंसा करता हूँ । तुमने अपने ही बल से वृत्र को मारा था । उन इन्द्र का दान कल्याणकारी है ॥ ८॥ जैसे रूप की कामना वाले पुरुष को प्रेम प्रदर्शित करने वाली पत्नी अपने वश में कर लेती है, वैसे ही इन्द्र सब प्राणियों को वश में करते हैं । संवत्सर आदि रूप काल को इन्द्र ही बताते हैं । उन इन्द्र का दान कल्याणकारी हैं ॥९॥ हे इन्द्र ! पशुओं से सम्पन्न यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख को भोगते हैं, वे तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं, तुम्हारी बुद्धि को बढ़ा कर तुम्हें भी प्रवृद्ध करते हैं । तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी एवं वृत्रहन्ता हो । अदानशील भी तुम्हारे दान की सराहना करते हैं । हमको जब तक धन न मिले, तब तक हम तुमसे मिलते रहें । तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥ ११ ॥ हम इन्द्र की सत्य प्रशंसा ही करते हैं, असत्य नहीं करते । यज्ञ-हीन पुरुषों को इन्द्र बहु संख्या में नष्ट करते हैं । वह अभिषवकर्त्ता को प्रकाश देते हैं, उनका दान कल्याणकारी है ॥१२॥ [७१]

६३ सूक्त

(ऋषि–प्रगाथः काण्वः । देवता–इन्द्रः, देवा । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री त्रिष्टुप्)

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥२
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥३
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥४
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥५

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ।६।४२

इन्द्र पूजनीय कर्मों द्वारा तेजस्वी हैं। देवताओं में स्थित पिता मनु ने इन्द्र की प्राप्ति के साधनों को खोजा। वे प्रमुख इन्द्र उन साधनों से आते हैं ॥१॥ सोम के अभिषव कर्म वाले पाषाणों ने इन्द्र का त्याग नहीं किया। उनकी प्राप्ति के लिए उक्थों और स्तोत्रों का उच्चारण करना ही साध्य है ॥२ इन्द्र ने अंगिराओं के लिए गौओं को उत्पन्न किया, मैं इन्द्र के उस पराक्रम की प्रशंसा करता हूँ ॥३॥ इन्द्र विद्वानों के बढ़ाने वाले हैं, वे होता के कार्यों का निर्वाह करते हैं। सोम की आहुति के समय यह इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त आवें ॥४॥ हे इन्द्र ! यज्ञपति अग्नि के लिए स्वाहाकार करने वाले, तुम्हारा ही यश गाते हैं। स्तुति करने वाले शीघ्र धन देने के निमित्त तुम्हारा ही स्तोत्र करते हैं ॥५॥ समस्त कर्म इन्द्र में ही निहित हैं, स्तुति करने वाले विद्वान् इन्द्र को अहिंसक बताते हैं ॥६॥　　　　　　　　　　　　　　[४२]

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो र्यो मानस्य स क्षयः ॥७
इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥८
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥९
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥११
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ।१२।४३

इन इन्द्र के लिए जब चारों वर्ण स्तुति करते हैं, तब इन्द्र अपने बल से शत्रुओं को मारते हैं। स्तोता की पूजा के आश्रय-स्थान इन्द्र ही हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जो पराक्रम किये हैं, इन्हीं की यह प्रशंसा है। तुम इस चक्र के मार्ग की रक्षा करो ॥८॥ इन्द्र की वृष्टि के द्वारा विविध अन्न प्राप्त कर लेने पर सब प्राणी अपने विविध कर्मों में लगते हैं और सब मनुष्य, पशुओं के समान ही जी पाते हैं ॥ ९ ॥ हम रक्षा की कामना करने वाले स्तोता इन्द्र के

हे इन्द्र ! तुम्हारे वीर्य और बुद्धि के अनुसार ही सब देवता वीर्यवान् और बुद्धिमान् होते हैं । तुम प्रसिद्ध स्तुतियों के अधीश्वर तथा अनेकों द्वारा द्वारा स्तुत हो । तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥७॥ हे इन्द्र ! यज्ञ के निमित्त मैं तुम्हारे उपमा योग्य बल की प्रशंसा करता हूँ । तुमने अपने ही बल से वृत्र को मारा था । उन इन्द्र का दान कल्याणकारी है ॥ ८॥ जैसे रूप की कामना वाले पुरुष को प्रेम प्रदर्शित करने वाली पत्नी अपने वश में कर लेती है, वैसे ही इन्द्र सब प्राणियों को वश में करते हैं । संवत्सर आदि रूप काल को इन्द्र ही बताते हैं । उन इन्द्र का दान कल्याणकारी है ॥६॥ हे इन्द्र ! पशुओं से सम्पन्न यजमान तुम्हारे द्वारा प्रदत्त सुख को भोगते हैं, वे तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं, तुम्हारी बुद्धि को बढ़ा कर तुम्हें भी प्रवृद्ध करते हैं। तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम वज्रधारी एवं वृत्रहन्ता हो । अदानशील भी तुम्हारे दान की सराहना करते हैं । हमको जब तक धन न मिले, तब तक हम तुमसे मिलते रहें । तुम्हारा दान कल्याणकारी है ॥ ११ ॥ हम इन्द्र की सत्य प्रशंसा ही करते हैं, असत्य नहीं करते । यज्ञ-हीन पुरुषों को इन्द्र बहु संख्या में नष्ट करते हैं। वह अभिषवकर्त्ता को प्रकाश देते हैं, उनका दान कल्याणकारी है ॥१२॥ [११]

६३ सूक्त

(ऋषि–प्रगाथः काण्वः । देवता–इन्द्रः, देवा । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री त्रिष्टुप्)

स पूर्व्यो महानां वेनः क्रतुभिरानजे ।
यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु धिय आनजे ॥१
दिवो मानं नोत्सदन्त्सोमपृष्ठासो अद्रयः । उक्था ब्रह्म च शंस्या ॥२
स विद्वाँ अङ्गिरोभ्य इन्द्रो गा अवृणोदप । स्तुषे तदस्य पौंस्यम् ॥३
स प्रत्नथा कविवृध इन्द्रो वाकस्य वक्षणिः ।
शिवो अर्कस्य होमन्यस्मत्रा गन्त्ववसे ॥४
आदू नु ते अनु क्रतुं स्वाहा वरस्य यज्यवः ।
श्वात्रमर्का अनूषतेन्द्र गोत्रस्य दावने ॥५

इन्द्रे विश्वानि वीर्या कृतानि कर्त्वानि च । यमर्का अध्वरं विदुः ।६।४२

इन्द्र पूजनीय कर्मों द्वारा तेजस्वी हैं। देवगणों में स्थित पिता मनु ने इन्द्र की प्राप्ति के साधनों को खोजा। वे प्रमुख इन्द्र उन साधनों से आते हैं ॥१॥ सोम के अभिषव कर्म वाले पाषाणों ने इन्द्र का त्याग नहीं किया। उनकी प्राप्ति के लिए उक्थों और स्तोत्रों का उच्चारण करना ही साध्य है ॥२॥ इन्द्र ने अंगिराओं के लिए गौओं को उत्पन्न किया, मैं इन्द्र के उस पराक्रम की प्रशंसा करता हूँ ॥३॥ इन्द्र विद्वानों के बढ़ाने वाले हैं, वे होता के कार्यों का निर्वाह करते हैं। सोम की आहुति के समय वह इन्द्र हमारी रक्षा के निमित्त आवें ॥४॥ हे इन्द्र! यज्ञपति अग्नि के लिए स्वाहाकार करने वाले, तुम्हारा ही यश गाते हैं। स्तुति करने वाले शीघ्र धन देने के निमित्त तुम्हारा ही स्तोत्र करते हैं ॥५॥ समस्त कर्म इन्द्र में ही निहित हैं, स्तुति करने वाले विद्वान् इन्द्र को अहिंसक बताते हैं ॥६॥ [४२]

यत्पाञ्चजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
अस्तृणाद् बर्हणा विपो र्यो मानस्य स क्षयः ॥७
इयमु ते अनुष्टुतिश्चकृषे तानि पौंस्या । प्रावश्चक्रस्य वर्तनिम् ॥८
अस्य वृष्णो व्योदन उरु क्रमिष्ट जीवसे । यवं न पश्व आ ददे ॥९
तद्दधाना अवस्यवो युष्माभिर्दक्षपितरः । स्याम मरुत्वतो वृधे ॥१०
बळृत्वियाय धाम्न ऋक्वभिः शूर नोनुमः । जेषामेन्द्र त्वया युजा ॥११
अस्मे रुद्रा मेहना पर्वतासो वृत्रहत्ये भरहूतौ सजोषाः ।
यः शंसते स्तुवते धायि पज्र इन्द्रज्येष्ठा अस्माँ अवन्तु देवाः ।१२।४३

इन इन्द्र के लिए जब चारों वर्ण स्तुति करते हैं, तब इन्द्र अपने बल से शत्रुओं को मारते हैं। स्तोता की पूजा के आश्रय-स्थान इन्द्र ही हैं ॥७॥ हे इन्द्र! तुमने जो पराक्रम किये हैं, इन्हीं की यह प्रशंसा है। तुम इस चक्र के मार्ग की रक्षा करो ॥८॥ इन्द्र की वृष्टि के द्वारा विविध अन्न प्राप्त कर लेने पर सब प्राणी अपने विविध कर्मों में लगते हैं और सब मनुष्य, पशुओं के समान ही जी पाते हैं ॥९॥ हम रक्षा की कामना करने वाले स्तोता इन्द्र के

हैं। हे ऋत्विजो! तुम्हारे यत्न से मरुत्वान् इन्द्र को प्रवृद्ध करने के लिए हम अन्नवान् हो जाँयगे ॥१०॥ हे इन्द्र! तुम यज्ञ-काल में स्वयं तेजस्वी होते हो। हम तुम्हारी सहायता से ही विजय प्राप्त कर सकेंगे। अतः मन्त्रों द्वारा हम तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥११॥ युद्ध काल में आह्वान पर शक्ति सम्पन्न वृत्र-हन्ता इन्द्र स्तोता और यजमान के समीप वेग से आते हैं, वह इन्द्र ही देवताओं में ज्येष्ठ हैं, वह हमारे रक्षक हों ॥१२॥ [४३]

६४ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः । देवता—इन्द्र । छन्द—गायत्री)

उत्त्वा मन्दन्तु स्तोमाः कृणुष्व राधो अद्रिवः । अव ब्रह्मद्विषो जहि ।१
पदा पणींरराधसो नि बाधस्व महाँ असि । नहि त्वा कश्चन प्रति ।२
त्वमीशिषे सुतानामिन्द्र त्वमसुतानाम् । त्वं राजा जनानाम् ॥३
एहि प्रेहि क्षयो दिव्या घोषञ्चर्षणीनाम् । ओभे पृणासि रोदसी ॥४
त्यं चित्पर्वतं गिरिं शतवन्तं सहस्रिणम् । वि स्तोतृभ्यो रुरोजिथ ॥५
वयमु त्वा दिवा सुते वयं नक्तं हवामहे । अस्माकं काममा पृण ।६।४४

हे इन्द्र! यह स्तुतियाँ तुम्हें हर्षित करें। तुम वज्रधारी हो अतः स्तुतियों से द्वेष करने वालों को नष्ट करते हुए, हमको धन प्रदान करो ॥ १ ॥ अदानशील और अयाज्ञिकों को पाँवों से कुचलो। हे इन्द्र! तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है। तुम महान् हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम निष्पन्न तथा अनिष्पन्न दोनों प्रकार के सोमों के स्वामी और प्रजाओं के राजा हो ॥३॥ हे इन्द्र! इस यज्ञ मंडप को शब्दवान करते हुए आओ। तुम आकाश-पृथिवी को वृष्टि जल से तृप्त करते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुमने सौ प्रकार के जल वाले तथा असीम जल वाले मेघों का खंडन किया है ॥५॥ हे इन्द्र! सोमाभिषव होने पर दिन और रात्रि में भी हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमारी कामना को पूर्ण करो ॥६॥ [४४]

क्व स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः । ब्रह्मा कस्तं सपर्यति ॥७
कस्य स्वित्सवनं वृषा जुजुष्वाँ अव गच्छति । इन्द्रं क उ स्विदा चके ।८

कं ते दाना असक्षत वृत्रहन्कं सुवीर्या । उक्थे क उ स्विदन्तमः ॥६
अयं ते मानुषे जने सोमः पूरुषु सूयते । तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१०
अयं ते शर्यणावति सुषोमायामधि प्रियः । आर्जीकीये मदिन्तमः ॥११
तमद्य राधसे महे चारुं मदाय घृष्वये । एहीमिन्द्र द्रवा पिब ॥१२॥४५

वे सदा तरुण, विशाल स्कन्ध वाले, वृष्टिदाता इन्द्र कहाँ हैं ? इस समय कौन उनकी स्तुति कर रहा है ? ॥ ७ ॥ यह इन्द्र प्रसन्न होने पर आते हैं । उनकी स्तुति करने का ज्ञान किस यजमान को है ? ॥८॥ हे इन्द्र ! सुन्दर वीर्य वाले स्तोत्र तुम्हारी सेवा करते हैं, यजमान-प्रदत्त दान भी तुम्हारी सेवा करता है । रणक्षेत्र में कौन-सा योद्धा तुम्हारा सामीप्य प्राप्त करेगा ॥ ६ ॥ मैं तुम्हारे निमित्त ही सोम को अभिषुत कर रहा हूँ, तुम उसके पास आगमन करो । शीघ्र आकर उस सोम रस का पान करो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! यह सोम गुण से सम्पन्न पुष्कर, सुषोमा और व्यास आदि नदियों के किनारे तुम्हें अधिक शक्ति देता है ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम हमको देने और शत्रु नाश करने के निमित्त शक्तियुक्त होने के लिए उस रमणीय सोम को पियो । हे इन्द्र ! इस सोम-पात्र की ओर शीघ्रता से गमन करो ॥ १२ ॥ [४५]

६५ सूक्त

(ऋषि-प्रगाथः काण्वः । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ्न्यग्वा हूयसे नृभिः । आ याहि तूयमाशुभिः ॥१
यद्वा प्रस्रवणे दिवो मादयासे स्वर्णरे । यद्वा समुद्रे अन्धसः ॥२
आ त्वा गीर्भिर्महामुरुं हुवे गामिव भोजसे । इन्द्र सोमस्य पीतये ॥३
आ त इन्द्र महिमानं हरयो देव ते महः । रथे वहन्तु बिभ्रतः ॥४
इन्द्र गृणीष उ स्तुषे महाँ उग्र ईशानकृत् । एहि नः सुतं पिब ॥५
सुतावन्तस्त्वा वयं प्रयस्वन्तो हवामहे । इदं नो बर्हिरासदे ॥६ ॥४६

हे इन्द्र ! तुम को सब दिशाओं के मनुष्य आहूत करते हैं, अतः अपने अश्वों द्वारा शीघ्र आगमन करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्न के अपादान अन्तरिक्ष में, अमृत के सींचने वाले स्वर्ग में तथा पृथिवी पर भी शक्तियुक्त

यद्वः श्रान्ताय सुन्वते वरूथमस्ति यच्छर्दिः । तेना नो अधि वोचत ॥६
अस्ति देवा अंहोरुर्वस्ति रत्नमनागसः । आदित्या अद्भुतैनसः ॥७
मा नः सेतुः सिषेदयं महे वृणक्तु नस्परि । इन्द्र इद्धि श्रुतो वशी ॥८
मा नो मृचा रिपूणां वृजिनानामविष्यवः । देवा अभि प्र मृक्षत ॥९
उत त्वामदिते मह्यहं देव्युप ब्रुवे । सुमृळीकामभिष्टये ॥१० ॥५२

अभिषव वाले यजमान को जो वरणीय धन प्रदान करते हो, उसके द्वारा हमको सुखी करो ॥६॥ हे देवताओ ! पाप कर्म वाला व्यक्ति पापी और रमणीय कल्याण वाला मनुष्य धर्मात्मा कहा जाता है । तुम पाप रहित हो, अतः हमारी कामना पूर्ण करो ॥ ७ ॥ इन्द्र सब को वशीभूत करने वाले हैं । यह हमें जाल में न बाँधें ॥ ८ ॥ हे देवताओ ! हमको मुक्त करो । हमको हिंसक शत्रुओं के जाल में मत डालो ॥९॥ हे अदिति, तुम महिमामयी और सुखदात्री हो । मैं अभीष्ट पाने के लिए तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥१०॥ [५२

पर्षि दीने गभीर आँ उग्रपुत्रे जिघांसतः माकिस्तोकस्य नो रिषत् ॥११
अनेहो न उरुव्रज उरूचि वि प्रसर्तवे । कृधि तोकाय जीवसे ॥१२
ये मूर्धानः क्षितीनामदब्धासः स्वयशसः । व्रता रक्षन्ते अद्रुहः ॥१३
ते न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत । स्तेनं बद्धमिवादिते ॥१४
अपो षु ण इयं शरुरादित्या अप दुर्मतिः । अस्मदेत्वजघ्नुषी ॥१५।५३

हे देवो ! हमको सब ओर से रक्षित करो । हिंसाकारी का जाल हमारे पुत्र की हिंसा न करे ॥११॥ हे अदिति ! हमारे पुत्र को जीवित रखने के लिए हम पाप-रहितों की रक्षा करो ॥ १२ ॥ हे आदित्यो ! तुम सुन्दर यश वाले अहिंसक और द्रोह-रहित रह कर हमारे कर्मों के रक्षक बनते हो ॥ १३ ॥ हे आदित्यो ! हिंसकों द्वारा चोर के समान पकड़े गए हम तुमसे रक्षा माँगते हैं ॥१४॥ हे आदित्यो ! यह जाल हमारी हिंसा में समर्थ न हो, इसे दूर करो। कुबुद्धि को भी हमसे दूर करो ॥१५॥ [५३]

शश्वद्धि वः सुदानव आदित्या ऊतिभिर्वयम् पुरा नूनं बुभुज्महे ॥१६
शश्वन्तं हि प्रचेतसः प्रतियन्तं चिदेनसः देवाः कृणुथ जीवसे ॥१७

तत्सु नो नव्यं सन्यस आदित्या यन्मुमोचति । बन्धाद् बद्धमिवादिते ॥१८
नास्माकमस्ति तत्तर आदित्यासो अतिष्कदे । यूयमस्मभ्यं मृळत ॥१९
मा नो हेतिर्विवस्वत आदित्याः कृत्रिमा शरुः । पुरा नु जरसो वधीत् ॥२०
वि षु द्वेषो व्यंहतिमादित्यासो वि संहितम् ।
विष्वग्वि वृहता रपः ॥२१॥५४

हे आदित्यो ! तुम्हारा दान सुन्दर है। तुम्हारी रक्षा में रह कर हम विविध सुखों को प्राप्त करेंगे ॥१६॥ हे आदित्यो ! जो क्रूरकर्मा पापी हमारी ओर बारम्बार आता है, उसे हमारी रक्षा के लिए दूर हटाओ ॥ १७ ॥ हे आदित्यो ! जैसे बँधे हुए पुरुष को खोलने पर बंधन उसे छोड़ देता है, वैसे ही तुम्हारी कृपा से जो हमें सुख करता है वह हमारी स्तुति के योग्य है ॥१८ हे आदित्यो ! हम तुम्हारे समान वेग वाले नहीं हैं। वह वेग हमको छुड़ा सकता है, अतः हमको सुख दो ॥१९॥ हे आदित्यो ! सूर्य के आयुध के समान यह कृत्रिम जाल हम जैसे निर्बलों की हिंसा न करे ॥ २० ॥ हे आदित्यो ! वैरियों और पापियों को मारो। आलस को नष्ट करो। पाप को दूर करो ॥ २१॥ [५४]

६८ सूक्त

(ऋषि-प्रियमेधः। देवता-इन्द्र, ऋक्षाश्वमेधयोर्दानस्तुतिः।
छन्द-अनुष्टुप्, गायत्री)

आ त्वा रथं यथोतये सुम्नाय वर्तयामसि ।
तुविकूर्मिमृतीषहमिन्द्र शविष्ठ सत्पते ॥१
तुविशुष्म तुविक्रतो शचीवो विश्वया मते । आ पप्राथ महित्वना ॥२
यस्य ते महिना महः परि ज्मायन्तमीयतुः । हस्ता वज्रं हिरण्ययम् ॥३
विश्वानरस्य वस्पतिमनानतस्य शवसः । एवैश्च चर्षणीनामूती हुवे
रथानाम् ॥४
अभिष्टये सदावृधं स्वर्मीळ्हेषु यं नरः । नाना हवन्त ऊतये ॥५॥१

हे सत्य के अधीश्वर, हे इन्द्र ! तुम बहुत कर्मों वाले हो, तुम हिंसा करने वालों को भगाते हो । हम तुम्हें रक्षा रूप सुख के निमित्त बुलाते हैं ॥१ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पराक्रमी, मेधावी, पूज्य एवं बहुकर्मा हो । तुमने अपनी संसार व्यापिनी महिमा के द्वारा ही संसार को पूर्ण किया है ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो । तुम्हारे दोनों-हाथ पृथिवी में व्याप्त स्वर्णिम वज्र को पकड़ते हैं ॥३॥ मैं बल के स्वामी और शत्रुओं की ओर क्रोध पूर्वक जाने वाले इन्द्र को उनकी, मरुत् रूप सेना सहित तथा रथ सहित आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन्हें रक्षा के लिए नेतागण अनेक प्रकार से आहूत करते हैं, उन सतत प्रवृद्ध इन्द्र को सहायता के लिए आहूत करता हूँ ॥५॥ [१]

परोमात्रमृचीषममिन्द्रमुग्रं सुराधसम् । ईशानं चिद्वसूनाम् ॥६
तं तमिद्राधसे मह इन्द्रं चोदामि पीतये ।
यः पूर्व्यामनुष्टुतिमीशे कृष्टीनां नृतुः ॥७
न यस्य ते शवसान सख्यमानंश मर्त्यः । नकिः शवांसि ते नशत् ॥८
त्वोतासस्त्वा युजाप्सु सूर्ये महद्धनम् । जयेम पृत्सु वज्रिवः ॥९
तं त्वा यज्ञेभिरीमहे तं गीर्भिर्गिर्वणस्तम ।
इन्द्र यथा चिदाविथ वाजेषु पुरुमाय्यम् ॥ १० ॥२

जो इन्द्र धनवान्, सुन्दर, विस्तृत और स्तुतियों द्वारा परिमित हैं, उन्हें आहूत करता हूँ ॥६ ॥ नेता, यज्ञ के मुख पर स्थित, स्तुतियों के सुनने वाले इन्द्र को धन के निमित्त सोम पीने को बुलाता हूँ ॥७॥ हे इन्द्र ! मनुष्य तुम्हारे बल को व्याप्त नहीं कर सकता और तुम्हारी मित्रता को भी नहीं घेर सकता है ॥ ८ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारी रक्षा में रहते हुए हम जल में स्नान के निमित्त और सूर्य-दर्शन के निमित्त रणक्षेत्र में असीमित धन पाते हुए तुम्हारा अनुग्रह मानेंगे ॥९॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों द्वारा प्रशंसित हो । जिस प्रकार तुम संग्राम में हमारी रक्षा कर सको उसी प्रकार करने की हम स्तोता तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ १० ॥ [२]

यस्य ते स्वादु सख्यं स्वाद्वी प्रणीतिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥११

ए णस्तन्वे तन उरु क्षयाय नस्कृधि । उरु णो यन्धि जीवसे ॥१२
ऽं नृभ्य उरुं गव उरुं रथाय पन्थाम् । देववीति मनामहे ॥१३
प मा षड् द्वाद्वा नरः सोमस्य हर्ष्या । तिष्ठन्ति स्वादुरातयः ॥१४
ऋज्राविन्द्रोत आ ददे हरी ऋक्षस्य सूनवि । आश्वमेधस्य रोहिता ॥१५ ॥३

हे अग्नि ! तुम्हारा मित्र-भाव मधुर है, तुम्हारा धन आदि सुस्वादु था यश विस्तृत है ॥११॥ हे इन्द्र ! हमारे पुत्र पौत्रादि को अभीष्ट धन दो, मारे सुन्दर निवास के लिए आवश्यक धन प्रदान करो, हमारे जीवन के लिए पेक्षित सम्पत्ति दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! मनुष्यों और गौओं का हित करने की म तुमसे प्रार्थना करते हैं, हमारे रथ के लिए सुन्दर मार्ग दो और हमारे ज्ञ-कर्म को सम्पन्न करो ॥१३॥ सोम से उत्पन्न हर्ष के कारण, उपभोग्य धन से सम्पन्न हुए छः नेताओं में से दो-दो हमारे समीप आगमन करते हैं ॥१४॥ क्ष के पुत्र से दो हरित वर्ण वाले, अश्वमेध के पुत्र से दो रोहित वर्ण वाले और इन्द्रोत नामक राजपुत्र से दो सरलता पूर्वक गमन करने वाले ोड़ों को मैंने प्राप्त किया है ॥१५॥   [३]

सुरथाँ आतिथिग्वे स्वभीशूँरार्क्षे । आश्वमेधे सुपेशसः ॥१६
षळश्वाँ आतिथिग्व इन्द्रोते वधूमतः । सचा पूतक्रतौ सनम् ॥१७
ऐषु चेतद्वृषण्वत्यन्तर्ऋज्रेष्वरुषी । स्वभीशुः कशावती ॥१८
न युष्मे वाजबन्धवो निनित्सुश्चन मर्त्यः । अवद्यमधि दीधरत् ॥१९ ॥४

मैंने अतिथिग्व-पुत्र इन्द्रोत से सुन्दर रथ से युक्त घोड़ों को प्राप्त किया ऋक्ष-पुत्र से सुन्दर लगामों वाले तथा अश्वमेध के पुत्र से भी दो सुन्दर अश्व मैंने प्राप्त किए हैं ॥१६॥ श्रेष्ठ कर्म वाले इन्द्रोत से घोड़ियों सहित छः अश्वों को ऋक्ष पुत्र और अश्वमेध पुत्र द्वारा प्रदत्त अश्वों के सहित प्राप्त किया है ॥१७॥ इन घोड़ों में सेचन समर्थ अश्वों वाली सुन्दर लगामों से सम्पन्न घोड़ियाँ भी सम्मिलित हैं ॥१८॥ हे राजाओ ! तुम अश्व दान करने वाले हो निन्दा करने वाले पुरुष भी तुम्हारी निंदा करने में समर्थ नहीं होते ॥१९॥

६९ सूक्त

(ऋषि–प्रियमेधः। देवता–इन्द्रः, विश्वेदेवाः, वरुणः। छन्द–अनुष्टुप, उष्णिक्, गायत्री, पंक्तिः, बृहती)

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ३

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥५ ॥५

हे अध्वर्यो ! इन्द्र वीरों में साहस उत्पन्न करते हैं, उनके लिए अन्न संग्रहीत करो। यह प्रजा से युक्त कर्म के द्वारा यज्ञ का फल पाने के लिए तुम्हें समर्थ करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उषाओं को उत्पन्न करते हैं, वह अहिंसा-योग्य गौओं के स्वामी हैं। यजमान दूध देने वाली इन गौओं से उत्पन्न होने वाले रस की कामना करता है ॥२॥ जो गौऐं देवताओं के उत्पत्ति स्थान और सूर्य के प्रिय धाम स्वर्ग में जा सकती हैं, जिनके दूध से कूप भर जाता है, वे गौऐं इन्द्र के लिए तीनों सवनों में अपना दूध सोम में मिलाती हैं ॥ ३॥ हे इन्द्र ! तुम साधुओं के पालन करने वाले, गौओं के स्वामी और यज्ञ के पुत्र रूप हो। वह इन्द्र यज्ञ के अभीष्ट को जिस प्रकार समझ सकें, उसी प्रकार उन्हें पूजो ॥४ हे हर्यश्व ! तुम वेगवान् होकर इन्द्र को हमारे कुश पर उतार दो। हम उनकी स्तुति करने की कामना करते हैं ॥५॥

[५]

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न

धृष्ण्वर्चत ॥८
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥९
आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥१० ॥६

जब इन्द्र पास में स्थित सोम की सब ओर से इच्छा करते हैं, तब गौएं सोम में मिलाने के लिए दूध देती हैं ॥६॥ जब इन्द्र और मैं सूर्य मंडल में जावें, तब सूर्य के इक्कीस स्थानों में हम मधुर सोम रस पीकर मिलें ॥७॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र का पूजन करो। हे प्रियमेध के वंशजो ! जैसे पुरों को नष्ट करने वाले इन्द्र को पूजा जाता है, वैसे ही पूजो ॥ ८ ॥ रणभेरी भयंकर घोष कर रही है। गोधा शब्दवान् है, पीली ज्या चीत्कार करती है, अतः इन्द्र की स्तुति करो ॥९॥ जब श्वेत वर्ण वाली नदियाँ अत्यन्त बहती हैं, उस समय अत्यन्त गुण वाले सोम को इन्द्र के पीने के लिए यहाँ लाओ ॥१०॥ [६]

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥११
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥१२
यो व्यतींरफाणयत्सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१३
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥१४
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१५
आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् ।१६

६९ सूक्त

(ऋषि–प्रियमेधः । देवता–इन्द्रः, विश्वेदेवाः, वरुणः । छन्द–अनुष्टुप, उष्णिक्, गायत्री, पंक्तिः, बृहती)

प्रप्र वस्त्रिष्टुभमिषं मन्दद्वीरायेन्दवे । धिया वो मेधसातये पुरन्ध्या विवासति ॥१

नदं व ओदतीनां नदं योयुवतीनाम् । पतिं वो अघ्न्यानां धेनूनामिषुध्यसि

ता अस्य सूददोहसः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वा रोचने दिवः ॥३

अभि प्र गोपतिं गिरेन्द्रमर्च यथा विदे । सूनुं सत्यस्य सत्पतिम् ॥ ३

आ हरयः ससृज्रिरेऽरुषीरधि बर्हिषि । यत्राभि सन्नवामहे ॥५ ॥५

हे अध्वर्यो ! इन्द्र वीरों में साहस उत्पन्न करते हैं, उनके लिए अन्न संग्रहीत करो । यह प्रजा से युक्त कर्म के द्वारा यज्ञ का फल पाने के लिए तुम्हें समर्थ करते हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उपाओं को उत्पन्न करते हैं, वह अहिंसा-योग्य गौओं के स्वामी हैं । यजमान दूध देने वाली उन गौओं से उत्पन्न होने वाले रस की कामना करता है ॥२॥ जो गौऐं देवताओं के उत्पत्ति स्थान और सूर्य के प्रिय धाम स्वर्ग में जा सकती हैं, जिनके दूध से कूप भर जाता है, वे गौऐं इन्द्र के लिए तीनों सवनों में अपना दूध सोम में मिलाती हैं ॥ ३॥ हे इन्द्र ! तुम साधुओं के पालन करने वाले, गौओं के स्वामी और यज्ञ के पुत्र रूप हो । वह इन्द्र यज्ञ के अभीष्ट को जिस प्रकार समझ सकें, उसी प्रकार उन्हें पूजो ॥४ हे हर्यश्व ! तुम वेगवान् होकर इन्द्र को हमारे कुश पर उतार दो । हम उनकी स्तुति करने की कामना करते हैं ॥५॥

[४]

इन्द्राय गाव आशिरं दुदुह्रे वज्रिणे मधु । यत्सीमुपह्वरे विदत् ॥६

उद्यद् ब्रध्नस्य विष्टपं गृहमिन्द्रश्च गन्वहि ।
मध्वः पीत्वा सचेवहि त्रिः सप्त सख्युः पदे ॥७

अर्चत प्रार्चत प्रियमेधासो अर्चत । अर्चन्तु पुत्रका उत पुरं न

धृष्णवचंत ॥८
अव स्वराति गर्गरो गोधा परि सनिष्वणत् ।
पिङ्गा परि चनिष्कददिन्द्राय ब्रह्मोद्यतम् ॥९
आ यत्पतन्त्येन्यः सुदुघा अनपस्फुरः ।
अपस्फुरं गृभायत सोममिन्द्राय पातवे ॥१० ॥६

जब इन्द्र पास में स्थित सोम की सब ओर से इच्छा करते हैं, तब गौएं सोम में मिलाने के लिए दूध देती हैं ॥६॥ जब इन्द्र और मैं सूर्य मंडल में जायें, तब सूर्य के इक्कीस स्थानों में हम मधुर सोम रस पीकर मिलें ॥७॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र का पूजन करो। हे प्रियमेध के वंशजो ! जैसे पुरों को नष्ट करने वाले इन्द्र को पूजा जाता है, वैसे ही पूजो ॥ ८ ॥ रणभेरी भयंकर घोष कर रही है। गोधा शब्दवान् है, पीली ज्या चीत्कार उठी है, अतः इन्द्र की स्तुति करो ॥९॥ जब श्वेत वर्ण वाली नदियाँ अत्यन्त बहती हैं, उस समय अत्यन्त गुण वाले सोम को इन्द्र के पीने के लिए यहाँ लाओ ॥१०॥ [६]

अपादिन्द्रो अपादग्निर्विश्वे देवा अमत्सत ।
वरुण इदिह क्षयत्तमापो अभ्यनूषत वत्सं संशिश्वरीरिव ॥११
सुदेवो असि वरुण यस्य ते सप्त सिन्धवः ।
अनुक्षरन्ति काकुदं सूर्म्यं सुषिरामिव ॥१२
यो व्यर्तींरफाणयत् सुयुक्ताँ उप दाशुषे ।
तक्वो नेता तदिद्वपुरुपमा यो अमुच्यत ॥१३
अतीदु शक्र ओहत इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ।
भिनत्कनीन ओदनं पच्यमानं परो गिरा ॥१४
अर्भको न कुमारकोऽधि तिष्ठन्नवं रथम् ।
स पक्षन्महिषं मृगं पित्रे मात्रे विभुक्रतुम् ॥१५
आ तू सुशिप्र दम्पते रथं तिष्ठा हिरण्ययम् ।
अध द्युक्षं सचेवहि सहस्रपादमरुषं स्वस्तिगामनेहसम् । १६

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते ।
अर्थं चिदस्य सुधितं यदेतव आवर्तयन्ति दावने ॥१७
अनु प्रत्नस्यौकसः प्रियमेधास एषाम् ।
पूर्वामनु प्रयतिं वृक्तवर्हिषो हितप्रयस आशत ॥१८ ॥७

इन्द्र ने सोम पिया, अग्नि ने भी पिया, विश्वेदेवा भी पीकर तृप्त होगए। इस घर में वरुण रहें। सवत्सा गौऐं जैसे अपने वत्स के प्रति शब्द-वती होती हैं, वैसे ही उक्थ वरुण की स्तुति करते हैं ॥ ११॥ वरुण तुम श्रेष्ठ देवता हो, रश्मियाँ जैसे सूर्य के सामने जाती हैं, वैसे ही गंगा आदि सातों नदियाँ तुम्हारे तालु पर गिरती हैं ॥१२॥ जो इन्द्र रथ में युक्त अश्वों को यज-मान के पास छोड़ते हैं, जो सभी से मार्ग प्राप्त करते हैं, वे इन्द्र यज्ञ में जाते समय सब में प्रमुख होते हैं ॥१३॥ इन्द्र शत्रुओं को लाँघने में समर्थ हैं, वे सब वैरियों का उल्लंघन करते हैं और अपने शब्द द्वारा मेघ को विदीर्ण कर डालते हैं ॥१४॥ यह इन्द्र नवीन रथ पर प्रतिष्ठित होते हैं। यह बहुत से कर्म वाले इन्द्र मेघ को वर्षाकारक बनाते हैं ॥१५॥ हे रथाधिपति इन्द्र ! तुम सुन्दर हनु वाले हो, तुम अपने पवित्र एवं स्वर्णिम रथ पर आरूढ़ होओ तब हम दोनों भेंट करेंगे ॥१६॥ उन तेजस्वी इन्द्र की अन्न से सम्पन्न यजमान सेवा करते हैं, फिर धन मिलता है ॥ १७ ॥ उन इन्द्र के प्राचीन स्थान को प्रियमेध के वंशजों ने पाया और कुश बिछा कर हव्य को रखा ॥१८॥ (७)

७० सूक्त (आठवां अनुवाक)

(ऋषि-पुरुहन्मा। देवता-इन्द्रः। छन्द—बृहती, पंक्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

यो राजा चर्षणीनां याता रथेभिरध्रिगुः ।
विश्वासां तरुता पृतनानां ज्येष्ठो यो वृत्रहा गृणे ॥१
इन्द्रं तं शुम्भ पुरुहन्मन्नवसे यस्य द्विता विधर्तरि ।
हस्ताय वज्रः प्रति धायि दर्शतो महो दिवे न सूर्यः ॥२

नकिष्टं कर्मणा नशद्यश्चकार सदावृधम् ।
इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तमृभ्वसमधृष्टं धृष्ण्वोजसम् ॥२
अषाळ्हमुग्रं पृतनासु सासहिं यस्मिन्महीरुरुज्रयः ।
सं धेनवो जायमाने अनोनवुर्द्यावः क्षामो अनोनवुः ॥४
यद् द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमीरुत स्युः ।
न त्वा वज्रिन्त्सहस्रं सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी ॥५ ॥८

जो इन्द्र सब के स्वामी, सब सेनाओं के उद्धारक, सर्वत्र गमनशील, रथ-गामी, वृत्रहन्ता और ज्येष्ठ हैं, मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ अपनी रक्षा के लिए इन्द्र का पूजन करो। वे उग्र और उदार दोनों प्रकार के स्वभाव वाले हैं, उनके द्वारा धारण किया जाने वाला वज्र सूर्य के समान तेजस्वी है ॥२॥ जो यजमान पूज्य, प्रवृद्ध और यजनीय इन्द्र को अपने अनुकूल करते हैं, उनके अतिरिक्त अन्य व्यक्ति उन्हें नहीं घेर सकते ॥ ३ ॥ मैं उन शत्रुजेता, पराक्रमी इन्द्र की स्तुति करता हूँ। उनके प्रकट होते ही वेगवती गौओं ने तथा आकाश और पृथिवी ने भी उनकी स्तुति की थी ॥४॥ हे इन्द्र! सौ आकाश होकर भी तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकते, सौ पृथिवी भी तुम्हारा भार नहीं कर सकती और सौ सूर्य भी तुम्हें प्रकाश नहीं दे सकते। आकाश पृथिवी और जो कुछ इस लोक में उत्पन्न हुआ है वह सब मिलकर भी तुम्हारी समानता नहीं कर सकते ॥५॥ [८]

आ पप्राथ महिना वृष्ण्या वृषन्विश्वा शविष्ठ शवसा ।
अस्माँ अव मघवन्गोमति व्रजे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ॥६
न सीमदेव आपदिषं दीर्घायो मर्त्यः ।
एतग्वा चिद्य एतशा युयोजते हरी इन्द्रो युयोजते ॥७
तं वो महो महाय्यमिन्द्रं दानाय सक्षणिम् ।
यो गाधेषु य आरणेषु हव्यो वाजेष्वस्ति हव्यः । ८
उदू षु णो वसो महे मृशस्व शूर राधसे ।
उदू षु मह्यै मघवन्मघत्तय उदिन्द्र श्रवसे महे ॥९

हो। तुम हमारी कामना करने वाले हो, अधिक कामना करते हुए ऐसा करो ॥१२॥ हे सखाओ ! इन्द्र के लिये कर्म करो। इन्द्र शत्रुओं का भक्षण करने वाले हैं, उनका पतन कभी नहीं होता ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी हवि-दाता स्तोता स्तुति करते हैं। तुम उन स्तोताओं को अन्न प्रदान करते हो ॥१४ वह इन्द्र धनवान् है, वह इन्द्र हिंसक शत्रुओं से प्राप्त हुई गौओं और बछड़ों को हमारे पास उसी प्रकार लावें, जिस प्रकार बकरी का स्वामी बकरी को पकड़ कर लाता है ॥१५॥ [१०]

७१ सूक्त

(ऋषि–सुदीतिपुरुमीढौ तयोर्वान्यतरः । देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री बृहती)

त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि विश्वस्या अरातेः । उत द्विषो मर्त्यस्य ॥१
नहि मन्युः पौरुषेय ईशे हि वः प्रियजात । त्वमिदसि क्षपावान् ॥२
स नो विश्वेभिर्देवेभिरूर्जो नपाद्भद्रशोचे । रयिं देहि विश्ववारम् ॥३
न तमग्ने अरातयो मर्तं युवन्त रायः । यं त्रायसे दाश्वांसम् ॥४
यं त्वं विप्र मेधसातावग्ने हिनोषि धनाय । स तवोती गोषु गन्ता ॥५।११

हे अग्ने ! महानियों द्वारा प्राप्त धन से तुम हमारा पालन करो और शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ॥१॥ हे अग्ने ! तुम रात्रि में अत्यन्त प्रकाशमान होते हो। मनुष्यों का क्रोध तुम्हारे कार्य में बाधक नहीं हो सकता ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो, सब देवताओं के सहित हमको वरण करने योग्य धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस हविदाता की रक्षा करते हो, उसको अदानशील व्यक्ति हानि नहीं पहुँचा सकते ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस यजमान को धन-लाभ के लिये यज्ञ कर्म में प्रेरित करते हो, वह गौओं से सम्पन्न होता है ॥५॥ [११]

त्वं रयिं पुरुवीरमग्ने दाशुषे मर्ताय । प्र णो नय वस्यो अच्छ ॥६
उरुष्या णो मा परा दा अघायते जातवेदः । दुराध्ये मर्ताय ॥७
अग्ने माकिष्टे देवस्य रातिमदेवो युयोत । त्वमीशिषे वसूनाम् ॥८

स नो अग्न उप नाश्वूर्जो नपान्माहिनस्य । सखे वसो जरितृभ्यः ॥६
अच्छा नः शीरशोचिषं गिरो यन्तु दर्शतम् ।
अच्छा यज्ञासो नमसा पुरूवसुं पुरुप्रशस्तमूतये ॥१० ॥१२

हे अग्ने ! तुम हविदाता के लिए बहुत-से वीरों से सम्पन्न धन दो और निवास के योग्य धन में हमें प्रतिष्ठित करो ॥६॥ हे अग्ने ! हमको हिंसित करने वाले शत्रुओं के हाथ में मत सौंपो । तुम हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान हो । देवताओं से विमुख कोई भी व्यक्ति तुम्हें धन देने से नहीं रोक सकता ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम हम स्तोताओं को महान् ऐश्वर्य दो, क्योंकि तुम सुन्दर वासदाता हो ॥६॥ हमारी स्तुतियाँ अग्नि की ओर गमन करें । यज्ञ की रक्षा के लिये सब हवियों से युक्त होकर यह स्तोत्र अग्नि की ओर गमन करने वाले हों ॥१०॥ [१२]

अग्नि सूनुं सहसो जातवेदसं दानाय वार्याणाम् ।
द्विता यो भूदमृतो मर्त्येष्वा होता मन्द्रतमो विशि ॥ ११
अग्नि वो देवयज्ययाग्नि प्रयत्यध्वरे ।
ाग्नि धीषु प्रथममग्निमर्वत्यग्नि क्षैत्राय साधसे ॥१२
ाग्निरिषां सख्ये ददातु न ईशे यो वार्याणाम् ।
ाग्नि तोके तनये शश्वदीमहे वसुं सन्तं तनूपाम् ॥१३
ाग्निमीळिष्वावसे गाथाभिः शीरशोचिषम् ।
ाग्नि राये पुरुमीळ्ह श्रुतं नरोऽग्नि सुदीतये छर्दिः ॥१४
ाग्नि द्वेषो योतवै नो गृणीमस्य न शं योश्च दातवे ।
विश्वासु विक्ष्ववितेव हव्यो भुवद्वस्तुर्ऋषूणाम् ॥१५ ॥१३

सभी स्तुतियाँ अग्नि की ओर गमन करें । वे अग्नि मनुष्यों में रहते हुए भी अमर हैं । यह यज्ञ के सम्पादन करने वाले तथा शक्ति प्रदान करने वाले हैं ॥११॥ हे यजमानो ! मैं देव पूजन के लिये अग्नि की स्तुति करता हूँ । यज्ञ के आरम्भ-काल में, अनुष्ठान के समय, बंधुत्व प्राप्ति और क्षेत्र-प्राप्ति पर अग्नि का पूजन करता हूँ ॥१२॥ हम अग्नि के मित्र हैं और अग्नि अपने धन

के स्वामी हैं, वे हमको अन्न प्रदान करें । हम अपने पुत्र और पौत्र के लिए भी यथेष्ट धन माँगते हैं ॥ १३ ॥ रक्षा की कामना करते हुए तुम अग्नि की स्तुति करो । उनकी ज्वाला भस्म करने वाली है । सभी यजमान उनकी स्तुति करते हैं, अतः तुम भी अग्नि की स्तुति करो और उनसे वासप्रद घर भी माँगो ॥१४॥ हम शत्रुओं से मुक्ति पाने के लिए अग्नि की प्रार्थना करते हैं, अग्नि राजा के समान तथा वास दाता हैं, उनसे सुख और अभय पाने के लिए उनका आह्वान करते हैं ॥१५॥ [१३]

७२ सूक्त

(ऋषि—हर्यतः प्रगाथः । देवता—अग्निर्हवींषि वा । छन्द—गायत्री)

हविष्कृणुध्वमा गमदध्वर्युर्वनते पुनः । विद्वाँ अस्य प्रशासनम् ॥१
नि तिग्ममभ्यंशुं सीदद्धोता मनावधि । जुषाणो अस्य सख्यम् ॥२
अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया । गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥३
जाम्यतीतपे धनुर्वयोधा अरुहद्वनम् । दृषदं जिह्वयावधीत् ॥४
चरन्वत्सो रुशन्निह निदातारं न विन्दते । वेति स्तोतव अम्ब्यम् ॥५॥१४

हे अध्वर्यो ! तुम हवि लाओ, अग्नि प्रकट होगये । यह अध्वर्यु यज्ञ में हवि देना जानते हैं ॥१॥ इस यजमान को अग्नि से मित्रता है, क्योंकि वे तीक्ष्ण ज्वालाओं वाले अग्नि के पास बैठते हैं ॥२॥ यजमान की अभीष्ट सिद्धि के लिए ये अध्वर्यु अग्नि को सामने स्थापित करते हैं और स्तुति द्वारा अग्नि को ग्रहण करते हैं ॥३॥ अन्न देने वाले अग्नि वन को लाँघते हैं, वे अन्तरिक्ष का उल्लंघन करते और मेघ का हनन करते हैं । वे जल पर भी आरूढ़ होते हैं ॥ ४॥ वे उज्ज्वल वर्ण वाले अग्नि बछड़े के समान चंचल हैं । वे द्वेषी को प्राप्त नहीं होते । स्तुति करने वाले के सामीप्य की इच्छा करते हैं ॥५॥ [१४]

उतो न्वस्य यन्महदश्वावद्योजनं बृहत् । दामा रथस्य ददृशे ॥६
दुहन्ति सप्तैकामुप द्वा पञ्च सृजतः । तीर्थे सिन्धोरधि स्वरे ॥७
आ दशभिर्विवस्वत इन्द्रः कोशमचुच्यवीत् । खेदया त्रिवृता दिवः ॥८
परि त्रिधातुरध्वरं जूर्णिरेति नवीयसी । मध्वा होतारो अञ्जते ॥९

सिञ्चन्ति नमसावतमुच्चाचक्रं परिज्मानम् ।
नीचीनवारमक्षितम् ॥१०॥१५

इन अग्नि को जोड़ने वाली अश्व सम्पन्न, महिमामय रथ की रस्सी हैं ॥६॥ सिन्धु-तट पर सात ऋत्विज दोहन करते हैं। इनमें दो प्रस्थाता अन्य पाँच को ग्रहण करते हैं ॥७॥ यजमान की दश उंगलियों से पूजित इन्द्र ने मेघ से तीन किरणों के द्वारा जल-वर्षा की ॥ ८ ॥ वेगवान् तथा तीन वर्ण वाले अग्नि अपनी शिखा सहित यज्ञ में गमन करते हैं। अध्वर्यु उनको मधु से पूजते हैं ॥९॥ चक्र से युक्त, प्रकाश से सम्पन्न, अक्षय और रक्षक अग्नि पर झुके हुए अध्वर्यु घृत सींचते हैं ॥१०॥ [१५]

अभ्यारमिदद्रयो निषिक्तं पुष्करे मधु । अवतस्य विसर्जने ॥११
गाव उपावतावतं मही यज्ञस्य रपसुदा । उभा कर्णा हिरण्यया ॥१२
आ सुते सिञ्चत श्रियं रोदस्योरभिश्रियम् । रसा दधीत वृषभम् ॥१३
ते जानत स्वमोक्यं सं वत्सासो न मातृभिः । मिथो नसन्त जामिभिः ।१४
उप स्रक्वेषु बप्सतः कृण्वते धरुणं दिवि । इन्द्रे अग्ना नमः स्व ।१५।१६

जब अध्वर्यु अग्नि का विसर्जन करते हैं तब विशाल-पात्र में मधु सींचते हैं ।११॥ हे गौओ ! मन्त्रों द्वारा दूध की आवश्यकता होने पर तुम अग्नि का सामीप्य प्राप्त करो। उनके दोनों कान स्वर्ण और रजत के हैं ॥ १२ हे अध्वर्युओ ! आकाश पृथिवी के आश्रित, मिश्रण के योग्य दूध को सींचो, फिर बकरी के दूध में अग्नि की स्थापना करो ॥१३॥ गौओं ने अपने आश्रय-दाता अग्नि को जान लिया, शिशुओं के अपनी माता से मिलने के समान ही गौऐं अपने बंधुओं से मिलती हैं ॥ १४ ॥ शिखा के द्वारा भक्षण किया हुआ अग्नि का अन्न इन्द्र और अग्नि दोनों को पुष्ट करता है। वह अन्न अंतरिक्ष का भी पालन करता है। अतः इन्द्राग्नि को अन्न अर्पित करो ॥१५॥ (१६)

अधुक्षत्पिप्युषीमिषमूर्जं सप्तपदीमरिः । सूर्यस्य सप्त रश्मिभिः ॥१६
सोमस्य मित्रावरुणोदिता सूर आ ददे । तदातुरस्य भेषजम् ॥१७

उतो न्वस्य यत्पदं हर्यतस्य निधान्यम् । परि द्यां जिह्वयातनत् ॥१८॥१७

गमनशील वायु और चंचला वाणी से सूर्य की सात रश्मियों द्वारा घेरे हुए अन्न-रस को अध्वर्यु प्राप्त करता है ॥ १६ ॥ मित्रावरुण सूर्योदय के समय सोम को ग्रहण करते हैं, वे हमारे लिए हितकारी भेषज के समान हैं ॥१७॥ हर्यत ऋषि का स्थान यज्ञ के लिए उपयुक्त है, अपनी ज्वालाओं के द्वारा अग्नि यहीं से स्वर्ग को व्याप्त करते हैं ॥१८॥ [१७]

७३ सूक्त

(ऋषि—गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । देवता—अश्विनौ । छन्द—गायत्री)

उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१
निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥२
उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥३
कुह स्थः कुह जग्मथुः कुह श्येनेव पेतथुः । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥४
यदद्य कर्हि कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् । अन्ति षद्भूतु
वामवः ॥५ । १८

हे अश्विनीकुमारो ! तुम यज्ञ की कामना वाले के निमित्त उदय को प्राप्त होओ । तुम्हारे रक्षा-साधन हमारे पास टिकें, इसलिए तुम अपने रथ को जोड़ो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्यन्त वेग वाले रथ के द्वारा आगमन करो तुम्हारे रक्षा-सामर्थ्य हमारे निकटवर्ती हों ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्रि के निमित्त अग्नि के दहन स्वभाव को हिम के द्वारा रोको । तुम्हारी रक्षा-शक्ति हमारे पास आवे ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम कहाँ हो ? बाज के समान कहाँ उतरते हो ? तुम्हारी रक्षा-शक्तियाँ हमारे पास रहें ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम हमारे आह्वान को कब और कहाँ सुनोगे ? तुम्हारी रक्षाएं हमारे निकट रहें ॥५॥ (१८)

अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥६
अवन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७

वरेथे अग्निमातपो वदते वल्गवत्रये । अन्ति षद्भुतु वामवः ॥८
प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९
इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ।१०।१९

मैं अत्यन्त आह्वानीय अश्विनीकुमारों के पास जाता हूँ । उनके बांधवों के भी पास जाता हूँ । हे अश्विद्वय ! तुम्हारी रक्षाऐं हमारे पास रहें ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अत्रि की रक्षा के लिए घर बनाया था, तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥७॥ हे अश्विनीकुमारो ! अत्रि तुम्हारे लिए सुन्दर स्तोत्र करने वाले हैं, उनको अग्नि के दहन स्वभाव से रक्षित करो। तुम्हारी रक्षाऐं हमको प्राप्त हों ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारी स्तुति के प्रभाव से महर्षि सप्तवध्रि ने अग्नि ज्वाला को मंजूषा से निकाल कर फिर उसी में शयन करा दिया था । तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम धनवान् और वृष्टिप्रद हो, यहाँ आकर हमारे स्तोत्र सुनो । तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१०॥ (१९)

किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥११
समानं वां सजात्यं समानो बन्धुरश्विना । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१२
यो वां रजांस्यश्विना रथो वियाति रोदसी । अन्ति षदभूतु वामवः ।१३
आ नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रैरुप गच्छतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१४
मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् । अन्ति षद्भूतु वामवः ।१५
अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिॠतावरी । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६
अश्विना सु विचाकशद्वृक्षं परशुमाँ इव । अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१७
पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१८ ॥२०

हे अश्विद्वय ! तुम्हें अत्यन्त वृद्धावस्था प्राप्त व्यक्ति के समान ही बारम्बार क्यों आहूत करना होता है ? तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों समान जन्मा हो । तुम्हारे बन्धु भी समान हैं । तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१२॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा रथ आकाश-पृथिवी तथा अन्य सभी लोकों में विचरण करता है । तुम्हारी रक्षाऐं हमारे पास

हें ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय ! असंख्य गौ-अश्वादि के सहित हमारे पास आगमन करो। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ १४॥ हे अश्विद्वय ! इन असीम गौ और अश्वों के दान को रोकना मत । तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१५॥ हे अश्विनीकुमारो ! उषा उज्वर्ण वर्ण वाली, यज्ञ से सम्पन्न और ज्योति को प्रकट करने वाली है। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥ १६ ॥ जैसे कुल्हाड़े वाला पुरुष वृक्ष को काटने में समर्थ होता है, वैसे ही ज्योतिर्मान् आदित्य अंधकार को नष्ट करते हैं। मैं अश्विनीकुमारों का आह्वान करता हूँ, उनकी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१७॥ हे सप्तवध्रि ! तुम कृष्ण मंजूषा में थे । फिर तुमने उसे पुर के समान भस्म कर दिया। तुम्हारी रक्षाऐं हमें प्राप्त हों ॥१८॥ (२०)

७४ सूक्त

(ऋषि—गोपवन आत्रेयः । देवता अग्निः, श्रुतर्वण आर्चास्य दानस्तुतिः । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री)

विशोविशो वो अतिथिं वाजयन्तः पुरुप्रियम् ।
अग्निं वो दुर्यं वचः स्तुषे शूषस्य मन्मभिः ॥१
यं जनासो हविष्मन्तो मित्रं न सर्पिरासुतिम् । प्रशंसन्ति प्रशस्तिभिः ।२
पन्यांसं जातवेदसं यो देवतात्युद्यता । हव्यान्यैरयद्दिवि ॥३
आगन्म वृत्रहन्तमं ज्येष्ठमग्निमानवम् ।
यस्य श्रुतर्वा बृहन्नार्क्षो अनीक एधते ॥४
अमृतं जातवेदसं तिरस्तमांसि दर्शतम् । घृताहवनमीड्यम् ॥५ । २१

हे ऋत्विजो ! यजमानो ! तुम अन्न की कामना से प्राणीमात्र के अतिथि और अनेकों के प्रिय अग्नि का स्तुतियों द्वारा पूजन करो। मैं तुम्हारे मङ्गल के लिए श्रेष्ठ स्तोत्र और गंभीर वाणी का प्रयोग करता हूँ ॥ १ ॥ जिन अग्नि के निमित्त घृत की आहुति दी जाती है और जिन्हें हविर्दान और स्तुतियों से प्रसन्न किया जाता है ॥२॥ जो जातवेदा अग्नि स्तोता की प्रशंसा करते हुए यज्ञ में प्रदत्त हव्य को स्वर्ग में पहुँचाते हैं ॥ ३ ॥ जिन अग्नि की ज्वालाओं ने महान् श्रुतर्वा और ऋक्ष पुत्र की वृद्धि की, वे मनुष्यों के हितैषी

...पियों को नष्ट करने वाले हैं । मैं उन्हीं अग्नि की शरण को प्राप्त हूँ ॥४
स्तुति के योग्य, जातधन और अविनाशी हैं । उनको घृत की आहुतियाँ
(२१)
...ती हैं । वह अन्धकार का नाश करते हैं ॥५॥

...धो यं जना इमे ग्निं हव्येभिरीळते । जुह्वानासो यतस्रुचः ॥६
ते नव्यसी मतिरग्ने अधाय्यस्मदा ।
...द्र सुजात सुक्रतोऽमूर दस्मातिथे ॥ ७
...ा ते अग्ने शन्तमा चनिष्ठा भवतु प्रिया । तया वर्धस्व सुष्टुतः ॥८
...ा द्युम्नैर्द्युम्निनी बृहदुपोप श्रवसि श्रवः । दधीत वृत्रतूर्ये ॥९
अश्वमिद्गां रथप्रां त्वेषमिन्द्रं न सत्पतिम् ।
यस्य श्रवांसि तूर्वथ पन्यंपन्यं च कृष्टयः ॥१० ॥२२

यज्ञ-काम्य पुरुष अपने यज्ञ में स्रुक ग्रहण करके हवि देते हुए अग्नि की स्तुति करते हैं ॥६॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर जन्म वाले, दर्शनीय एवं मेधावी हो हम तुम्हारी पूजा करते हैं ॥७॥ हे अग्ने ! हमारी यह स्तुति तुमको सुख देने वाली; प्रिय तथा अन्न से सम्पन्न हो । तुम उसके द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ॥८॥ हे अग्ने ! यह यथेष्ट अन्न वाली स्तुति रणक्षेत्र में अन्न पर अन्न एकत्र करने वाली हो ॥९॥ जो अग्नि अपने वल द्वारा शत्रु के अन्न-धन को नष्ट कर देते हैं, उन रथादि से सम्पन्न करने वाले अग्नि का वेगवान् अश्व और सत्य के स्वामी इन्द्र के समान पूजन किया जाता है ॥१०॥ (२२)

यं त्वा गोपवनो गिरा चनिष्ठदग्ने अङ्गिरः । स पावक श्रुधी हवम् ॥११
यं त्वा जनास ईळते सबाधो वाजसातये । स बोधि वृत्रतूर्ये ॥१२
अहं हुवान आर्क्षे श्रुतर्वणि मदच्युति ।
शर्धांसीव स्तुकाविनां मृक्षा शीर्षा चतुर्णाम् ॥१३
मां चत्वार आशवः शविष्ठस्य द्रवित्नवः ।
सुरथासो अभि प्रयो वक्षन्वयो न तुग्र्यम् ॥१४
सत्यमित्त्वा महेनदि परुष्ण्यव देदिशम् ।
नेमापो अश्वदातरः शविष्ठादस्ति मर्त्यः ॥१५ ॥२३

हे अग्ने ! तुमने ऋषि गोपवन की स्तुति सुन कर अन्न प्रदान किया था। तुम शुद्ध करने वाले और सर्वत्र गमनशील हो। गोपवन की स्तुत को श्रवण करो ॥११॥ हे अग्ने ! बाधा प्राप्त पुरुष अन्न की कामना से तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम कर्म क्षेत्र में चैतन्य होओ ॥ १२ ॥ ऋक्षपुत्र श्रुतर्वा शत्रु के अहंकार का खंडन करने वाले हैं, उनके द्वारा बुलाए जाने पर, उनके दिये चार घोड़ों के रोम वाले शिरों को मैं अपने हाथ से धोरहा हूँ ॥ १३ ॥ उन श्रुतर्वा के चारों श्रेष्ठ अश्व रथ में संयुक्त होकर अश्विनीकुमारों की चार नौकाओं द्वारा तुग्र-पुत्र भुज्यु का वहन करने के समान अन्न वहन करते हैं ॥ १४ ॥ हे परुष्णी नदी, हे जल ! मैं यथार्थ ही कहता हूँ कि इन महाबली श्रुतर्वा से अधिक अश्व-दान कोई भी नहीं कर सकता ॥१५॥ (२३)

७५ सूक्त

(ऋषि–विरूपः। देवता–अग्निः। छन्द–गायत्री)

युक्ष्वा हि देवहूतमाँ अश्वाँ अग्ने रथीरिव। नि होता पूर्व्यः सदः ॥१
उत नो देव देवाँ अच्छा वोचो विदुष्टरः। श्रद्विश्वा वार्या कृधि ॥२
त्वं ह यद्यविष्ठ्य सहसः सूनवाहुत। ऋतावा यज्ञियो भुवः ॥३
अयमग्निः सहस्रिणो वाजस्य शतिनस्पतिः। मूर्धा कवी रयीणाम् ॥४
तं नेमिमृभवो यथा नमस्व सहूतिभिः। नेदीयो यज्ञमङ्गिरः ॥५ ॥२४

हे अग्ने ! देवताओं को लाने के लिए वेगवान् अश्वों को सारथि के समान योजित करो। तुम होता हो अतः मुख्य रूप से विराजमान होओ ॥१॥ हे अग्ने ! देवताओं के सामने हमें विद्वानों में श्रेष्ठ बताते हुए तुम ग्रहणीय हव्य को उनके पास पहुँचाओ ॥२॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! तुम सत्य से सम्पन्न और अनुष्ठान के योग्य हो ॥ ३ ॥ यह अग्नि शिरा वाले, मेधावी, धनों के स्वामी और सौ तथा सहस्र प्रकार के अन्नों के ईश्वर हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम गमनशील हो। ऋभुगण द्वारा रथ नेमि को लाने के समान आहूत देवताओं सहित यज्ञ को ले आओ ॥५॥ (२४)

तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूप नित्यया। वृष्णे चोदस्व

कमु ष्विदस्य सेनयाग्नेरपाकचक्षसः । पणिं गोषु स्तरामहे ॥७
मा नो देवानां विशः प्रस्नातीरिवोस्राः । कृशं न हासुरघ्न्याः ॥८
मा नः समस्य दूढ्यः परिद्वेषसो अंहतिः । ऊर्मिर्न नावमा वधीत् ॥९
नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देव कृष्टयः । अमैरमित्रमर्दय ॥१० ॥२५

हे ऋषि ! जो अग्नि कामनाओं के वर्षक और वाणी द्वारा संतुष्ट होने वाले हैं, उनकी स्तुति करो ॥६॥ इन विशाल नेत्र वाले अग्नि की ज्वाला से हम गायों की प्राप्ति के लिए किस पणि को मारेंगे ? ॥७॥ पयस्विनी गौओं को कोई नहीं त्यागता, गौऐं अपने बछड़ों को नहीं त्यागतीं, वैसे ही अग्नि भी हमारा त्याग न करें, क्योंकि हम देवताओं के सेवक हैं ॥ ८ ॥ समुद्र की लहरें नौका को रोकती हैं, उस प्रकार शत्रुओं की कुबुद्धि हमें रोकने वाली न हो ॥९ हे अग्ने ! तुम अपने बल से शत्रुओं को नष्ट करो । तुम्हारे बल को पाने के लिए तुम्हें नमस्कार करते हैं ॥१०॥ (२५)

कुवित्सु नो गविष्टयेऽग्ने संवेषिषो रयिम् । उरुकृदुरु णस्कृधि ॥११
मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्ग्भारभृद्यथा । संवर्गं सं रयिं जय ॥१२
अन्यमस्मद्भिया इयमग्ने सिषक्तु दुच्छुना । वर्धा नो अमवच्छवः ॥१३
यस्याजुषन्नमस्विनः शमीमदुर्मखस्य वा । तं घेदग्निर्वृधावति ॥१४
परस्या अधि संवतोऽवराँ अभ्या तर यत्राहमस्मि ताँ अव ॥१५
विद्मा हि ते पुरा वयमग्ने पितुर्यथावसः । अधा ते सुम्नमीमहे ॥१६॥२६

हे अग्ने ! गौऐं प्राप्त करने के लिये अभीष्ट धन प्रदान करो । हे समृद्ध अग्ने ! हमको ऐश्वर्यवान् बनाओ ॥११॥ हे अग्ने ! शत्रुओं द्वारा धन नष्ट हो रहा है, हमारी समृद्धि के लिए उस पर अधिकार करो । हमको इस युद्ध में त्याग मत देना ॥१२॥ हे अग्ने ! स्तुति न करने वालों के लिए ही विघ्न उपस्थित हों । तुम हमारे बल वाले वेग को बढ़ाओ ॥ १३ ॥ जो पुरुष यज्ञादि कर्मों में अग्नि की नमस्कारों द्वारा पूजा करता है, अग्नि उसके पास ही गमन करते हैं ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! हमारी सेनाओं को शत्रु-सेना से पृथक करो । मैं जिन सेनाओं के मध्य हूँ, उनकी रक्षा करो ॥१५॥ हे अग्ने ! प्राचीन के समान

। तुम्हारे रक्षा साधनों को जानते हैं, तुम रक्षक हो। हम तुमसे सुख माँगते ॥१६॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(२६)

७६ सूक्त

(ऋषि-कुरुसुतिः काण्वः । देवता-इन्द्रः । छन्द-गायत्री)

मं नु मायिनं हुव इन्द्रमीशानमोजसा । मरुत्वन्तं न वृञ्जसे ॥१
यमिन्द्रो मरुत्सखा वि वृत्रस्याभिनच्छिरः । वज्रेण शतपर्वणा ॥२
ावृधानो मरुत्सखेन्द्रो वि वृत्रमैरयत् । सृजन्त्समुद्रिया अपः ॥३
यं ह येन वा इदं स्वर्मरुत्वता जितम् । इन्द्रेण सोमपीतये ॥४
रुत्वन्तमृजीषिणमोजस्वन्तं विरप्शिनम् । इन्द्रं गीर्भिर्हवामहे ॥५
न्द्रं प्रत्नेन मन्मना मरुत्वन्तं हवामहे । अस्य सोमस्य पीतये ॥६ ॥२७

शत्रु को मारने के लिये इन्द्र को आहूत करता हूँ, वे मरुत्वान् अपने
ो बल से सब के ईश्वर हैं ॥१॥ मरुद्गण को साथ लेकर इन्हीं इन्द्र ने अपने
ौ पर्वों वाले वज्र से वृत्र का सिर पृथक् किया ॥२॥ इन्द्र ने मरुद्गण की
हायता से वृत्र को चीर डाला और उन्होंने अन्तरिक्ष में जल प्रकट किया ॥३
जन इन्द्र ने मरुद्गण सहित सोम पीने के लिए स्वर्ग पर अधिकार किया,
ह यही हैं ॥४॥ मरुत्वान् इन्द्र सोम-सम्पन्न, ओज-सम्पन्न और महान् हैं।
म स्तुति करते हुए आहूत करते हैं ॥५॥ हम मरुत्वान् इन्द्र को सोम पीने के
लिये प्राचीन स्तुतियों के द्वारा आहूत करते हैं ॥६॥　　　　　　　　　(३०)

मरुत्वाँ इन्द्र मीढ्वः पिबा सोमं शतक्रतो । अस्मिन्यज्ञे पुरुष्टुत ॥७
तुभ्येदिन्द्र मरुत्वते सुताः सोमासो अद्रिवः । हृदा हूयन्त उक्थिनः ॥८
पिबेदिन्द्र मरुत्सखा सुतं सोमं दिविष्टिषु । वज्रं शिशान ओजसा ॥९
उत्तिष्ठन्नोजसा सह पीत्वी शिप्रे अवेपयः । सोममिन्द्र चमू सुतम् ॥१०
अनु त्वा रोदसी उभे क्रक्षमाणमकृपेताम् । इन्द्र यद्दस्युहाभवः ॥११
वाचमष्टापदीमहं नवस्रक्तिमृतस्पृशम् । इन्द्रात् परि तन्वं ममे ॥१२॥२७

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा बुलाए गए, फलों की वर्षा करने वाले

और सैकड़ों कर्मों वाले हो। तुम मरुद्गण सहित इस यज्ञ में आकर सोम पियो ॥७॥ हे वज्रिन्! इस सोम को तुम्हारे और मरुद्गण के लिये शोधित किया है। फिर यह उक्थों से स्तुति करने वाले विद्वान् श्रद्धा सहित तुम्हें आहूत करते हैं ॥८॥ हे मरुद्गण के सखा इन्द्र! तुम इस स्वर्गदायक यज्ञ में सोम पान करो और अपने बल से वज्र को तीक्ष्ण करो ॥९॥ हे इन्द्र! सोम-पान करते हुए तुम बल सहित खड़े होकर अपनी ठोड़ी को कम्पित करो ॥१०॥ हे इन्द्र! तुम शत्रुओं का वध करने वाले हो। जब तुम राक्षसों को मारते हो, तब आकाश-पृथिवी दोनों तुम्हारी रक्षा करते हैं ॥ ११ ॥ चार दिशाओं, चार -कोणों और आदित्य सहित यश को स्पर्श करने वाला स्तोत्र भी इन्द्र से न्यून है। इन्द्र के लिये मैं उसी स्तोत्र को करता हूँ ॥१२॥ (२८)

७७ सूक्त

(ऋषि-कुरुसुतिः काण्वः। देवता-इन्द्रः। छन्द-गायत्री, बृहती, पंक्तिः)

जज्ञानो नु शतक्रतुर्वि पृच्छदिति मारतम्। क उग्राः के ह शृण्विरे ॥१
आदीं शवस्यब्रवीदौर्णवाभमहीशुवम्। ते पुत्र सन्तु निष्टुरः ॥२
समित्तान्वृत्रहाखिदत्खे अराँ इव खेदया। प्रवृद्धो दस्युहाभवत् ॥३
एकया प्रतिधापिवत्साकं सरांसि त्रिंशतम्। इन्द्रः सोमस्य काणुका ॥४
अभि गन्धर्वमतृणादबुध्नेषु रजःस्वा। इन्द्रो ब्रह्मभ्य इद्वृधे ॥५ ।२९

उत्पन्न होते ही अनेक कर्म वाले इन्द्र ने अपनी माता से पूछा कि 'कौन प्रसिद्ध और कौन पराक्रमी है?' ।१। माता ने उत्तर दिया कि-'ऊर्णनाभ, अहीशुव आदि कितने ही हैं, उन्हें पार लगाना चाहिये' ॥२॥ वृत्र हन्ता इन्द्र ने अरों के समान रस्सी से एक साथ ही उन्हें खींच लिया और राक्षसों को मार कर वृद्धि को प्राप्त हुये ॥३॥ इन्हीं इन्द्र ने सोम-रस से भरे हुए तीस पात्रों को एक साथ ही पी लिया ॥ ४ ॥ ब्राह्मणों को बढ़ाने के लिये इन्द्र ने अन्तरिक्ष में मेघ को चीर डाला ॥५॥ (२९)

निराविध्यद् गिरिभ्य आ धारयत्पक्वमोदनम्। इन्द्रो बुन्दं स्वाततम् ॥६
शतब्रध्न इषुस्तव सहस्रपर्ण एक इत्। यमिन्द्र चकृषे युजम् ॥७

अग्निमीळेन्यं कविं घृतपृष्ठं सपर्यत । वेतु मे शृणवद्धवम् ॥ ५
अग्निं घृतेन वावृधुः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणिम् ।
स्वाधीभिर्वचस्युभिः ॥ ६ । ६

हे मनुष्यो ! अविनाशी गुण वाले अग्नि को स्तोत्र द्वारा चैतन्य करो। प्रज्वलित होने पर ये दिव्य पदार्थों के धारण करने वाले होते हैं। ये हमारे लिये हव्य वहन करते हैं ॥ १ ॥ प्रकाशमान्, अविनाशी, मनुष्यों में आराधन करने के योग्य अग्नि को साधकगण यज्ञ स्थान में स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ अनेक स्तुति करने वाले साधक घृत युक्त स्रुक सहित देवताओं को हवियाँ पहुँचाने के निमित्त प्रकाशमान अग्नि का स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि अरणियों के मंथन से आविर्भूत होते हैं। वे अपने प्रकाश से अँधेरे को दूर करते हैं तथा यज्ञ में अनिष्ट करने वाले राक्षसों का नाश करते हुए प्रदीप्त होते हैं। किरण, जल और प्रकाश अग्नि के द्वारा ही प्रकट हुए हैं ॥ ४ ॥ हे साधको ! उन मेधावी तथा आराधन करने के योग्य अग्निदेव का पूजन करो। वे घृत की आहुति से प्रदीप्त होते हुए ऊँचे उठते हैं। वे अग्नि हमारे स्तुति वचनों को श्रवण करें ॥ ५ ॥ घृत तथा स्तोत्रों द्वारा ऋत्विग्गण स्तुतियों की कामना करने वाले, सब के द्रष्टा अग्नि को संवर्द्धित करें ॥ ६ ॥ [६]

१५ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-धरुण आङ्गिरसः । देवता-अग्निः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

प्र वेधसे कवये वेद्याय गिरं भरे यशसे पूर्व्याय ।
घृतप्रसत्तो असुरः सुशेवो रायो धर्ता धरुणो वस्वो अग्निः ॥ १
ऋतेन ऋतं धरुणं धारयन्त यज्ञस्य शाके परमे व्योमन् ।
दिवो धर्मन्धरुणे सेदुषो नॄञ्जातैरजातां अभि ये ननक्षुः ॥ २
अंहोयुवस्तन्वस्तन्वते वि वयो महद्दुष्टरं पूर्व्याय ।
स संवतो नवजातस्तुतुर्यात्सिहं न क्रुद्धमभितः परि ष्ठुः ॥ ३

मातेव यद्भरसे पप्रथानो जनञ्जनं धायसे चक्षसे च ।
वयोवयो जरसे यद्दधानः परि त्मना विषुरूपो जिगासि ॥ ४
वाजो नु ते शवसस्पात्वन्तमुरुं दोघं धरुणं देव रायः ।
पदं न तायुर्गुहा दधानो महो राये चितयन्नत्रिमस्पः ॥ ५ । ७

घृत रूप हवि से अग्नि प्रसन्न होते हैं । वे अत्यन्त बलशाली, कल्याण रूप, धनों के स्वामी, निवासप्रद, हवियों के वहन करने वाले, स्तुतियों के पात्र, उज्वलदर्शी, श्रेष्ठ एवं तेजस्वी हैं । उन अग्निदेव के निमित्त हम स्तोत्र रचते हैं ॥ १ ॥ जो यजमान आकाश के धारण करने वाले, यज्ञस्थल में स्थापित होने वाले, नेता रूप देवगण को ऋत्विकों द्वारा आहूत करते हैं, वे यजमान यज्ञ के धारण करने वाले सत्य स्वरूप अग्नि को यज्ञस्थान में श्रेष्ठपद पर स्तुति द्वारा स्थापित करते हैं ॥ २ ॥ जो यजमान दैत्यों द्वारा दुष्प्राप्य हव्य अग्नि के लिए देते हैं, वे यजमान पवित्र होते हैं । नवोत्पन्न अग्नि क्रोधित सिंह के समान शत्रुओं को भगावें । जो शत्रु मेरे चारों ओर वर्तमान हैं, वे मुझसे दूर चले जांय ॥ ३ ॥ अग्नि सर्वत्र प्रसिद्ध हैं । वे प्राणीमात्र को माता के समान पावन करते हैं । उनकी रक्षा तथा दर्शन के लिए सभी उनकी स्तुति करते हैं । जब वे धारण करने में समर्थ होते हैं तब सब अन्नों को जीर्ण करते हैं । वे हर प्रकार के बल को पुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो । कामनाओं की पूर्ति करने वाले तथा धन के धारण करने वाले हविरन्न तुम्हारे बल को पुष्ट करें । जैसे कोई अपहृत धन को छिपा कर उसकी रक्षा करता है, वैसे ही तुम प्रचुर परिमाण में धन प्राप्त कराने के लिए सुन्दर मार्ग दिखाओ ॥ ५ ॥　　[७]

१६ सूक्त

(ऋषि—पूरुरात्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप, उष्णिक्, बृहती)

बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा देवायाग्नये ।
यं मित्रं न प्रशस्तिभिर्मर्तासो दधिरे पुरः ॥
सहि द्युभिर्जनानां होता दक्षस्य बाह्वोः ।

वि हव्यमग्निरानुषग्भगो न वारमृण्वति ॥ २
अस्य स्तोमे मघोनः सख्ये वृद्धशोचिषः ।
विश्वा यस्मिन्तुविष्वणि समर्ये शुष्ममादधुः ॥ ३
। ह्यग्न एषां सुवीर्यस्य मंहना ।
तमिद्यह्वं न रोदसी परि श्रवो बभूवतुः ॥ ४
न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर ।
ये वयं ये च सूरयः स्वस्ति धामहे सचोतैधि पृत्सु नो वृधे ॥ ५।८

जिन मित्रभूत अग्नि की उत्तम स्तुतियों द्वारा साधकगण स्तुति
ते हैं और उन्हें वेदी में स्थापित करते हैं, उन प्रकाशमान अग्नि के लिए
यों दी जाती हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि अपने भुज-बल के तेज से युक्त हैं
। जो देवताओं के लिये हवि वहन करते हैं, वे अग्नि यजमानों के लिए
ताओं को बुलाते हैं । वे साधकों को सूर्य के समान, वरण करने योग्य
ों को प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ सभी ऋत्विक् हवि और स्तुतियों के दान
ा, शब्द करने वाले अग्नि को भले प्रकार पुष्ट करते हैं, उन्हीं बढ़े हुए
। वाले और ऐश्वर्य सम्पन्न अग्नि की हम स्तुति करते हैं । उन अग्नि के
ाथ हम सख्य-भाव रखते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! सब के द्वारा कामना किया
ा धन हम यजमानों को दो । जैसे महान् सूर्य पर पृथिवी और आकाश
श्रित हैं, वैसे ही तुम महान् के आश्रय से हम अन्न और धन प्राप्त करते
॥ ४ ॥ हे अग्ने हम यजमान तुम्हारा स्तवन करते हैं । हमारे यज्ञ में
र शीघ्र ही आगमन करो । हमारे लिए वरण करने योग्य धनों को प्राप्त
ाओ । हम यजमान स्तोताओं को तुम युद्ध क्षेत्र में रक्षा साधनों से सम्पन्न
ो । हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [८]

१७ सूक्त

(ऋषि-पूरु रात्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द-उष्णिक्, अनुष्टुप् दृ : गो)
ा यज्ञ देव मर्त्य इत्था तव्यांसमूतये ।
अग्निं कृते स्वध्वरे पूरुरीळीतावसे

अस्य हि स्वयशस्तर आसा विधर्मन्मन्यसे ।
तं नाकं चित्रशोचिषं मन्द्रं परो मनीषया ॥ २

अस्य वासा उ अर्चिषा य आयुक्त तुजा गिरा ।
दिवो न यस्य रेतसा बृहच्छोचन्त्यर्चयः ॥ ३

अस्य क्रत्वा विचेतसो दस्मस्य वसु रथ आ ।
अधा विश्वासु हव्योऽग्निर्विक्षु प्र शस्यते ॥ ४

नू न इद्धि वार्यमासा सचन्त सूरयः ।
ऊर्जो नपादभिष्टये पाहि शग्धि स्वस्तय उतैधि पृत्सु नो वृधे ॥५॥

हे देव ! मनुष्यगण रक्षा और ज्ञान के निमित्त उत्तम बल वाले अग्निदेव की स्तुति करते हैं और ऋत्विग्गण ! अपने तेज से प्रवृद्ध अग्नि को स्तुतियों से सन्तुष्ट करने के लिए यज्ञ में बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे धर्म का अनुष्ठान करने वाले स्तोतागण ! तुम्हारा यज्ञ-कार्य श्रेष्ठ है, जिन अग्नि का अद्भुत तेज है, जो स्तुति के योग्य हैं तथा जो सदा दुःखों से दूर रहते हैं, उन अग्नि की तुम अपनी श्रेष्ठ बुद्धि और सुन्दर वचन द्वारा स्तुति करते हो ॥ २ ॥ जो संसार की रक्षा करने वाले बल से परिपूर्ण हैं, जो सूर्य के समान प्रकाशमान् हैं, जिनकी प्रदीप्ति संसार में व्याप्त है, जिन अग्नि की कान्ति संसार में प्रकाशित होती है, उन अग्नि के तेज से ही सूर्य भी प्रकाशमय होते हैं ॥ ३ ॥ श्रेष्ठ बुद्धि वाले ऋत्विग्गण उन तेजस्वी अग्नि का ही पूजन करते हुए रथ युक्त धन-लाभ करते हैं । यज्ञ के लिए आहूत किये जाने वाले अग्नि, आविर्भूत होते ही सब मनुष्यों द्वारा पूजित होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जिस धन को साधकगण तुम्हारी पूजा करते हुए प्राप्त करते हैं, वह वरणीय धन हमको भी शीघ्र प्रदान करो । हमको कामना किया हुआ अन्न दो । हमारी रक्षा करो । कल्याणकारी सुन्दर पशुओं की हम तुमसे कामना करते हैं । हे अग्ने ! युद्ध भूमि में उपस्थित रहते हुए तुम हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [६]

१८ सूक्त

(ऋषि—द्वितो आत्रेयः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक् बृहती)

प्रातरग्निः पुरुप्रियो विशः स्तवेतातिथिः ।

विश्वानि यो श्रमर्त्यो हव्या मर्तेषु रण्यति ॥१
द्विताय मृक्तवाहसे स्वस्य दक्षस्य मंहना ।
इन्दुं स धत्त श्रानुषक्स्तोता चित्ते श्रमर्त्य ॥२
तं वो दीर्घायुशोचिषं गिरा हुवे मघोनाम् ।
अरिष्टो येषां रथो व्यश्वदावन्नीयते ॥३
चित्रा वा येषु दीधितिरासन्नुक्था पान्ति ये ।
स्तीर्णं वर्हिः स्वर्णरे श्रवांसि दधिरे परि ॥४
ये मे पञ्चाशतं ददुरश्वानां सधस्तुति ।
द्युमदग्ने महि श्रवो बृहत्कृधि मघोनां नृवदमृत नृणाम् ॥५ ।१०

हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के प्रिय हो । यजमानों को धन देने के लिए उनके घरों में जाते हो । इन अग्नि को प्रातः सवन में प्रज्वलित किया जाता है । अमरत्व गुण वाले अग्नि यजमानों में प्रतिष्ठित होकर हविरन्न की इच्छा करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! अत्रि पुत्र द्वित तुम्हारे लिये पवित्र हवि पहुँचाते हैं । तुम उनको अपने समान बल दो । क्योंकि वे सदैव ही तुम्हारे लिए सोमरस लेकर उपस्थित होते और तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अन्न देने वाले, लम्बी ज्वाल वाले तथा तेजस्वी हो । हम अपने सम्पन्न यजमानों के लिए तुम्हें स्तोत्र द्वारा बुलाते हैं,जिससे उन यजमानों का रथ अहिंसित होता हुआ रणक्षेत्र में बढ़ता चला जाय ॥ ३ ॥ जो ऋत्विक् अनेक यज्ञ-कार्यों को सम्पन्न करते हैं, जो स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए उनकी रक्षा करते हैं (अर्थात् उन्हें भूलते नहीं), उन ऋत्विकों द्वारा यजमानों को स्वर्ग प्राप्त कराने वाले यज्ञ में कुश के आसनों पर श्रेष्ठ हविरन्न स्थापित किया जाता है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो । तुम्हारी स्तुति के पश्चात् जो यजमान मुझ स्तोता को पचास घोड़े दान स्वरूप दे, तुम उस दानी मनुष्य को दासादि से युक्त यशस्वी अन्न-धन दो ॥ ५ ॥ [१०]

१६ सूक्त

(ऋषि–वव्रिरात्रेयः । देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री, अनुष्टुप उष्णिक्

अभ्यवस्थाः प्र जायन्ते प्र वव्रेर्वव्रिश्चिकेत । उपस्थे मातुर्वि

जुहुरे वि चितयन्तोऽनिमिषं नृम्णं पान्ति । आ दृळ्हां पुरं विविशुः ॥२

आ श्वैत्रेयस्य जन्तवो द्युमद्वर्धन्त कृष्टयः ।

निष्कग्रीवो बृहदुक्थ एना मध्वा न वाजयुः ॥३

प्रियं दुग्धं न काम्यमजामि जाम्योः सचा ।

घर्मो न वाजजठरोऽदब्धः शश्वतो दभः ॥४

क्रीळन्नो रश्म आ भुवः सं भस्मना वायुना वेविदानः ।

ता अस्य सन्धृषजो न तिग्माः सुसंशिता वक्ष्यो वक्षणेस्थाः ॥५ ।११

पृथिवी रूप माता के निकट अवस्थित होकर जो अग्नि पदार्थ मात्र को देखते हैं, वे अग्नि वव्रि ऋषि की संकटमय दशा को जानते हुए उनकी हवियाँ ग्रहण करें और उन पर कृपा करें ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो साधक तुम्हारे प्रभाव को जान कर यज्ञ के लिए तुम्हें बुलाते हैं एवं जो साधक हविरन्न देते हुए स्तुतियों द्वारा तुम्हारे बल को पुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं के दुर्गम दुर्गों में निःशंक घुस जाते हैं ॥ २ ॥ स्तोत्र रचयिता मेधावीजन, अन्न की कामना करने वाले, कंठ में सुवर्ण-रत्नादि के अलंकार धारण करने वाले, जन्म लेने वाले विद्वान् मनुष्य अन्तरिक्ष में स्थित विद्युत रूप अग्नि की शक्ति को स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ दूध-मिश्रित हविरन्न को जठरस्थ करने वाले अग्नि, शत्रुओं द्वारा अहिंसित हैं और शत्रुओं की हिंसा करने में समर्थ हैं । आकाश और पृथिवी के सहायक वे अग्नि दूध के समान उज्ज्वल और दोष-रहित रहते हुए हमारी स्तुति श्रवण करें ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रदीप्तिमय हो । तुम अपने भस्म करने वाले गुण से वन में क्रीडा करते हो । तुम वायु के प्रेरण से प्रवृद्ध होकर हमारे सामने प्रतिष्ठित होओ । तुम्हारी जो ज्वालाएँ शत्रु का नाश करने वाली हैं, वे हम यजमानों के लिए शीतल हों ॥ ५ ॥ [११]

२० सूक्त

(ऋषि—प्रयस्वन्त आत्रेयाः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप, पंक्तिः)

यमग्ने वाजसातम त्वं चिन्मन्यसे रयिम् ।

तं नो गीर्भिः श्रवाय्यं देवत्रा पनया युजम् ॥१
ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ॥२
होतारं त्वा वृणीमहेऽग्ने दक्षस्य साधनम् ।
यज्ञेषु पूर्व्यं गिरा प्रयस्वन्तो हवामहे ॥३
इत्था यथा त ऊतये सहसावन् दिवेदिवे ।
राय ऋताय सुक्रतो गोभिः ष्याम सधमादो वीरैः स्याम
सधमादः ॥४ ।१२

हे अग्ने ! तुम अत्यन्त अन्न-दान करने वाले हो। हमारा दिया हुआ जो हविरन्न तुम्हारे तुम्हारे पास है, उसे हमारी स्तुतियों सहित देवताओं के पास ले जाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जो व्यक्ति पशु आदि धन से सम्पन्न होकर भी तुम को हवि नहीं देता वह अन्न और बल से विहीन होता है। जो व्यक्ति वेद-विरुद्ध कार्य करता है, वह तुम्हारा विरोधी बन कर तुम्हारे द्वारा विनष्ट हो जाता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम बल का साधन करने वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। हम अन्न से सम्पन्न हुए मनुष्य तुम्हारा वरण करते हैं। हम अपने यज्ञ-कर्म में तुम श्रेष्ठ अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो। जिस कार्य द्वारा हम नित्य प्रति तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते रहें, वही कार्य करो। हे सुन्दर कर्म वाले अग्निदेव ! जिससे हम यज्ञ कर सकें और धन-लाभ करें, वही कार्य करो। हम गौ तथा वीर पुत्रों को प्राप्त करें, ऐसी कृपा करो ॥ ४ ॥ [१२]

२१ सूक्त

(ऋषि-सस आत्रेयः । देवता-अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

मनुष्वत्त्वा नि धीमहि मनुष्वत्समिधीमहि ।
अग्ने मनुष्वदङ्गिरो देवान्देवयते यज ॥१
त्वं हि मानुषे जनेऽग्ने सुप्रीत इध्यसे ।
स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक्सुजात सर्पिरासुते ॥२

त्वां विश्वे सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
सपर्यन्तस्त्वा कवे यज्ञेषु देवमीळते ॥३
देवं वो देवयज्ययाग्निमीळीत मर्त्यः ।
समिद्धः शुक्र दीदिह्यृतस्य योनिमासदः ससस्य योनिमासदः ॥४ ।१३

हे अग्ने ! हम तुम्हें मनु के समान स्थापित करते हुए प्रज्ज्वलित करते हैं। तुम देवताओं की कामना करने वाले मनुष्यों के निमित्त देव-यज्ञ को सम्पन्न करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा प्रज्वलित होते हुए मनुष्यों के लिए तेजस्वी बनते हो। घृत से युक्त हवियाँ तथा घृत युक्त पात्र तुमको निरन्तर पुष्ट करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्निदेव ! तुम सुन्दर कान्ति वाले हो। सब देवताओं ने प्रसन्नता-पूर्वक तुम्हें अपना दूत नियुक्त किया था, इसीलिए यज्ञानुष्ठान करने वाले साधक देवताओं का आह्वान करने के लिये तुम्हारा यज्ञ करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम प्रकाशमान् हो। देवताओं के यज्ञ में तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुम हव्य द्वारा बढ़ कर प्रदीप्ति युक्त होओ। "सस" ऋषि के स्वर्ण-कामना वाले यज्ञ में तुम प्रतिष्ठित होओ ॥४॥ [१३]

२२ सूक्त

(ऋषि—विश्वसामा आत्रेयः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक् बृहती)

प्र विश्वसामन्नत्रिवदर्चा पावकशोचिषे ।
यो अध्वरेष्वीड्यो होता मन्द्रतमो विशि ॥१
न्यग्निं जातवेदसं दधाता देवमृत्विजम् ।
प्र यज्ञ एत्वानुषगद्या देवव्यचस्तमः ॥२
चिकित्विन्मनसं त्वा देवं मर्तास ऊतये ।
वरेण्यस्य तेऽवस इयानासो अमन्महि ॥३
अग्ने चिकिद्ध्यस्य न इदं वचः सहस्य ।
तं त्वा सुशिप्र दम्पते स्तोमैर्वर्धन्त्यत्रयो गीर्भिः शुम्भन्त्यत्रयः ॥४ ।१४

हे विश्व भर के साम के ज्ञाता ऋषि ! तुम अत्रि के समान पवित्र दीप्ति

वाले अग्नि का पूजन करो। वे सब ऋत्विकों द्वारा यज्ञ में स्तुति के पात्र हैं। वे देवताओं को बुलाने वाले तथा पूजनीय हैं ॥ १ ॥ हे मनुष्यो ! सब ज्ञानों के ज्ञाता, तेजस्वी, यज्ञकर्त्ता अग्नि को वरण करो, जिससे देवताओं के लिए प्रिय तथा यज्ञ के साधन रूप हव्य को हम अग्नि के लिए प्रदान करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो। तुम ज्ञान से युक्त हो। हम तुम्हारी रक्षा की याचना के लिये उपस्थित हैं। हम तुम्हें संतुष्ट करने के लिए तुम्हारी पूजा करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम बली हो। तुम हमारे सेवा रूप स्तोत्र को जानो। तुम सुन्दर ठोडी, नासिका से युक्त हो। तुम गृहपति के समान हो। तुम्हें अत्रि वंशज स्तोत्रों से बढ़ाते और वाणी से विभूषित करते हैं ॥४॥ [१४]

२३ सूक्त

(ऋषि—द्युम्नो विश्वचर्षणिः। देवता—अग्निः। छन्द—अनुष्टुप्, पंक्ति)

अग्ने सहन्तमा भर द्युम्नस्य प्रासहा रयिम्।
विश्वा यश्चर्षणीरभ्यासा वाजेषु सासहत् ॥१
तमग्ने पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर ॥ २
त्वं हि सत्यो अद्भुतो दाता वाजस्य गोमतः।
विश्वे हि त्वा सजोषसो जनासो वृक्तबर्हिषः।
होतारं सद्मसु प्रियं व्यन्ति वार्या पुरु ॥३
स हि ष्मा विश्वचर्षणिरभिमाति सहो दधे।
अग्न एषु क्षयेष्वा रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि ॥४।१५

हे अग्ने ! मुझ "द्युम्न" ऋषि को, शत्रुओं को जीतने वाला एक वीर पुत्र प्रदान करो। वह पुत्र स्तुतियों से पूर्ण होकर रणक्षेत्र में समस्त शत्रुओं को वशीभूत करे ॥१ ॥ हे अग्ने ! तुम शक्तिशाली हो। तुम सत्य के कारण रूप तथा गवादि युक्तधनों के देने वाले हो। तुम ऐसा एक पुत्र दो जो सभी सेनाओं को वश में कर सके ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं का आह्वान करने वाले तथा सबका कल्याण करने वाले हो। कुश को उखाड़ने वाले, समान प्रीति वाले ऋत्विक् यज्ञ स्थान में तुम से, वरण करने योग्य धन माँगते

हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! विश्वचर्षिणि ऋषि शत्रुओं का संहार करने वाले बल को धारण करें। हे तेजस्विन् ! तुम हमारे घर में धन से सम्पन्न तेज फैलाओ। हे अग्ने ! तुम पापों का नाश करने वाले हो। तुम तेज और यश से युक्त हुए सर्वत्र प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥ [१५]

२४ सूक्त

(ऋषि—बन्धुः सुबन्धुः । देवता—अग्निः । छन्द—बृहती)

अग्ने त्वं नो अन्तम उत त्राता शिवो भवा वरूथ्यः ॥१
वसुरग्निर्वसुश्रवा अच्छा नक्षि द्युमत्तमं रयिं दाः ॥२
स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्या णो अघायतः समस्मात् ॥ ३
तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः ॥४ ॥१६

हे अग्ने ! तुम हमारे समीप रहने वाले होओ। तुम सम्भजनीय हो। हमारी रक्षा करने वाले तथा हमारा कल्याण करने वाले हो। हे अग्ने ! तुम उत्तम घर और अन्न के देने वाले हो। तुम हमारे अनुकूल होओ। तुम अत्यन्त उज्ज्वल एवं पशु युक्त सुन्दर धन हमको दो ॥ १-२ ॥ हे अग्ने ! हमको जानने वाले होओ। हमारे आह्वान को सुनो। सब पापाचार करने वाले दुष्टों से हमारी रक्षा करो। हे अग्ने ! तुम अपने ही तेज से प्रकाशमान हो। हम अपने सुख के लिए तथा सुन्दर पुत्र के लिए तुमसे याचना करते हैं ॥ ३-४ ॥ [१६]

२५ सूक्त

(ऋषि—वसूयव आत्रेयाः । देवता—अग्निः । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्)

अच्छा वो अग्निमवसे देवं गासि स नो वसुः ।
रासत्पुत्र ऋषूणामृतावा पर्षति द्विषः ॥१
स हि सत्यो यं पूर्वे चिद्देवासश्चिद्यमीधिरे ।
होतारं मन्द्रजिह्वमित्सुदीतिभिर्विभावसुम् ॥२
स नो धीती वरिष्ठया श्रेष्ठया च सुमत्या ।

अग्ने रायो दिदीहि नः सुवृक्तिभिर्वरेण्य ॥३
अग्निर्देवेषु राजत्यग्निर्मर्तेष्वाविशन् ।
अग्निर्नो हव्यवाहनोऽग्निं धीभिः सपर्यत ॥४
अग्निस्तुविश्रवस्तमं तुविब्रह्माणमुत्तमम् ।
अतूर्तं श्रावयत्पतिं पुत्रं ददाति दाशुषे ॥५ ।१७

हे ऋषियो ! आश्रय-प्राप्ति के लिए अग्नि की स्तुति करो । यज्ञ के लिये यजमानों के गृह में निवास करने वाले अग्नि हमारी अभिलाषा पूरी करें । सत्य से युक्त अग्निदेव शत्रुओं से हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ प्राचीन कालीन ऋषियों और देवताओं ने जिन अग्नि को प्रज्वलित किया था, जो अग्नि मोदन जिह्व, अत्यन्त आभा वाले, शोभायमान प्रकाश वाले तथा देवताओं के बुलाने वाले हैं, वे अग्नि सत्य संकल्प से परिपूर्ण हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तोत्रों द्वारा स्तुत तथा वरण करने योग्य हो । तुम हमारे अनुष्ठानादि श्रेष्ठ कर्म और स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको ऐश्वर्य प्रदान करो ॥ ३ ॥ जो अग्नि देवताओं में देव-रूप से ही प्रकाशित होते हैं, जो मनुष्यों में आहूत हो कर आते हैं तथा जो हमारे यज्ञों में देवताओं को हवि पहुँचाते हैं, उन अग्नि की स्तुति द्वारा पूजा करनी चाहिये ॥ ४ ॥ वे अग्नि हविदाता यजमानों को ऐसा पुत्र दें, जो विभिन्न अन्नों से युक्त बहुत स्तोत्रों का कर्त्ता, शत्रुओं द्वारा हिंसित न होने वाला तथा अपने श्रेष्ठ कर्मों से पितृजनों के यश को फैलाने वाला हो ॥ ५ ॥ [१७]

अग्निर्ददाति सत्पतिं सासाह यो युधा नृभिः ।
अग्निरत्यं रघुष्यदं जेतारमपराजितम् ॥६
यद्वाहिष्ठं तदग्नये बृहदर्च विभावसो ।
महिषीव त्वद्रयिस्त्वद्वाजा उदीरते ॥७
तव द्युमन्तो अर्चयो ग्रावेवोच्यते बृहत् ।
उतो ते तन्यतुर्यथा स्वानो अर्त त्मना दिवः ॥८
एवाँ अग्निं वसूयवः सहसानं ववन्दिम ।
स नो विश्वा अति द्विषः पर्षन्नावेव सुक्रतुः ॥९ ।१८

अग्नि हमको सत्य-पालक, शत्रुओं को वशीभूत करने वाला तथा कुटुम्बियों का साथ निवाहने वाला एक पुत्र दें और शत्रुओं को जीतने वाला शीघ्रगामी एक अश्व भी प्रदान करें ॥ ६ ॥ अग्नि के निमित्त सर्वश्रेष्ठ स्तोत्र ही निवेदन किया जाता है। हे अग्ने ! तुम तेजोमय ऐश्वर्य से युक्त हो। हमको प्रचुर धन दो क्योंकि समस्त धन और अन्न तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुए हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी शिखायें प्रदीप्ति से युक्त हैं। तुम शत्रुओं को शिला के समान चूर्ण करने में समर्थ हो। तुम प्रकाश से पूर्ण हो। तुम्हारा शब्द मेघ के समान गर्जनशील है ॥ ८ ॥ धन की कामना करने वाले हम मनुष्य बलशाली अग्नि की भली प्रकार स्तुति करते हैं। सुन्दर कर्म वाले अग्नि हमको सब शत्रुओं से बचावें, जैसे नदी से नाव पार करती है ॥ ९ ॥ [१८]

२६ सूक्त

(ऋषि—वसूयव आत्रेयाः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री)

अग्ने पावक रोचिषा मन्द्रया देव जिह्वया। आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥१
तं त्वा घृतस्नवीमहे चित्रभानो स्वर्दृशम्। देवाँ आ वीतये वह ॥ २
वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तं समिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ॥ ३
अग्ने विश्वेभिरा गहि देवेभिर्हव्यदातये। होतारं त्वा वृणीमहे ॥ ४
यजमानाय सुन्वत आग्ने सुवीर्यं वह। देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ५ । १९

हे अग्ने ! तुम पवित्र करने वाले और दीप्तिमान् हो। तुम देवताओं को पुष्ट करने वाली जिह्वा और अपनी प्रदीप्ति सहित प्रकाशमान् होते हुए देवताओं को यज्ञ में लाओ तथा उनके निमित्त यज्ञ करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम घृत से प्रदीप्त होने वाली किरणों से युक्त हो। तुम सब के देखने वाले हो। हव्य-ग्रहण करने के लिये देवताओं को बुलाने की हम तुमसे स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्ञान से सम्पन्न, हवियों को भक्षण करने वाले प्रदीप्तियुक्त एवं महान् हो। हम तुम्हें अपने यज्ञ स्थान में उत्तम प्रकार से प्रज्ज्वलित करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम हविदाता साधक के यज्ञ में स

यो मे गिरस्तुविजातस्य पूर्वीर्युक्तेनाभि त्र्यरुणो गृणाति ॥ ३
यो म इति प्रवोचत्यश्वमेधाय सूरये ।
दददृचा सनिं यते ददन्मेधामृतायते ॥ ४
यस्य मा परुषाः शतमुद्धर्षयन्त्युक्षणः ।
अश्वमेधस्य दानाः सोमा इव त्र्याशिरः ॥ ५
इन्द्राग्नी शतदाव्न्यश्वमेधे सुवीर्यम् ।
क्षत्रं धारयतं बृहद्दिवि सूर्यमिवाजरम् ॥ ६ । २१

हे मनुष्यों में अग्र पुरुष अग्ने ! तुम सज्जनों के पालनकर्त्ता, ज्ञानवान्, बलवान् और ऐश्वर्यवान् हो । "त्रिवृष्ण" के पुत्र "त्र्यरुण" नामक ऋषि ने दो बैल जुड़ी गाड़ी में दस हजार सुवर्ण मुद्रा रख कर मुझे दी थीं । इससे वे सब लोगों में प्रसिद्ध होगए थे ॥ १ ॥ हे अग्ने ! मुझे जिस "त्र्यरुण" ने शत सुवर्ण, वीस धेनु और रथ संयुत दो सुन्दर अश्व प्रदान किये थे, उसके लिए, तुम हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हव्य द्वारा बढ़ते हुये सुख प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! हम अधिक संतान वालों की स्तुतियों से प्रसन्न हुए . . ने हमको 'यह ले लो, वह ले लो' कहा था, उसी प्रकार तुम्हारी स्तुति की इच्छा करने वाले "त्रसदस्यु" ने भी 'यह ले लो, वह ले लो' कहते हुए दान ग्रहण करने की प्रार्थना की थी ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जब कोई भिक्षा माँगने वाला तुम्हारा स्तोत्र पढ़ता हुआ धन-दान देने वाले राजर्षि अश्वमेध से धन माँगता है, तभी वे उसे धन प्रदान करते हैं । हे अग्ने ! यज्ञ की कामना करने वाले अश्वमेध को तुम यज्ञ-कर्म में प्रेरित करो ॥ ४ ॥ राजर्षि अश्वमेध द्वारा दिये हुये सौ बैलों को पाकर हम प्रसन्न होगए । हे अग्ने ! दही, सत्तू और दुग्धादि तीनों द्रव्यों से युक्त सोम के समान वे बैल उपभोग करने के योग्य हों ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! हे अग्ने ! माँगने वाले को असीमित धन प्रदान करने वाले राजर्षि अश्वमेध को अन्तरिक्ष में अवस्थित आदित्य के समान सुन्दर पराक्रम, उज्ज्वल यश और कभी भी क्षीण न होने वाला धन देकर महान् बनाओ ॥ ६ ॥ [२१]

२८ सूक्त

(ऋषि–विश्ववाराऽऽत्रेयी । देवता–अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्)

समिद्धो अग्निर्दिवि शोचिरश्रेत्प्रत्यङ्ङुषसमुर्विया वि भाति ।
एति प्राची विश्ववारा नमोभिर्देवाँ ईळाना हविषा घृताची ॥ १
समिध्यमानो अमृतस्य राजसि हविष्कृण्वन्तं सचसे स्वस्तये ।
विश्वं स धत्ते द्रविणं यमिन्वस्यातिथ्यमग्ने नि च धत्त इत्पुरः ॥ २
अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु ।
सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥ ३
समिद्धस्य प्रमहसोऽग्ने वन्दे तव श्रियम् ।
वृषभो द्युम्नवाँ असि समध्वरेष्विध्यसे ॥ ४
समिद्धो अग्न आहुत देवान्यक्षि स्वध्वर । त्वं हि हव्यवाळसि ॥ ५
आ जुहोता दुवस्यताग्निं प्रयत्यध्वरे । वृणीध्वं हव्यवाहनम् ॥६ । २२

भले प्रकार प्रकाशित हुये अग्निदेव उज्ज्वल अंतरिक्ष में अपने तेज से प्रकाश फैलाते हैं और उषा के सामने ही बढ़ते हुए अत्यन्त सुशोभित होते हैं। इन्द्रादि देवताओं को नमन करती हुई पुरोडाश आदि से युक्त, घृतादि पदार्थ को देह पर मलने के समान आभायुक्त उषा ऐश्वर्य से युक्त हुई प्राची की ओर से झाँकती हुई निकलती है॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम भले प्रकार *प्रदीप्त होकर अमृत पर प्रभुत्व करने वाले होते हो।* तुम हवि प्रदान करने वाले यजमान के द्वारा सुखकारी कार्यों की इच्छा से बुलाये जाते हो। तुम जिस यजमान पर अनुग्रह करते हो उसके लिये पशु आदि से युक्त धन के धारण करने वाले हो। हे अग्ने ! तुम्हारे सत्कार के योग्य हविरन्न को यजमान तुम्हारे लिये अर्पित करता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे धन और ऐश्वर्य की रक्षा के लिये शत्रुओं को पराजित करो। तुम्हारा तेज अत्यन्त उत्कृष्ट है। हे अग्ने ! *तुम स्त्री-पुरुषों के दाम्पत्य-संबंध को सुदृढ़ करने के लिये श्रेष्ठ संस्कार करो।* तुम शत्रुओं के तेज को पराभूत करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जब तुम प्रदीप्त होकर तेजोमय होते हो, तब मैं तुम्हारे उस तेज की सुन्दर स्तुति क

तुम बलवान एवं प्रजाओं के निमित्त सुखों की वर्षा करने वाले हो। हमारे यज्ञानुष्ठान में अत्यन्त प्रकाशित होओ ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यजमानों द्वारा बुलाये जाते हो, तुम श्रेष्ठ यज्ञों के साधक हो। तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर इन्द्रादि देवताओं के निमित्त यज्ञ करो। तुम हव्य-वहन करने में समर्थ हो ॥ ५ ॥ हे ऋत्विको ! तुम हमारे यज्ञ-कार्य में लग कर हवि वहन करने वाले अग्नि के लिये यज्ञ करो, और उनकी सेवा करते हुए स्तुति करो। देवताओं को हवि पहुँचाने के लिये उन्हें वरण करो ॥ ६ ॥ [२२]

२९ सूक्त

(ऋषि-गौरिवीतिः । देवता—देवता—इन्द्रः उशना । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्र्यर्यमा मनुषो देवताता त्री रोचना दिव्या धारयन्त ।
अर्चन्ति त्वा मरुतः पूतदक्षास्त्वमेषामृषिरिन्द्रासि धीरः ॥ १
अनु यदीं मरुतो मन्दसानमार्चन्निन्द्रं पपिवांसं सुतस्य ।
आदत्त वज्रमभि यदहिं हन्नपो यह्वीरसृजत्सर्तवा उ ॥ २
उत ब्रह्माणो मरुतो मे अस्येन्द्रः सोमस्य सुषुतस्य पेयाः ।
तद्धि हव्यं मनुषे गा अविन्ददहन्नहिं पपिवाँ इन्द्रो अस्य ॥ ३
आद्रोदसी वितरं वि ष्कभायत्संविव्यानश्चिद्भियसे मृगं कः ।
जिगर्तिमिन्द्रो अपजर्गुराणः प्रति श्वसन्तमव दानवं हन् ॥ ४
अध क्रत्वा मघवन्तुभ्यं देवा अनु विश्वे अददुः सोमपेयम् ।
यत्सूर्यस्य हरितः पतन्तीः पुरः सतीरुपरा एतशे कः ॥ ५ । २३

हे इन्द्र ! सुन्दर बलवाले मरुद्गण तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम मेधावी हो। मनु-सम्बन्धी यज्ञ में जो तीन गुण और तीन साधन हैं, उनको देवताओं के कार्य में धारण करें ॥ १ हे जब इन्द्र सुसिद्ध सोम को पीकर तृप्त होगए, तब मरुद्गण ने उनकी स्तुति की। फिर इन्द्र ने वज्र उठाकर वृत्र का संहार किया और उसके द्वारा रोके गए महान् जल-समूह को स्वेच्छा से प्रवाहित होने के लिए छोड़ दिया ॥ २ ॥ हे महान् मरुद्गण ! तुम सब और इन्द्र हमारे इस स्वच्छ सोम-रस को भले प्रकार पान करो। तुम इस

सोमयुक्त हवि का सेवन करते हुए यजमान को गौएँ प्राप्त कराओ। इसी सोमरस का पान करके हृष्ट हुए इन्द्र ने वृत्र का संहार किया था ॥ ३ ॥ सोम पीने के पश्चात् ही इन्द्र ने आकाश और पृथिवी को अचल किया, इन्द्र ने मृग के समान भागते हुए वृत्र को डराया। उस समय वह छिपा हुआ, भय-भीत होकर श्वास छोड़ रहा था। तब इन्द्र ने उसे माया रहित करके मार डाला ॥ ४ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम्हारे इस कर्म से प्रसन्न हुए देवताओं ने तुम्हें सोम-रस पीने को प्रदान किया। तुमने "एतश" के लिए, सामने आये हुए सूर्य के घोड़ों का चलना रोक दिया ॥ ५ ॥ [२३]

नव यदस्य नवतिं च भोगान्त्साकं वज्रेण मघवा विवृश्चत् ।
अर्चन्तीन्द्रं मरुतः सधस्थे त्रैष्टुभेन वचसा बाधत द्याम् ॥ ६
सखा सख्ये अपचत्तूयमग्निरस्य क्रत्वा महिषा त्री शतानि ।
त्री साकमिन्द्रो मनुषः सरांसि सुतं पिबद्वृत्रहत्याय सोमम् ॥ ७
त्री यच्छता महिषाणामघो मास्त्री सरांसि मघवा सोम्यापाः ।
कारं न विश्वे अह्वन्त देवा भरमिन्द्राय यदहिं जघान ॥ ८
उशना यत्सहस्यै रयातं गृहमिन्द्र जूजुवानेभिरश्वैः ।
वन्वानो अत्र सरथं ययाथ कुत्सेन देवैरवनोर्ह शुष्णम् ॥ ९
प्रान्यच्चक्रमवृहः सूर्यस्य कुत्सायान्यद्वरिवो यातवेऽकः ।
अनासो दस्यूंरमृणो वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचः ॥ १० ॥

जब महापराक्रमी इन्द्र ने "शम्बर" के निन्यानवे पुरों को एक समय में ही ध्वंस कर डाला, तब रणक्षेत्र में ही मरुद्गण ने त्रिष्टुप् छन्द में इन्द्र की स्तुति की। इस प्रकार मरुद्गण के स्तोत्र द्वारा पूजित होने पर इन्द्र ने "शम्बर" को वशीभूत किया ॥ ६ ॥ इन्द्र के सखा रूप अग्नि ने तीन सौ शक्तिशाली महिषों को कार्यक्षम बनाया और परम ऐश्वर्यवान् इन्द्र ने वृत्र-नाश के लिए मनुष्यों द्वारा तीन पात्रों में रखे हुए सोम-रस को एक समय में ही पान कर लिया ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! जब तुमने तीन सौ महिषों को स्वीकार किया और पराक्रम से युक्त होकर तीन पात्रों में रखे सोम-रस

का पान किया, तब तुमने वृत्र का हनन किया। उस समय सब देवताओं ने सोम-पान से हृष्ट हुए इन्द्र को युद्ध लिए बुलाया, जैसे स्वामी अपने कार्यकर्त्ता को बुलाते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम और "उशना" दोनों ही जब द्रुतगामी घोड़ों पर चढ़कर "कुत्स" के घर गए थे, तब तुमने शत्रुओं को मारा और "कुत्स" तथा देवताओं के साथ एक रथ पर चढ़े थे। हे इन्द्र ! तुमने ही दैत्य "शुष्ण" का हनन किया था ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुमने ही प्रथम सूर्य के रथ के दो पहियों में से एक को अलग किया और दूसरे पहिए को धन-प्राप्ति के निमित्त "कुत्स" को प्रदान किया। तुमने चुपचाप खड़े हुए हतप्रभ राक्षसों को युद्ध क्षेत्र में अपने वज्र से मार डाला ॥ १० ॥ [२४]

स्तोमासस्त्वा गौरिवीतेरवर्धन्नरन्धयो वैदथिनाय पिप्रुम् ।
आ त्वामृजिश्वा सख्याय चक्रे पचन्पक्तीरपिबः सोममस्य ॥ ११
नवग्वासः सुतसोमास इन्द्रं दशग्वासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
गव्यं चिदूर्वमपिधानवन्तं तं चिन्नरः शशमाना अप व्रन् ॥ १२
कथो नु ते परि चराणि विद्वान्वीर्या मघवन्या चकर्थ ।
या चो नु नव्या कृणवः शविष्ठ प्रेदु ता ते विदथेषु ब्रवाम ॥ १३
एता विश्वा चकृवाँ इन्द्र भूर्यपरीतो जनुषा वीर्येण ।
या चिन्नु वज्रिन्कृणवो दधृष्वान्न ते वर्ता तविष्या अस्ति तस्याः ॥ १४
इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म ।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथं न धीरः स्वपा अतक्षम् ॥ १५ । २५

हे इन्द्र ! "गौरिवीति" ऋषि के स्तोत्र से तुम बढ़ो। तुमने "विदथि-पुत्र ऋजिश्वा" के लिए "पिप्र" नामक दैत्य को हराया। "ऋजिश्वा" ने तुम्हारी मित्रता के लिए पुरोडाश परिपक्व कर उपस्थित किया था और तुमने "ऋजिश्वा" द्वारा समर्पित सोम का पान किया था ॥ ११ ॥ नौ अथवा दश महीनों में सम्पूर्ण होने वाले यज्ञ के करने वाले अङ्गिरा ऋषि सोम सिद्ध कर के पूजन के योग्य स्तोत्र से इन्द्र का स्तवन करते हैं। स्तव करते हुए अङ्गिराओं ने असुरों द्वारा छिपाई हुई गौओं को छुड़ाया था ॥ १२ ॥ हे इन्द्र !

तुम ऐश्वर्यशाली हो। तुमने जिस पराक्रम को प्रकट किया था, उसे जानते हुए भी हम किस वाणी से कहें ? तुम जिस नवीन बल को प्रकट करोगे, उसका कीर्तन हम अपने यज्ञ में करेंगे ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं द्वारा नहीं रोके जा सकते। तुमने अपनी शक्ति से लोकों को दृश्यमान किया है। तुम वज्रधारी हो शत्रुओं का नाश करते हुए जिस बल को दिखाते हो, उस बल का निवारण करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ १४ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र ! हमने आज तुम्हारे लिए जिन नवीन स्तोत्रों की रचना की है, उन सब स्तोत्रों को स्वीकार करो। हम सुन्दर कर्म वाले स्तोता धन की अभिलाषा करते हैं। हम वस्त्र और रथ की तरह अपने सुन्दर स्तोत्रों को तुम्हारे निमित्त समर्पित करते हैं ॥ १५ ॥ [२१]

३० सूक्त

(ऋषि—वभ्रुरात्रेयः। देवता-इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति, ।)

क्वस्य वीरः को अपश्यदिन्द्रं सुखरथमीयमानं हरिभ्याम् ।
यो राया वज्री सुतसोममिच्छन्तदोको गन्ता पुरुहूत ऊती ॥१
अवाचचक्षं पदमस्य सस्वरुग्रं निधातुरन्वायमिच्छन् ।
अपृच्छमन्यां उत ते म आहुरिन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम ॥२
प्र नु वयं सुते या ते कृतानीन्द्र ब्रवाम यानि नो जुजोषः ।
वेददविद्वाञ्छृणवच्च विद्वान्वहतेऽयं मघवा सर्वसेनः ॥३
स्थिरं मनश्चकृषे जात इन्द्र वेषीदेको युधये भूयसश्चित् ।
अश्मानं चिच्छवसा दिद्युतो वि विदो गवामूर्वमुस्रियाणाम् ॥४
परो यत्त्वं परम आजनिष्ठाः परावति श्रुत्यं नाम बिभ्रत् ।
अतश्चिदिन्द्रादभयन्त देवा विश्वा अपो अजयद्दासपत्नीः ॥५॥२६

बहुतों द्वारा बुलाए जाने वाले वज्रधारी इन्द्र देने योग्य धनों के साथ सोम सिद्ध करने वाले यजमान की कामना करते हुए, रक्षा-साधनों सहित उसके घर में जाते हैं। वे बलवान इन्द्र कहाँ हैं ? अपने दोनों अश्वों को रथ में जोड़कर जाने वाले इन्द्र को कौन देखता है ? ॥ १ ॥ हमने इन्द्र के स्व

स्थानों को देखा है। खोज करते हुए हम आश्रय रूप इन्द्र के स्थान में पहुँचे। हमने इन्द्र के सम्बन्ध में अन्य विद्वानों से भी जानकारी प्राप्त की। ज्ञान की कामना करने वाले याज्ञिकों ने बतलाया कि हमने इन्द्र को प्राप्त कर लिया है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जिन कामों को किया, उनका वर्णन सोम सिद्ध करने पर हम स्तुति करने वाले करते हैं। तुमने हमारे निमित्त जिन कर्मों को किया है, उन कर्मों को भी सभी जान लें। जो जानते हैं, वह अन-जान व्यक्तियों को श्रवण करावें। सब सेनाओं से परिपूर्ण हुए इन्द्र उन जानने वाले तथा सुनने वाले मनुष्यों के पास अश्व पर चढ़ कर पहुँचें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने प्रकट होते ही शत्रुओं को विजय करने का दृढ़ संकल्प किया और तुम अकेले ही असंख्य असुरों से संग्राम करने के लिए गए। गौओं को ढकने वाले पर्वत को तुमने अपने बल से चीर डाला और दुग्ध देने वाली गौओं को प्राप्त किया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब में मुख्य और श्रेष्ठतम हो। जब तुम सुनने योग्य नाम को धारण कर प्रकट हुए तब अग्नि आदि देव भी भयभीत होगए। वृत्र द्वारा रक्षित जल को तुमने अपने अधिकार में किया था ॥ ५ ॥ [२६]

तुभ्येदेते मरुतः सुशेवा अर्चन्त्यर्कं सुन्वन्त्यन्धः ।
अहिमोहानमप आशयानं प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः ॥६
वि षू मृधो जनुषा दानमिन्वन्नहन्गवा मघवन्त्सञ्चकानः ।
अत्रा दासस्य नमुचेः शिरो यदवर्तयो मनवे गातुमिच्छन् ॥७
युजं हि मामकृथा आदिदिन्द्र शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
अश्मानं चित्स्वर्यं वर्तमानं प्र चक्रियेव रोदसी मरुद्भ्यः ॥८
स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे किं मा करन्नबला अस्य सेनाः ।
अन्तर्ह्यख्यदुभे अस्य धेने अथोप प्रैद्युधये दस्युमिन्द्रः ॥९
समत्र गावोऽभितोऽनवन्तेहेह वत्सैर्वियुता यदासन् ।
सं ता इन्द्रो असृजदस्य शाकैर्यदीं सोमासः सुषुता अमन्दन् ॥१०।२

यह स्तुति करने वाले मरुद्गण स्तोत्र-पाठ करते हुए तुम्हें सुखी क

हैं। हे इन्द्र! यह तुम्हारी ही स्तुति करते हैं और सोम युक्त अन्न देते हैं। जो वृत्र समस्त जल राशि को छिपा कर सो रहा था, उस कपटी और देवताओं के कार्य में बाधक को इन्द्र ने अपनी शक्ति से वशीभूत किया था ॥ ६ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम देवताओं को दुःख देने वाले वृत्र को वज्र से दुःखी करो। तुमने उत्पन्न होते ही शत्रुओं का हनन किया था। इस संग्राम में हमारे कल्याण के लिए तुम "नमुचि नामक दस्यु के शीश को चूर्ण कर डालो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! तुमने गर्जन करते हुए गतिशील मेघ के समान "नमुचि के शीश को चूर्ण कर हमारे साथ मैत्री-भाव प्रदर्शित किया था, उस समय आकाश पृथिवी मरुद्गण के प्रभाव से चक्र के समान घूमने लगीं ॥ ८ ॥ "नमुचि" ने स्त्रियों को युद्ध का साधन बनाया। इन्द्र ने सोचा कि असुर की यह स्त्री-सेना मेरा क्या बिगाड़ सकेगी? और सेनाओं के बीच मे दो स्त्रियों को पकड़ कर बन्दी बनाया और तब "नमुचि से युद्ध करने के लिए चल पड़े ॥ ६ ॥ जब गौओं को "नमुचि" ने चुराया, तब वे बछड़ों से बिछुड़ी हुई गायें इधर उधर भटकने लगीं। "बभ्रु" ऋषि प्रदत्त सोमरस से जब इन्द्र पुष्ट हुए तब उन्होंने मरुतों की सहायता से "बभ्रु" की गायों को उनके बछड़ों से मिलाया ॥ १० ॥ [२७]

यदीं सोमा बभ्रुधूता अमन्दन्नरोरवीद्वृषभः सादनेषु ।
पुरन्दरः पपिवाँ इन्द्रो अस्य पुनर्गवामददादुस्रियाणाम् ॥११
भद्रमिदं रुशमा अग्ने अक्रन्गवां चत्वारि ददतः सहस्रा ।
ऋणञ्चयस्य प्रयता मघानि प्रत्यग्रभीष्म नृतमस्य नृणाम् ॥१२
सुपेशसं माव सृजन्त्यस्तं गवां सहस्रै रुशमासो अग्ने ।
तीव्रा इन्द्रमममन्दुः सुतासोऽक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाः ॥१३
औच्छत्सा रात्री परितक्म्या याँ ऋणञ्चये राजनि रुशमानाम् ।
अत्यो न वाजी रघुरज्यमानो बभ्रुश्चत्वार्यसनत्सहस्रा ॥१४
चतुःसहस्रं गव्यस्य पश्वः प्रत्यग्रभीष्म रुशमेष्वग्ने ।
घर्मश्चित्तप्तः प्रवृजे य आसीदयस्मयस्तम्वादाम विप्राः ॥१५॥२

जब "वभ्रु" के सोम-रस द्वारा इन्द्र हृष्ट होगए, तब उन्होंने रणक्षेत्र में घोर गर्जन किया। पुरन्दर इन्द्र ने सोम-पान के पश्चात् "वभ्रु" को दुग्ध देने वाली गायें पुनः लाकर दीं ॥ ११ ॥ हे अग्ने! "ऋणञ्चय" नामक राजा के सेवक "रुशम" देश वालों ने मुझे चार हजार गौऐं देकर कल्याण-कारी कार्य किया था। अग्रगण्यों में भी अग्रणी "ऋणञ्चय राजा" द्वारा दिये गये गौ रूप धन को मैंने प्राप्त किया था ॥ १२ ॥ हे अग्ने! "ऋणञ्चय" राजा के सेवक "रुशम" देश वालों ने मुझे वस्त्रालंकार आदि से सजा हुआ घर तथा सहस्र धेनु प्रदान की हैं। रात्रि के अवसान काल में मधुर रस मिश्रित सोम द्वारा इन्द्र को प्रसन्न किया गया ॥ १३ ॥ "रुशम" देश के नरेश "ऋणञ्चय" के पास ही सर्वत्र जाने वाली रात्रि व्यतीत होगई। बुलाये जाने पर "वभ्रु ऋषि" ने वेग वाले अश्व के समान चार सहस्र द्रुतगामिनी धेनुओं को पाया ॥ १४ ॥ हे अग्ने! हम मेधावी हैं। हमने रुशम देश वालों से चार हजार धेनु प्राप्त की हैं। हमने सुन्दर सुवर्णमय कलश को रुशम देश वालों से यज्ञ-कर्म में दूध दुहने के निमित्त प्राप्त किया है ॥ १५ ॥ [२८]

३१ सूक्त

(ऋषि-अवस्युरात्रेयः। देवता—इन्द्रः, कुत्सो वा। छन्द—त्रिष्टुप, पंक्ति)

इन्द्रो रथाय प्रवतं कृणोति यमध्यस्थान्मघवा वाजयन्तम्।
यूथेव पश्वो व्युनोति गोपा अरिष्टो याति प्रथमः सिषासन् ॥१
आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः पिशङ्गराते अभि नः सचस्व।
नहि-त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्त्यमेनाश्चिज्जनिवतश्चकर्थ ॥२
उद्यत्सह सहस आजनिष्ट देदिष्ट इन्द्र इन्द्रियाणि विश्वा।
प्राचोदयत्सुदुघा वव्रे अन्तर्वि ज्योतिषा संववृत्वत्तमोऽवः ॥३
अनवस्ते रथमश्वाय तक्षन्त्वष्टा वज्रं पुरुहूत द्युमन्तम्।
ब्रह्माण इन्द्रं महयन्तो अर्कैरवर्धयन्नहये हन्तवा उ ॥४
वृष्णे यत्ते वृषणो अर्कमर्चानिन्द्र ग्रावाणो अदितिः सजोषाः।
अनश्वासो ये पवयोऽरथा इन्द्रेषिता अभ्यवर्तन्त दस्यून् ॥५॥२९

इन्द्र ऐश्वर्यशाली हैं। वे जिस रथ पर बैठते हैं, उसे चलाते भी हैं। गौओं को पालने वाले जैसे पशुओं को प्रेरणा देते हैं, वैसे ही इन्द्र सेनाओं को प्रेरणा देते हैं। देवताओं में उत्कृष्ट इन्द्र शत्रुओं द्वारा कभी भी हिंसित न होते हुए शत्रुओं के धन की इच्छा से जाते हैं ॥ १ ॥ हे मघवान् इन्द्र! तुम हमारे सामने से निकलो। परन्तु हमारे लिये मनोरथ से रहित मत बनो तुम विविध ऐश्वर्य वाले हो। हमारी सेवाओं को स्वीकार करो। तुम भार्या-हीनों को भार्या प्रदान करते हो। तुमसे श्रेष्ठ अन्य कोई नहीं है ॥ २ ॥ उषा के प्रकाश से जब आदित्य का प्रकाश बढ़ जाता है, तब इन्द्र यजमानों को सभी धन देते हैं। वे छिपाने वाले पर्वत के बीच से दूध देने वाली गायों को निकालते और अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त अन्धकार को हटा देते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाये जाते हो। तुम्हारे रथ को अश्वों से युक्त होने के योग्य ऋभुओं ने किया है। त्वष्टा ने तुम्हारे वज्र को तीक्ष्णता दी है। इन्द्र के पूजक मरुद्गण ने वृत्र का नाश करने के लिए इन्द्र को स्तोत्रों द्वारा बढ़ाया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो। सेंचन कर्म वाले मरुद्गण ने जब तुम्हारा स्तवन किया था तब सोम कूटने वाले पाषाण भी प्रसन्नता से मिल गये थे। इन्द्र द्वारा भेजे जाने पर घोड़े और रथ से विहीन मरुद्गण ने जाकर शत्रुओं को वशीभूत किया था ॥ ५ ॥　　[२१]

प्र ते पूर्वाणि करणानि वोचं प्र नूतना मघवन्या चकर्थ ।
शक्तीवो यद्विभरा रोदसी उभे जयन्नपो मनवे दानुचित्राः ॥६
तदिन्नु ते करणं दस्म विप्राहिं यद्घ्नन्नोजो अत्रामिमीथाः ।
शुष्णस्य चित्परि माया अगृभ्णाः प्रपित्वं यन्नप दस्यूँरसेधः ॥७
त्वमपो यदवे तुर्वशायारमयः सुदुघाः पार इन्द्र ।
उग्रमयातमवहो ह कुत्सं सं ह यद्वामुशनारन्त देवाः ॥८
इन्द्राकुत्सा वहमाना रथेना वामत्या अपि कर्णे वहन्तु ।
निः षीमद्भ्यो धमथो निः षधस्थान्मघोनो हृदो वरथस्तमांसि ॥९
वातस्य युक्तान्त्सुयुजश्चिदश्वान्कविश्चिदेषो अजगन्नवस्युः ।
विश्वे ते अत्र मरुतः सखाय इन्द्र ब्रह्माणि तविषीमवर्धन् ॥१०॥२-

हे इन्द्र ! हम तुम्हारे प्राचीन या नवीन कर्मों का कीर्तन करते हैं। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुमने जो कार्य किए हैं, हम उनका वखान करते हैं। हे वज्रिन् ! तुम आकाश और पृथिवी को अपने वश में रखते हुए मनुष्यों के निमित्त अद्भुत जलों को धारण करते हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी एवं दर्शनीय हो। तुमने वृत्र का हनन कर जो वल इस लोक को दिखाया है, वह तुम्हारे लिये ही संभव था। तुमने "शुष्ण" की युवती स्त्री को वन्दी बनाया और रणक्षेत्र में जाकर राक्षसों को नष्ट किया। ७ ॥ हे इन्द्र ! "यदु" और "तुर्वश" राजाओं को तुमने नदी किनारे अवस्थित होकर वनस्पतियों की वृद्धि करने वाला जल प्रदान किया था। "कुत्स" पर आक्रमण करने वाले विकराल असुर "शुष्ण" का हनन करके "कुत्स" को उसका गृह प्राप्त कराया। तब "उशना" और सब देवताओं ने तुम्हारी स्तुति की ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हे "कुत्स" ! तुम दोनों एक रथ पर सवार होओ और तुम्हें घोड़े यजमानों के समीप पहुँचावें। तुम दोनों ने "शुष्ण!' को उसके आश्रय रूप जल से पृथक किया। तुम दोनों ने धनिक यजमानों के अन्धकारयुक्त अन्तःकरण को शुद्ध किया था ॥ ६ ॥ मेधावी "अवस्यु" ऋषि ने रथ में उत्तम प्रकार से जोड़ने के योग्य तथा वायु के समान वेग वाले घोड़ों को प्राप्त किया। हे इन्द्र ! "अवस्यु" के सखा सभी स्तुति करने वालों ने अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारे पराक्रम को बढ़ाया ॥ १० ॥ [३०]

सूरश्चिद्रथं परितक्म्यायां पूर्वं करदुपरं जूजुवांसम् ।
भरच्चक्रमेतशः सं रिणाति पुरो दधत्सनिष्यति क्रतुं नः ॥११
आयं जना अभिचक्षे जगामेन्द्रः सखायं सुतसोममिच्छन् ।
वदन्ग्रावाव वेदिं भ्रियाते यस्य जीरमध्वर्यवश्चरन्ति ॥१२
ये चाकनन्त चाकनन्त नू ते मर्ता अमृत मो ते अंह आरन् ।
वावन्धि यज्यूँरुत तेषु धेह्योजो जनेषु येषु ते स्याम ॥१३।३१

प्राचीन काल में जव "एतश" ऋषि के साथ सूर्य का युद्ध हुआ था, तव सूर्य के वेगवान् रथ की गति को इन्द्र ने रोक दिया। उस रथ के दो पहियों में से एक पहिये को इन्द्र ने ले लिया। उसी पहिये के द्वारा इन्द्र

शत्रुओं का संहार करते हैं। हम पर प्रसन्न होने वाले इन्द्र हमारे यज्ञ की कामना करें ॥ ११ ॥ हे मनुष्यो! सोम सिद्ध करने वाले सखा के समान यजमानों की कामना करते हुए इन्द्र तुमको दर्शन देने के लिये पधारे हैं। अध्वर्यु लोग जिस प्रस्तर को उठाते हैं, वह सोम कूटने वाला प्रस्तर शब्द करता हुआ वेदी पर चढ़ता है ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम अविनाशी हो। जो तुमको चाहता है, शीघ्रता से तुम्हारी कामना करता है उसे मरणधर्म वाले मनुष्य का कोई अनिष्ट न हो। तुम यजमानों पर प्रसन्न होते हुए, उनकी कामना करो। जिन मनुष्यों के मध्य हम स्तुति करने वाले बैठे हैं, वे सब मनुष्य यजमान तुम्हारे ही हैं। तुम उनको बल प्रदान करो ॥ १३ ॥　　　[३१]

३२ सूक्त

(ऋषि—गातुरात्रेयः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

अदर्दरुत्समसृजो वि खानि त्वमर्णवान्बद्बधानाँ अरम्णाः ।
महान्तमिन्द्र पर्वतं वि यद्वः सृजो वि धारा अव दानवं हन् ॥१
त्वमुत्साँ ऋतुभिर्बद्बधानाँ अरंह ऊधः पर्वतस्य वज्रिन् ।
अहिं चिदुग्र प्रयुतं शयानं जघन्वाँ इन्द्र तविषीमधत्थाः ॥२
त्यस्य चिन्महतो निर्मृगस्य वधर्जघान तविषीभिरिन्द्रः ।
य एक इदप्रतिर्मन्यमान आदस्मादन्यो अजनिष्ट तव्यान् ॥३
त्यं चिदेषां स्वधया मदन्तं मिहो नपातं सुवृधं तमोगाम् ।
वृषप्रभर्मा दानवस्य भामं वज्रेण वज्री नि जघान शुष्णम् ॥४
त्यं चिदस्य ऋतुभिर्निषत्तममर्मणो विददिदस्य मर्म ।
यदी सुक्षत्र प्रभृता मदस्य युयुत्सन्तं तमसि हर्म्ये धाः ॥५
त्यं चिदित्था कत्पयं शयानमसूर्ये तमसि वावृधानम् ।
तं चिन्मन्दानो वृषभः सुतस्योच्चैरिन्द्रो अपगूर्या जघान ॥६।३२

हे इन्द्र! तुमने वर्षा करने वाले मेघ को चीर कर उसमें अवस्थित जल के द्वार को बनाया है। । हे इन्द्र! तुमने मेघ को खोलकर जल वृष्टि को

और वृत्र का हनन किया ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! वर्षा ऋतु में रुके हुए मेघों को छोड़ो। उनकी शक्ति को बढ़ाओ। तुम विकराल कर्म वाले हो। तुमने जल में सोने वाले वृत्र का हनन करके अपने बल की प्रसिद्धि की है ॥ २ ॥ इन्द्र का कोई प्रतिद्वन्दी नहीं हैं। उन्होंने वृत्र के द्रुतवेग वाले शस्त्रों को अपने पराक्रम से नष्ट कर दिया। उस समय वृत्र के देह से एक अत्यन्त बलवान दैत्य प्रकट हुआ ॥ ३ ॥ मेघ पर वज्र प्रहार करने वाले इन्द्र ने वज्र द्वारा पराक्रमी "शुष्ण" का संहार किया। वृत्रासुर के क्रोध से उत्पन्न हुआ "शुष्ण" अँधेरे में घूमता हुआ मेघ की रक्षा करता था। वह असुर सभी प्राणियों के खाद्यान्न को स्वयं भक्षण कर पुष्ट हो जाता था ॥ ४ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! हर्षकारी सोम रस को पीकर हृष्ट हुए तुमने युद्ध की इच्छा वाले वृत्र को अँधेरे में ही खोज लिया। अपने को न मारा जाने योग्य समझने वाले वृत्र के प्राण कहाँ हैं, यह बात तुम उसके द्वारा किए जाने वाले कार्यों से जान सके थे ॥ ५ ॥ वह वृत्र जल में सोता हुआ अँधेरे में ही बढ़ रहा था। सुसिद्ध सोम को पीकर पुष्ट होने के पश्चात् कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र ने वज्र प्रहार द्वारा उसका वध किया था ॥ ६ ॥ [२२]

उद्यदिन्द्रो महते दानवाय वधर्यमिष्ट सहो अप्रतीतम् ।
यदीं वज्रस्य प्रभृतौ ददाभ विश्वस्य जन्तोरधमं चकार ॥७
त्यं चिदर्णं मधुपं शयानमसिन्वं वव्रं मह्यददुग्रः ।
अपादमत्रं महता वधेन नि दुर्योण आवृणङ् मृध्रवाचम् ॥८
को अस्य शुष्मं तविषीं वरात एको धना भरते अप्रतीतः ।
इमे चिदस्य ज्रयसो नु देवी इन्द्रस्यौजसो भियसा जिहाते ॥६
न्यस्मै देवी स्वधितिर्जिहीत इन्द्राय गातुरुशतीव येमे ।
सं यदोजो युवते विश्वमाभिरनु स्वधाव्ने क्षितयो नमन्त ॥१०
एकं नु त्वा सत्पतिं पाञ्चजन्यं जातं शृणोमि यशसं जनेषु ।
तं मे जगृभ्र आशसो नविष्ठं दोषा वस्तोर्हवमानास इन्द्रम् ॥११
एवा हि त्वामृतुथा यातयन्तं मघा विप्रेभ्यो ददतं शृणोमि ।
किं ते ब्रह्माणो गृहते सखायो ये त्वाया निदधुः काममिन्द्र ॥१२॥३३

उस दैत्य-वृत्ति वाले वृत्र पर जब इन्द्र ने अपने विजयशील वज्र को प्रेरित कर उस पर प्रहार किया, तब सभी जीवों के सामने उसे नीचे गिरा दिया ॥ ७ ॥ विकराल कर्म वाले इन्द्र ने चलते हुए मेघ को रोक कर सोते हुए, जल की रक्षा करने वाले, शत्रुओं को मारने वाले, सब को ढक लेने वाले वृत्र को पकड़ लिया और फिर उस पैर-रहित एवं परिमाण रहित वृत्र को अपने वज्र प्रहार से छिन्न भिन्न कर दिया ॥ ८ ॥ इन्द्र की शक्ति शत्रुओं का शोषण करने वाली है, उसका निवारण करने में कोई समर्थ नहीं। इन्द्र अकेले ही असंख्य शत्रुओं के धनों को छीन लेते हैं। आकाश और पृथिवी इंद्र के पराक्रम से प्रभावित हुई गति करती हैं ॥९॥ सबका धारक और प्रकाश से पूर्ण आकाश इन्द्र के सामने झुकता हुआ गति करता है। कामना वाली सुन्दरी के समान पृथिवी इन्द्र के लिये समर्पित होती है। जब वे इन्द्र सब प्राणियों में अपने बल को स्थापित करते हैं, तब सभी प्रजा उनके सामने नमस्कार पूर्वक झुक जाती है ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! ऋषियों द्वारा सुना है कि तुम मनुष्यों के स्वामी हो। तुम सज्जनों का पालन करने वाले हो। मनुष्यों के कल्याण के लिये ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। रात-दिन स्तुति में लीन, अपनी अभिलाषाओं को प्रकट करती हुई हमारी संतति स्तुति के पात्र इन्द्र का आश्रय प्राप्त करे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राणियों को प्रेरित करते तथा स्तुति करने वालों को धन देते हो। हे इन्द्र ! जो स्तुति करने वाले अपनी अभिलाषा तुम्हारे प्रति निवेदन करते हैं, तुम्हारे वे अनन्य मित्र तुमसे क्या पाते हैं ? ॥१२ ॥ [३३]

३२ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–संवरणः प्राजापत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्।

महि महे तवसे दीध्ये नृनिन्द्रायेत्था तवसे अतव्यान्।
यो अस्मै सुमतिं वाजसातौ स्तुतो जने समर्यश्चिकेत ॥१
स त्वं न इन्द्र धियसानो अर्कैर्हरीणां वृषन्योक्त्रमश्रेः।
या इत्था मघवन्ननु जोषं वक्षो अभि प्रार्यः सक्षि जनान् ॥२
न ते त इन्द्राभ्य स्मदृष्वायुक्तासो अब्रह्मता यदसन्।

तिष्ठा रथमधि तं वज्रहस्ता रश्मिं देव यमसे स्वश्वः ॥३
पुरू यत्त इन्द्र सन्त्युक्था गवे चकर्थोर्वरासु युध्यन् ।
ततक्षे सूर्याय चिदोकसि स्वे वृषा समत्सु दासस्य नाम चित् ॥४
वयं ते त इन्द्र ये च नरः शर्धो जज्ञाना याताश्च रथाः ।
आस्मञ्जगम्यादहिशुष्म सत्वा भगो न हव्यः प्रभृथेषु चारुः ॥ ५ । १

जो इन्द्र पराक्रम संबन्धी कर्मों को करने में वीर पुरुषों से युक्त हैं एवं श्रेष्ठ बुद्धि से सभी पर शासन करने में समर्थ हैं, ऐसे तथा ऐश्वर्यशाली इन्द्र के स्तोता, निर्बल होते हुए भी महान् बल का कार्य सम्पादन करने में समर्थ हैं। वे इन्द्र अन्न-लाभ के निमित्त स्तुत होकर हम पर कृपा करने वाले हों ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे कामनाओं को पूर्ण करने वाले ! तुम हमारी कामना पूर्ण करते हुए प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से रथ में संयुक्त अश्वों की लगाम पकड़ते हो। हे इन्द्र ! हे मघवन् ! इस प्रकार तुम हमारे शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ हो ॥ २ ॥ हे तेजस्वी इन्द्र ! जो मनुष्य तुम्हारे भक्त नहीं हैं, जो तुम्हारे साथ नहीं रहते, वह मनुष्य श्रेष्ठ कर्मों से हीन होने के कारण तुम्हारे नहीं हो सकते। हे वज्रिन ! तुम हमारे यज्ञ को प्राप्त होने के लिए उस रथ पर चढ़ो, जिस को तुम स्वयं चलाते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अपने से संबंधित बहुत स्तोत्र हैं। इसी कारण तुम उर्वरा भूखण्डों पर वर्षा करने की इच्छा से वृष्टि के अवरोधकों को छिन्न-भिन्न करते हो। तुम कामनाओं को पूर्ण करने वाले हो। तुम सूर्य स्थान में वृष्टि को रोकने वाले दस्युओं से संग्राम करके उनके नाम को भी मिटा देते हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम ऋत्विक् और यजमान आदि सब तुम्हारे ही हैं। यज्ञानुष्ठान द्वारा हम तुम्हारे बल को बढ़ाते हैं और आहुति देने के लिए तुम्हारे समीप जाते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हारा बल सब में व्याप्त है। तुम्हारी कृपा से भग के समान प्रशंसा करने योग्य विश्वस्त भृत्यादि हमको कार्य-क्षेत्र में प्राप्त हों ॥ ५ ॥ [1]

पपृक्षेण्यमिन्द्र त्वे ह्योजो नृम्णानि च नृतमानो अमर्तः ।
स न एनीं वसवानो रयिं दाः प्रार्यः स्तुषे तुविमघस्य दानम् ॥६

एवा न इन्द्रोतिभिरव पाहि गृणतः शूर कारून् ।
उत त्वचं ददतो वाजसातौ पिप्रीहि मध्वः सुषुतस्य चारोः ॥ ७
उत त्ये मा पौरुकुत्स्यस्य सूरेस्त्रसदस्योर्हिरणिनो रराणाः ।
वहन्तु मा दश श्येतासो अस्य गैरिक्षितस्य क्रतुभिर्नु सश्चे ॥ ८
उत त्ये मा मारुताश्वस्य शोणाः क्रत्वामघासो विदथस्य रातौ ।
सहस्रा मे च्यवतानो ददान आनूकमर्यो वपुषे नार्चत् ॥ ९
उत त्ये मा ध्वन्यस्य जुष्टा लक्ष्मण्यस्य सुरुचो यतानाः ।
मह्ना रायः संवरणस्य ऋषेर्व्रजं न गावः प्रयता अपि ग्मन् ॥ १० । २

हे इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति पूजा करने के योग्य है, तुम अविनाशी एवम् सर्वत्र व्याप्त हो । तुम अपने तेज से संसार को आच्छादित करते हुए हमको उज्ज्वल धन प्रदान करो । हम ऐश्वर्यशाली दाता इन्द्र के दान के प्रशंसक हैं ॥६॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! हम तुम्हारा स्तवन करते हैं और यज्ञ करते हैं । तुम अपने रक्षा-साधनों द्वारा हमारी रक्षा करो । युद्ध में तुम अपने आश्रय को प्रदान करते हुए हमारे सुसिद्ध सोमरस का पान करो और हृष्ट होओ ॥ ७ ॥ गौरिक्षित "पुरुकुत्स" के पुत्र "त्रसदस्यु" वीर, सुवर्णादि ऐश्वर्य के स्वामी हैं । उन्होंने जो दस घोड़े हमको दिए थे, वे श्वेत रङ्ग के हैं । वे घोड़े हमको वहन करें । उनको रथ में जोड़ कर हम शीघ्र ही चलें ॥ ८ ॥ "मरुताश्व" के पुत्र विदथ ने जो लाल रङ्ग के द्रुतगामी घोड़े हमको दिए थे, वे हमको वहन करने वाले हों । उन्होंने हमको पूजनीय मानकर असंख्य धन तथा शरीर के अनुरूप प्रदान किए हैं ॥ ९ ॥ "लक्ष्मण" के पुत्र "ध्वन्य" ने हमको जो उज्ज्वल वर्ण का तथा अपने कर्म में यत्नवान् घोड़ा दिया था, वह हमको वहन करे । गौओं द्वारा गौशाला को प्राप्त करने के समान "ध्वन्य द्वारा दिया हुआ महान ऐश्वर्य सम्वरण" ऋषि के आश्रम को प्राप्त हो ॥ १० ॥ [२]

सुनोतन पचत ब्रह्मवाहसे पुरुष्टुताय प्रतरं दधातन ॥ १
आ यः सोमेन जठरमपिप्रतामन्दत मघवा मध्वो अन्धसः ।
यदीं मृगाय हन्तवे महावधः सहस्रभृष्टिमुशना वधं यमत् ॥ २
यो अस्मै घ्रंस उत वा य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमां अह ।
अपाप शक्रस्ततनुष्टिमूहति तनूशुभ्रं मघवा यः कवासखः ॥ ३
यस्यावधीत्पितरं यस्य मातरं यस्य शक्रो भ्रातरं नात ईषते ।
वेतीद्वस्य प्रयता यतङ्करो न किल्विषादीषते वस्व आकरः ॥ ४
न पञ्चभिर्दशभिर्वष्ट्यारभं नासुन्वता सचते पुष्यता चन ।
जिनाति वेदमुया हन्ति वा धुनिरा देवयुं भजति गोमति व्रजे ॥ ५।३

जिससे शत्रुता करने का कोई साहस नहीं करता तथा जो शत्रुओं का संहार करने वाले हैं, उनको कभी भी क्षीण न होने वाली, स्वर्गदायिनी, प्रचुर हवियाँ प्राप्त हों। हे ऋत्विग्गण ! उन इन्द्र के निमित्त पुरोडाश परिपक्व करो और श्रेष्ठ कर्मों में लगो। इन्द्र बहुतों द्वारा पूजित तथा स्तोत्रों के वहन करने वाले हैं ॥ १ ॥ इन्द्र ने अपने उदर को सोम रस से परिपूर्ण कर लिया और सुमधुर सोम-रस को पीकर मुदित हो गए। फिर मृग नामक असुर को हनन करने की इच्छा से उन्होंने अपने अत्यन्त तेजस्वी वज्र को हाथ में उठा लिया ॥ २ ॥ जो यजमान इन्द्र के निमित्त दिन-रात सोम सिद्ध करते हैं, वे अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। जो यजमान यज्ञ नहीं करते तो वे भी धर्म और संतान की इच्छा करते हैं सुन्दर आभूषणों को धारण करते हैं और विरुद्ध आचरण वाले व्यक्तियों की सहायता करते हैं उन यजमानों को सामर्थ्यवान इन्द्र त्याग देते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र, तुम जिसके पिता, माता अथवा भाई को भी दण्ड देते हो, उससे भी भयभीत नहीं होते और उसे सदैव नियन्त्रण में रखने का प्रयत्न करते हो। अपने ऐश्वर्य को सब ओर से संग्रह करने में कुशल इन्द्र पापी से भी भयभीत नहीं होते वरन् सदैव उसके नाश को ही प्रस्तुत रहते हैं। शत्रुओं का संहार

करने के लिए इन्द्र, पाँच, दस सहायकों को भी नहीं चाहते । जो व्यक्ति सोम सिद्ध नहीं करता तथा कुटुम्बियों का भी पालन नहीं करता, उसके साथ इन्द्र मेल नहीं रखते । शत्रुओं को कम्पायमान करने वाले इन्द्र उसका वध कर देते हैं । याज्ञिकों के गोष्ठ को इन्द्र गौओं से युक्त करते हैं ॥ ५ ॥ [३]

विचक्षणः समृतौ चक्रमासजोऽसुन्वतो विषुणः सुन्वतो वृधः ।
इन्द्रो विश्वस्य दमिता विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः ॥६
समीं पणेरजति भोजनं मुषे वि दाशुषे भजति सूनरं वसु ।
दुर्गे चन ध्रियते विश्व आ पुरु जनो यो अस्य तविषीमचुक्रुधत् ॥ ७
सं यज्जनौ सुधनौ विश्वशर्धसाववेदिन्द्रो मघवा गोषु शुभ्रिषु ।
युजं ह्यन्यमकृत प्रवेपन्युदी गव्यं सृजते सत्वभिर्धुनिः ॥८
सहस्रसामाग्निवेशिं गृणीषे शत्रिमग्न उपमा केतुमर्यः ।
तस्मा आपः संयतः पीपयन्त तस्मिन्क्षत्रममवत्त्वेषमस्तु ॥ ९ । ४

शत्रुओं को युद्ध में क्षीण करने वाले इन्द्र रथ के पहिए को तेज होने की शक्ति देते हैं । वे सोम सिद्ध न करने वाले से दूर रहते और सोमवान् को बढ़ाते हैं । वे इन्द्र संसार के प्रेरक तथा भय के उत्पादक हैं । वे दस्युओं को अपने वशीभूत करते हैं ॥ ६ ॥ इन्द्र वणिकों के समान धन-लाभ के लिए गमन करते हैं । मनुष्यों की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले उस धन को वे यज्ञ करने वाले यजमानों को प्रदान करते हैं । जो इन्द्र को कुपित करता है, वह मनुष्य घोर सङ्कट में पड़ जाता है ॥ ७ ॥ सुन्दर धन वाले तथा महान् सामर्थ्य वाले दो व्यक्ति जब परस्पर विद्वेष करते हैं, तब उनमें जो यजमान यज्ञ करने वाला होता है, इन्द्र उसकी सहायता करते हैं । मेघों को कम्पायमान करने वाले इन्द्र उस याज्ञिक यजमान को गौएं प्रदान करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! असंख्य धनों के देने वाले "अग्निवेश-पुत्र शत्रि ऋषि" की हम प्रशंसा करते हैं । वे अनुपमेय तथा प्रसिद्ध हैं । जल-राशि उन्हें भले प्रकार पुष्ट करे । उनका धन बल तथा प्रकाश से पूर्ण हो ॥ ९ ॥

३५ सूक्त

(ऋषि–प्रभूवसुराङ्गिरसः । देवता–इन्द्रः । छन्द–अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती)

यस्ते साधिष्ठोऽवस इन्द्र क्रतुष्टमा भर ।
अस्मभ्यं चर्षणीसहं सस्निं वाजेषु दुष्टरम् ॥ १

यदिन्द्र ते चतस्रो यच्छूर सन्ति तिस्रः ।
यद्वा पञ्च क्षितीनामवस्तत्सु न आ भर ॥ २

आ तेऽवो वरेण्यं वृषन्तमस्य हूमहे ।
वृषजूतिर्हि जज्ञिष आभूभिरिन्द्र तुर्वणिः ॥ ३

वृषा ह्यसि राधसे जज्ञिषे वृष्णि ते शवः ।
स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः सत्राहमिन्द्र पौंस्यम् ॥ ४

त्वं तमिन्द्र मर्त्यममित्रयन्तमद्रिवः ।
सर्वरथा शतक्रतो नि याहि शवसस्पते ॥ ५ । ५

हे इन्द्र ! तुम्हारा अत्यन्त, कार्य साधक कर्म हमारी रक्षा करने वाला हो । तुम्हारा कर्म सब मनुष्यों को पवित्र करने वाला तथा शुद्ध है । युद्धस्थल में वह किसी के द्वारा फीका नहीं किया जा सकता ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जो रक्षा-साधन चार वर्णों में हैं तथा जो रक्षा-साधन तीन लोकों में विद्यमान हैं, उन सब रक्षा-साधनों को तुम हमारे लिए भले प्रकार प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फल के सिद्ध करने वाले हो । तुम्हारे रक्षा-साधन ग्रहण करने योग्य हैं, हम उनकी याचना करते हैं । उन्हें तुम मरुद्गण सहित हमको प्राप्त कराने वाले होओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम इच्छित फलों की वर्षा करने वाले हो । तुम यजमानों को धन प्रदान करने के लिए ही उत्पन्न हुए हो । तुम्हारा बल फलों की वृष्टि करने में समर्थ है । तुम स्वभाव से पराक्रमी हो । विरोधियों का तुम सदा दमन करते हो । तुम्हारा पुरुषार्थ शत्रु-संघ को भी नाश करने में समर्थ है ॥४॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे रथ की चाल कभी मन्द नहीं पड़ती । तुम शक्ति के स्वामी एवं सैकड़ों शुभ कर्मों के करने वाले हो । जो मनुष्य तुमसे शत्रुता का व्यवहार करने को उद्यत होता है, उसे लक्ष्य कर तुम अपने बल सहित प्रयाण करते हो ॥ ५ ॥ [५]

त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः ।
उग्रं पूर्वीषु पूर्व्यं हवन्ते वाजसातये ॥ ६
अस्माकमिन्द्र दुष्टरं पुरोयावानमाजिषु ।
सयावानं धनेधने वाजयन्तमवा रथम् ॥ ७
अस्माकमिन्द्रेहि नो रथमवा पुरन्ध्या ।
वयं शविष्ठ वार्यं दिवि श्रवो दधीमहि दिवि स्तोमं मनामहे ॥ ८ । ६

हे इन्द्र ! हे शत्रुओं के हननकर्ता ! युद्धकाल उपस्थित होने पर मनुष्य तुम्हारा ही आह्वान करते हैं, क्योंकि तुम्हारे शस्त्र युद्ध के लिए सदा उद्यत रहते हैं। तुम अपनी प्रजाओं में प्राचीन हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे रथ के रक्षक होओ। यह रथ रणक्षेत्र में सब प्रकार के धनों की कामना करता है और दासों के साथ चलता है। उसे कोई रोक नहीं सकता। वह युद्ध क्षेत्र में घुसा चला जाता है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हमारे प्रति आत्मीयता का भाव रखते हुए पधारो। अपने श्रेष्ठ रक्षा-साधनों से हमारे रथ की रक्षा करो। तुम अत्यन्त बलवान् एवं प्रकाशमान् हो। तुम्हारी कृपा से हम वरण करने योग्य धनों को तुम्हारे द्वारा स्थापित करावें। तुम तेजस्वी हो। हम तुम्हारा भले प्रकार स्तवन करते हैं ॥ ८ ॥ [६]

३६ सूक्त

(ऋषि—प्रभूवसुराङ्गिरसः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

स आ गमदिन्द्रो यो वसूनां चिकेतद्दातुं दामनो रयीणाम् ।
धन्वचरो न वंसगस्तृषाणश्चकमानः पिबतु दुग्धमंशुम् ॥ १
आ ते हनू हरिवः शूर शिप्रे रुहत्सोमो न पर्वतस्य पृष्ठे ।
अनु त्वा राजन्नर्वतो न हिन्वन् गीर्भिर्मदेम पुरुहूत विश्वे ॥ २
चक्रं न वृत्तं पुरुहूत वेपते मनो भिया मे अमतेरिदद्रिवः ।
रथादधि त्वा जरिता सदावृध कुविन्नु स्तोषन्मघवन्पुरूवसुः ॥ ३
एष ग्रावेव जरिता त इन्द्रेयर्ति वाचं बृहदाशुषाणः ।

प्र सव्येन मघवन्यंसि रायः प्र दक्षिणिद्धरिवो मा वि वेनः ॥ ४
वृषा त्वा वृषणं वर्धतु द्यौर्वृषा वृषभ्यां वहसे हरिभ्याम् ।
स नो वृषा वृषरथः सुशिप्र वृषक्रतो वृषा वज्रिन्भरे धाः ॥५
यो रोहितौ वाजिनौ वाजिनीवान्त्रिभिः शतैः सचमानावदिष्ट ।
यूने समस्मै क्षितयो नमन्तां श्रुतरथाय मरुतो दुवोया ॥ ६ ।७

इन्द्र हमारे यज्ञ स्थान में आवें। जो वे देवता धनों के ज्ञाता हैं, उनका स्वरूप कैसा है ? वे इन्द्र ऐश्वर्य का दान करने वाले हैं और दानशील स्वभाव से युक्त हैं। धनुष सहित जाने वाले धनुर्धारी के समान साहस पूर्वक गमन करने वाले इन्द्र सोम-पीकर अपनी तृषा का निवारण करें ॥१॥ हे दो घोड़ों से युक्त इन्द्र ! हमारे द्वारा प्रदत्त सोम पर्वत की चोटी के समान तुम्हारे मुख प्रदेश पर पहुँचे। हे इन्द्र ! तुम सुशोभित हो। घास से जैसे अश्व तृप्त होते हैं, वैसे ही हम स्तुतियों से तुम्हें तृप्त करते हैं। तुम बहुतों द्वारा पूजित हो ॥ २ ॥ हे बहुस्तुत वज्रिन् ! पृथिवी पर स्थित पहिए के समान हमारा मन दारिद्र्य की आशंका से काँपता है। तुम सदा प्रवृद्ध हो। स्तुति करने वाले "पुरवसु" ऋषि तुम्हारी अत्यन्त स्तुति करते हैं। तुम रथ पर चढ़ कर उनके समक्ष पधारो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! प्राप्त फल को भोगने वाले स्तोता सोम कूटने के प्रस्तर के समान तुम्हारा स्तव करते हैं। तुम अश्ववान् एवं धनवान् हो। तुम अपने बाँए तथा दाँए हाथों से धन प्रदान करते हो। तुम हमारे मनोरथ को निष्फल नहीं करना ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के पूर्ण करने वाले हो। इच्छाओं की वर्षा करने वाली आकाश पृथिवी तुम्हें बढ़ावें। तुम वर्षा करने वाले हो। अश्व तुम्हें यज्ञ स्थान में लाते हैं। हे वज्रिन् तुम्हारा रथ मंगलों की वृष्टि करने वाला है। युद्ध में तुम हमारे रक्षक होओ ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण ! तुम इन्द्र के सहायक हो। ऐश्वर्यशाली राजा "श्रुतरथ" ने हमको लाल रङ्ग के दो घोड़े और तीन सौ गौऐं प्रदान की थीं। उस सतत युवा श्रुतरथ को उसकी सम्पूर्ण प्रजा अभिवादन करती और उसकी आज्ञा का पालन करती है ॥ ६ ॥ [७]

३७ सूक्त

(ऋषि—अत्रि। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

सं भानुना यतते सूर्यस्याजुह्वानो घृतपृष्ठः स्वञ्चाः।
तस्मा अमृध्रा उषसो व्युच्छान्य इन्द्राय सुनवामेत्याह ॥१
समिद्धाग्निर्वनवत्स्तीर्णबर्हिर्युक्तग्रावा सुतसोमो जराते।
ग्रावाणो यस्येषिरं वदन्त्ययदध्वर्युर्हविषाव सिन्धुम् ॥ २
वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं वहाते महिषीमिषिराम्।
आस्य श्रवस्याद्रथ आ च घोषात्पुरू सहस्रा परि वर्तयाते ॥ ३
न स राजा व्यथते यस्मिन्निन्द्रस्तीव्रं सोमं पिबति गोसखायम्।
आ सत्वनैरजति हन्ति वृत्रं क्षेति क्षितीः सुभगो नाम पुष्यन् ॥४
पुष्यात्क्षेमे अभि योगे भवात्युभे वृतौ संयती सं जयाति।
प्रियः सूर्ये प्रियो अग्ना भवाति य इन्द्राय सुतसोमो ददाशत् ॥ ५ ॥

विधिवत् आह्वान किये हुए अग्नि में हवि देने से अग्नि प्रज्वलित होकर सूर्य-रश्मियों से युक्त होने का प्रयत्न करते हैं। जो व्यक्ति 'इन्द्र के लिये यज्ञ करो' ऐसा कहता है, उसके लिये उषा अहिंसक होकर विविध रूपों में प्रकट होती है ॥ १ ॥ जो यजमान अग्नि को प्रदीप्त करते तथा कुश की वृद्धि करते हैं, वे यज्ञ-कर्म में नियुक्त होकर प्रस्तर द्वारा सोमरस को निकालते हुये स्तुति करते हैं। जो अध्वर्यु हव्य पदार्थ संग्रह करते हैं, वे सिन्धु के समान विस्तृत एवं सम्पन्न होते हैं ॥२॥ जैसे किसी स्त्री को सौभाग्यवती और पत्नी बनने के योग्य जान कर पुरुष उससे विवाह करता है, और वैसे ही वह महिषी भी पति की कामना करती हुई उसे प्राप्त होती है, उसी प्रकार इन्द्र का रथ हमारी कामना करता हुआ हमको प्राप्त हो। वह शब्द करता हुआ सब ओर से धन लावे ॥ ३ ॥ जिन यजमानों के यज्ञ में इन्द्र दुग्धयुक्त सोम रस को पीते हैं, वे यजमान कभी दुःखी नहीं होते। वे अपने अनुचरों के साथ जाते हुए शत्रुओं को मारते और प्रजा-रक्षण में समर्थ होते हैं। वे अनेक सुखों का उपभोग करते हुये इन्द्र की पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ जो इन्द्र के लि

सोम-रस देता है, वह अपने कुटुम्बियों को सुखी रखता है। वह अप्राप्त धन को पाने में सफल होता हुआ प्राप्त धन की रक्षा करने में समर्थ होता है। वह शत्रुओं को तिरस्कृत करता हुआ सूर्य और अग्नि दोनों का प्रिय होता है ॥ ५ ॥ [८]

३८ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः। देवता—इन्द्रः। छन्द—अनुष्टुप्)

उरोष्ट इन्द्र राधसो विभ्वी रातिः शतक्रतो ।
अधा नो विश्वचर्षणे द्युम्ना सुक्षत्र मंहय ॥ १

यदीमिन्द्र श्रवाय्यमिषं शविष्ठ दधिषे ।
पप्रथे दीर्घश्रुत्तमं हिरण्यवर्ण दुष्टरम् ॥ २

शुष्मासो ये ते अद्रिवो मेहना केतसापः ।
उभा देवावभिष्टये दिवश्च ग्मश्च राजथः ॥ ३

उतो नो अस्य कस्य चिद्दक्षस्य तव वृत्रहन् ।
अस्मभ्यं नृम्णमा भरास्मभ्यं नृमणस्यसे ॥ ४

नू त आभिरभिष्टिभिस्तव शर्मञ्छतक्रतो ।
इन्द्र स्याम सुगोपाः शूर स्याम सुगोपाः ॥ ५ । ६

हे इन्द्र ! तुमने सैकड़ों कल्याणकारी कार्य किये हैं। तुम अपने ऐश्वर्य का महान् दान करते हो। हे सबके देखने वाले, हे श्रेष्ठ बल और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तुम हमको असंख्य धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे सुवर्ण के समान कांतिमान् ! हे अत्यन्त शक्तिशालिन् इन्द्र ! तुम यशदायक अन्न के धारण करने वाले हो, अतः दीर्घकाल तक शत्रुओं से अपराजित रहते हुए हम यशोजनक अन्न-बल की वृद्धि करने में समर्थ हों ॥ २ ॥ हे वज्रिन् ! पूजन के पात्र सुविख्यात बल वाले मरुद्गण तुम्हारे बल से युक्त हैं। तुम और वे दोनों ही सूर्य के समान पृथिवी का पालन करते हुए उसे महान् ऐश्वर्य प्रदान करते हो ॥ ३ ॥ हे वृत्र का संहार करने वाले इन्द्र ! हम तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं। तुम हमको श्रेष्ठ धन लाकर देते हो, क्योंकि तुम हमारे लिये

धन की अभिलाषा करते हो ॥ ४ ॥ हे शतकर्मा इन्द्र ! तुम्हारे आश्रय में रहते हुए हम शीघ्र ही सुख से सम्पन्न हों । हे इन्द्र तुम्हारे सुख का भाग हम प्राप्त करें । हे वीर ! हम उत्तम भूमि और कुटुम्ब से युक्त हों ॥ ५ ॥ [६]

३९ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप, उष्णिक्, बृहती)

यदिन्द्र चित्र मेहनास्ति त्वादातमद्रिवः ।
राधस्तन्नो विदद्वस उभयाहस्त्या भर ॥ १
यन्मन्यसे वरेण्यमिन्द्र द्युक्षं तदा भर ।
विद्याम तस्य ते वयमकूपारस्य दावने ॥ २
यत्ते दित्सु प्रराध्यं मनो अस्ति श्रुतं बृहत् ।
तेन दृळ्हा चिदद्रिव आ वाजं दर्षि सातये ॥ ३
मंहिष्ठं वो मघोनां राजानं चर्षणीनाम् ।
इन्द्रमुप प्रशस्तये पूर्वीभिर्जुजुषे गिरः ॥ ४
अस्मा इत्काव्यं वच उक्थमिन्द्राय शंस्यम् ।
तस्मा उ ब्रह्मवाहसे गिरो वर्धन्त्यत्रयो गिरः शुम्भन्त्यत्रयः ॥ ५ । १०

हे इन्द्र ! हे वज्रधारिन् ! तुम अत्यन्त अद्भुत रूप वाले हो । तुम्हारे पास जो दान देने योग्य अमूल्य धन है, उसे हमारे लिए अपने दोनों हाथों से प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जिस अन्न को तुम उत्तम मानते हो, अपना वह अन्न हमको प्रदान करो । हम तुम्हारे उस उत्कृष्ट अन्न को प्राप्त करने के सर्वथा योग्य हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा मन दान देने के निमित्त विस्तीर्ण रहता है । हे वज्रिन् ! तुम हमको श्रेष्ठ पौष्टिक धन देने के लिए सदा इच्छा करते रहते हो ॥ ३ ॥ मनुष्यो ! इन्द्र हवि रूप धन से सम्पन्न हैं । वे तुम्हारे लिये अत्यन्त पूज्य तथा अखिल मनुष्यों के अधीश्वर हैं । स्तुति करने वाले पुरातन स्तोत्रों से उनकी स्तुति एवं परिचर्या करते हैं ॥ ४ ॥ उ

इन्द्र के लिये यह काव्य वचन कहने योग्य हुआ है। वे स्तोत्रों को बढ़ाते हैं। अत्रिपुत्र ऋषिगण उनके समक्ष ही स्तोत्रों को उच्चारित करते हुए उन्हें सुशोभित करते हैं ॥ ५ ॥ [१०]

४० सूक्त

(ऋषि-अत्रिः । देवता—इन्द्र, सूर्यः । छन्द-उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ याह्यद्रिभिः सुतं सोमं सोमपते पिब ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ १
वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ २
वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।
वृषन्निन्द्र वृषभिर्वृत्रहन्तम ॥ ३
ऋजीषी वज्री वृषभस्तुराषाट्छुष्मी राजा वृत्रहा सोमपावा ।
युक्त्वा हरिभ्यामुप यासदर्वाङ्माध्यन्दिने सवने मत्सदिन्द्रः ॥ ४
यत्त्वा सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अक्षेत्रविद्यथा मुग्धो भुवनान्यदीधयुः ॥ ५ । ११

हे इन्द्र ! हमारे यज्ञ में पधारो। हे सोमेश्वर इन्द्र ! प्रस्तर द्वारा सुसिद्ध सोम-रस आकर पान करो। हे फलों की वर्षा करने वाले, हे शत्रुओं का अत्यन्त संहार करने वाले इन्द्र ! तुम फलों की वर्षा करने वाले मरुद्गण के साथ सोम-पान करो ॥ १ ॥ अभिषव करने वाला प्रस्तर माधुर्य वर्षक है। सोम-पीने से उत्पन्न हुआ हर्ष कामनाओं की वर्षा करने वाला है। यह सुसिद्ध सोम, रस की वर्षा करने में समर्थ। हे फलों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र ! तुम मरुद्गण के साथ सोम-पान करो ॥ २ ॥ हे वज्रिन् ! तुम सोम के सेचनकर्त्ता और अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो। हम तुम्हारे अद्भुत रक्षा-साधनों की याचना करते हैं। हे फलों के वर्षक, हे शत्रुओं के उत्तम नाशक इन्द्र ! तुम मरुतों के साथ सोम-पान करो ॥ ३ ॥ इन्द्र वज्रधारी एवं अग्रणी हैं। वे अभीष्टों की वर्षा करने वाले, शत्रुओं का हनन

करने वाले, महाबली, सब के स्वामी, वृत्र के मारने वाले तथा सोम-रस के पीने वाले हैं। ऐसे इन्द्र अपने रथ में अश्वों को जोड़कर हमारे सामने आवें और मध्य सवन में सोम पीकर पुष्टि को प्राप्त हों ॥ ४ ॥ हे सूर्य, "स्वर्भानु" नामक दैत्य ने जब तुम्हें अन्धकार से ढक लिया था, उस समय सभी लोक एक सा दिखाई देता था। ऐसा लगता था कि वहाँ के निवासी विमूढ़ होगए हैं और अपने-अपने स्थान को भी वे नहीं जान रहे हैं ॥ ५ ॥ [11]

स्वर्भानोरध यदिन्द्र माया अवो दिवो वर्त्तमाना अवाहन् ।
गूळ्हं सूर्यं तमसापव्रतेन तुरीयेण ब्रह्मणाविन्ददत्रिः ॥ ६
मा मामिमं तव सन्तमत्र इरस्या द्रुग्धो भियसा नि गारीत् ।
त्वं मित्रो असि सत्यराधास्तौ मेहावतं वरुणश्च राजा ॥ ७
ग्राव्णो ब्रह्मा युयुजानः सपर्यन् कीरिणा देवान्नमसोपशिक्षन् ।
अत्रिः सूर्यस्य दिवि चक्षुराधात्स्वर्भानोरप माया अघुक्षत् ॥ ८
यं वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसाविध्यदासुरः ।
अत्रयस्तमन्वविन्दन्नह्य न्ये अशक्नुवन् ॥ ९ । १२

हे इन्द्र ! जब तुमने "स्वर्भानु" की तेजस्विनी माया का निवारण किया था, तब व्रत को नष्ट करने वाले अन्धकार द्वारा ढके हुए सूर्य को अत्रि की चार ऋचाओं द्वारा प्रकट कर दिया ॥ ६ ॥ सूर्य ने कहा—हे अत्रि ऋषि ! हम ऐसी अवस्था में तुम्हारी ही रक्षा चाहते हैं। अन्न की कामना वाला द्रोही राक्षस इस डरावने अंधकार के द्वारा मुझे निगल न ले। इसलिए तुम और वरुण दोनों ही हमारे रक्षक होओ। तुम सत्य के पालनकर्त्ता और हमसे मित्र-भाव रखने वाले हो ॥ ७ ॥ उस समय ऋत्विक् अत्रि ने सूर्य को नमस्कार कर स्तुति की, पत्थरों से कूट कर इन्द्र के लिए सोम सिद्ध किया, स्तोत्रों द्वारा अन्तरिक्ष में सूर्य के चक्षु को धारण किया। उस समय "स्वर्भानु" की सब माया उन्होंने दूर कर दी ॥ ८ ॥ जिस सूर्य को "स्वर्भानु" ने अपनी माया से अन्धकार द्वारा ढक दिया था, उन सूर्य को मुक्त करने में अत्रिपुत्र के सिवाय अन्य कोई भी समर्थ न हो सका ॥ ९ ॥ [१२]

४१ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप् पंक्तिः, जगती)

को नु वां मित्रावरुणावृतायन्दिवो वा महः पार्थिवस्य वा दे ।
ऋतस्य वा सदसि त्रासीथां नो यज्ञायते वा पशुषो न वाजान् ॥ १
ते नो मित्रो वरुणो अर्यमायुरिन्द्र ऋभुक्षा मरुतो जुषन्त ।
नमोभिर्वा ये दधते सुवृक्ति स्तोमं रुद्राय मीळ्हुषे सजोषाः ॥ २
आ वां येष्ठाश्विना हुवध्यै वातस्य पत्मन्रथ्यस्य पुष्टौ ।
उत वा दिवो असुराय मन्म प्रान्धांसीव यज्यवे भरध्वम् ॥ ३
प्र सक्षणो दिव्यः कण्वहोता त्रितो दिवः सजोषा वातो अग्निः ।
पूषा भगः प्रभृथे विश्वभोजा आजिं न जग्मुराश्वश्वतमाः ॥ ४
प्र वो रयिं युक्ताश्वं भरध्वं राय एषेऽवसे दधीत धीः ।
सुशेव एवैरौशिजस्य होता ये व एवा मरुतस्तुराणाम् ॥ ५ । १३

हे मित्रावरुण ! तुम्हारे निमित्त यजन करने की इच्छा करने वाला कौन-सा यजमान यज्ञ करने में समर्थ होता है ? तुम दोनों आकाश भूमंडल अथवा अन्तरिक्ष इनमें से किस स्थान में रहकर हमारा पालन करते तथा हवि-दाता को अन्न और पशु देते हो ? ॥ १ ॥ हे मित्र, वरुण, अर्यमा, इन्द्र, ऋभुक्षा, आयु और मरुद्गण तुम मनुष्यों को स्नेह पूर्वक चाहने वाले हो । जो वर्षणशील, शत्रुओं को रुलाने वाले एवं उत्तम स्तुतियों के धारण करने वाले हैं वे सभी साधन और शक्ति से युक्त होकर हमारे प्रति स्नेह करें ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दमन करने में समर्थ हो । हम तुम्हारे रस को वेगवान् करने के लिए बुलाते हैं । हे ऋत्विको ! तुम तेजस्वी और प्राणों का अपहरण करने में समर्थ रुद्र के लिये हव्य और स्तुति प्रस्तुत करो ॥ ३ ॥ विद्वज्जन जिन्हें आहूत करते हैं, जो यज्ञानुष्ठान को स्वीकार करते हैं, जो शत्रुओं का संहार करने में समर्थ हैं, वे वायु, अग्नि, पूषा प्रकट होकर सूर्य के समान प्रीति करने वाले हों । यह सभी देवता संहार के आश्रय रूप हैं । यह हमारे यज्ञ में, वेगवान् अश्व के युद्ध में वेग से दौड़ने के समान, शीघ्र आवें ॥ ४ ॥

हे मरुद्गण ! तुम हमारे लिए अश्व युक्त धन प्राप्त कराओ। स्तुति करने वाले गौ अश्वादि धन की कामना से तथा प्राप्त धन की रक्षा के लिए तुम्हारा स्तवन करते हैं। उशिज-पुत्र कक्षीवान् के होता अग्नि गमनशील अश्व पाकर सुखी हों॥ ५॥ [१३]

प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वं प्र देवं विप्रं पनितारमर्कैः।
इषुध्यव ऋतसापः पुरन्धीर्वस्वीर्नो अत्र पत्नीरा धिये धुः॥ ६
उप व एषे वन्द्येभिः शूषैः प्र यह्वी दिवश्चितयद्भिरर्कैः।
उषासानक्ता विदुषीव विश्वमा हा वहतो मर्त्याय यज्ञम्॥ ७
अभि वो अर्चे पोष्यावतो नृन्वास्तोष्पतिं त्वष्टारं रराणः।
धन्या सजोषा धिषणा नमोभिर्वनस्पतीँरोषधी राय एषे॥ ८
तुजे नस्तने पर्वताः सन्तु स्वैतवो ये वसवो न वीराः।
पनित आप्त्यो यजतः सदा नो वर्धान्नः शंसं नर्यो अभिष्टौ॥ ९
वृष्णो अस्तोषि भूम्यस्य गर्भं त्रितो नपातमपां सुवृक्ति।
गृणीते अग्निरेतरी न शूषैः शोचिष्केशो नि रिणाति वना॥ १०।१४

हे ऋत्विको ! उज्ज्वल, कामनाओं के पूर्ण करने वाले, ब्राह्मण के समान पूजनीय, स्तुति के पात्र एवं फल प्रदान करने वाले वायु देवता को यज्ञ स्थान पर बुलाने के लिए स्तोत्रों द्वारा रथ पर चढ़ाओ। यज्ञ को ग्रहण करने वाली, सुन्दर रूपवाली, प्रशंसा की पात्री देवांगनाएँ भी हमारे यज्ञ में आवें॥ ६॥ हे दिन और रात्रि ! तुम दोनों महान् हो। हम, वन्दना के योग्य दिव्य लोक वासी देवताओं के साथ तुम दोनों को भी सुन्दर तेजस्वी स्तोत्र और हवि देते हैं। हे देवगण ! तुम कर्मों को जानते हुए यजमान के यज्ञ में पधारो॥७॥ तुम सब देवता मनुष्यों के रक्षक और यज्ञ में अग्रगण्य रहते हो। स्तोत्र द्वारा अथवा हव्य प्रदान करते हुए धन प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा स्तवन करते हैं। त्वष्टा, वाणी, वनस्पति और औषधियों की हम स्तुति करते हैं॥ ८॥ संसार के पालनकर्त्ता मेघ, असीमित दान के लिए हमारे अनुकूल हों। वे स्तुतियों के पात्र, यज्ञ के योग्य, मनुष्यों का हित-साधन करने वाले हमारी स्तुति के द्वारा

प्रसन्न होते हुए हमको इस प्रकार सुसम्पन्न करें ॥ ९ ॥ हम वृष्टिकारक, अन्तरिक्ष के गर्भ में स्थित के पालनकर्त्ता विद्युत रूप अग्नि की, पाप नाशक स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। वे अग्नि तीन रूप वाले तथा तीन स्थानों में व्याप्त हैं। वे सुख देने वाले अग्नि मेरे चलने के समय मुझ पर क्रोधित नहीं होते, किन्तु अपनी तेजोमयी ज्वालाओं से वनों को भस्म करते हैं ॥ १० ॥ [१४]

कथा महे रुद्रियाय ब्रवाम कद्राये चिकितुषे भगाय ।
आप ओषधीरुत नोऽवन्तु द्यौर्वना गिरयो वृक्षकेशाः ॥११
शृणोतु न ऊर्जां पतिर्गिरः स नभस्तरीयाँ इषिरः परिज्मा ।
शृण्वन्त्वापः पुरो न शुभ्राः परि स्रुचो बबृहाणस्याद्रेः ॥ १२
विदा चिन्नु महान्तो ये व एवा ब्रवाम दस्मा वार्यं दधानाः ।
वयश्चन सुभ्व आव यन्ति क्षुभा मर्तमनुयतं वधस्नैः ॥१३
आ दैव्यानि पार्थिवानि जन्मापश्चाच्छा सुमखाय वोचम् ।
वर्धन्तां द्यावो गिरश्चन्द्राग्रा उदा वर्धन्तामभिषाता अर्णाः ॥१४
पदेपदे मे जरिमा नि धायि वरूत्री वा शक्रा या पायुभिश्च ।
सिषक्तु माता मही रसा नः स्मत्सूरिभिर्ऋजुहस्त ऋजुवनिः ॥१५।१५

हम अत्रि-वंशज, रुद्र के पुत्र मरुद्गण की किस भाँति उपासना करें ? सर्वज्ञाता भगदेवता के लिए, धन प्राप्ति के निमित्त किस स्तोत्र का पाठ करें ? जल, ओषधियाँ, आकाश, वन एवं वृक्ष जिन पर्वतों के केश समान हैं, वे हमारे रक्षक बनें ॥ ११ ॥ बल और अन्न के अधीश्वर और आकाश में विचरणशील वायु देवता हमारे स्तोत्र को श्रवण करें। नगरों के समान शुभ्र, जल की धारा हमारी स्तुति ग्रहण करें ॥१२॥ हे मरुद्गण ! तुम महान् हो। हमारे स्तोत्रों को शीघ्र जानो। हम तुम्हारे स्तोता हैं। उत्तम हवियाँ एकत्र कर तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम हमारे अनुकूल होकर आओ। शत्रुओं को अस्त्रों द्वारा हनन करके हमारे पास पधारो ॥ १३ ॥ हम देवताओं के लिए, पृथिवी के लिए, जन्म और विजय-प्राप्ति के लिए शोभनकर्मा मरुद्गण की स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ बढ़ें। दिव्यलोक हमको समृद्ध बनावे।

नदियों को मरुद्गण जल से परिपूर्ण करें ॥ १४ ॥ जो सभी विघ्नों को शांत करके हमारी रक्षा करने में सक्षम हैं, वह सभी को जन्म देने वाली पृथिवी हमारी स्तुतियों को स्वीकार करे। हम सदा उनकी स्तुति करते हैं। समृद्ध वाणी से युक्त स्तुति करने वालों के प्रति अनुकूल होती हुई, कृपापूर्ण हाथ को उठाकर वह हमारा कल्याण करे ॥ १५ ॥ [१५]

कथा दाशेम नमसा सुदानूनेवया मरुतो अच्छोक्तौ प्रश्रवसो मरुतो
अच्छोक्तौ ।
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धादस्माकं भूदुपमातिवनिः ॥ १६
इति चिन्नु प्रजायै पशुमत्यै देवासो वनते मर्त्यो व आ देवासो वनते
मर्त्यो वः ।
अत्रा शिवां तन्वो धासिमस्या जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत ॥ १७
तां वो देवाः सुमतिमूर्जयन्तीमिषमश्याम वसवः शसा गोः ।
सा नः सुदानुर्मृळयन्ती देवी प्रति द्रवन्ती सुविताय गम्याः ॥ १८
अभि न इळा यूथस्य माता स्मन्नदीभिरुर्वशी वा गृणातु ।
उर्वशी वा बृहद्दिवा गृणानाभ्यूर्ण्वाना प्रभृथस्यायोः ॥ १९
सिषक्तु न ऊर्जव्यस्य पुष्टेः ॥ २० । १६

इन दानशील मरुद्गण की स्तुति हम कैसे करें ? कौन से स्तोत्र द्वारा उनकी पूजा करें ? क्या वर्तमान स्तोत्र से मरुद्गण की स्तुति करना संभव है ? अहिर्बुध्न्यदेव हमारा अमंगल न करें, वरन् वे हमारे शत्रुओं का संहार करें ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! यजमान लोग संतति और पशु-प्राप्ति निमित्त तुम्हारी पूजा करते हैं। वे सुखकारी अन्न से हमारे देह को पुष्ट करें और बुढ़ापे को हमसे दूर ही रखें ॥ १७ ॥ हे तेजस्वी वसुओ ! हमारी धेनु रूपी सुन्दर बुद्धि द्वारा हम हृष्टकारी तथा पोषक अन्न को प्राप्त करें। वह दानमय स्वभाव वाली तथा सर्व सुखों के देने वाली बुद्धि रूप देवी हमारे कल्याण के लिए हमको शीघ्र ही प्राप्त हो ॥ १८ ॥ गवादि समूह के देने वाली इडा और उर्वशी जल पूर्ण नदियों के साथ सुसंगत हुई हमारे अनुकूल हों।

उर्वशी हमारे यज्ञादि कार्यों की प्रशंसा करती हुई यजमानों को अपने तेज से परिपूर्ण करती हुई यहाँ पधारें ॥ १६ ॥ पोषण करने वाले "ऊर्जव्य" राजा का देश अत्यन्त शक्ति तथा समृद्धि को प्राप्त करे ॥ २० ॥ [१६]

४२ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र शन्तमा वरुणं दीधिती गीर्मित्रं भगमदितिं नूनमश्याः ।
पृषद्योनिः पञ्चहोता शृणोत्वतूर्तपन्था असुरो मयोभुः ॥ १
प्रति मे स्तोममदितिर्जगृभ्यात्सूनुं न माता हृद्यं सुशेवम् ।
ब्रह्म प्रियं देवहितं यदस्त्यहं मित्रे वरुणे यन्मयोभु ॥ २
उदीरय कवितमं कवीनामुनत्तैनमभि मध्वा घृतेन ।
स नो वसूनि प्रयता हितानि चन्द्राणि देवः सविता सुवाति ॥ ३
समिन्द्र णो मनसा नेषि गोभिः सं सूरिभिर्हरिवः सं स्वस्ति ।
सं ब्रह्मणा देवहितं यदस्ति सं देवानां सुमत्या यज्ञियानाम् ॥ ४
देवो भगः सविता रायो अंश इन्द्रो वृत्रस्य सञ्जितो धनानाम् ।
वाज ऊत वा पुरन्धिरवन्तु नो अमृतासस्तुरासः ॥ ५ । १७

दी हुई हवियों के साथ हमारे सुखदायक स्तोत्र वरुण, मित्र, भग सूर्य के पास पहुँचें । पञ्च वायु के साधनभूत, अन्तरिक्ष में रहने वाले, अप्रतिहत गति वाले, प्राणों के देने वाले, सुख के प्रवर्त्तक वायु हमारे स्तोत्र को सुनें ॥ १ ॥ हमारे अन्तःकरण से निकले हुए स्तोत्र को अदिति अपने पुत्र को ग्रहण करने के समान ग्रहण करें । हम उषा और रात्रि, मित्र और वरुण के लिए सुखदायक तथा देवताओं के ग्रहण करने योग्य स्तोत्र प्रदान करें ॥ २ ॥ हे ऋत्विग्गण ! तुम अत्यन्त तेजस्वी अग्नि को प्रदीप्त करो । मधुर सोम और घृत से इन्हें सींचो । वे आदित्य हमको शुद्ध, प्रसन्नताप्रद और हितकारी सुवर्ण दें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होकर गवादि धन देते हो । हे अश्विनीकुमारों से युक्त इन्द्र ! तुम हमको विद्वान् पुत्र, सुख, दिव्य अन्न तथा देवताओं की कृपा प्राप्त कराने वाले हो ॥ ४ ॥ ऐश्वर्यों के स्वामी सवितादेव

मग, वृत्र-संहारक इन्द्र, सर्व प्रकार धनों को वशीभूत करने वाले ऋभुक्षा, पुरन्धि आदि सभी अमरत्व प्राप्त देवता हमारे यज्ञ स्थान में आकर शीघ्र हमारे रक्षक हों ॥ २ ॥ [१७]

मरुत्वतो अप्रतीतस्य जिष्णोरजूर्यतः प्र ब्रवामा कृतानि ।
न ते पूर्वे मघवन्नापरासो न वीर्यं नूतनः कश्चनाप ॥ ६
उप स्तुहि प्रथमं रत्नधेयं बृहस्पतिं सनितारं धनानाम् ।
यः शंसते स्तुवते शम्भविष्ठः पुरूवसुरागमज्जोहुवानम् ॥ ७
तवोतिभिः सचमाना अरिष्टा बृहस्पते मघवानः सुवीराः ।
ये अश्वदा उत वा सन्ति गोदा ये वस्त्रदाः सुभगास्तेषु रायः ॥ ८
विसर्माणं कृणुहि वित्तमेषां ये भुञ्जते अपृणन्तो न उक्थैः ।
अपव्रतान्प्रसवे वावृधानान्ब्रह्मद्विषः सूर्याद्यावयस्व ॥ ९
य ओहते रक्षसो देववीतावचक्रेभिस्तं मरुतो नि यात ।
यो वः शमीं शशमानस्य निन्दात्तुच्छ्यान्कामान्करते
सिष्विदानः ॥ १० । १८

हम यजमान मरुद्गण से युक्त इन्द्र के कार्यों का बखान करते हैं। वे कभी युद्ध क्षेत्र से हटते नहीं। वे सदा विजय करने वाले तथा कभी भी वृद्ध न होने वाले हैं। हे इन्द्र ! कोई भी पुरातन पुरुष तुम्हारे बल की समानता नहीं करते। उनके पश्चात् होने वाले व्यक्ति भी तुम्हारी समानता नहीं कर सके। कोई नवीन पराक्रमी भी तुम्हारी समता नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ हे विप्र ! तुम श्रेष्ठ ज्ञान के देने वाले बृहस्पति का स्तवन करो। वे हविरन्न के विभाजक हैं। वे स्तोता को अत्यन्त सुख देते हैं, बुलाने वाले यजमान के पास श्रेष्ठ धन लेकर पहुँचते हैं ॥ ७ ॥ हे बृहस्पते ! तुम्हारे द्वारा पोषित होने पर मनुष्य विघ्नों से बचते तथा धन और पुत्रों से सम्पन्न होते हैं। तुम्हारी कृपा प्राप्त कर जो धनिक गो-अश्वादि दान करे, उसे धन-प्राप्ति हो ॥ ८ ॥ हे बृहस्पते ! जो स्तोता हमको दान-भाग न देकर स्वयं ही उसका उपभोग करता है, जो यज्ञानुष्ठान नहीं करता, जो मंत्र से द्वेष करता है, उसको धन-

हीन बनादो। यदि वह मनुष्य सन्तान से युक्त हुआ वृद्धि को प्राप्त हो रहा है, तो तुम उसे सूर्य-दर्शन न होने दो ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण! जो यजमान देवताओं के यज्ञ में आसुरी वृत्ति से कर्म करता है, जो अन्न, पशु आदि के द्वारा भोग-कामना से क्लेश में पड़ता है अथवा जो तुम्हारे स्तोता की निन्दा करता है, तुम उसे बिना पहिए के रथ में डालकर अन्धकूप में डाल देते हो ॥ १० ॥ [१८]

तमु ष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य ।
यक्ष्वा महे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देवमसुरं दुवस्य ॥ ११
दमूनसो अपसो ये सुहस्ता वृष्णः पत्नीर्नद्यो विभ्वतष्टाः ।
सरस्वती बृहद्दिवोत राका दशस्यन्तीर्वरिवस्यन्तु शुभ्राः ॥ १२
प्र सू महे सुशरणाय मेधां गिरं भरे नव्यसीं जायमानाम् ।
य आहना दुहितुर्वक्षणासु रूपा मिनानो अकृणोदिदं नः ॥ १३
प्र सुष्टुतिः स्तनयन्तं रुवन्तमिळस्पतिं जरितर्नूनमश्याः ।
यो अब्दिमाँ उदनिमाँ इयर्ति प्र विद्युता रोदसी उक्षमाणः ॥१४
एषः स्तोमो मारुतं शर्धो अच्छा रुद्रस्य सूनूँर्युवन्यूँरुदश्याः ।
कामो राये हवते मा स्वस्त्युप स्तुहि पृषदश्वाँ अयासः ॥ १५
प्रैषः स्तोमः पृथिवीमन्तरिक्षं वनस्पतीँरोषधी राये अश्याः ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १६
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १७
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १८ । १९

हे चित्र! रुद्र का स्तव करो। उनके बाण शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हैं। वे सभी औषधादि के स्वामी हैं। वे जन कल्याण करने वाले शक्तिमान् तथा देह धारियों को प्राण देने वाले हैं। उन रुद्रदेव का यजन तथा सेवा करो ॥ ११ ॥ सुन्दर, मनस्वी, चमस, अश्व, रथ, गौ आदि के कुशल निर्माता ऋभुगण, वृष्टिकारी इन्द्र की पत्नी रूप नदियाँ, तेजस्विनी रात्रि आदि

सभी हमको धन प्रदान करें ॥ १२ ॥ महान्, सुन्दर रक्षा करने वाले इन्द्र के लिए हम तुरन्त रची गई स्तुति भेंट करते हैं। वे इन्द्र वृष्टिकर्त्ता हैं। वे भूमि के हित-साधन के लिए नदियों का रूप निश्चित करते और हमको जल प्राप्त कराते हैं ॥ १३ ॥ हे मनुष्यो ! तुम्हारी सुन्दर स्तुति गर्जन करने, शब्दवान् जल के स्वामी को प्राप्त हो। वे मेघों के धारण करने वाले हैं तथा वे जल वृष्टि करते हुए आकाश और पृथिवी को विद्युत के प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं ॥ १४ ॥ हमारी स्तुति रुद्र-पुत्र मरुद्गण के समक्ष ठीक प्रकार पहुँचे। धन की कामना हमको निरन्तर प्रेरणा देती है। चित्र विचित्र वर्ण वाले घोड़े पर चढ़कर जो मरुत् चलते हैं, उन मरुद्गण की स्तुति करो ॥१५॥ हमारे द्वारा प्रस्तुत यह स्तोत्र धन के निमित्त पृथिवी, आकाश, वृक्ष और औषधियों के पास पहुँचे। हमारे निमित्त सब देवताओं का आह्वान किया जाय। पृथिवी माता हमको कुबुद्धि में ही न पड़ा रहने दें ॥ १६ ॥ हे देवताओ ! हम सभी महान्, पीड़ा एवं विघ्न रहित, सुख से पूर्ण स्थान में में निवास करें ॥ १७ ॥ हम अश्विनीकुमारों के उन रक्षा-साधनों को प्राप्त करें, जिन्हें पहिले कोई जानता ही न था। वे रक्षा-साधन आनन्द के देने वाले तथा सुख को उत्पन्न करने वाले हैं। हे अविनाशी अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको वीर पुत्र, धन तथा सभी स्थिर सौभाग्यों को प्राप्त कराओ ॥१८॥ [१३]

४३ सूक्त

(ऋषि-अत्रिः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ धेनवः पयसा तूर्ण्यर्था अमर्धन्तीरुप नो यन्तु मध्वा ।
महो राये बृहतीः सप्त विप्रो मयोभुवो जरिता जोहवीति ॥ १
आ सुष्टुती नमसा वर्तयध्यै द्यावा वाजाय पृथिवी अमृध्रे ।
पिता माता मधुवचाः सुहस्ता भरेभरे नो यशसावविष्टाम् ॥ २
अध्वर्यवश्चकृवांसो मधूनि प्र वायवे भरत चारु शुक्रम् ।
होतेव नः प्रथमः पाह्यस्य देव मध्वो ररिमा ते मदाय ॥ ३
दश क्षिपो युञ्जते बाहू अद्रि सोमस्य या शमितारा सुहस्ता ।

मध्वो रसं सुगभस्तिर्गिरिष्ठां चनिश्चदद् दुदुहे शुक्रमंशुः ॥ ४
असावि ते जुजुषाणाय सोमः क्रत्वे दक्षाय बृहते मदाय ।
हरी रथे सुधुरा योगे अर्वागिन्द्र प्रिया कृणुहि हूयमानः ॥ ५ । २०

वेग से बहने वाली नदियाँ मधुर जल के सहित निर्बाध गति से हमारे पास आवें। अत्यन्त प्रीति वाले स्तोता श्रेष्ठ ऐश्वर्य के लिये, सुख के कारण-भूत सप्त महा नदियों को आहूत करें ॥ १ ॥ अन्न प्राप्ति के लिये हम श्रेष्ठ स्तोत्र और हवि द्वारा अहिंसित रहते हुए आकाश-पृथिवी को प्रसन्न करना चाहते हैं। प्रिय वाणी, वरद हस्त और यश से युक्त माता पिता रूप आकाश-पृथिवी रणक्षेत्र में हर प्रकार हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥ हे अध्वर्यु गण ! तुम मधुर हवियाँ उपस्थित करो और तेजस्वी सोम को वायु की भेंट करो। हे वायो ! इस सोम रस को अन्य देवताओं से पहले ही होता के समान पान कर लो। यह मधुर सोम रस तुम्हें प्रसन्न करने के लिए प्रस्तुत है ॥ ३ ॥ ऋत्विकों की सोम निचोड़ने वाली दसों अंगुलियाँ तथा सोम कूटने में चतुर दोनों भुजायें पत्थर को प्राप्त करती हैं। कुशल अंगुलियों वाले ऋत्विक् प्रसन्नता पूर्वक माधुर्यमय सोम से रस निकालते हैं तब उससे स्वच्छ रस प्राप्त होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे हृष्ट होने के निमित्त तथा वृत्र-हनन कार्य में प्रयुक्त करने के हेतु, तुम्हें बल और हर्ष प्राप्त कराने के लिये सोमरस भेंट करते हैं। हे इन्द्र हम तुम्हें इसीलिये बुलाते हैं। तुम अपने चतुर दोनों घोड़ों को रथ में जोड़कर हमारे पास आओ ॥ ५ ॥ [२०]

आ नो महीमरमतिं सजोषा ग्नां देवीं नमसा रातहव्याम् ।
मधोर्मदाय बृहतीमृतज्ञामाग्ने वह पथिभिर्देवयानैः ॥ ६
अञ्जन्ति यं प्रथयन्तो न विप्रा वपावन्तं नाग्निना तपन्तः ।
पितुर्न पुत्र उपसि प्रेष्ठ आ घर्मो अग्निमृतयन्नसादि ॥ ७
अच्छा मही बृहती शन्तमा गीर्दूतो न गन्त्वश्विना हुवध्यै ।
मयोभुवा सरथा यातमर्वाग्गन्तं निधिं धुरमाणिर्न नाभिम् ॥ ८
प्र तव्यसो नमउक्तिं तुरस्याहं पूष्ण उत वायोरदिक्षि ।

या राधसा चोदितारा मतीनां या वाजस्य द्रविणोदा उत त्मन् ॥६
आ नामभिर्मरुतो वक्षि विश्वाना रूपेभिर्जातवेदो हुवानः ।
यज्ञं गिरो जरितुः सुष्टुतिं च विश्वे गन्त मरुतो विश्व ऊती ॥ १०।२१

हे अग्ने ! तुम हम पर स्नेह करते हुए मधुर सोम रस को पीकर पराक्रमी होने के लिए देवों के लक्षित मार्ग में ज्ञान रूपिणी वाणी को हमें प्राप्त कराओ । वह सर्वशक्ति सम्पन्ना देवी सर्वत्र गमन करती हुई हमारे यज्ञ को जाने । उसकी प्रेरणा से स्तोत्र सहित हवियों को हम समर्पित करें ॥ ६ ॥ पिता की गोद में प्रिय पुत्र के बैठने के समान ज्ञानी अध्वर्युओं ने अग्नि के ऊपर हव्य पात्र रखा है । उस समय यह जान पड़ता है जैसे विशाल शक्ति से युक्त व्यक्ति अग्नि द्वारा तपाया जा रहा है ॥ ७ ॥ हमारा यह पूज्य, सुख प्रदान करने वाला महान् स्तोत्र अश्विनीकुमारों को यहाँ लाने के लिये दूत के समान उनके पास पहुँचे । हे सुखदाता अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों एक ही रथ पर चढ़ कर हमारे द्वारा भेंट किये जाने वाले सोम के पास आओ । जैसे बिना धुरे के रथ नहीं चलता, वैसे ही बिना तुम्हारे सोमयाग भी पूर्ण नहीं होता ॥ ८ ॥ हम वेगवान् तथा पराक्रमी पूषा और वायु का स्तवन करते हैं । यह दोनों देवता अन्न और धन के निमित्त बुद्धि का प्रेरणा करें और जो देवता कर्मक्षेत्र में नियुक्त होते हैं, वे हमको धन दें ॥ ९ ॥ हे जन्म लेने वालों के ज्ञाता अग्निदेव ! हमारे द्वारा बुलाये जाकर तुम विभिन्न देवताओं को मरुद्गण सहित यज्ञ में लाते हो । हे मरुद्गण ! तुम अपने श्रेष्ठ रक्षा साधनों सहित यज्ञ-स्थान में पधारो और सुन्दर स्तुति युक्त उपासना को ग्रहण करो ॥ १० ॥ [२१]

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादा सरस्वती यजता गन्तु यज्ञम् ।
हवं देवी जुजुषाणा घृताची शग्मां नो वाचमुशती शृणोतु ॥ ११
आ वेधसं नीलपृष्ठं बृहन्तं बृहस्पतिं सदने सादयध्वम् ।
सादद्योनिं दम आ दीदिवांसं हिरण्यवर्णमरुषं सपेम ॥१२
आ धर्णसिर्बृहद्दिवो रराणो विश्वेभिर्गन्त्वोमभिर्हुवानः ।
ग्ना वसान ओषधीरमृध्रस्त्रिधातुशृङ्गो वृषभो वयोधाः ॥ १३

मातुष्पदे परमे शुक्रआयोर्विपन्यवो रास्पिरासो अग्मन् ।
सुशेव्यं नमसा रातहव्याः शिशुं मृजन्त्यायवो न वासे ॥ १४
बृहद्वयो बृहते तुभ्यमग्ने धियाजुरो मिथुनासः सचन्त ।
देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यं मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् ॥ १५
उरौ देवा अनिबाधे स्याम ॥ १६
समश्विनोरवसा नूततेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ १७ । २२

प्रकाशमान् आकाश से देवी सरस्वती हमारे यज्ञ में पधारें । हमारी स्तुति से हर्ष को प्राप्त हुई वह अपने मन से हमारे मङ्गलकारी स्तोत्रों को श्रवण करें ॥ ११ ॥ रक्षा करने वाले पराक्रमी बृहस्पति की यज्ञ स्थान में स्थापना करो, वे घर के मध्य में विराजमान होकर ज्ञान को बढ़ाते हैं । वे सुवर्ण के समान वर्ण वाले तथा तेजस्वी हैं । हम उन महान् का उत्तम प्रकार से पूजन करते हैं ॥ १२ ॥ वे अग्निदेव सब के धारण करने वाले हैं । वे अत्यन्त प्रकाशमान्, कामनाओं की वर्षा करने वाले और औषधियों की वृद्धि करने वाले हैं । वे सुन्दर गतिवाले तथा त्रिविध (लाल, श्वेत, काली) ज्वालाओं से युक्त हैं । वे वृष्टिकारक एवं अन्न प्रदान करने वाले हैं । हम उनको बुलाते हैं, वे अपने पूर्ण रक्षा-साधनों सहित यहाँ आवें ॥ १३ ॥ होता, हव्य पात्र को धारण करने वाले ऋत्विक पृथिवी माता के सर्व श्रेष्ठ स्थान पर जाते हैं, जैसे पुष्ट करने के लिए बालक के देह का मर्दन करते हैं, वैसे ही नवोत्पन्न अग्नि को स्तुतियों के साथ हवियाँ देकर पुष्ट करती हैं ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! तुम महान् हो । धर्म-कार्य करने वाले दम्पति तुम्हें एक साथ ही हविरन्न देते हैं । देवताओं का हम भले प्रकार आह्वान करें । माता पृथिवी हमारे प्रतिकूल न हों ॥ १५ ॥ हे देवताओ ! हम बाधाओं से रहित असीमित ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले हों ॥ १६ ॥ हम अश्विनीकुमारों के अभूतपूर्व रक्षा-साधनों को प्राप्त करें । वे आनन्दप्रद और कल्याणकारी कार्यों से सम्पन्न हैं । हे अविनाशी अश्विद्वय ! हमको श्रेष्ठ धन, बल, संतान और सभी सौभाग्यों को प्राप्त कराओ ॥ १७ ॥ [२२]

४४ सूक्त

(ऋषि-प्रजन्मारः। देवता—विश्वेदेवा। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

तं प्रत्नथा पूर्वथा विश्वथेमथा ज्येष्ठतातिं बर्हिषदं स्वर्विदम् ।
प्रतीचीनं वृजनं दोहसे गिराशुं जयन्तमनु यासु वर्धसे ॥ १
श्रिये सुदृशीरुपरस्य याः स्वर्विरोचमानः ककुभामचोदते ।
सुगोपा असि न दभाय सुक्रतो परो मायाभिर्ऋत आस नाम ते ॥ २
अत्यं हविः सचते सच्च धातु चारिष्टगातुः स होता सहोभरिः ।
प्रसर्स्राणो अनु बर्हिर्वृषा शिशुर्मध्ये युवाजरो विस्रुहा हितः ॥ ३
प्र व एते सुयुजो यामन्निष्टये नीचीरमुष्मै यम्य ऋतावृधः ।
सुयन्तुभिः सर्वशासैरभीशुभिः क्रिविर्नामानि प्रवणे मुषायति ॥ ४
सञ्जर्भुराणस्तरुभिः सुतेगृभं वयाकिनं चित्तगर्भासु सुस्वरुः ।
धारवाकेष्वृजुगाथ शोभसे वर्धस्व पत्नीरभि जीवो अध्वरे ॥ ५ २३

प्राचीन कालीन यजमान, हमारे पूर्वज तथा वर्तमान कालीन मनुष्य भी जैसे इन्द्र की स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करते आये हैं, उसी प्रकार हम भी उनकी स्तुति करके अपने अभीष्ट को पूर्ण करें। वे इन्द्र देवताओं में बड़े, सर्वज्ञ, कुश के आसन पर विराजमान होने वाले, पराक्रमी, शत्रु-विजेता तथा अत्यन्त वेग वाले हैं। उनको इस स्तुति द्वारा प्रसन्न करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारा तेज स्वर्ग में भी विस्तृत रूप से फैला है। वर्षा को रोकने वाले मेघ में जो उज्ज्वल जल-समूह है, उसे तुम मानव-कल्याण के लिए सब दिशाओं में भेजते हो। तुम वर्षा आदि कर्मों द्वारा मनुष्यों का पालन करते हो। हे इन्द्र! प्राणियों का हनन न करो। तुम शत्रुओं की माया दूर करने वाले हो। इसलिये तुम्हारा नाम सत्य पर आश्रित है ॥ २ ॥ नित्य जल का सावन करने वाले तथा जगत के आश्रय रूप हव्य को अग्नि सदा वहन करते हैं। वे निर्बाध गति वाले, बल के विधाता तथा यज्ञ-कर्म का निर्वाह करने वाले हैं। वे कुश पर विराजमान होते हैं। वे फलों की वर्षा करने वाले, बालक, युवा, साहसी तथा औषधों में निवास करते हैं ॥

यजमानों के लिये यज्ञ की वृद्धि करने वाली सूर्य-रश्मियाँ परस्पर सुसंगत हुई यज्ञ-भूमि में आने की इच्छा से प्रकट करती हैं। वेग से जाने वाली और संसार को नियम में रखने वाली इन सब रश्मियों द्वारा सूर्य जल की वृष्टि करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा स्तोत्र सुन्दर है। जब छना हुआ सोम-रस काठ के बर्तन में संचित किया जाता है और तुम उस मधुर रस को स्वीकार करते हुए स्तुतियाँ श्रवण कर प्रसन्न होते हो, तब साधकों में तुम अत्यन्त सुशोभित होते हो। हे प्राणदाता अग्ने तुम अपनी रक्षण-सामर्थ वाली शिखा को यज्ञ स्थान में बढ़ाओ ॥ ५ ॥ [२३]

याहगेव दहशे ताहगुच्यते सं छायया दधिरे सिध्रयाप्स्वा ।
महीमस्मभ्यमुरुषामुरु ज्रयो बृहत्सुवीरमनपच्युतं सहः ॥ ६
वेत्यग्रुर्जनिवान्वा अति स्पृधः समर्यता मनसा सूर्यः कविः ।
घ्ंसं रक्षन्तं परि विश्वतो गयमस्माकं शर्म वनवत्स्वावसुः ॥७
ज्यायांसमस्य यतुनस्य केतुन ऋषिस्वरं चरति यासु नाम ते ।
यादृश्मिन्धायि तमपस्यया विदद्य उ स्वयं वहते सो अरं करत् ॥ ८
समुद्रमासामव तस्थे अग्रिमा न रिष्यति सवनं यस्मिन्नायता ।
अत्रा न हार्दि क्रवणस्य रेजते यत्रा मतिर्विद्यते पूतबन्धनी ॥ ९
स हि क्षत्रस्य मनसस्य चित्तिभिरेवावदस्य यजतस्य सध्रेः ।
अवत्सारस्य स्पृणवाम रण्वभिः शविष्ठं वाजं विदुषा चिदर्ध्यम् ॥ १० । २४

जो देखते हैं, वही वर्णन करते हैं। जैसे जलों द्वारा पुष्ट हुए वृक्ष अपनी छाया के नीचे प्राणियों को सुख देते हैं, वैसे ही देवगण भी अपनी प्रजाओं के लिए अपनी कल्याणकारिणी छाया द्वारा अत्यन्त सुखदायिनी पृथिवी का पालन करें और युद्ध क्षेत्र में कभी भी पीछे न भागने वाले वीरों के बल को भी पुष्ट करें ॥ ६ ॥ सब को देखने वाले अग्रणी आदित्य अपनी भार्या रूपिणी उषा से मिलते हुए असुरों से युद्ध की इच्छा करते हुए बढ़ते हैं। वे धन के आश्रयदाता हमको श्रेष्ठ, यशस्वी और रक्षा-साधन से युक्त

घर तथा सुख दें ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! यजमान तुम्हारे निकट जाते हैं । तुम प्रकट होने पर जाने जाते हो । ऋषिगण तुम्हारी स्तुति करते हैं, जिससे तुम्हारा नाम बढ़ता है । वे जिस कार्य को इच्छा करते हैं, उसे प्रयत्न द्वारा सिद्ध कर लेते हैं । जो उनकी उपासना करते हैं, वे इच्छित फल प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ हमारे इन सभी स्तोत्रों में जो स्तोत्र श्रेष्ठ हो वह सूर्य के समक्ष पहुँचे । यज्ञ स्थान में उनके जिस स्तोत्र को पढ़ाया जाता है, वह स्तोत्र कभी नष्ट नहीं होता । जिस घर में सूर्य को हृदय समर्पित किया जाता है, उस घरके मनुष्यों की हार्दिक इच्छा कभी विफल नहीं होती ॥ ९ ॥ वे सूर्य सब के द्वारा पूजित तथा सभी के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं । उनके पास से हम "क्षत्र" "मनस", "अवद", "सध्रि" और "अवत्सार" ऋषि विद्वानों द्वारा उपभोग्य अन्नों को अपने कार्यों द्वारा समृद्ध करते हैं ॥ १० ॥ [२४]

श्येन आसामदितिः कक्ष्यो मदो विश्ववारस्य यजतस्य मायिनः ।
समन्यमन्यमर्थयन्त्येतवे विदुर्विषाणं परिपानमन्ति ते ॥ ११
सदापृणो यजतो वि द्विषो वधीद्बाहुवृक्तः श्रुतवित्तर्यो वः सचा ।
उभा स वरा प्रत्येति भाति च यदीं गणं भजते सुप्रयावभिः ॥ १२
सुतम्भरो यजमानस्य सत्पतिर्विश्वासामूधः स धियामुदञ्चनः ।
भरद्धेनू रसवच्छिश्रिये पयोऽनुब्रुवाणो अध्येति न स्वपन् ॥ १३
यो जागार तमृचः कामयन्ते यो जागार तमु सामानि यन्ति ।
यो जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १४
अग्निर्जागार तमृचः कामयन्तेऽग्निर्जागार तमु सामानि यन्ति ।
अग्निर्जागार तमयं सोम आह तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः ॥ १५।२५

"विश्ववार", "यजत" और "मायी" ऋषि का सोम-रस द्वारा उत्पन्न हर्ष बाज के समान उत्तम चाल वाला है । वह अदिति के समान विस्तृत और कसे हुए अश्व के समान सुशोभित हैं । वे परस्पर सोम पीने के लिए कहते हैं और सोम-पान के पश्चात् हृष्ट होते हैं ॥ ११ ॥ "सदापृण", "यजत", "बाहुवृक्त", "श्रुतवित्", और "तर्य" ऋषि तुम सब से मिलकर

त्रुओं का नाश करने वाले हैं। वे ऋषि, इहलौकिक और पारलौकिक सभी
च्छाओं की सिद्धि करते हुए तेजस्वी बनें। वे भले प्रकार से मिश्रित हव्य
सामग्री द्वारा विश्वेदेवताओं की सुन्दर स्तुति करते हैं ॥ १२ ॥ "अवत्सार"
नामक यजमान के अनुष्ठान में "सुतम्भर" ऋषि उत्तम फलों द्वारा पोषित
हुए। सभी यज्ञ-कार्य को उत्तम रीति से पूर्ण किया गया। गौओं ने उत्तम
मधुर रस युक्त दुग्ध दिया। यह दुग्ध बाँटा गया। इस प्रकार से निरालस्य
हुए "अवत्सार" प्रतिदिन पठन, अध्ययन आदि करते रहे ॥ १३ ॥ जो देवता
सदा जागते हैं, ऋचाएं उनको चाहती हैं। जो देवता सदा चैतन्य रहते हैं,
सामवेद की ऋचाएं उन्हें प्राप्त करती हैं। जो देवता सदा जागरित रहते हैं
उनसे सोम कहें कि 'हमको ग्रहण करो।' हे अग्ने! हम तुम्हारे मित्र-भाव में
ही सदा आश्रित रहें ॥ १४ ॥ अग्नि सदा चैतन्य रहते हैं, ऋचाएं उन्हें
चाहती हैं। अग्नि सदा जागते हैं, साम उन्हें प्राप्त करता है। अग्नि सदा
जागरित रहते हैं उनसे यह सुसिद्ध सोम कहे कि 'हमको ग्रहण करो।' हे
अग्ने! हम सदा ही तुम्हारी मित्रता के आश्रित रहें ॥ १५ ॥ [२५]

४५ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि-सदापृण आत्रेय । देवता-विश्वेदेवाः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप)

विदा दिवो विष्यन्नद्रिमुक्थैरायत्या उषसो अर्चिनो गुः ।
अपावृत व्रजिनीरुत्स्वर्गाद्वि दुरो मानुषीर्देव आवः ॥ १
वि सूर्यो अमतिं न श्रियं सादोर्वाद् गवां माता जानती गात् ।
धन्वर्णसो नद्यः खादोअर्णाः स्थूणेव सुमिता दृंहत द्यौः ॥ २
अस्मा उक्थाय पर्वतस्य गर्भो महीनां जनुषे पूर्व्याय ।
वि पर्वतो जिहीत साधत द्यौराविवासन्तो दसयन्त भूम ॥ ३
सूक्तेभिर्वो वचोभिर्देवजुष्टैरिन्द्रा न्वग्नी अवसे हुवध्यै ।
उक्थेभिर्हि ष्मा कवयः सुयज्ञा आविवासन्तो मरुतो यजन्ति ॥ ४
एतो न्वद्य सुध्यो भवाम प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः ।
आरे द्वेषांसि सनुतर्दधामायाम प्राञ्चो यजमानमच्छ ॥ ५ । २६

इन्द्र ने अङ्गिराओं के स्तव से, वज्र को गिरा कर पणियों द्वारा चुराई हुई, छिपी गायों को मुक्त किया, आने वाली उषा की रश्मियाँ व्याप्त होती हैं। अँधेरे का नाश करके सूर्य प्रकट होते तथा मनुष्यों के घरों के किवाड़ों को खोलते हैं ॥ १ ॥ जैसे विभिन्न पदार्थ अपने विभिन्न रूपों को प्रकट करते हैं, वैसे ही सूर्य अपने प्रकाश को बढ़ाते हैं। रश्मियों का जाल बुनने वाली उषा सूर्य के आने की बाट न देखती हुई अन्तरिक्ष से आविर्भूत होती है। किनारों को तोड़ती हुई नदियाँ वेगवान् जल से परिपूर्ण हुई बहती हैं। घर में बने हुए सुन्दर तथा दृढ़ स्तम्भ के समान सूर्य सुदृढ़ भाव से प्रजा-धारण में समर्थ होते हैं ॥ २ ॥ महान् स्तोत्रों के रचयिता प्राचीनकालीन ऋषियों के समान हम जब तक स्तुति करते हैं, तब तक मेघ के पेट में रहने वाला जल हमारे ऊपर बरसता है। मेघ से जल गिरता है और आकाश अपने कार्य में जुट जाता है। सर्वत्र उपासना करने वाले अङ्गिरा वंशीय ऋषि यज्ञ-कर्म द्वारा सदा सेवा करते रहते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हे अग्निदेव ! हम संकटों से मुक्त होने की इच्छा से देवताओं द्वारा ग्रहण करने योग्य स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। उत्तम प्रकार से यज्ञ-कर्म करने वाले मरुद्गण के समान कर्मों में लगे रहने वाले मेधावी-जन सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम दोनों की पूजा करते हैं ॥ ४ ॥ हे इस यज्ञ के करने वाले ! दिन में आओ। हम सुन्दर कर्म करना चाहते हैं। हम शत्रुओं का संहार करते और सब ओर छाये हुए वैरियों को दूर भगाते हैं। हम यजमानों के पास शीघ्र जाते हैं ॥ ५ ॥ [२६]

एता धियं कृणवामा सखायोऽप या मातां ऋणुत व्रजं गोः ।
यया मनुर्विशिशिप्रं जिगाय यया वणिग्वङ्कुरापा पुरीषम् ॥ ६
अनूनोदत्र हस्तयतो अद्रिरार्चन्येन दश मासो नवग्वाः ।
ऋतं यती सरमा गा अविन्दद्विश्वानि सत्याङ्गिराश्चकार ॥ ७
विश्वे अस्या व्युषि माहिनायाः सं यद् गोभिरङ्गिरसो नवन्त ।
उत्स आसां परमे सधस्थ ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः ॥ ८
आ सूर्यो यातु सप्ताश्वः क्षेत्रं यदस्योर्विया दीर्घयाथे ।
रघुः श्येनः पतयदन्धो अच्छा युवा कविर्दीदयद् गोषु गच्छन् ॥९

आ सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णोऽयुक्त यद्धरितो वीतपृष्ठाः ।
उद्ना न नावमनयन्त धीरा आशृण्वतीरापो अर्वागतिष्ठन् ॥१०
धियं वो अप्सु दधिषे स्वर्षां ययातरन्दश मासो नवग्वाः ।
अया धिया स्याम देवगोपा अया धिया तुतुर्यामात्यंहः ॥ ११ । २७

हे मित्रो ! आगमन करो । हम स्तोत्रों का उच्चारण करें । उन स्तोत्रों से चुराई हुई गौओं के स्थान का पता लगा था, 'मनु' ने शत्रु पर विजय प्राप्त की थी और वणिक् के समान बहुत फलों को चाहने वाले "कक्षीवान्" ने वन में जाकर जल को प्राप्त किया था ॥ ६ ॥ इस यज्ञ स्थान में ऋत्विकों के हाथ से काम में लाये जाते हुए पत्थर का शब्द हो रहा है, उसी से "नवग्वों" और "दशग्वों" ने इन्द्र की उपासना की थी । उसी से यज्ञ में आकर सरमा ने गौएं पायीं और अङ्गिरा वंशीय ऋषियों की सभी साधना सफल हो गई थी ॥ ७ ॥ जब अङ्गिरागण उषा के उदित होते समय प्राप्त गौओं से मिले थे, तब उस श्रेष्ठ यज्ञशाला में दूध गिरने लगा । क्योंकि सरमा ने सत्य मार्ग द्वारा गौओं को देख लिया था ॥ ८ ॥ सप्त अश्वों के स्वामी आदित्य हमारे अभिमुख पधारें । वे लम्बे प्रयाण करने के लिये वेगवान बाज के समान शीघ्रगामी होते हुए आवें । वे सतत युवा तथा दूरदर्शी अपनी किरणों में विराजमान, प्रकाश को फैलाते हैं ॥ ९ ॥ अत्यन्त दीप्त जल को सूर्य ऊपर उठाते हैं । जब वे अपने सुन्दर पीठ वाले घोड़ों को रथ में जोड़ते हैं तब यजमान उन्हें जल पर तैरती हुई नाव के समान बुलाते हैं । उनके आदेश पर ही जल-वृष्टि होती है ॥ १० ॥ हे देवताओ ! हम सुख देने वाली उस बुद्धि को धारण करें, जिसके द्वारा "नवग्वों" ने दश महीनों तक यज्ञानुष्ठान किया था । उसी धारणवती बुद्धि के द्वारा हम विद्वानों द्वारा धारण करने योग्य उत्तम गुणों को प्राप्त करें और पाप कर्मों और उनके परिणामों का अतिक्रमण करने में समर्थ हों ॥ ११ ॥ [२७]

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रतिक्षत्र आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—जगती, पंक्तिः)

हयो न विद्वाँ अयुजि स्वयं धुरि तां वहामि प्रतरणीमवस्युवम् ।

नास्या वर्मि विमुचं नावृतं पुनर्विद्वान्पथः पुरएत ऋजु नेषति ॥ १
अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्र यन्त मारुतोत विष्णो ।
उभा नासत्या रुद्रो अध ग्नाः पूषा भगः सरस्वती जुषन्त ॥ २
इन्द्राग्नी मित्रावरुणादितिं स्वः पृथिवीं द्यां मरुतः पर्वतां अपः ।
हुवे विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं भगं नु शंसं सवितारमूतये ॥ ३
उत नो विष्णुरुत वातो अस्रिधो द्रविणोदा उत सोमो मयस्करत् ।
उत ऋभव उत राये नो अश्विनोत त्वष्टोत विभ्वानु मंसते ॥ ४
उत त्यन्नो मारुतं शर्ध आ गमद्दिविक्षयं यजतं बर्हिरासदे ।
बृहस्पतिः शर्म पूषोत नो यमद्वरूथ्यं वरुणो मित्रो अर्यमा ॥ ५
उत त्ये नः पर्वतासः सुशस्तयः सुदीतयो नद्य स्त्रामणे भुवन् ।
भगो विभक्ता शवसावसा गमदुरुव्यचा अदितिः श्रोतु मे हवम् ॥ ६
देवानां पत्नीरुशतीरवन्तु नः प्रावन्तु नस्तुजये वाजसातये ।
याः पार्थिवासो या अपामपि व्रते ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छत ॥७
उत ग्ना व्यन्तु देवपत्नीरिन्द्राण्य ग्नाय्यश्विनीराट् ।
आ रोदसी वरुणानी शृणोतु व्यन्तु देवीर्य ऋतुर्जनीनाम् ॥ ८ । २८

"प्रतिक्षत्र" ने अपने को गाड़ी में घोड़े के समान जोड़ा । हम होता उस अलौकिक रक्षा का विधान करने वाले यज्ञ रूप बोझे को ढोते हैं । इस बोझे को वहन करने से मुक्त होना हम नहीं चाहते । इस भार को बारम्बार हम ढोते रहें, ऐसा भी नहीं चाहते । मार्गों के ज्ञाता, आगे आगे चलने वाले, सब के रहस्यों को जानने वाले पुरुष हमको समस्त मार्गों में सरलता पूर्वक ले जाने में समर्थ हैं ॥ १ ॥ हे अग्नि, इन्द्र, वरुण और मित्र आदि देवताओ ! तुम सब हमको शक्ति दो । मरुद्गण और विष्णु हमको सहस्र बनावें । असत्याचरण न करने वाले दोनों, रुद्र, देवांगनाएं, पूषा, भग और सरस्वती सभी हमारी स्तुति से प्रसन्न हों ॥ २ ॥ हम रक्षा-प्राप्ति के निमित्त इन्द्र, अग्नि, मित्र, वरुण, अदिति, आदित्य, आकाश-पृथिवी, मरुद्गण, पर्वत, जल,

विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति और सवितादेव को आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ विष्णु, वायु, अहिंसक और धनदाता सोम हमको सुख प्रदान करें । ऋभुगण, दोनों अश्विनीकुमार, त्वष्टा और विभु हमको धन देने के निमित्त प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ स्वर्गवासी तथा पूज्य मरुद्गण कुश पर विराजमान होने के लिए हमारे पास आवें । बृहस्पति, पूषा, वरुण, मित्र और अर्यमा हमको सभी गृहस्थ-सम्बन्धी सुख प्राप्त करावें ॥ ५ ॥ सुन्दर स्तोत्र वाले पर्वत एवं उदार वृत्ति वाली नदियाँ हमारा पालन करें । धन देने वाले भग देवता अन्न तथा रक्षा साधनों सहित आवें । सब स्थानों पर रहने वाली अदिति हमारे स्तोत्र को सुनें ॥६॥ देवताओं की पत्नियाँ हमारी स्तुतियों की कामना करती हुई हमारी रक्षा करें । हम उनकी रक्षा द्वारा बलवान् पुत्र और उत्तम अन्न प्राप्त करें । हे देव पत्नियो ! तुम सर्वत्र कर्मों में लीन रहो । हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम हमको सुखी बनाओ ॥ ७ ॥ देवांगनाऐं हवियाँ ग्रहण करें । इन्द्राणी, अग्नानी, दीप्तिमती अश्विनी, रोदसी, वरुणानी आदि सभी देवियां हमारे स्तोत्रों को सुनें । यह देवियाँ हव्य ग्रहण करें । देवियों में ऋतुओं की अधिष्ठात्री देवी हमारे स्तोत्र को सुनें और हवि ग्रहण करें ॥ ८ ॥ [२८]

४७ सूक्त

(ऋषि—प्रतिरथ आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्रयुञ्जती दिव एति ब्रुवाणा मही माता दुहितुर्बोधयन्ती ।
आविवासन्ती युवतिर्मनीषा पितृभ्य आ सदने जोहुवाना ॥ १
अजिरासस्तदप ईयमाना आतस्थिवांसो अमृतस्य नाभिम् ।
अनन्तास उरवो विश्वतः सीं परि द्यावापृथिवी यन्ति पन्थाः ॥ २
उक्षा समुद्रो अरुषः सुपर्णः पूर्वस्य योनिं पितुर विवेश ।
मध्ये दिवो निहितः पृश्निरश्मा वि चक्रमे रजसस्पात्यन्तौ ॥ ३
चत्वार ईं बिभ्रति क्षेमयन्तो दश गर्भं चरसे धापयन्ते ।
त्रिधातवः परमा अस्य गावो दिवश्चरन्ति परि सद्यो अन्तान् ॥ ४
इदं वपुर्निवचनं जनासश्चरन्ति यन्नद्यस्तस्थुरापः ।

द्वे यदी विभृतो मातुरन्ये इहेह जाते यम्या सबन्धू ॥ ५
वि तन्वते धियो अस्मा अपांसि वस्त्रा पुत्राय मातरो वयन्ति।
उपप्रक्षे वृषणो मोदमाना दिवस्पथा वध्वो यन्त्यच्छ ॥ ६
तदस्तु मित्रावरुणा तदग्ने शं योरस्मभ्यमिदमस्तु शस्तम्।
अशीमहि गाधमुत प्रतिष्ठां नमो दिवे बृहते सादनाय ॥ ७ । १

सेवा-रत, नित्य युवती, पूज्या उषा बुलाई जाने पर शक्तिमती माता के समान कन्या स्वरूप पृथिवी को जागरित करती है। वे मनुष्यों को कार्य में प्रवृत्त करती हुई रक्षा करने वाले देवताओं के साथ यज्ञ स्थान में आती है॥ १ ॥ सर्व व्याप्त और असीमित किरणें अपने प्राकट्य रूप कर्म का सम्पादन करती हुईं, अविनाशी सूर्य मण्डल के साथ एकत्र बैठकर आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाती हैं॥ २ ॥ कामनाओं का सिंचन करने वाले, देवताओं के लिए सुख का विधान करने वाले, उज्ज्वल तथा तेज चलने वाले रथ ने पितृ-रूप पूर्व दिशा में गमन किया। फिर स्वर्ग में अवस्थित विभिन्न वर्ण वाले आदित्य अन्तरिक्ष में बढ़े और उन्होंने विश्व की रक्षा की ॥ ३ ॥ चार ऋत्विक् अपनी मंगल-कामना करते हुए सूर्य को हव्य से धारण करते हैं। दसों दिशाएँ अपने गर्भ से उत्पन्न सूर्य को नित्यकर्म में प्रेरणा करती हैं। शीत, ग्रीष्म और वर्षा के भेद से सूर्य की तीन प्रकार की ऋतुएँ अन्तरिक्ष की सीमा में घूमती रहती हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो! यह शरीर अवश्य मनन और श्रवण करने योग्य है, जिसमें प्रवाहित होने वाली नाड़ियाँ पृथ्वी पर बहने वाली नदियों के समान हैं। स्त्री और पुरुष की दोनों प्रकृतियाँ इस शरीर के धारण करने वाले दिन-रात के समान परस्पर बँधी हैं॥ ५ ॥ सूर्य के निमित्त यजमान स्तोत्र तथा हव्य को बढ़ाते हैं। इसी पुत्र रूप सूर्य के लिए दिशाएँ प्रकाश का जाल बुनती हैं। उन वृष्टिकारक सूर्य के द्वारा पुष्ट हुई पत्नी रूप किरणें आकाश द्वारा हमारे पास आगमन करें ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण! हमारी इस स्तुति को स्वीकार करो। हे अग्ने! हम सब के कल्याण के निमित्त इस स्तोत्र को स्वीकार करो। हम प्रतिष्ठित हों। हम तेजोमय, पराक्रमी तथा सबको आश्रय देने वाले सूर्य की पूजा करें ॥ ७ ॥

४८ सूक्त

(ऋषि—प्रतिभानुरात्रेय: । देवता–विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप, जगती)

कदु प्रियाय धाम्ने मनामहे स्वक्षत्राय स्वयशसे महे वयम् ।
आमेन्यस्य रजसो यदभ्र आँ अपो वृणाना वितनोति मायिनी ॥ १
ता अत्नत वयुनं वीरवक्षणं समान्या वृतया विश्वमा रजः ।
अपो अपाचीरपरा अपेजते प्र पूर्वाभिस्तिरते देवयुर्जनः ॥ २
आ ग्रावभिरहन्येभिरक्तुभिर्वरिष्ठं वज्रमा जिघर्ति मायिनि ।
शतं वा यस्य प्रचरन्त्स्वे दमे संवर्तयन्तो वि च वर्तयन्नहा ॥ ३
तामस्य रीतिं परशोरिव प्रत्यनीकमख्यं भुजे अस्य वर्पसः ।
सचा यदि पितुमन्तमिव क्षयं रत्नं दधाति भरहूतये विशे ॥ ४
स जिह्वया चतुरनीक ऋञ्जते चारु वसानो वरुणो यतन्नरिम् ।
न तस्य विद्म पुरुषत्वता वयं यतो भगः सविता दाति वार्यम् ॥ ५।२

हम सबकी कामना के योग्य, पूजा के पात्र उस तेज की कब पूजा करेंगे ? वह तेज अपने ही बल से प्रकाशमान हैं तथा सभी अन्न उसमें व्याप्त हैं। उसी तेज की शक्ति चैतन्य होकर अन्तरिक्ष में मेघ में वर्षा के जल को बढ़ाती है ॥ १ ॥ ऋत्विकों के प्राप्त करने योग्य ज्ञान को यह उषाएँ फैलाती हैं। अपनी आभा द्वारा सम्पूर्ण संसार को परिपूर्ण करती हैं। देवताओं की कामना करने वाले यजमान बीती हुई अथवा आने वाली उषाओं की चिन्ता छोड़ कर वर्तमान उषा के द्वारा अपनी बुद्धि को बढ़ाते हैं ॥ २ ॥ दिन और रात्रि में सिद्ध किए गए सोम से पुष्ट हुए इन्द्र मायावी वृत्र के लिए अपने विशाल वज्र को तेजोमय बनाते हैं। इन्द्रमय सूर्य की असंख्य किरणें दिनों को प्रवर्तित करती हुईं अपने घर रूप आकाश में घूमती रहती हैं ॥ ३ ॥ फरसे के समान दमकते हुए अग्नि के उस स्वाभाविक रूप को हम देखते हैं। हम अपने सुख के निमित्त तेजोमय आदित्य की किरणों की स्तुति करते हैं। वे आदित्य आह्वान करने वाले यजमान के यज्ञ में सहायक होते और अन्न तथा रत्नादि से परिपूर्ण घर प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ अपने शोभन तेज से

चमकते हुए अग्निदेव अन्धकार तथा वैरियों का नाश करते हैं। वे सब ओर अपनी ज्वाला को फैलाते हुए घृतादि हव्य भक्षण करते हैं। हम उन अभीष्ट दायक अग्नि के उस पुरुषार्थ को नहीं जानते, जिसके द्वारा यह यजनयोग्य सवितादेव ग्रहण करने योग्य ऐश्वर्य को प्राप्त कराते हैं ॥ ६ ॥ [२]

४६ सूक्त

(ऋषि—प्रतिप्रभ आत्रेयः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

देवं वो अद्य सवितारमेषे भगं च रत्नं विभजन्तमायोः ।
आ वां नरा पुरुभुजा ववृत्यां दिवेदिवे चिदश्विना सखीयन् ॥ १
प्रति प्रयाणमसुरस्य विद्वान्त्सूक्तैर्देवं सवितारं दुवस्य ।
उप ब्रुवीत नमसा विजानञ्ज्येष्ठं च रत्नं विभजन्तमायोः ॥ २
अदत्रया दयते वार्याणि पूषा भगो अदितिर्वस्त उस्रः ।
इन्द्रो विष्णुर्वरुणो मित्रो अग्निरहानि भद्रा जनयन्त दस्माः ॥ ३
तन्नो अनर्वा सविता वरूथं तत्सिन्धव इषयन्तो अनु ग्मन् ।
उप यद्वोचे अध्वरस्य होता रायः स्याम पतयो वाजरत्नाः ॥ ४
प्र ये वसुभ्य ईवदा नमो दुर्ये मित्रे वरुणे सूक्तवाचः ।
अवैत्वभ्वं कृणुता वरीयो दिवस्पृथिव्योरवसा मदेम ॥ ५ । ३

हम, यजमानों के लिए सविता और भग देवताओं की सेवा में जाते हैं। वे यजमानों को धन देते हैं। हे अग्रगण्य तथा बहुकर्मा अश्विनीकुमारो! हम तुम्हारी मित्रता को चाहने वाले तुम्हारे प्रतिदिन सामीप्य की याचना करते हैं ॥ १ ॥ हे विद्वानो! शत्रुओं के शमनकर्त्ता सवितादेव को आते जान कर सूक्तों से उनका पूजन करो। वे मनुष्यों को उत्तम ऐश्वर्य के देने वाले हैं। उनको हविरन्न और नमस्कार द्वारा स्तुति करो ॥ २ ॥ यजन योग्य, पालनकर्त्ता तथा कभी भी नाश को प्राप्त न होने वाले अग्नि ग्रहण करने योग्य काष्ठ को अपनी ज्वाला से वहन करते हैं और ग्रहण करने योग्य धन यजमानों को देते हैं। आदित्य अपने तेज को फैलाते हैं। इन्द्र, विष्णु, मित्र और अग्नि आदि देवता उत्तम कर्म वाले दिनों को प्रकट करते

जिन सविता देव का कोई तिरस्कार नहीं कर सकता, वे सवितादेव हमको अभीष्ट ऐश्वर्य दें। उस ऐश्वर्य को लाने के लिए उनकी किरणें गमन करें। इस कामना से हम होता गण स्तुति करते हैं। हम बहुत प्रकार के धन, अन्न और बल के स्वामी हों ॥ ४ ॥ जिन यजमानों ने गतिशील अन्न वसुओं को प्रदान किया है, तथा जिन्होंने मित्रावरुण के उद्देश्य से स्तुतियाँ की हैं, उन्हें महान् तेज मिले। हे देवगण ! उन्हें स्थिर सुख दो। हम आकाश और पृथिवी द्वारा पाले जाकर पुष्ट हों ॥ ५ ॥ [३]

५० सूक्त

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।
विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे ॥ १
ते ते देव नेतर्ये चेमाँ अनुशसे ।
ते राया ते ह्या३ पृचे सचेमहि सचथ्यैः ॥ २
अतो न आ नृनतिथीनतः पत्नीर्दशस्यत ।
आरे विश्वं पथेष्ठां द्विषो युयोतु यूयुविः ॥ ३
यत्र वह्निरभिहितो दुद्रवद् द्रोण्यः पशुः ।
नृमणा वीरपस्त्योऽर्णा धीरेव सनिता ॥ ४
एष ते देव नेता रथस्पतिः शं रयिः ।
शं राये शं स्वस्तयइषःस्तुतो मनामहे देवस्तुतो मनामहे ॥५ । ४

सभी यजमान सवितादेव से मित्रता की याचना करते हैं। सब प्रजाएं उनसे धन माँगती हैं। उनकी कृपा से सब मनुष्य अपनी रक्षा के लिए प्रचुर धन-लाभ करते हैं ॥ १ ॥ हे प्रभो ! हम यजमान तुम्हारी उपासना करते हैं तथा इन्द्रादि देवताओं की उपासना करने वाले भी तुम्हारे ही हैं। हम तथा वे दोनों प्रकार के उपासक धन-ऐश्वर्य से सम्पन्न हों और हमारे सभी मनोरथ पूर्ण हों ॥ २ ॥ इस यज्ञ में हम ऋत्विजों के लिए अतिथि के समान पूजनीय देवताओं की सेवा करें। इस यज्ञ में हवि देकर देव-पत्नियों की सेवा

करें। हे देवताओ ! तुम सभी अथवा सवितादेव दूरस्थ शत्रुओं को विनष्ट करें ॥ ३ ॥ जिस यज्ञ में यज्ञ वाहक, सर्वश्रेष्ठ पशु के समान आगे बढ़ने वाला मार्ग दर्शक कार्य-भार उठाता है, उस यज्ञ में सवितादेव चतुर गृहपति के समान गृह, पुत्र, सेवक तथा धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! तुम्हारा यह ऐश्वर्य युक्त अश्व का रक्षक रथ हमारा कल्याण करने वाला हो। हम सब पूजा के पात्र सवितादेव की स्तुति करने वाले हैं। हम धन, सुख तथा अमरत्व प्राप्ति के लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [४]

५१ सूक्त

(ऋषि—स्वस्त्यात्रेयः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

अग्ने सुतस्य पीतये विश्वैरूमेभिरा गहि। देवेभिर्हव्यदातये ॥ १
ऋतधीतय आ गत सत्यधर्माणो अध्वरम्। अग्नेः पिबत जिह्वया ॥२
विप्रेभिर्विप्र सन्त्य प्रातर्यावभिरा गहि। देवेभिः सोमपीतये ॥ ३
अयं सोमश्चमू सुतोऽमत्रे परि षिच्यते। प्रिय इन्द्राय वायवे ॥ ४
वायवा याहि वीतये जुषाणो हव्यदातये।
पिबा सुतस्यान्धसो अभि प्रयः ॥ ५ ॥ ५

हे अग्ने ! तुम इन्द्रादि सभी रक्षा करने वाले देवताओं के साथ सोम पीने के लिए हम हविदाता यजमानों के पास पधारो ॥ १ ॥ हे सत्य कर्म वाले देवताओ ! तुम सब हमारे यज्ञ स्थान में पधारो और अग्नि की जिह्वा द्वारा सोम युक्त हवियों का भक्षण करो ॥ २ ॥ हे मेधावी अग्निदेव ! तुम उषा काल में आगमन करने वाले मेधावी देवताओं के साथ सोम पीने के लिए पधारो ॥ ३ ॥ यह सोम अभिषवण फलक द्वारा सिद्ध किया और पात्र में एकत्रित किया है। यह इन्द्र और वायु के लिए अत्यन्त प्रिय है। हे इन्द्र और वायो ! इस सोम-रस का पान करने के लिए आओ ॥ ४ ॥ हे वायो ! हविदाता यजमान पर अनुग्रह करने के लिए, सोम पीने के निमित्त आओ। इस सोम का सेवन करो ॥ ५ ॥ [५]

ते हि स्थिरस्य शवसः सखायः सन्ति धृष्णुया ।
ते यामन्ना धृषद्विनस्त्मना पान्ति शश्वतः ॥ २
ते स्पन्द्रासो नोक्षणोऽति ष्कन्दन्ति शर्वरीः
मरुतामधा महो दिवि क्षमा च मन्महे ॥ ३
मरुत्सु वो दधीमहि स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
विश्वे ये मानुषा युगा पान्ति मर्त्यं रिषः ॥ ४
अर्हन्तो ये सुदानवो नरो असामिशवसः ।
प्र यज्ञं यज्ञियेभ्यो दिवो अर्चा मरुद्भ्यः ॥ ५ । ८

हे श्यावाश्व ऋषि ! तुम धैर्य पूर्वक स्तुति के पात्र मरुद्गण की पूजा करो । यज्ञ के पात्र मरुद्गण नित्य प्रति हविरूप अन्न प्राप्त करते हुए प्रसन्न होते हैं ॥ १ ॥ उनका बल कभी विचलित नहीं होता । वे धीर जब मार्ग में चलते हैं, तब अपनी इच्छा से हमारे परिवार की रक्षा करते हैं ॥ २ ॥ जल वृष्टि करने में समर्थ मरुद्गण रात्रि को लाँघते हुए चलते हैं । वे जिस कारण यह कर्म करते हैं, उसी कारण हम उन मरुद्गण के आकाश और पृथिवी में व्याप्त तेज की उपासना करते हैं ॥ ३ ॥ हे होताओ ! अब तुम कर्म में लगो किस लिए मरुद्गण की स्तुति करते और उन्हें हवियाँ देते हो ? इसीलिए ो कि वे मरणधर्मा मनुष्यों की हिंसकों से हर समय रक्षा करते हैं ॥ ४ ॥ हे होताओ ! जो पूजा के योग्य, सुन्दर दान से युक्त, कर्म करने में अग्रणी तथा अत्यन्त पराक्रमी हैं, ऐसे यज्ञ के पात्र उन मरुद्गण के लिए यज्ञ को सम्पन्न करने वाली हवियाँ दो ॥ ५ ॥ [८]

आ रुक्मैरा युधा नर ऋष्वा ऋष्टीरसृक्षत ।
अन्वेनाँ अह विद्युतो मरुतो जज्झतीरिव भानुरर्त त्मना दिवः ॥ ६
ये वावृधन्त पार्थिवा य उरावन्तरिक्ष आ ।
वृजने वा नदीनां सधस्थे वा महो दिवः ॥ ७
शर्धो मारुतमुच्छंस सत्यशवसमृभ्वसम् ।
उत स्म ते शुभे नरः प्र स्पन्द्रा युजत त्मना ॥ ८

उत स्म ते परुष्ण्यामूर्णा वसत शुन्ध्यवः ।
उत पव्या रथानामद्रिं भिन्दन्त्योजसा ॥ ९
आपथयो विपथयोऽन्तस्पथा अनुपथाः ।
एतेभिर्मह्यं नामभिर्यज्ञं विष्टार ओहते ॥ १० । ६

वृष्टि कर्म में समर्थ मरुद्गण शस्त्र विशेष से सजते हैं। वे मेघ को विदीर्ण करने के लिए शस्त्र विशेष को निकालते हैं। शब्द करने वाले जलों के समान विद्युत भी मरुद्गण का साथ देती है। तेजस्वी मरुद्गण का तेज स्वयं ही प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ जो मरुद्गण पृथिवी पर बढ़ते हैं तथा जो मरुद्गण अन्तरिक्ष में बढ़ते हैं, वे नदियों की जल-शक्ति तथा विस्तीर्ण आकाश में बढ़ें। इस प्रकार वर्षा-कार्य के लिए सर्वत्र बढ़ते हुए मरुद्गण मेघ को विदीर्ण करने के लिए अपने विशिष्ट अस्त्रों का उपयोग करते हैं ॥ ७ ॥ मनुष्यो! मरुद्गण के श्रेष्ठ बल का स्तवन करो। वह अत्यन्त बढ़ा हुआ तथा सत्य का आश्रय रूप है। वर्षा-कार्य में अग्रगण्य मरुत् रक्षा करने वाली बुद्धि से जल के निमित्त गमन करने का श्रम करते हैं ॥ ८ ॥ मरुद्गण "परुष्णी" नदी में विद्यमान होने और सब को पवित्र करने वाले तेज को सर्वत्र फैलाते हैं। वे अपने बल से मेघ का खण्डन करते हैं ॥ ९ ॥ जो मरुद् [illegible] से आते हैं, जो सर्वत्र गमनशील हैं, जो पर्वतों की गुफाओं में भी घुस जाते हैं तथा जो अनुकूल मार्गों पर चलते हैं, वे मरुद्गण इन्द्र को [illegible] [illegible] हमारे यज्ञ के वहन करने में समर्थ हैं ॥ १० ॥ [६]

अधा नरो न्योहतेऽधा नियुत ओहते ।

दिवो वा धृष्णव ओजसा स्तुता धीभिरिषण्यत ॥१४

नू मन्वान एषां देवाँ अच्छा न वक्षणा ।

दाना सचेत सूरिभिर्यामश्रुतेभिरञ्जिभिः ॥ १५

प्र ये मे बन्ध्वेषे गां वोचन्त सूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ।

अधा पितरमिष्मिणं रुद्रं वोचन्त शिक्वसः ॥ १६

सप्त मे सप्त शाकिन एकमेका शता ददुः ।

यमुनायामधि श्रुतमुद्राधो गव्यं मृजे नि राधो अश्व्यं मृजे ॥ १७ । १०

वे वृष्टि आदि के नेता संसार के अग्रणि हैं । अन्तरिक्ष में ग्रह, तारे और मेघ को धारण करते हैं । इस प्रकार वे विविध रूप में देखने योग्य होते हैं ॥ ११ ॥ जल की कामना से छन्दों द्वारा स्तुति करने वालों ने मरुद्गण की स्तुति की थी तथा प्यासे "गौतम" के पीने के लिए कूप को बुलाया था । उनमें कुछ मरुतों ने अदृश्य रह कर रक्षा की थी और कितनों ही ने प्रत्यक्ष होकर बल दिखाया था ॥ ११ ॥ हे "श्यावाश्व" ऋषि ! विद्युत रूप आयुध से सुसज्जित, मेधावी, सब के बनाने वाले, दर्शनीय मरुतों की सुन्दर श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा सेवा करो ॥ १३ ॥ हे ऋषि ! तुम हव्य देने तथा स्तुतियों के साथ मरुतों के समक्ष आदित्य के समान जाओ । हे शक्ति द्वारा हराने वाले मरुद्गण ! तुम आकाश या अन्य लोकद्वय से हमारे यज्ञ में पधारो । हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १४ ॥ स्तोतागण मरुतों की शीघ्रता से स्तुति करके अन्य देवताओं की स्तुति-कामना नहीं करते । ज्ञानी, द्रुतगामी तथा फल देने वाले मरुद्गण से स्तोतागण इच्छित दान पाते हैं ॥१५॥ -जिन प्रेरणावान् मरुद्गण ने हम से बन्धुवत् वार्तालाप किया, उन्होंने पृथिवी को माता और पराक्रमी तथा शत्रु के रुलाने वाले रुद्र को अपना पिता बताया था ॥ १६ ॥ सात-सात शक्तिशाली मरुद्गण एक-एक होकर हमको सैकड़ों ऐश्वर्य प्रदान करें । इनके द्वारा दिया गया प्रसिद्ध ऐश्वर्य हम "यमुना" तट पर प्राप्त करें । उनके दान को हम प्राप्त करने वाले हों ॥ १७ ॥ [१०]

५३ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द—गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

को वेद जानमेषां को वा पुरा सुम्नेष्वास मरुताम् ।
यद्युयुज्रे किलास्यः ॥ १

ऐतान्रथेषु तस्थुषः कः शुश्राव कथा ययुः ।
कस्मै सस्रुः सुदासे अन्वापय इळाभिर्वृष्टयः सह ॥२

ते म आहुर्य आययुरुप द्युभिर्विभिर्मदे ।
नरो मर्या अरेपस इमान्पश्यन्निति ष्टुहि ॥ ३

ये अञ्जिषु ये वाशीषु स्वभानवः स्रक्षु रुक्मेषु खादिषु ।
श्राया रथेषु धन्वसु ॥ ४

युष्माकं स्मा रथाँ अनु मुदे दधे मरुतो जीरदानवः ।
वृष्टी द्यावो यतीरिव ॥ ५ । ११

मरुद्गण के जन्म का ज्ञाता कौन है ? मरुद्गण के पालन के समय कौन वर्तमान था ? जब इन्होंने पृथिवी को धुरे से जोड़ा था, तब इनके बल को कौन जानता था ? ॥ १ ॥ यह मरुद्गण रथ पर चढ़े हैं, इनके रथ के शब्द को किसने सुना ? यह किस प्रकार चलते हैं इस बात का कौन जानने वाला है ? किस उदार मनुष्य के लिए वृष्टिशील मरुद्गण बहुत से अन्न के सहित प्रकट होंगे ? ॥ २ ॥ सोम-पान से उत्पन्न होने वाले हर्ष के लिए तेजस्वी घोड़ों पर चढ़ कर जो मरुद्गण हमारे पास आए थे, उन्होंने कहा था कि 'ये मनुष्यों का हित करने वाले हैं । हे मनुष्य ! तू इसी प्रकार स्तुति किया कर' ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! जो तेज तुम्हारे आश्रित हैं, जो अस्त्रों में, माला में, आभूषण में, रथ तथा धनुष में स्थित हैं, उन सब तेजों को हम नमस्कार करते हैं ॥ ४ ॥ हे शीघ्र देने वाले मरुद्गण ! वृष्टि

गमनशील दीप्ति के समान तुम्हारे दर्शनीय रथ को देख कर हम प्रसन्न होते और तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ [११]

आ यं नरः सुदानवो ददाशुषे दिवः कोशमचुच्यवुः ।
वि पर्जन्यं सृजन्ति रोदसी अनु धन्वना यन्ति वृष्टयः ॥ ६
ततृदानाः सिन्धवः क्षोदसा रजः प्र सस्रुर्धेनवो यथा ।
स्यन्ना अश्वा इवाध्वनो विमोचने वि यद्वर्तन्त एन्यः ॥ ७
आ यात मरुतो दिव आन्तरिक्षादमादुत । माव स्थात परावतः ॥ ८
मा वो रसानितभा कुभा क्रुमुर्मा वः सिन्धुर्नि रीरमत् ।
मा वः परि ष्ठात्सरयुः पुरीषिण्यस्मे इत्सुम्नमस्तु वः ॥ ९
तं वः शर्धं रथानां त्वेषं गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।
अनु प्र यन्ति वृष्टयः ॥ १० । १२

सुन्दर दान वाले मरुत हविदाता यजमान के लिए जल धारण करने वाले मेघ को बरसाते हैं । वे आकाश-पृथिवी के लिए मेघ को छोड़ते हैं । फिर वे वर्षा करने वाले मरुद्गण सर्वत्र जाने वाले जल के साथ व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥ दूध देने वाली नव प्रसूता गौ के समान मेघ से गिरने वाला जल अन्तरिक्ष में बढ़ता है । मार्ग में गमन करने के लिए द्रुतगामी घोड़े के समान छोड़ी गई नदियाँ अत्यन्त वेग से बहती हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम आकाश, अन्तरिक्ष अथवा इसी लोक से (जहाँ कहीं हो वहीं से) यहाँ आओ । तुम स्वर्ग आदि दूर देश के लिए मत जाओ ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! "रसा", "अनितभा" और "कुभा" तथा सर्वत्र जाने वाली "सिन्धु" नदी तुमको कभी भी न रोके । जल से परिपूर्ण "सरयू" तुमको न रोकें । तुम्हारे आने से उत्पन्न सुख को हम सब प्राप्त करें ॥ ९ ॥ प्रेरणा देने वाले नवीन रथ की शक्ति के साथ तेजोमय मरुतों की हम स्तुति करते हैं । वर्षा मरुतों का अनुगमन करती और मरुद्गण सब स्थानों पर परिभ्रमण करते हैं ॥१०॥ [१२]

शर्धंशर्धं व एषां व्रातंव्रातं गणङ्गणं सुशस्तिभिः ।
अनु क्रामेम धीतिभिः ॥ ११

कस्मा अद्य सुजाताय रातहव्याय प्र ययुः । एना यामेन मरुतः ॥ १२

येन तोकाय तनयाय धान्यं बीजं वहध्वे अक्षितम् ।

अस्मभ्यं तद्धत्तन यद्व ईमहे राधो विश्वायु सौभगम् ॥ १३

अतीयाम निदस्तिरः स्वस्तिभिर्हित्वावद्यमरातीः ।

वृष्ट्वी शं योराप उस्रि भेषजं स्याम मरुतः सह ॥ १४

सुदेवः समहासति सुवीरो नरो मरुतः स मर्त्यः ।

यं त्रायध्वे स्याम ते ॥ १५

स्तुहि भोजान्त्स्तुवतो अस्य यामनि रणन्गावो न यवसे ।

यतः पूर्वां इव सखीरनु ह्वय गिरा गृणीहि कामिन ॥ १६ । १२

हे मरुद्गण ! हम सुन्दर स्तोत्र और हवि प्रस्तुत करते हुए उत्तम कर्म द्वारा तुम्हारे बल, समूह और गण का अनुसरण करते हैं ॥ ११ ॥ वे मरुद्गण आज किस हविदाता यजमान के पास, श्रेष्ठ रथ द्वारा जायेंगे ? ॥१२॥ जिस कृपापूर्ण हृदय से तुम पुत्र पौत्रादि को [illegible] अन्न दान करते हो, उसी हृदय से हमको भी अन्न प्रदान करो [illegible] तुमसे [illegible], आयुष्य, सौभाग्य वर्द्धक धन को माँगते हैं ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! हम तुम्हारी रक्षा द्वारा पाप का त्याग करें । [illegible] पाप के निवारण करने वाले सत्य, [illegible] हे पूजनीय मरुद्गण ! तुम जिसकी [illegible] कृपा पाकर सुन्दर पुत्र पौत्रादि [illegible] तुम्हारी रक्षा प्राप्त करने वाले हैं [illegible] हे विप्र ! तुम यजमान के [illegible] घास आदि खाने के लिए [illegible] होते हैं । प्राचीन मित्र के [illegible] कामना वाले मरुद्गण को [illegible]

५४ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

प्र शर्धाय मारुताय स्वभानव इमां वाचमनजा पर्वतच्युते ।
घर्मस्तुभे दिव आ पृष्ठयज्वने द्युम्नश्रवसे महि नृम्णमर्चत ॥ १
प्र वो मरुतस्तविषा उदन्यवो वयोवृधो अश्वयुजः परिज्रयः ।
सं विद्युता दधति वाशति त्रितः स्वरन्त्यापोऽवना परिज्रयः ॥ २
विद्युन्महसो नरो अश्मदिद्यवो वातत्विषो मरुतः पर्वतच्युतः ।
अब्दया चिन्मुहुरा ह्रादुनीवृतः स्तनयदमा रभसा उदोजसः ॥ ३
व्यक्तून्रुद्रा व्यहानि शिक्वसो व्यन्तरिक्षं वि रजांसि धूतयः ।
वि यदज्राँ अजथ नाव ईं यथा वि दुर्गाणि मरुतो नाह रिष्यथ ॥ ४
तद्वीर्यं वो मरुतो महित्वनं दीर्घं ततान सूर्यो न योजनम् ।
एता न यामे अगृभीतशोचिषोऽनश्वदां यन्ययातना गिरिम् ॥ ५ । १४

मरुद्गण के बल के लिए की जाने वाले स्तुति की प्रशंसा करो। वे स्वयं महान् पर्वतों को चीरने वाले, आकाश से आने वाले तथा तेज-युक्त अन्न वाले हैं। इनको आदर पूर्वक हविरन्न दो ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे गण प्रकट होते हैं। वे संसार की रक्षा के लिए जल की इच्छा करने वाले, अन्न के बढ़ाने वाले, चलने के लिए घोड़ों को रथ में जोड़ने वाले, विद्युत से सुसंगित करने वाले एवं तेजस्वी हैं। जब मेघ गर्जन करते हैं, तब चारों ओर फिरने वाला जल समूह पृथिवी पर गिरता है ॥ २ ॥ प्रकाशमय तेज वाले, वृष्टि के स्वामी, आयुधधारी, पर्वत को तोड़ने वाले, बारम्बार जल प्रदान करने वाले, वज्र फेंकने वाले, शब्दवान् मरुद्गण वर्षा करने के लिए उत्पन्न होते हैं ॥ ३ ॥ हे रुद्रपुत्र मरुद्गण ! तुम दिवस रात्रि को प्रकट करते हो। तुम सर्व सामर्थ्यों से युक्त हो तथा लोकों को उखाड़ फेंकने वाले हो ! तुम कम्पायमान करने वाले हो अतः समुद्र में चलने वाली नौका के समान मेघ को कँपाओ । तुम शत्रु-पुरों को ध्वस्त करते हो, परन्तु स्वयं नष्ट नहीं होते ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश को बहुत दूर तक फैलाते

हैं। अथवा देवताओं के घोड़े जैसे चलने में तेजी दिखाते हैं, वैसे ही तुम्हारे प्रसिद्ध पराक्रम की प्रशंसा स्तोतागण दूर दूर तक फैला देते हैं ॥ ५ ॥ [१४]

अभ्राजि शर्धो मरुतो यदर्णसं मोषथा वृक्षं कपनेव वेधसः ।
अध स्मा नो अरमतिं सजोषसश्चक्षुरिव यन्तमनु नेषथा सुगम् ॥ ६
न स जीयते मरुतो न हन्यते न स्रेधति न व्यथते न रिष्यति ।
नास्य राय उप दस्यन्ति नोतय ऋषिं वा यं राजानं वा सुषूदथ ॥७
नियुत्वन्तो ग्रामजितो यथा नरोऽर्यमणो न मरुतः कबन्धिनः ।
पिन्वन्त्युत्सं यदिनासो अस्वरन्व्युन्दन्ति पृथिवीं मध्वो अन्धसा ॥ ८
प्रवत्वतीयं पृथिवी मरुद्भ्यः प्रवत्वती द्यौर्भवति प्रयद्भ्यः ।
प्रवत्वतीः पथ्या अन्तरिक्ष्याः प्रवत्वन्तः पर्वता जीरदानवः ॥ ९
यन्मरुतः सभरसः स्वर्णरः सूर्य उदिते मदथा दिवो नरः ।
न वोऽश्वाः श्रथयन्ताह सिस्रतः सद्यो अस्याध्वनः पारमश्नुथ ॥ १०॥१५

हे वृद्धि विधायक मरुद्गण! तुम जलसे परिपूर्ण मेघ पर आघात करते हो। तुम्हारा बल अत्यन्त शोभनीय है। तुम परस्पर समान प्रीति वाले हो। जैसे चक्षु मार्ग दिखाने में नेतृत्व करता है, वैसे ही तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग द्वारा ऐश्वर्य के निकट पहुँचाओ। हे मरुद्गण! जिस मन्त्र द्वारा तुम मन्त्रदृष्टा विद्वान को उत्तम कर्मों में लगाते हो, वह मन्त्र दूसरों के द्वारा जीता नहीं जाता और न उसकी कोई हिंसा ही कर सकता है। वह कभी क्षीण नहीं होता, कभी पीड़ित नहीं होता और न उसे कोई रोक ही सकता है। उसका दान तथा रक्षा साधन कभी नाश को प्राप्त नहीं होते ॥ ७ ॥ नियुक्त अश्वों के स्वामी, एकत्रित पदार्थों के विश्लेषणकर्त्ता, नेता स्वरूप, ग्राम को जीत लेने वाले वीर पुरुष के समान, सूर्य के समान तेजस्वी मरुद्गण जलों से युक्त हैं। जब वे सम्पन्न होते हैं, तब मेघ को जल से परिपूर्ण करते हैं और गर्जन करते हुए सार रूप तथा मधुर रस से युक्त जल से भूमि को सींचते हैं ॥ ८ ॥ यह पृथिवी मरुद्गण के लिए विशाल हुई है। आकाश भी मरुद्गण के गमन के लिए विस्तृत हुआ है। अन्तरिक्ष का मार्ग मरुद्गण के लिए बढ़ता है। मेघ

मण्डल मरुद्गण के निमित्त ही वृष्टि करता है ॥ ९ ॥ हे अत्यन्त पराक्रमी मरुद्गण ! हे दिव्यलोक के नेता ! तुम सूर्य के प्रकट होने पर सोम पान के लिए इच्छा करते हो। उस समय तुम्हारे घोड़े चलने से रुकते नहीं। उस समय तुम लोकत्रय के मार्गों को पार करते हुए भी थकते नहीं ॥१०॥ [१५]

अंसेषु व ऋष्टयः पत्सु खादयो वक्षः सु रुक्मा मरुतो रथे शुभः ।
अग्निभ्राजसो विद्युतो गभस्त्योः शिप्राः शीर्षसु वितता हिरण्ययीः ॥११
तं नाकमर्यो अगृभीतशोचिषं रुशत्पिप्पलं मरुतो वि धूनुथ ।
समच्यन्त वृजनातित्विषन्त यत्स्वरन्ति घोषं विततमृतायवः ॥ १२
युष्मादत्तस्य मरुतो विचेतसो रायः स्याम रथ्यो वयस्वतः ।
न यो युच्छति तिष्यो यथा दिवो स्मे रारन्त मरुतः सहस्रिणम् ॥१३
यूयं रयिं मरुतः स्पार्हवीरं यूयमृषिमवथ सामविप्रम् ।
यूयमर्वन्तं भरताय वाजं यूयं धत्थ राजानं श्रुष्टिमन्तम् ॥ १४
तद्वो यामि द्रविणं सद्यऊतयो येना स्वर्ण ततनाम नृँरभि ।
इदं सु मे मरुतो हर्यता वचो यस्य तरेम तरसा शतं हिमाः ॥ १५।१६

हे मरुद्गण ! तुम्हारे कन्धों पर अस्त्र सुशोभित होते हैं। पाँवों में रक्षा करने वाले कटक, वक्ष पर हार और रथ पर दीप्ति चमकती है। तुम्हारे दोनों हाथों में चमकती हुई किरणें तथा सिर पर सुवर्णमय मुकुट है ॥ ११ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम चलते हो तब दिव्य लोक और जल समूह सभी विचलित हो उठते हैं। जब तुम हमारे द्वारा दी हुई हवियों को भक्षण कर हृष्ट होते हो और अपना प्रकाश फैलाते हो तब जल वर्षा करने की इच्छा करते हुए घनघोर गर्जन करते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! हे विभिन्न मत्त वालो ! हम रथों से युक्त हैं। हम तुम्हारे द्वारा दिए जाने वाले अन्नयुक्त धनों के स्वामी हों। तुम्हारा दिया हुआ धन कभी नाश को प्राप्त नहीं होता। वैसे ही—जैसे सूर्य आकाश से पृथक् नहीं होते। हे मरुद्गण ! तुम हमको असीमित धन देकर सुखी बनाओ ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन, पुत्र, भृत्यादि दो। तुम सोमवान ऋत्विक् की रक्षा करने वाले होओ। हे मरुतो !

तुम राजा "रयावाश्व" को अन्न धन दो। वे देवताओं की कामना से यज्ञ करते हैं। हे मरुद्गण! तुम उनको सुख प्रदान करो ॥ १४ ॥ हे तुरन्त रचा करने वाले मरुद्गण! तुमसे हम धन माँगते हैं। जैसे सूर्य अपनी किरणों को दूर तक फैलाते हैं, वैसे ही हम भी अपने संतान तथा सेवकों को उसी धन द्वारा बढ़ायें। हे मरुद्गण! तुम हमारे इस स्तोत्र से प्रसन्न होते हुए हमको चाहो, जिससे हम अपनी आयु के सौ वर्ष सुखपूर्वक निकाल सकें ॥ १५ ॥　　　　[१६]

५५ सूक्त

(ऋषि–श्यावाश्व। देवता—मरुतः। छन्द जगती, त्रिष्टुप्)

प्रयज्यवो मरुतो भ्राजदृष्टयो बृहद्वयो दधिरे रुक्मवक्षसः।
ईयन्ते अश्वैः सुयमेभिराशुभिः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ १
स्वयं दधिध्वे तविषीं यथा विद बृहन्महान्त उर्विया वि राजथ।
उतान्तरिक्षं ममिरे व्योजसा शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ २
साकं जाताः सुभ्वः साकमुक्षिताः श्रिये चिदा प्रतरं वावृधुर्नरः।
विरोकिणः सूर्यस्येव रश्मयः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ३
आभूषेण्यं वो मरुतो महित्वनं दिदृक्षेण्यं सूर्यस्येव चक्षणम्।
उतो अस्माँ अमृतत्वे दधातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ४
उदीरयथा मरुतः समुद्रतो यूयं वृष्टिं वर्षयथा पुरीषिणः।
न वो दस्रा उप दस्यन्ति धेनवः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ५।१

चमकते हुए अस्त्रों से युक्त मरुद्गण युवा बनाने वाले अन्न को धारण करते हैं, उनके हृदय पर हार सुशोभित रहता है। सरलता से नियम पर चलने वाले द्रुतवेग वाले घोड़े उन्हें वहन करते हैं। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब से पीछे जाते हैं ॥ १ ॥ हे मरुद्गण! तुम जब जैसा उचित समझते हो, वैसा ही बल धारण करते हो। हे मरुद्गण! तुम महान होकर सुशोभित होओ। अपने पराक्रम से अन्तरिक्ष को व्याप्त करो। सुन्दर

विचार से गमन करने वाले मरुतों के रथ सब से पीछे चलते हैं ॥ २ ॥ मरुद्-गण महान् हैं। वे एक साथ ही जन्मे हैं। एक साथ ही वर्षा करने वाले होते हैं। वे अत्यन्त शोभा के लिए सब स्थानों पर बढ़ते हैं। सूर्य की किरणों के समान वे यज्ञादि उत्तम कार्यों के कराने वाले हैं। सुन्दर विचार से युक्त उन मरुद्गण के रथ सब से पीछे गमन करते हैं ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी महानता स्तुति के योग्य है। तुम्हारा तेज सूर्य के समान चमकता है। तुम हमको स्वर्ग-लाभ कराने में सहायक बनो। सुन्दर विचारों से परि-पूर्ण मरुतों के रथ सब के रथों से पीछे चलते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम अन्तरिक्ष से वर्षा के जलों का प्रेरण करो। हे जलों के स्वामी मरुतो ! तुम वर्षा करो। हे शत्रुओं के नाश करने वालो ! तुमको प्रसन्न करने वाले मेघ कभी सूखते नहीं। सुन्दर विचार से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सब के पश्चात् गमन करते हैं ॥ ५ ॥ [१७]

यदश्वान्धूर्षु पृषतीरयुग्ध्वं हिरण्ययान्प्रत्यत्काँ अमुग्ध्वम् ।
विश्वा इत्स्पृधो मरुतो व्यस्यथ शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ६
न पर्वता न नद्यो वरन्त वो यत्राचिध्वं मरुतो गच्छथेदु तत् ।
उत द्यावापृथिवी याथना परि शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ७
यत्पूर्व्यं मरुतो यच्च नूतनं यदुद्यते वसवो यच्च शस्यते ।
विश्वस्य तस्य भवथा नवेदसः शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥ ८
मृळत नो मरुतो मा वधिष्टनास्मभ्यं शर्म बहुलं वि यंतन ।
अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य गातन शुभं यातामनु रथा अवृत्सत ॥९
यूयमस्मान्नयत वस्यो अच्छा निरंहतिभ्यो मरुतो गृणानाः ।
जुषध्वं नो हव्यदातिं यजत्रा वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १० । १८

हे मरुद्गण ! जब तुम रथ के अगले भाग में पृषती अश्व को जोड़ते हो, तब सुवर्ण के समान दमकते हुए अपने कवच को उतार देते हो। तुम सभी युद्धों में विजय पाते हो। सुन्दर भाव से युक्त होकर गमनशील मरुतों के रथ सब के पीछे गमन करते हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! पर्वत और नदियाँ

तुम्हारे मार्ग को न रोकें। तुम जिस यज्ञादि कर्म में जाना चाहते हो, वहाँ जाते ही हो। तुम आकाश और पृथिवी में वर्षा के लिए व्याप्त होते हो। सुन्दर विचार से युक्त मरुद्गण के रथ सबके पश्चात् चलते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण! जो यज्ञादि कर्म पहिले सम्पन्न हुए तथा जो कर्म अब हो रहे हैं उनमें जो स्तुतियाँ गायी जाती हैं, तुम उन्हें जानो। सुन्दर भाव से युक्त मरुतों का रथ पीछे पीछे चलता है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण! हमको सुखी बनाओ। हमसे यदि कोई अपराध हुआ है, उससे जो तुम क्रुद्ध हुए हो, उससे हमारे कार्य में विघ्न न डालो। तुम हमको अत्यन्त सुख दो। स्तुति को जानकर हमारे साथ सख्य भाव रखो। सुन्दर भाव से गमन करने वाले मरुद्गण के रथ सबके पीछे जाते हैं ॥ ९ ॥ हे मरुद्गण! तुम हमें धन के सामने ले जाओ। हमारे स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमको पापों से छुड़ाओ। हे मरुद्गण! हमारे द्वारा दिए गये हविरन्न को स्वीकार करो, जिससे हम बहुत प्रकार के धनों के स्वामी हों ॥ १० ॥

५६ सूक्त

(ऋषि-श्यावाश्वः। देवता-मरुतः। छन्द-बृहती, पंक्तिः)

अग्ने शर्धन्तमा गणं पिष्टं रुक्मेभिरञ्जिभिः।
विशो अद्य मरुतामव ह्वये दिवश्चिद्रोचनादधि ॥१
यथा चिन्मन्यसे हृदा तदिन्मे जग्मुराशसः।
ये ते नेदिष्ठं हवनान्यागमन्तान्वर्ध भीमसन्दृशः ॥२
मीळ्हुष्मतीव पृथिवी पराहता मदन्त्येत्यस्मदा।
ऋक्षो न वो मरुतः शिमीवाँ अमो दुध्रो गौरिव भीमयुः ॥३
नि ये रिणन्त्योजसा वृथा गावो न दुर्धुरः।
अश्मानं चित्स्वर्यं पर्वतं गिरिं प्र च्यावयन्ति यामभिः ॥४
उत्तिष्ठ नूनमेषां स्तोमैः समुक्षितानाम्।
मरुतां पुरुतममपूर्व्यं गवां सर्गमिव ह्वये ॥५ ॥१६

हे अग्ने! कान्तियुक्त आभरणों वाले, शत्रुओं को जीतने वाले मरुद्गण

को आहूत करो। हम आज उज्ज्वल दिव्यलोक से मरुद्गण को सम्मुख आने की कामना से बुलाते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! जैसे तुम मरुद्गण को पूजनीय जानकर उनका सम्मान करते हो, वैसे ही वे हमारे पास कल्याणकारी भावों से पधारें। जो हमारे आह्वान को सुनते ही चले आते हैं, उन विकराल मरुतों को हवि देकर बढ़ाओ ॥ २ ॥ पृथिवी पर रहने वाला एक मनुष्य, दूसरे मनुष्य से आकर्षित होने पर उसके सामने जाता है, वैसे ही मरुद्गण प्रसन्न होते हुए हमारे सामने आते हैं। हे मरुद्गण ! तुम अग्नि के समान कार्य में क्षमतावान् और वृषभ के समान साहसी हो ॥ ३ ॥ कठिनाई से पीड़ित किए जा सकने वाले अश्व के समान मरुद्गण अपने पराक्रम से विना परिश्रम के ही शत्रुओं को मारते हैं। वे चलने में शब्द करने वाले जगत को परिपूर्ण करने वाले, जल युक्त मेघ को वृष्टि के लिए गिराते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम उच्च आसन पर विराजमान होओ। स्तोत्र द्वारा बढ़े हुए, जल समूह के समान सम्पन्न, बल से युक्त और अद्भुत मरुद्गण को हम बुलाते हैं ॥ ५ ॥ [१६]

युङ्ग्ध्वं ह्यरुषी रथे युङ्ग्ध्वं रथेषु रोहितः ।
युङ्ग्ध्वं हरी अजिरा धुरि वोळ्हवे वहिष्ठा धुरि वोळ्हवे ॥६
उत स्य वाज्यरुषस्तुविष्वणिरिह स्म धायि दर्शतः ।
मा वो यामेषु मरुतश्चिरं करत्प्र तं रथेषु चोदत ॥७
रथं नु मारुतं वयं श्रवस्युमा हुवामहे ।
आ यस्मिन्तस्थौ सुरणानि बिभ्रती सचा मरुत्सु रोदसी ॥८
तं वः शर्धं रथेशुभं त्वेषं पनस्युमा हुवे ।
यस्मिन्त्सुजाता सुभगा महीयते सचा मरुत्सु मीळ्हुषी ॥९ ।२०

हे मरुद्गण ! तुम रथ में अरुषी को जोड़ो। रथों में लाल रङ्ग के घोड़ों को जोड़ो। बोझा ढोने के लिए द्रुतगामी दो घोड़ों को योजित करो। जो बोझा ढोने में मजबूत हैं उन घोड़ों को बोझा ढोने के लिए जोड़ो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! रथ में जुड़े हुए, तेजस्वी, ध्वनि करने वाले और दर्शन योग्य

यह घोड़ा यात्रा में देर न करे। रथ में जुड़े उस घोड़े को तुम इस प्रकार से हाँको, जिससे वह देर न कर पावे ॥ ७ ॥ हम मरुतों के उस अन्न युक्त रथ को बुलाते हैं जिस पर सुमधुर जल को धारण करती हुई मरुद्गण की माता विराजमान है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! हम तुम्हारे सुशोभित, तेजस्वी और स्तुति के योग्य उस रथ को बुलाते हैं। उसके बीच में सुदाता मीढ़लुषी मरुद्गण के साथ पूजी जाती हैं ॥ ९ ॥ [२०]

५७ सूक्त (पाँचवा अनुवाक)

(ऋषि-श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः । छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

आ रुद्रास इन्द्रवन्तः सजोषसो हिरण्यरथाः सुविताय गन्तन ।
इयं वो अस्मत्प्रति हर्यते मतिस्तृष्णजे न दिव उत्सा उदन्यवे ॥१
वाशीमन्त ऋष्टिमन्तो मनीषिणः सुधन्वान इषुमन्तो निषङ्गिणः ।
स्वश्वाः स्थ सुरथाः पृश्निमातरः स्वायुधा मरुतो याथना शुभम् ॥२
धूनुथ द्यां पर्वतान्दाशुषे वसु नि वो वना जिहते यामनो भिया ।
कोपयथ पृथिवीं पृश्निमातरः शुभे यदुग्राः पृषतीरयुग्ध्वम् ॥३
वातत्विषो मरुतो वर्षनिर्णिजो यमाइव सुसदृशः सुपेशसः ।
पिशङ्गाश्वा अरुणाश्वा अरेपसः प्रत्वक्षसो महिना द्यौरिवोरवः ॥४
पुरुद्रप्सा अञ्जिमन्तः सुदानवस्त्वेषसन्दृशो अनवभ्रराधसः ।
सुजातासो जनुषा रुक्मवक्षसो दिवो अर्का अमृतं नाम भेजिरे ।५ ।२१

हे परस्पर दयायुक्त मन वाले, सुवर्णिम रथ में चढ़े हुए, इन्द्र के अनुगामी रुद्र पुत्रो ! तुम हमारे सरलता से प्राप्त यज्ञ में पधारो। हम तुम्हारे निमित्त ही स्तोत्र पढ़ते हैं। तुम प्यास से पीड़ित तथा जल की कामना करते हुए गौतम के पास जैसे स्वर्ग से जल लाये थे, वैसे ही हमारे पास आओ ॥१॥ हे सुन्दर मति वाले मरुद्गण ! तुम्हारे पास विविध आयुध, श्रेष्ठ अश्व तथा शोभित रथ हैं। तुम अस्त्रों से सुसज्जित हो। हमारे मङ्गल के लिए यहाँ आओ ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! तुम अन्तरिक्ष में मेघों को कँपाओ और

वाले अन्न दो। तुम्हारे आने के डर से जंगल भी कांप जाते हैं। हे महान् पराक्रम वालो! जब तुम जल के उद्देश्य से अश्व योजित करते हो, तब पृथिवी पर वृष्टि करते हो ॥ ३ ॥ मरुद्गण तेजस्वी, वृष्टि के शुद्ध करने वाले, समान रूप वाले, दर्शन के योग्य, काले और लाल रङ्ग के घोड़ों के स्वामी, पाप रहित तथा शत्रु का नाश करने वाले हैं। वे आकाश के समान अत्यन्त विस्तृत हैं ॥ ४ ॥ जल वृष्टि करने वाले, दानमय, तेजस्वी, कभी क्षीण न होने वाले धन से युक्त, श्रेष्ठ जन्म वाले, हृदय पर हार धारण करने वाले, और पूजन के पात्र मरुद्गण आकाश से आकर अमृत गुण वाला रस प्राप्त करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

ऋष्टयो वो मरुतो अंसयोरधि सह ओजो बाह्वोर्वो बलं हितम् ।
नृम्णा शीर्षस्वायुधा रथेषु वो विश्वा वः श्रीरधि तनूषु पिपिशे ॥६
गोमदश्वावद्रथवत्सुवीरं चन्द्रवद्राधो मरुतो ददा नः ।
प्रशस्ति नः कृणुत रुद्रियासो भक्षीय वोऽवसो दैव्यस्य ॥७
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद् गिरयो बृहदुक्षमाणाः ।८ ।२२

हे मरुद्गण! तुम्हारे कन्धे पर विशिष्ट आयुध, दोनों भुजाओं में शत्रु का संहार करने वाली शक्ति, शिर पर मुकुट, रथ पर ध्वज और शरीर अत्यन्त सुशोभित हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण! तुम हमको गौ घोड़े, रथ, पुत्र, सुवर्ण तथा बहुत-सा अन्न दो। हे रुद्रपुत्रो! तुम हमारी सम्पन्नता की वृद्धि करो। हम तुम्हारी दिव्य रक्षा को प्राप्त करें ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण! तुम हमारे अनुकूल होओ। तुम असीमित ऐश्वर्य वाले, कभी भी नष्ट न होने वाले, सत्य फल देने वाले, वर्षणशील, तरुण, ज्ञानी, स्तोत्रवान् तथा वृष्टि गुण से युक्त हो ॥ ८ ॥ [२२]

५८ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

तमु नूनं तविषीमन्तमेषां स्तुषे गणं मारुतं नव्यसीनाम् ।

प्र ग्रावस्था अभवद्वहन्त उतेशिरे अमृतस्य स्वराजः ॥ १
त्वेषं गणं तवसं खादिहस्तं धुनिव्रतं मायिनं दातिवारम् ।
मयोभुवो ये अमिता महित्वा वन्दस्व विप्र तुविराधसो नॄन् ॥२
आ वो यन्तूदवाहासो अद्य वृष्टिं ये विश्वे मरुतो जुनन्ति ।
अयं यो अग्निर्मरुतः समिद्ध एतं जुषध्वं कवयो युवानः ॥३
यूयं राजानमिर्यं जनाय विभ्वतष्टं जनयथा यजत्राः ।
युष्मदेति मुष्टिहा बाहुजूतो युष्मत्सदश्वो मरुतः सुवीरः ॥४
अरा इवेदचरमा अहेव प्र प्र जायन्ते अकवा महोभिः ।
पृश्नेः पुत्रा उपमासो रभिष्ठाः स्वया मत्या मरुतः सं मिमिक्षुः ॥५
यत्प्रायासिष्ट पृषतीभिरश्वैर्वीळुपविभिर्मरुतो रथेभिः ।
क्षोदन्त आपो रिणते वनान्यवोस्रियो वृषभः क्रन्दतु द्यौः ॥६
प्रथिष्ट यामन्पृथिवी चिदेषां भर्तेव गर्भं स्वमिच्छवो धुः ।
वातान्ह्यश्वान्धुर्यायुयुज्रे वर्षं स्वेदं चक्रिरे रुद्रियासः ॥७
हये नरो मरुतो मृळता नस्तुवीमघासो अमृता ऋतज्ञाः ।
सत्यश्रुतः कवयो युवानो बृहद्गिरयो बृहदुक्षमाणाः ॥८ ।२३

आज इस यज्ञ-दिवस में हम स्तुति योग्य तेजस्वी मरुद्गण की स्तुति करते हैं ये द्रुतगामी अश्वों के स्वामी, अपनी शक्ति से सर्वत्र पहुँचने वाले, जलों के स्वामी तथा अपने तेज से तेजस्वी हैं ॥ १ ॥ हे होता ! कान्तिमान्, कँपकँपी उत्पन्न करने वाले, धनों के प्रदान करने वाले तथा मेधावी मरुद्गण की परिचर्या करो । वे मरुत् सुखों के देने वाले हैं, उनकी महिमा का पार नहीं और वे असीमित ऐश्वर्य के स्वामी हैं, उन मरुद्गण को नमस्कार करो ॥ २ ॥ वे मरुद्गण संसार में व्याप्त हैं, वे वर्षा को प्रेरण करने वाले हैं । वे जल को वहन करने वाले अभी तुम्हारे समक्ष पधारें । हे युवा और ज्ञानवान् मरुद्गण ! तुम्हारे निमित्त जो अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, तुम उन्हीं के द्वारा हमारी साधना को स्वीकार करो ॥ ३ ॥ हे पूज्य मरुद्गण ! तुम यज-मान को एक पुत्र दो । वह पुत्र तेजस्वी, शत्रुओं का

हे मरुद्‌गण ! तुम्हारी ही कृपा द्वारा अपने बाहु बल से शत्रु का संहार करने वाले तथा असंख्य घोड़ों स्वामी पुत्र प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्‌गण ! रथ-चक्र में लगे डंडों के समान तुम सब एक साथ हो आविर्भूत हुए हो । तुम दिनों के सदृश्य एक समान हो । पृश्नि के पुत्र एक से ही हुए हैं, उनमें कोई कम तेज वाला नहीं है । वे वेगवान्‌ हैं और स्वयं ही जल-वर्षा कर्म में प्रवृत्त होते हैं ॥ ५ ॥ हे मरुद्‌गण ! जब तुम अश्व योजित कर दृढ़ पहिये वाले रथ पर चढ़कर आते हो, तब जल-धारा गिरती है । सूर्य किरणों द्वारा जल वृष्टि करने वाला पर्जन्य नीचे की ओर मुख करके शब्द करता है ॥ ६ ॥ मरुद्‌गण के आने से पृथिवी को उर्वराशक्ति मिलती है । जैसे पति द्वारा पत्नी में गर्भ स्थापित होता है, वैसे ही मरुद्‌गण पृथिवी पर अपने जल रूप गर्भांश को स्थापित करते हैं । वे रुद्र-पुत्र द्रुतगामी घोड़ों को रथ के आगे जोड़ कर वर्षा-कार्य करते हैं ॥ ७ ॥ हे मरुद्‌गण ! तुम हम पर कृपा करो । तुम सब में प्रमुख, महान्‌ ऐश्वर्य के स्वामी, अविनाशी, सत्य फल वाले, ज्ञानी, जलवर्षक, युवा, बहुत स्तुतियों के पात्र तथा वृष्टि के करने वाले हो ॥ ८ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२४]

५९ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व । देवता—मरुतः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्‌)

प्र वः स्पळक्रन्त्सुविताय दावनेऽर्चा दिवे प्र पृथिव्या ऋतं भरे ।
उक्षन्ते अश्वान्तरुषन्त आ रजोऽनु स्वं भानुं श्रथयन्ते अर्णवैः ॥१
अमादेषां भियसा भूमिरेजति नौर्न पूर्णा क्षरति व्यथिर्यती ।
दूरेदृशो ये चितयन्त एमभिरन्तर्महे विदथे येतिरे नरः ॥२
गवामिव श्रियसे शृङ्गमुत्तमं सूर्यो न चक्षू रजसो विसर्जने ।
अत्या इव सुभ्व आरवः स्थन मर्या इव श्रियसे चेतथा नरः ॥३
को वो महान्ति महतामुदश्नवत्कस्काव्या मरुतः को ह पौंस्या ।
यूयं ह भूमिं किरणं न रेजथ प्र यद्भरध्वे सुविताय दावने ॥४
अश्वाइवेदरुषासः सबन्धवः शूराइव प्रयुधः प्रोत युयुधः ।

मर्या इव सुवृधो वावृधुर्नरः सूर्यस्य चक्षुः प्र मिनन्ति वृष्टिभिः ॥५
ते अज्येष्ठा अकनिष्ठास उद्भिदोऽमध्यमासो महसा वि वावृधुः ।
सुजातासो जनुषा पृश्निमातरो दिवो मर्या आ नो अच्छा जिगातन ॥६
वयो न ये श्रेणीः पप्तुरोजसान्तान्दिवो बृहतः सानुनस्परि ।
अश्वास एषामुभये यथा विदुः प्र पर्वतस्य नभनूँरचुच्यवुः ॥ ७
मिमातु द्यौरदितिर्वीतये नः सं दानुचित्रा उषसो यतन्ताम् ।
आचुच्यवुर्दिव्यं कोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥८ ।२४

हे मरुद्गण! महत्त्व की आकांक्षा से हविदाता होता भले प्रकार तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे होता! तुम प्रकाशमान सूर्य की स्तुति करो। हम पृथिवी को नमस्कार करते हैं। सर्वत्र व्याप्त होने वाली वर्षा को मरुद्गण गिराते हैं। वे अन्तरिक्ष में सर्वत्र सींचने वाले मेघों के साथ अपने तेज को दिखाते हैं ॥ १ ॥ जैसे मनुष्यों को जल पर ले जाती हुई नौका काँपती हुई चलती है, वैसे ही मरुद्गण के डर से पृथिवी काँपती है। वे दूर से दिखाई पड़ते हैं और गति द्वारा जाने जाते हैं। वे नेता के समान मरुद्गण आकाश और पृथिवी के मध्य अधिक हवि प्राप्त करने का यत्न करते हैं ॥ २ ॥ हे मरुद्गण! तुम गौओं के सींगों के समान ऊँचे मुकुटों को सिर पर शोभा के लिए धारण करते हो। जैसे दिवसों के स्वामी सूर्य अपनी किरणों को फैलाते हैं, वैसे ही तुम वृष्टि के लिए अपना देदीप्यमान तेज फैलाते हो। तुम अश्वों के समान द्रुतगति वाले तथा सुन्दर हो। यजमान आदि के समान तुम भी यज्ञादि उत्तम कर्मों के ज्ञाता हो ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण! तुम पूज्य हो। कौन तुम्हारी पूजा करने तथा तुम्हारे उद्देश्य से स्तोत्र-पाठ करने में समर्थ होगा? कौन तुम्हारी वीरता का कीर्त्तन करेगा? क्योंकि जब तुम वृष्टिजल को गिराते हो तब रश्मियों के समान पृथिवी भी काँपने लगती है ॥ ४ ॥ अश्वों के समान द्रुतगामी, तेजस्वी, मैत्री-भाव से युक्त मरुद्गण वीरों के समान कर्मों में लगे हुए हैं। ऐश्वर्यमान् पुरुषों के समान वे अत्यन्त पराक्रमी होते हुए वृष्टि के द्वारा सूर्य को भी ढक लेते हैं ॥ ५ ॥ इन मरुद्गण में कोई भी छोटा या बड़ा नहीं है। उन शत्रुओं का नाश करने वालों में कोई भी मध्यम ॥

है । सभी अपने तेज से बढ़े हुए हैं । हे उत्तम जन्म वाले, मनुष्यों का कल्याण करने वाले मरुद्गण ! तुम आकाश-मार्ग से हमारे सामने पधारो ॥६॥ हे मरुद्गण ! तुम पंक्तिबद्ध पक्षियों के समान बल पूर्वक बढ़े हुए और ऊँचे उठकर अन्तरिक्ष तक जाते हो । तुम्हारे घोड़े मेघ से वर्षा का जल गिराते हैं, यह बात देवता और मनुष्य सभी को ज्ञात है ॥ ७ ॥ हमारा पालन करने के लिए आकाश और पृथिवी वर्षा को प्रकट करें । अत्यन्त दानमय स्वभाव वाली उषा हमारे कल्याण के लिए प्रयत्नशील हो । हे ऋषियो ! तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न हुए यह रुद्रपुत्र दिव्य जल की वर्षा करें ॥ ८ ॥ [२४]

६०. सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता-मरुतः अग्निः छन्द-त्रिष्टुप्, जगती)

ईळे अग्निं स्ववसं नमोभिरिह प्रसत्तो वि चयत्कृतं नः ।
रथैरिव प्र भरे वाजयद्भिः प्रदक्षिणिन्मरुतां स्तोममृध्याम् ॥१
आ ये तस्थुः पृषतीषु श्रुतासु सुखेषु रुद्रा मरुतो रथेषु ।
वना चिदुग्रा जिहते नि वो भिया पृथिवी चिद्रेजते पर्वतश्चित् ॥२
पर्वतश्चिन्महि वृद्धो बिभाय दिवश्चित्सानु रेजत स्वने वः ।
यत्क्रीळथ मरुत ऋष्टिमन्त आप इव सध्र्यञ्चो धवध्वे ॥३
वरा इवेद्रैवतासो हिरण्यैरभि स्वधाभिस्तन्वः पिपिश्रे ।
श्रिये श्रेयांसस्तवसो रथेषु सत्रा महांसि चक्रिरे तनूषु ॥४
अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ।
युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥५
यदुत्तमे मरुतो मध्यमे वा यद्वावमे सुभगासो दिवि ष्ठ ।
अतो नो रुद्रा उत वा न्वस्याग्ने वित्ताद्धविषो यद्यजाम ॥६
अग्निश्च यन्मरुतो विश्ववेदसो दिवो वहध्व उत्तरादधि ष्णुभिः ।
ते मन्दसाना धुनयो रिशादसो वामं धत्त यजमानाय सुन्वते ॥७
अग्ने मरुद्भिः शुभयद्भिर्ऋक्वभिः सोमं पिब मन्दसानो गणश्रिभिः ।
पावकेभिर्विश्वमिन्वेभिरायुभिर्वैश्वानर प्रदिवा केतुना सजूः ॥८ ॥२५

हम "श्यावाश्व" ऋषि रथ करने वाले अग्नि का सुन्दर स्तोत्र से स्तवन करते हैं। वे इस यज्ञ में पधार कर हमारे स्तोत्र को जानें। जैसे रथ अपने लक्ष्य पर पहुँचता है, वैसे ही हम अन्न की कामना वाले स्तोत्रों द्वारा अपने अभीष्ट की याचना करते हैं। हम प्रदक्षिणा करने के पश्चात् अपने स्तोत्र को बढ़ावें ॥ १ ॥ हे रुद्र पुत्रो! तुम प्रसिद्ध अश्वों से जुते हुए, सुन्दर, सुसज्जित रथ पर चढ़कर चलो। जब तुम रथ पर चढ़ते हो तब तुम्हारे डर से जङ्गल भी काँप जाते हैं ॥ २ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारे भयङ्कर गर्जन को सुनकर विशाल पर्वत भी डर जाते हैं और अन्तरिक्ष के ऊँचे प्रदेश भी कम्पायमान होते हैं। हे मरुतो! तुम आयुधधारी हो, जब तुम क्रीड़ा विशिष्ट होते हो तब जल [redacted] समान दौड़ते हो ॥ ३ ॥ जैसे विवाह की कामना वाला वैभवशाली युवक सुवर्णाभूषणों से सुसज्जित होता है, वैसे ही सर्वोत्कृष्ट एवं पराक्रमी मरुद्गण रथ पर चढ़ कर अपने तेज से सुसज्जित होते हैं ॥४॥ यह मरुद्गण एक साथ ही जन्मे हैं। इनमें छोटा-बड़ा कोई नहीं है। यह परस्पर बन्धु भाव रखते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं। यह श्रेष्ठ अनुष्ठानों को करने वाले, नित्य युवा मरुद्गण के पिता रुद्र और माता स्वरूपी पृथिवी मरुद्गण के लिए सुन्दर दिन प्रकट करें ॥ ५ ॥ हे भाग्यवान् मरुद्गण! तुम उत्कृष्ट आकाश में, मध्याकाश अथवा नीचे के आकाश में अवस्थित रहते हो। हे रुद्रपुत्रो तुम उन स्थानों से हमारे पास आओ। हे अग्ने! हमारे द्वारा प्राप्त दी जाने वाली हवि को तुम जानो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण! तुम सब जानते हो। तुम और अग्नि आकाश के सर्वोच्च भाग में रहते हो। तुम हमारी हवि और स्तुति से प्रसन्न होते हुए शत्रुओं का वध करो और सोम सिद्ध करने वाले यजमानों को उनका इच्छित ऐश्वर्य दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम प्राचीन-काल से ही ज्वालाओं से युक्त रहते हुए सुन्दर शब्दवान्, पूज्य, शोधनकर्त्ता तथा प्रीति के देने वाले हो। तुम दीर्घायुष्य मरुद्गण के साथ आकर सोमरस पियो ॥ ८ ॥

[३२]

६१ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व। देवता—मरुत्, तरन्त राजा की महिषी शशीयसी प्रस्तृति। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्, बृहती)

के ष्ठा नरः श्रेष्ठतमा य एकएक आयय। परमस्याः

क वोऽश्वा क्वा भीशवः कथं शेक कथा यय । पृष्ठे सदो नसोर्यमः ॥२
जघने चोद एषां वि सक्थानि नरो यमुः । पुत्रकृथे न जनयः ॥३
परा वीरास एतन मर्यासो भद्रजानयः । अग्नितपो यथासथ ॥४
सनत्साश्व्यं पशुमुत गव्यं शतावयम् ।
श्यावाश्वस्तुताय या दोर्वीरायोपबर्बृहत् ॥५ ।२६

हे प्रमुख नेताओ ! तुम कौन हो ? तुम अन्तरिक्ष से एक-एक वार यहाँ पधारो ॥ १ ॥ हे मरुतो ! तुम्हारे घोड़े कहाँ हैं ? लगाम कहाँ है ? तुम्हारा गमन कैसा है ? अश्वों की पीठ पर आस्तरण और दोनों नाकों में रस्सी दिखाई देती है ॥ २ ॥ शीघ्र चलने के लिए घोड़ों की जाँघों पर चाबुक लगाई जाती है । मरुद्गण अश्वों को अपनी जाँघों को चौड़ा करके तेजी से दौड़ने के लिये प्रेरित करते हैं ॥ ३ ॥ हे शत्रुओं का नाश करने वालो ! हे वीरो ! हे मनुष्यों का मङ्गल करने वालो तथा उत्तम जन्म वालो ! हे मरुतो ! तुम अग्नि में तपाए गए ताम्रपात्र के समान वर्ण वाले दिखाई देते हो ॥ ४ ॥ "श्यावाश्व" ने जिस का स्तवन किया, जिसने वीर "तरन्त" को अपने बाहु-बन्धन में बाँध लिया, वही "तरंत महिषी शशीयसी" हमारे लिए घोड़े, गौ तथा पशु-धन देती है ॥ ५ ॥ [२६]

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी । अदेवत्रादराधसः ॥६
वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम् । देवत्रा कृणुते मनः ।
उत घा नेमो अस्तुतः पुमाँ इति ब्रुवे पणिः । स वैरदेय इत्समः ॥८
उत मेऽरपद्युवतिर्ममन्दुषी प्रति श्यावाय वर्तनिम् ।
वि रोहिता पुरुमीळ्हाय येमतुर्विप्राय दीर्घयशसे ॥ ९
यो मे धेनूनां शतं वैददश्विर्यथा ददत् । तरन्तइव मंहना ॥१० २७

जो मनुष्य देवताओं की उपासना नहीं करता और दान नहीं करता उस मनुष्य से "शशीयसी" पूर्णतः श्रेष्ठ है ॥ ६ ॥ वह—"शशीयसी" दुःखी, प्यासे तथा धन की कामना करने वाले को जानती है । वह देवताओं की प्रीति में अपनी बुद्धि लगाती है ॥ ७ ॥ "शशीयसी" के अर्द्धाङ्ग

रथ पति 'तरन्त' की स्तुति करके भी हम कहते हैं कि उनकी स्तुति ठीक प्रकार से नहीं हो पाई। वे दान के बारे में सब समय एक समान ही हैं॥ ८॥ युवती शशीयसी ने प्रसन्न हृदय से "श्यावाश्व" को मार्ग दिखाया था। उसके दिए हुए लाल रंग के दोनों घोड़े हमको मेधावी, तेजस्वी "पुरुमीढ़" के पास पहुँचावे हैं॥ ९॥ "विददश्व" के पुत्र "पुरुमीढ़" ने भी "तरन्त" के समान ही हमको सौ गायें तथा महान् ऐश्वर्य प्रदान किया था॥ १०॥ [२७]

य ईं वहन्त आशुभिः पिबन्तो मदिरं मधु। अत्र श्रवांसि दधिरे॥११
येषां श्रियाधि रोदसी विभ्राजन्ते रथेष्वा। दिवि रुक्म इवोपरि॥१२
युवा स मारुतो गणस्त्वेषरथो अनेद्यः। शुभंयावाप्रतिष्कुतः॥१३
को वेद नूनमेषां यत्रा मदन्ति धूतयः। ऋतजाता अरेपसः॥१४
यूयं मर्तं विपन्यवः प्रणेतार इत्था धिया।
श्रोतारो यामहूतिषु॥१५॥२८

जो मरुद्गण द्रुतगामी घोड़ों पर चढ़कर हर्षोत्पादक सोमरस को पीते हुए इस स्थान पर आए थे, वे मरुद्गण यहाँ विविध प्रकार की स्तुतियों को ग्रहण करते हैं॥ ११॥ जिन मरुतों के तेज से आकाश-पृथिवी व्याप्त होते हैं। ऊपर दिव्य लोक में तेजस्वी सूर्य के समान वे मरुद्गण रथ पर चढ़े हुए विशिष्ट तेज से युक्त होते हैं॥ १२॥ वे मरुद्गण नित्य युवा, तेजोमय रथ वाले, अनिंद्य, सुन्दर गति से चलने वाले और कभी न रुकने वाले हैं॥ १३॥ जल वर्षा के निमित्त उत्पन्न, शत्रुओं को कँपाने वाले और पाप से रहित मरुद्गण जिस स्थान पर पुष्टि को प्राप्त हुए, उस स्थान का ज्ञाता कौन है?॥ १४॥ हे स्तुति की कामना वाले मरुद्गण! जो मनुष्य तुम्हें अपने कर्म द्वारा प्रसन्न करता है, उसे तुम स्वर्गादि की प्राप्ति कराते हो। यज्ञ में बुलाए जाने पर तुम आह्वान को सुनते हो॥ १५॥ [२८]

ते नो वसूनि काम्या पुरुश्चन्द्रा रिशादसः। आ यज्ञियासो ववृत्तन॥१६
एतं मे स्तोममूर्म्ये दार्भ्याय परा वह। गिरो देवि रथीरिव॥१७
उत मे वोचतादिति सुतसोमे रथवीतौ। न कामो अप वेति मे॥१८

एष क्षेति रथवीतिर्मघवा गोमतीरनु । पर्वतेष्वपश्रितः ॥१९ ।२९

हे शत्रुओं का नाश करने वाले, पूज्य, ऐश्वर्यवान् मरुद्गण ! तुम हमको इच्छित धन प्रदान करो ॥ १६ ॥ हे रात्रिदेवी ! तुम हमारे पास से मरुतों को स्तुति की उनके पास पहुँचाओ । यह स्तोत्र मरुद्गण के लिए है । हे देवी ! जैसे रथ वाला रथ पर विविध वस्तुऐं रख कर लक्ष्य पर पहुँचाता है, वैसे ही तुम हमारे इस सम्पूर्ण स्तोत्र को पहुँचाओ ॥ १७ ॥ हे रात्रिदेवी ! सोमयाग की समाप्ति पर "रथवीति" को यह बताना कि मेरी अभिलाषा अभी न्यून नहीं हुई है ॥ १८ ॥ वे "रथवीति "गोमती" तट पर रहते हैं । उनका स्थान हिमयुक्त पर्वत पर अवस्थित है ॥ १९ ॥ [२९]

६२ सूक्त

(ऋषि–श्रुतिविदात्रेयः । देवता–मित्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप्)

ऋतेन ऋतमपिहितं ध्रुवं वां सूर्यस्य यत्र विमुचन्त्यश्वान् ।
दश शता सह तस्थुस्तदेकं देवानां श्रेष्ठं वपुषामपश्यम् ॥ १
तत्सु वां मित्रावरुणा महित्वमीर्मा तस्थुषीरहभिर्दुदुह्रे ।
विश्वाः पिन्वथः स्वसरस्य धेना अनु वामेकः पविरा ववर्त ॥ २
अधारयतं पृथिवीमुत द्यां मित्रराजाना वरुणा महोभिः ।
वर्धयतमोषधीः पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू ॥ ३
आ वामश्वासः सुयुजो वहन्तु यतरश्मय उप यन्त्ववाक् ।
घृतस्य निर्णिगनु वर्तते वामुप सिन्धवः प्रदिवि क्षरन्ति ॥ ४
अनु श्रुताममतिं वर्धदुर्वी बर्हिरिव यजुषा रक्षमाणा ।
नमस्वन्ता धृतदक्षाधि गर्ते मित्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ॥ ५ । ३०

हम तुम्हारे आश्रयभूत, जल द्वारा ढके हुए, अनादिकालीन, सत्य रूप सूर्य मण्डल को देखते हैं । उस स्थान में अवस्थित घोड़ों को स्तोता छोड़ते हैं । उस सूर्य मंडल में सहस्रों किरणें रहती हैं । तेजस्वी अग्नि आदि देवताओं के बीच हमने सूर्य के उस उत्तम मंडल के दर्शन किए ॥ १ ॥ हे

मित्रावरुण ! तुम्हारी महिमा अत्यन्त प्रशस्त है, जिसके द्वारा गतिशील सूर्य के तेज को बढ़ाते हो। तुम्हारा एक मात्र रथ अनुक्रम से घूमता है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! स्तुति करने वाले यजमान तुम्हारी कृपा से राज्य प्राप्त करते हैं। तुम दोनों अपने पराक्रम से आकाश-पृथिवी को धारण करते हो। हे शीघ्र देने वाले मित्रावरुण ! तुम औषधियों और गौओं की वृद्धि के लिए जल वृष्टि करो ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारे अश्व रथ में भले प्रकार जुतकर तुम दोनों को वहन करें। वे सारथि के नियन्त्रण में चलें। साकार जल तुम्हारा अनुगमन करता है। तुम्हारी कृपा से ही प्राचीन नदियाँ बहती हैं ॥ ४ ॥ हे अन्न तथा बल से युक्त मित्रावरुण ! तुम दोनों शरीर के तेज को बढ़ाते हो। यज्ञ की रक्षा जैसे मन्त्र से होती है, वैसे ही तुम पृथिवी की रक्षा करो। तुम दोनों यज्ञ स्थान में रथ पर चढ़ो ॥ ५ ॥　　　　[३०]

अक्रविहस्ता सुकृते परस्पा यं त्रासाथे वरुणेळास्वन्तः ।
राजाना क्षत्रमहृणीयमाना सहस्रस्थूणं बिभृथः सह द्वौ ॥६
हिरण्यनिर्णिगयो अस्य स्थूणा वि भ्राजते दिव्य अश्वाजनीव ।
भद्रे क्षेत्रे निमिता तिल्विले वा सनेम मध्वो अधिगर्त्यस्य ॥७
हिरण्यरूपमुषसो व्युष्टावयः स्थूणमुदिता सूर्यस्य ।
आ रोहथो वरुण मित्र गर्तमतश्चक्षाथे अदितिं दितिं च ॥८
यद्बंहिष्ठं नातिविधे सुदानू अच्छिद्रं शर्म भुवनस्य गोपा ।
तेन नो मित्रावरुणावविष्टं सिषासन्तो जिगीवांसः स्याम ॥९ ।३१

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों जिस यजमान की यज्ञ में रक्षा करते हो उस सुन्दर स्तुति करने वाले यजमान को देने वाले बनो। तुम दोनों ऐश्वर्यशाली क्रोध से रहित होकर सहस्र स्तंभ युक्त मकान के धारण करने वाले हो ॥ ६ ॥ इनका रथ तथा कील आदि सभी सुवर्ण के हैं। यह रथ अन्तरिक्ष में विद्युत के समान सुशोभित होता है। हम कल्याणकारी स्थान में सोमरस स्थापित करें ॥ ७ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम उषाकाल में सूर्योदय होने पर यज्ञ में आते समय सुवर्णमय रथ पर चढ़ो और अखंड भूमि तथा इधर-उधर बिखरी हुई प्रजा को देखो ॥ ८ ॥ हे दानमय तथा संसार

करने वाले मित्रावरुण ! जो सुख न टूटने योग्य, कभी क्षीण न होने वाला तथा महान् है, उस सुख को तुम धारण करने वाले हो। हमारा उसी सुख द्वारा पालन करो। हम इच्छित धन पावें और शत्रुओं को जीतें ॥ ६ ॥ [३१]

६३ सूक्त

(ऋषि–अर्चनाना आत्रेयः। देवता–मित्रावरुणौ। छन्द—जगती)

ऋतस्य गोपावधि तिष्ठथो रथं सत्यधर्माणा परमे व्योमनि।
यमत्र मित्रावरुणावथो युवं तस्मै वृष्टिर्मधुमत्पिन्वते दिवः ॥१
सम्राजावस्य भुवनस्य राजथो मित्रावरुणा विदथे स्वर्दृशा।
वृष्टिं वां राधो अमृतत्वमीमहे द्यावापृथिवी वि चरन्ति तन्यवः ॥२
सम्राजा उग्रा वृषभा दिवस्पती पृथिव्या मित्रावरुणा विचर्षणी।
चित्रेभिरभ्रैरुप तिष्ठथो रवं द्यां वर्षयथो असुरस्य मायया ॥३
माया वां मित्रावरुणा दिवि श्रिता सूर्यो ज्योतिश्चरति चित्रमायुधम्।
तमभ्रेण वृष्ट्या गूहथो दिवि पर्जन्य द्रप्सा मधुमन्त ईरते ॥४
रथं युञ्जते मरुतः शुभे सुखं शूरो न मित्रावरुणा गविष्टिषु।
रजांसि चित्रा विचरन्ति तन्यवो दिवः सम्राजा पयसा न उक्षतम् ॥५
वाचं सु मित्रावरुणाविरावतीं पर्जन्यश्चित्रां वदति त्विषीमतीम्।
अभ्रा वसत मरुतः सु मायया द्यां वर्षयतमरुणामरेपसम् ॥६
धर्मणा मित्रावरुणा विपश्चिता व्रता रक्षेथे असुरस्य मायया।
ऋतेन विश्वं भुवनं वि राजथः सूर्यमा धत्थो दिवि चित्र्यं रथम् ॥७ ।१

हे जल रक्षक, सत्य-धर्म से युक्त मित्रावरुण ! हमारे यज्ञ में आने के लिए तुम दोनों रथ के ऊपर चढ़ते हो। इस यज्ञ में तुम जिस यजमान की रक्षा करते हो, उस यजमान के लिए आकाश से मधुर जल की वर्षा होती है ॥ १ ॥ हे स्वर्गदृष्टा मित्रावरुण ! इस यज्ञ में विराजकर तुम विश्व का शासन करते हो। हम तुमसे वर्षा रूप अन्न तथा दिव्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं। तुम दोनों की महती किरणें आकाश और पृथिवी के बीच घूमती

है ॥ २ ॥ हे मित्र और वरुण ! तुम दोनों सम्पन्न सुशोभित, जल को वर्षा
करने वाले, पराक्रमी, आकाश-पृथिवी के स्वामी तथा सर्वद्रष्टा हो। तुम विचित्र
बहुत रूप वाले मेघों के साथ स्तोत्र सुनने के लिए आओ। फिर दोनों
पर्जन्य के बल से आकाश से जल-धाराओं को गिराओ ॥ ३ ॥ हे मित्रा-
वरुण ! जब ज्योतिर्मय भास्कर अन्तरिक्ष में घूमते हैं, तब तुम दोनों की माया
स्वर्ग में रहती है। तुम दोनों आकाश में मेघ तथा वर्षा द्वारा सूर्य का पालन
करते हो। हे पर्जन्य ! मित्रावरुण के प्रेरण से मधुर जलधार गिरती है ॥४॥
मित्रावरुण ! जैसे वीर पुरुष युद्ध में जाने के लिए अपने रथ को सजाता है,
वैसे ही तुम दोनों के सहयोग से वृष्टि के निमित्त मरुद्गण अपने कल्याणकारी
रथ को सजाते हैं। जल वर्षा के लिए मरुद्गण विभिन्न लोकों में घूमते हैं। हे
शोभनीय देवगणो ! तुम मरुतों के साथ हम पर जल-वृष्टि करो ॥ ५ ॥ हे
मित्रावरुण ! तुम दोनों की प्रेरणा से ही मेघ अन्न साधन करने वाला अद्भुत
गर्जन करता है। उन मेघों की रक्षा मरुद्गण अपनी बुद्धि से करते हैं। तुम
दोनों भी उनके साथ अरुण वर्ण वाले पाप-रहित आकाश से वर्षा करते
हो ॥ ६ ॥ हे मेधावी मित्रावरुण ! तुम दोनों, संसार का उपकार करने वाले
वर्षा आदि कर्म द्वारा यज्ञ का पालन करते हो। जल वर्षा करने वाले पर्जन्य
की शक्ति द्वारा जग को उज्ज्वल बनाते हो। तुम पूजनीय तथा तेजस्वी सूर्य
को सूर्य-मंडल में स्थापित करो ॥ ७ ॥ [1]

६४ सूक्त

(ऋषि-अर्चनाना आत्रेयः। देवता-मित्रावरुणौ। छन्द अनु०, उष्णिक्, पंक्तिः)

वरुणं वो रिशादसमृचा मित्रं हवामहे।
परि व्रजेव बाह्वोर्जगन्वांसा स्वर्णरम् ॥१
ता बाहवा सुचेतुना प्र यन्तमस्मा अर्चते।
शेवं हि जार्यं वां विश्वासु क्षासु जोगुवे ॥२
यन्नूनमश्यां गतिं मित्रस्य यायां पथा।
अस्य प्रियस्य शर्मण्यहिंसानस्य सश्चिरे ॥३
युवाभ्यां मित्रावरुणोपमं धेयामृचा।

यद्ध क्षये मघोनां स्तोतॄणां च स्पूर्धसे ॥४
आ नो मित्र सुदीतिभिर्वरुणश्च सधस्थ आ ।
स्वे क्षये मघोनां सखीनां च वृधसे ॥५
युवं नो येषु वरुण क्षत्रं बृहच्च विभृथः ।
उरु णो वाजसातये कृतं राये स्वस्तये ॥६
उच्छन्त्यां मे यजता देवक्षत्रे रुशद्गवि ।
सुतं सोमं न हस्तिभिरा पड्भिर्धावतं नरा विभ्रतावर्चनानसम् ॥७।२

हे मित्रावरुण ! इस मन्त्र द्वारा हम, तुम दोनों को आहूत करते हैं । तुम अपने भुजबल से शत्रुओं को हटाओ और स्वर्ग के मार्ग को दिखाओ ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों बुद्धिमान हो । हम स्तोताओं को तुम दोनों ही इच्छित धन दो । हम सुन्दर हाथ द्वारा तुम दोनों को प्रणाम करते हैं । तुम दोनों का दिया हुआ प्रशंसनीय सुख सभी स्थानों में व्याप्त है ॥ २ ॥ हम अभी चलें । मित्र द्वारा दिखाए गए मार्ग पर हम चलें । अहिंसक मित्र का श्रेष्ठ कल्याण हमको घर में प्राप्त हो ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम दोनों की स्तुति करते हुए हम ऐसा ऐश्वर्य प्राप्त करेंगे, जिससे सभी स्तुतिकर्त्ता हमारे धन के प्रति ईर्ष्यालु होंगे ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम सुन्दर तेज से युक्त होकर हमारे यज्ञ में पधारो । तुम धनवान् यजमानों के घर में तथा मित्रों के घर में ऐश्वर्य की वृद्धि करो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारी स्तुतियों के लिए तुम असीमित अन्न बल धारण करते हो । तुम दोनों ही हमको अन्न और सुख प्रदान करो ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! हे स्वामिन् ! तुम दोनों उषाकाल में, सुन्दर रश्मियुक्त प्रातः वेला में यज्ञगृह में पूजे जाते हो । उस गृह में हमारे द्वारा सुसिद्ध सोमरस को देखो । तुम दोनों स्तोता के ऊपर प्रसन्न होते हुए गतिशील घोड़े पर चढ़ कर शीघ्र आओ ॥ ७ ॥　　[२]

६५ सूक्त

(ऋषि-रातहव्य आत्रेयः । दे०-मित्रावरुणौ । छन्द-अनु०, उष्णिक, पंक्तिः)

यश्चिकेत स सुक्रतुर्देवत्रा स ब्रवीतु नः ।

यहाँ आकर हमको सभी इच्छित वस्तुओं को प्राप्त कराओ। हे मित्रावरुण हम अन्न के स्वामी हैं। तुम हमको त्यागना नहीं। तुम हमारे पुत्रों से विमुख मत होना। हमारे सोमयाग में तुम दोनों सर्व प्रकार हमारे रक्षक होना ॥ ६ ॥ [३]

६६ सूक्त

(ऋषि–रातहव्य आत्रेयः। देवता–मित्रावरुणौ। छन्द–अनुष्टुप)

आ चिकितान सुक्रतू देवौ मर्त रिशादसा।
वरुणाय ऋतपेशसे दधीत प्रयसे महे ॥१
ता हि क्षत्रमविह्रुतं सम्यगसुर्य माशाते।
अध व्रतेव मानुषं स्वर्ण धायि दर्शतम् ॥२
ता वामेषे रथानामुर्वीं गव्यूतिमेषाम्।
रातहव्यस्य सुष्टुतिं दधृक्स्तोमैर्मनामहे ॥३
अधा हि काव्या युवं दक्षस्य पूर्भिरद्भुता।
नि केतुना जनानां चिकेथे पूतदक्षसा ॥४
तदृतं पृथिवि बृहच्छ्रव एष ऋषीणाम्।
ज्रयसानावरं पृथ्वति क्षरन्ति यामभिः ॥५
आ यद्वामीयचक्षसा मित्र वयं च सूरयः
व्यचिष्ठे बहुपाय्ये यतेमहि स्वराज्ये ॥६ ।४

हे स्तुतियों के जानने वाले मनुष्यो! तुम शत्रुओं का संहार करने वाले तथा अनेक उत्तम कर्मों के करने वाले दोनों देवताओं का आह्वान करो। हवि रूप अन्न तथा रस पूज्य वरुण को अर्पण करो जो अन्नों के स्वामी हैं ॥ १ ॥ तुम दोनों का पराक्रम कभी भी नष्ट न होने वाला तथा राक्षसों का नाश करने वाला है। जैसे सूर्य अन्तरिक्ष में प्रकाशित होते हैं, वैसे ही तुम दोनों का प्रकाशित बल यज्ञ-स्थान में देदीप्यमान होता है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण! हविरन्न युक्त श्रेष्ठ स्तुति द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करते

सामर्थ्य लाभ करते हुए तुम दोनों हमारे इस रथ के आगे मार्ग की रक्षा के लिए चलते हो। उस समय हम, तुम दोनों का स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तुति के पात्र, अत्यन्त बल वाले दोनों देवताओ! हमारी परिपूर्ण करने वाली स्तुति द्वारा तुम दोनों अत्यन्त प्रवृद्ध होते हो। क्योंकि तुम दोनों ही प्रीति-युक्त हृदय से हमारे स्तोत्र के जानने वाले हो ॥ ४ ॥ हे भूमिदेवी! हम ऋषियों का अभीष्ट साधन करने के लिए तुम्हारे ऊपर जल स्थापित करते हैं। हे गतिवान् दोनों देवता अपने नियम और गति द्वारा प्रचुर जल की वर्षा करते हैं ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण! तुम दूरदर्शी हो। हम स्तुति करने वाले तुम दोनों को बुलाते हैं। हम तुम्हारे व्यापक निवास और अश्वों के द्वारा जाने हुए आश्रय को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ [४]

६७ सूक्त

(ऋषि—यजत आत्रेयः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—अनुष्टुप्)

बळित्था देव निष्कृतमादित्या यजतं बृहत् ।
वरुण मित्रार्यमन्वर्षिष्ठं क्षत्रमाशाथे ॥१
आ यद्योनिं हिरण्ययं वरुण मित्र सदथः ।
धर्तारा चर्षणीनां यन्तं सुम्नं रिशादसा ॥२
विश्वे हि विश्ववेदसो वरुणो मित्रो अर्यमा ।
व्रता पदेव सश्चिरे पान्ति मर्त्यं रिषः ॥३
ते हि सत्या ऋतस्पृश ऋतावानो जनेजने ।
सुनीथासः सुदानवोंऽहोश्चिदुरुचक्रयः ॥४
को नु वां मित्रास्तुतो वरुणो वा तनूनाम् ।
तत्सु वामेषते मतिरत्रिभ्य एषते मतिः ॥५ ॥५

हे देवगण! अदिति पुत्र मित्र, वरुण और अर्यमा! तुम [illegible]
योग्य, वर्द्धमान, [illegible] बल के [illegible] हो
समतायुक्त हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण! तुम [illegible]
शत्रुओं का नाश करने वाले हो। [illegible]

तब हमारा मङ्गल करते हो ॥ २ ॥ सब के जानने वाले मित्र, वरुण और अर्यमा अपने-अपने स्थान के अनुरूप हमारे इस यज्ञ-गृह में विराजमान होते हैं और हिंसा करने वाले पापी असुरों से मनुष्यों की रक्षा करते हैं ॥३॥ वे मित्रा-वरुण सत्य मार्ग के दिखाने वाले, जल की वर्षा करने वाले तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले हैं। वे प्रत्येक मनुष्य को सत्य मार्ग दिखाते और धन देते हैं। वे निम्न कोटि के स्तोता को भी ऐश्वर्य प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारे द्वारा तुम दोनों की स्तुतियाँ करने पर भी कौन ऐसा है जिसकी स्तुति नहीं हुई ? अर्थात् तुम दोनों ही स्तुत्य हो। हम अल्प बुद्धि वाले अत्रि वंशीय स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [५]

६८ सूक्त

(ऋषि—यजत आत्रेय । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—गायत्री)

प्र वो मित्राय गायत वरुणाय विपा गिरा । महिक्षत्रावृतं बृहत् ॥ १
सम्राजा या घृतयोनी मित्रश्चोभा वरुणश्च । देवा देवेषु प्रशस्ता ॥ २
ता नः शक्तं पार्थिवस्य महो रायो दिव्यस्य । महि वां क्षत्रं देवेषु ॥ ३
ऋतमृतेन सपन्तेषिरं दक्षमाशाते । अद्रुहा देवौ वर्धेते ॥ ४
वृष्टिद्यावा रीत्यापेषस्पती दानुमत्याः । बृहन्तं गर्तमाशाते ॥ ५ । ६

हे ऋत्विको ! तुम मित्रावरुण की भले प्रकार स्तुति करो। हे महान् पराक्रमी मित्रावरुण ! तुम दोनों हमारे इस श्रेष्ठ महायज्ञ में आगमन करो ॥ १ ॥ मित्रावरुण दोनों ही सब के अधीश्वर, जल के उत्पन्न करने वाले, तेजस्वी और देवताओं में अत्यन्त स्तुतियों के पात्र हैं। हे ऋत्विजो ! उन दोनों की परिचर्या करो ॥ २ ॥ वे दोनों देवता हमको पार्थिव तथा दिव्य दोनों प्रकार का ऐश्वर्य प्रदान करने वाले हैं। हे मित्रावरुण ! तुम दोनों प्रशंसित परा-क्रमी देवताओं में प्रसिद्ध है। हम उस पराक्रम का गान करते हैं ॥ ३ ॥ वे दोनों देवता जल द्वारा यज्ञ का स्पर्श करते हुए यजमान को सम्पन्न करते हैं। हे मित्रावरुण ! तुम्हारा कोई द्रोही नहीं है। तुम दोनों अत्यन्त बढ़े हुए हो ॥ ४ ॥ जिन दोनों की प्रेरणा से अन्तरिक्ष जल-वर्षा करता है, जो दोनों

इच्छित फल का सम्पादन करने वाले हैं, जो वृष्टिदायक होने के कारण धनों के स्वामी हैं और जो दानशील व्यक्ति पर सदा अनुग्रह करते हैं, वे दोनों देवता मित्र और वरुण यज्ञ में आने के लिए रथ पर चढ़ते हैं ॥ ५ ॥ [६]

६९ सूक्त

(ऋषि—उरुचक्रिरात्रेयः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्री रोचना वरुण त्रीरुँत द्यून्त्रीणि मित्र धारयथो रजांसि ।
वावृधानावमतिं क्षत्रियस्यानु व्रतं रक्षमाणावजुर्यम् ॥ १
इरावतीर्वरुण धेनवो वां मधुमद्वां सिन्धवो मित्र दुह्रे ।
त्रयस्तस्थुर्वृषभासस्तिसृणां धिषणानां रेतोधा वि द्युमन्तः ॥ २
प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
राये मित्रावरुणा सर्वतातेळे तोकाय तनयाय शं योः ॥३
या धर्तारा रजसो रोचनस्योतादित्या दिव्या पार्थिवस्य ।
न वां देवा अमृता आ मिनन्ति व्रतानि मित्रावरुणा ध्रुवाणि ॥ ४।७

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ज्योतिर्मान तीनों दिव्य लोकों के धारण करने वाले हो । तुम तीनों अन्तरिक्ष और तीनों भू मंडलों के धारण करने वाले हो । तुम दोनों यजमान के क्षात्र-कर्म की सदा रक्षा करते हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी प्रेरणा से ही गौएँ दूध देती हैं । तुम्हारी प्रेरणा से ही मेघ जल प्रदान करते हैं । तुम्हारी प्रेरणा से ही जलों की वर्षा करने वाले, जल धारक तथा ज्योतिर्मान् अग्नि, वायु और सूर्य नामक तीनों देवता पृथिवी, अन्तरिक्ष और सूर्य मंडल के अधिपति रूप से प्रतिष्ठित होते हैं ॥२॥ प्रातः सवन और दिन के मध्य सवन में हम ऋषिगण देवताओं की तेजस्विनी माता अदिति का आह्वान करते हैं । हे मित्रावरुण ! हम धन, पुत्र-पौत्रादि, सुख-लाभ तथा अनिष्टों के शमनार्थ तुम दोनों की इस यज्ञ में स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे सौर लोक में उत्पन्न हुए अदिति के दोनों पुत्रों ! तुम दोनों ही स्वर्ग और पृथिवी के धारण करने वाले हो । हम, तुम दोनों की स्तुति करते

हैं। हे मित्रावरुण ! तुम्हारे कार्य सदा स्थिर रहते हैं। इन्द्रादि देव भी तुम्हारे कार्यों को विनष्ट नहीं कर सकते ॥ ४ ॥ [७]

७० सूक्त

(ऋषि—उरुचक्रि रात्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

पुरूरुणा चिद्ध्यस्त्यवो नूनं वां वरुण। मित्र वंसि वां सुमतिम् ॥ १
ता वां सम्यगद्रुह्वाणेषमश्याम धायसे। वयं ते रुद्रा स्याम ॥ २
पातं नो रुद्रा पायुभिरुत त्रायेथां सुत्रात्रा। तुर्याम दस्यून्तनूभिः ॥ ३
मा कस्याद्भुत क्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः। मा शेषसा मा तनसा ॥४॥

हे मित्रावरुण ! तुम्हारे रक्षा-साधन अत्यन्त ही दृढ़ हैं। हम तुम दोनों की कृपा-बुद्धि की याचना करते हैं ॥ १ ॥ हे दोनों देवताओं ! तुम द्रोह से शून्य हो। हम तुम्हारे द्वारा अपने भोजन के लिए अन्न पावें। हे रुद्रो ! हम तुम्हारी ही स्तुति करते हैं। हम तुम्हारे ही सेवक हैं। हम समृद्धि को प्राप्ति करें ॥ २ ॥ हे देवद्वय ! अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो। सुन्दर आश्रय में हमारा पालन करो। हम अभीष्ट पावें, और हमारे अनिष्ट दूर हों। हम अपने पुत्रों द्वारा या स्वयं ही शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हों ॥ ३ ॥ हे अद्भुतकर्मा मित्रावरुण ! हम किसी अन्य के प्रशंसनीय धन का अपने लिए उपभोग नहीं करते हैं। हम तुम्हारी कृपा से ही पुष्ट हैं। किसी के धन से शरीर को पुष्ट नहीं करते। हम अपनी संतान के साथ तथा हमारे कुटुम्बी भी अन्य किसी के धन का उपयोग नहीं करते अर्थात् हम तुम्हारी कृपा द्वारा प्राप्त धन सम्पत्ति से ही संतुष्ट रहते हैं ॥ ४ ॥ [८]

७१ सूक्त

(ऋषि—बाहुवृक्त आत्रेयः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—गायत्री)

आ नो गन्तं रिशादसा वरुण मित्र बर्हणा। उपेमं चारुमध्वरम् ॥१
विश्वस्य हि प्रचेतसा वरुण मित्र राजथः। ईशाना पिप्यतं धियः ॥ २
उप नः सुतमा गतं वरुण मित्र दाशुषः। अस्य सोमस्य पीतये ॥३ । ६

हे मित्रावरुण ! तुम दोनों ही शत्रुओं को नष्ट —— —— —— ——

यज्ञ में हिंसा नहीं होती। तुम दोनों ही हमारे यज्ञ में पधारो ॥ १ ॥ हे मेधावी मित्रावरुण! तुम दोनों सब मनुष्यों के स्वामी हो। तुम दोनों हमारे लिए ईश्वर रूप हो। तुम हमको फल देते हुए हमारे कर्मों को पुष्ट करो ॥२॥ हे मित्रावरुण! तुम दोनों हमारे सुसिद्ध सोमरस के निमित्त आओ। हम हव्य प्रदान करते हैं। हमारे सोमरस का पान करने के लिऐ यहाँ पधारो ॥३॥ [६]

७२ सूक्त

(ऋषि–बाहुवृक्त आत्रेयः। देवता–मित्रावरुणौ। छन्द—उष्णिक्)

आ मित्रे वरुणे वयं गीर्भिर्जुहुमो अत्रिवत्।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ १
व्रतेन स्थो ध्रुवक्षेमा धर्मणा यातयज्जना।
नि बर्हिषि सदतं सोमपीतये ॥ २
मित्रश्च नो वरुणश्च जुषेतां यज्ञमिष्टये।
नि बर्हिषि सदतां सोमपीतये ॥ ३ । १०

जिस प्रकार हमारे मूल पुरुष अत्रि ने तुम्हारा आह्वान किया था, हे मित्रावरुण! उसी विधि से मन्त्र द्वारा हम भी तुम को बुलाते हैं। वे दोनों देवता कुशासन के ऊपर बैठ कर सोमरस को स्वीकार करें ॥ १ ॥ मित्र और वरुण जगत के आधार स्वरूप हैं और सदैव अपने स्थान पर सुस्थिर बने रहते हैं। यज्ञ में ऋत्विकगण इन को हविर्दान करते हैं। अतः वे दोनों देवता कुशासन पर विराजमान हों ॥ २ ॥ मित्र और वरुण से हम प्रार्थना करते हैं कि वे हमारे यज्ञ में सोत्साह आगलें और सोम को ग्रहण करने के लिए कुशासन पर आकर विराजें ॥ ३ ॥ [१०]

७३ सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि—पौर आत्रेयः। देवता—अश्विनौ। छन्द—अनुष्टुप्)

यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना।
यद्वा पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ

इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसासि विभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥ २
ईर्मान्यद्वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥ ३
तद्रू षु वामेना कृतं विश्वा यद्वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥ ४
आ यद्वां सूर्या रथं तिष्ठद्रघुष्यदं सदा ।
परि वामषा वयो घृणा वरन्त आतप ॥ ५ ।११

हे अश्विनीकुमारो ! तुम असंख्य यज्ञों में हव्य ग्रहण करते हो। यद्यपि तुम इस समय सुदूर स्वर्ग में, अन्तरिक्ष में, अथवा किसी अन्य दूरस्थ लोक में वर्तमान होगे, तो भी उन लोकों से हमारे यज्ञ में पधारो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों ही, यजमानों को उत्साहित करने वाले, विविध अनुष्ठानों के धारण करने वाले, वरण करने योग्य, श्रेष्ठगति तथा कर्मों वाले हो। हम तुम्हारा रक्षा के निमित्त आह्वान करते हैं। तुम दोनों हमारे इस यज्ञ में पधारो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! सूर्य को प्रकाशित करने के लिए तुमने रथ के एक ज्योतिर्मान पहिये को योजित किया। तुम अपने पराक्रम से प्राणियों के लिए दिवस रात्रि आदि को प्रकट करने के लिए अन्य पहिए द्वारा लोकों में घूमते हो ॥ ३ ॥ हे सर्वव्यापक अश्विद्वय ! हम जिस स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम दोनों का वह स्तोत्र सुसम्पादित हो। हे पाप से रहित दोनों देवताओ ! हमको असीमित धन दो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जब तुम्हारी नारी रूपिणी सूर्या तुम्हारे द्रुतगामी रथ पर चढ़ती है, तब तुम दोनों के चारों ओर अत्यन्त तेजोमय प्रकाश फैल जाता है ॥ ५ ॥ [११]

युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद्वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥ ६
उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु सन्तनिः ।
यद्वां दंसोभिरश्विनात्रिर्नरावर्वतति ॥ ७

मध्व ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत्समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥ ८
सत्यमिद्वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन्यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥ ९
इमा ब्रह्माणि वर्धनाश्विभ्यां सन्तु शन्तमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥ १० । १२

हे अश्विनीकुमारो ! हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारी स्तुति करके जब अग्नि के ताप को सुख से सहन करने योग्य समझा तब अग्नि के दाहक प्रभाव का शमन होने के कारण वे तुम्हारे उपकार को याद करते हुए कृतज्ञ हुए ॥६॥ तुम्हारा ऊँचा, दृढ़, गतिशील रथ यज्ञ में प्रख्यात है। हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे कृपापूर्ण कार्यों से ही हमारे पिता अत्रि दुःखों से छुटकारा पा सके थे ॥ ७ ॥ हे मधुर सोम के मिलाने वाले देवताओ ! हमारी बलकारक स्तुति तुम्हारे ऊपर मधुर सोम रस को सींचती है। तुम अन्तरिक्ष की सीमा को भी लाँघ जाते हो। परिपक्व हविरन्न तुम दोनों देवताओं को पुष्ट करता है ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! ज्ञानीजन तुम दोनों को सुख का देने वाला कहते हैं, यह अवश्य ही सत्य है। हमारे यज्ञ में सुख प्रदान करने के लिए बुलाए जाने पर तुम हमारी हार्दिक अभिलाषा की पूर्ति कर हमें सुखी करो ॥ ९ ॥ जैसे कलाकार शिल्पी रथों का निर्माण करता है, वैसे ही हम अश्विनीकुमारों को पुष्ट करने के लिए स्तुतियाँ अर्पित करते हैं। वे स्तुतियाँ उनको स्नेहदायिनी बनें ॥ १० ॥ [१२]

७४ सूक्त

(ऋषि-पौर आत्रेयः । देवता-अश्विनौ । छन्द-अनुष्टुप्, उष्णिक्)

कूष्ठो देवावश्विनाद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥ १
कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥ २

याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥ ३

रं चिद्धयु दप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥ ४

च्यवानाज्जुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥ ५ । १३

हे स्तुति के योग्य, धन का दान करने वाले अश्विद्वय ! आज इस यज्ञ दिवस में तुम दोनों आकाश से आकर इस पृथिवी पर रुको और अत्रि ऋषि जिस स्तोत्र का तुम्हारे लिए पाठ करते थे, उस स्तोत्र को सुनो ॥ १ ॥ हे तेजस्वी दोनों कहाँ हैं ? वे इस यज्ञ-दिन में आकाश के किस स्थान पर वर्तमान रहकर स्तुतियाँ सुन रहे हैं ? हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों किस यजमान के पास आते हो ? कौन स्तुति करने वाला यजमान तुम्हारी स्तुति करता है ? ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम दोनों किसके यज्ञस्थान में जाते हो ? तुम किससे जाकर मिलते हो ? तुम किसके सामने जाने के लिए अपने रथ में घोड़े जोड़ते हो ? किस स्तोता के स्तोत्र तुम्हारी भक्ति करते हैं ? हम तुम दोनों को प्राप्त करने की अभिलाषा करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों जल-वाहक मेघ को प्रेरणा करो । जैसे वन में सिंह को शिकारी ललकारता है, वैसे ही यज्ञ-कर्म में तुम दोनों अनिष्टों को ताड़ना दो ॥ ४ ॥ तुम दोनों ने बुढ़ापे से जीर्ण हुए च्यवन के पुराने शरीर की कुरूपता को कवच के समान दूर किया था । जब उनको दुबारा युवावस्था दी तब उन्होंने सुन्दर स्त्री के रूप में इच्छित भार्या को प्राप्त किया था ॥ ५ ॥ [१३]

अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां सन्दृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥ ६

को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥ ७

आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।

पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥ ८
दाम् षु वां मधूयुवास्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥ ९
अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥ १० । १४

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों की स्तुति करने वाले हम यज्ञ मण्डप में उपस्थित हैं। हम समृद्धि के लिए तुम्हारे दर्शन के लिए चलें। तुम हमारे आह्वान को आज सुनो। तुम अन्न से युक्त हो। अपने रक्षा साधनों सहित यहाँ पधारो ॥ ६ ॥ हे अन्नवान् अश्विनीकुमारो ! असंख्य मरणधर्मा प्राणियों में कौन आज तुम्हें अधिक प्रसन्न करता है ? हे ज्ञानीजनों द्वारा नमस्कृत अश्वियो ! कौन ज्ञानी तुमको और सब की अपेक्षा अधिक तृप्त करता है ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! अन्य सभी देवताओं के रथों में सब की अपेक्षा अधिक वेग से चलने वाला तथा असंख्य शत्रुओं को हनन करने वाला और सभी के द्वारा स्तुत हुआ तुम दोनों का सुन्दर रथ हम यजमानों की मङ्गल-कामना करता हुआ, हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ-स्थान में आवे ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे निमित्त सम्पादन किए गए स्तोत्र हमारे लिए सुखों का उत्पादन करें। हे ज्ञानवान् अश्विद्वय ! तुम दोनों आज पक्षी के समान सर्वत्र जाने वाले अपने रथ पर चढ़ कर हमारे सामने आने की कृपा करो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम जहाँ कहीं भी हो, हमारे आह्वान को अवश्य सुनो। तुम्हारे पास पहुँचने की इच्छा करता हुआ यह हविरन्न तुम दोनों को प्राप्त हो ॥ १० ॥ [१४]

७५ सूक्त

(ऋषि—अवस्युः । देवता—अश्विनौ । छन्द—पंक्ति ।)

प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१
अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा माध्वी मम श्रुतं

आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ३
सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ४
बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥१५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारी स्तुति करने वाले अवस्यु ऋषि तुम दोनों के, फलों की वर्षा करने वाले और धन से परिपूर्ण रथ को सजाते हैं। हे ज्ञानियो ! हमारे आह्वान को सुनो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सब यजमानों को लाँघकर यहाँ आओ। जिससे हम सब वैरियों को वशीभूत कर सकें। हे शत्रु हन्ता अश्विद्वय ! तुम स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, महान धन वाले, नदियों के प्रवाहित करने वाले हो। तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे लिए रत्न-धन लेकर आओ। हे स्वर्णिम रथ पर चढ़ने वाले, स्तुत्य, अन्नवान्, यज्ञ में प्रतिष्ठित होने वाले ज्ञानी अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे सुन्दर आह्वान को श्रवण करो ॥ ३ ॥ हे धन की वर्षा करने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों की स्तुति करने वाले का स्तोत्र तुम्हारे निमित्त पढ़ा जाता है। तुम्हारा यजमान एकाग्र मन से तुम दोनों को हविरन्न प्रदान करता है। हे ज्ञानियो ! तुम हमारे अह्वान को सुनो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों विवेक बुद्धि वाले, रथ पर चढ़ने वाले वेगवान् और स्तोत्र के सुनने वाले हो। तुम दोनों निष्कपट अन्तःकरण वाले च्यवन ऋषि के पास शीघ्र ही घोड़े पर चढ़ कर गए थे। हे ज्ञानवान् ! तुम हमारे आह्वान को सुनो ॥ ५ ॥ [१५]

आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ६
अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७

अस्मिन्यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युमश्विना युवं गृणन्तमुप भूषथो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ८
अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥ ९।१६

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के अश्व सुशिक्षित, वेगवान् और अद्भुत रूप वाले हैं। वे इस यज्ञ मंडप में सोम पीने के लिए तुम दोनों को शोभन ऐश्वर्य सहित ले आवें। हे मधुविज्ञान-विशारद अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ-गृह में आओ। तुम दोनों हमसे विरुद्ध नहीं होना। हे स्वामिन् तुम अजेय हो। तुम हमारे यज्ञ-गृह में आओ। हे मधुविद्या के जानने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ७ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम जल के स्वामी हो। तुम दोनों इस गृह में स्तोता पर अनुग्रह करो। हे मधुविद्या के ज्ञाता अश्विद्वय ! तुम दोनों हमारे आह्वान को सुनो ॥ ८ ॥ उषा फैल गई है। कान्तिमती किरणों से युक्त अग्नि वेदी पर विराजमान हुए हैं। हे धन की वर्षा करने वाले तथा शत्रुओं का विनाश करने वाले अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों के रुस्वर रथ में घोड़े जुड़ जाँय। हे मधुविद्या के ज्ञाताओ ! हम दोनों का आह्वान सुनो ॥ ९ ॥ [१६]

७६ सूक्त

(ऋषि-अत्रिः। देवता-अश्विनौ। छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आ भात्यग्निरुषसामनीकमुद्विप्राणां देवया वाचो अस्थुः ।
अर्वाञ्चा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना घर्ममच्छ ॥ १
न संस्कृतं प्र मिमीतो गमिष्ठान्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाभिपित्वेऽवसागमिष्ठा प्रत्यवर्तिं दाशुषे शम्भविष्ठा ॥ २
उता यातं सङ्गवे प्रातरह्नो मध्यन्दिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शन्तमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३
इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरो...

आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥ ४

सुप्रणीती गमेम ।

समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा

आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ । १७

उषाकाल में चैतन्य अग्नि प्रकाशमान हो रहे हैं। ज्ञानी स्तोताओं के देवताओं की कामना वाले स्तोत्र गाये जाते हैं। हे रथों के स्वामी अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ-गृह में प्रकट होकर इस सोम-रस से युक्त यज्ञ में आओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे इस संस्कारयुक्त यज्ञ की हिंसा न करो और यज्ञ के पास शीघ्र आकर स्तुति के पात्र बनो। तुम अपने रक्षा-साधनों सहित प्रातःकाल आओ, जिससे अन्न का अभाव न हो। तुम हविर्दाता यजमान का कल्याण करो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम रात्रि के अन्त में, गौओं को दोहने के समय, प्रातःकाल में, जब आदित्य अत्यन्त बढ़े हुए होते हैं, सायंकाल और रात्रि में अथवा किसी भी समय अपने मङ्गलकारी रक्षा-साधनों सहित यहाँ आओ। अश्विनीकुमारों के अतिरिक्त अन्य देवता सोम-रस पीने को शीघ्र प्रस्तुत नहीं होते ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! इस उत्तर पर तुम प्राचीन काल से विराजमान होते आए हो। यह सभी घर तुम के ही हैं। तुम दोनों जल से परिपूर्ण मेघ द्वारा अन्तरिक्ष से अन्न और के साथ हमारे पास आओ ॥ ४ ॥ हम सब अश्विनीकुमारों के उत्तम रक्षा-साधनों तथा सुख से पूर्ण आगमन से प्रसन्न हों। हे अमरत्व प्राप्त अश्विद्वय ! तुम दोनों हमको धन, संतान और सभी सुख दो ॥ ५ ॥ [१७]

७७ सूक्त

(ऋषिः—अत्रिः । देवता—अश्विनौ । छन्द–त्रिष्टुप्)

प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः ।

प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥ १

प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।

उतान्यो अस्मद्यजते वि चावः पूर्वः पूर्वो यजमानो वनीयान् ॥ २

हिरण्यत्वङ् मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम् ।

मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥ ३
यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे ।
स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित्तुतुर्यात् ॥ ४
समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥ ५ । १८

हे अश्विनो! दोनों अश्विनीकुमार प्रातःकाल ही सब देवताओं से पहले ही पहुँचते हैं, तुम सब उनका यज्ञ करो। वे दिन के पूर्व काल में ही हव्य ग्रहण करते हैं। वे प्रातःकाल ही यज्ञ को धारण करते हैं। प्राचीन-कालीन ऋषिगण उनकी प्रातः सवन में ही स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ हे मनुष्यो! प्रातः काल ही अश्विनीकुमारों की पूजा करो। उन्हें हवियाँ दो। सायंकाल दिया जाने वाला हव्य देवताओं के पास नहीं पहुँचता। उस असेवनीय हव्य को देवता ग्रहण नहीं करते। हमारे सिवाय जो कोई व्यक्ति सोम द्वारा उनका यज्ञ करता है और हवि देकर उन्हें सन्तुष्ट करता है तथा जो व्यक्ति हमसे पूर्व ही उनकी पूजा करता है, वह देवताओं का प्रीति भाजन होता है ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम दोनों का सुवर्ण खचित, सुन्दर वर्ण वाला, जल वर्षक मन के समान द्रुतगति वाला, वायु के समान वेग वाला और अन्नों का धारक रथ आता है। तुम दोनों ही उस रथ के द्वारा सब दुर्गम मार्गों को लाँघ जाते हो ॥ ३ ॥ जो यजमान अश्विनीकुमारों के लिए यज्ञ में हविर्दान करता है, वह अपने, संतान आदि की रक्षा प्राप्त करता है। जो अग्नि को प्रदीप्त नहीं करते, वे हानि सहन करते हैं ॥ ४ ॥ हम अश्विनीकुमारों के श्रेष्ठ रक्षा-साधनों तथा शुभ आगमन से सुख प्राप्त करें। हे अविनाशी अश्विद्वय! तुम दोनों हमको धन, सन्तान तथा सुख दो ॥ ५ ॥ [१८]

७८ सूक्त

(ऋषि—सप्तवध्रिरात्रेयः। देवता-अश्विनौ। छन्द-उष्णिक्, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ १

अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ २
अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥ ३
अत्रिर्यद्वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनागच्छतमश्विना शन्तमेन ॥ ४ । १९

हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों इस यज्ञ में आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों सिद्ध सोम-रस के लिए पधारो ॥१॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे हरिण घास के लिए दौड़ते हैं और दो हंस स्वच्छ जल के लिए जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों हमारे छने हुए सोम-रस के लिए आओ ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न और श्रेष्ठ निवास के देने वाले हो । तुम दोनों हमारे यज्ञ में कामनाऐं पूर्ण करने के लिए आओ । जैसे दो हंस स्वच्छ जल के पास जाते हैं, वैसे ही तुम दोनों इस सिद्ध सोम-रस के पास आओ ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जैसे स्त्री अपने पति को विनम्रता से प्रसन्न कर लेती है, वैसे ही हमारे पिता अत्रि ने तुम्हारा स्तवन करते हुए तुषाग्नि कुण्ड से छुटकारा पाया था । तुम दोनों श्येन के नवोत्पन्न वेग के समान वेग वाले सुखदायक रथ द्वारा हमारी रक्षा के निमित्त पधारो ॥ ४ ॥ [१९]

वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५
भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥ ६
यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥ ७
यथा वातो यथा वनं यथा-समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥ ८

दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।

निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥ ९ । २०

हे काष्ठ निर्मित पेटिके ! प्रसव करने वाली स्त्री का अङ्ग जैसे सन्तानोत्पत्ति के समय तदनुकूल हो जाता है वैसे ही तुम भी विस्तृत होकर सुविधा जनक बन जाओ । तुम सप्तवध्रि ऋषि को मुक्त करने के लिए हमारा आह्वान सुनो ॥ ५ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम दोनों भयभीत तथा निकलने के लिए प्रार्थना करते हुए सप्तवध्रि ऋषि के लिए माया की पेटी को पृथक् करते हो ॥ ६ ॥ वायु जैसे सरोवर आदि के जल को चलाती है, वैसे ही तुम्हारा गर्भस्थ शिशु स्पन्दन करने वाला हो और वह दश मास में पूर्ण होकर बाहर निकल आवे ॥ ७ ॥ वायु, वन और समुद्र जैसे कांपते हैं, वैसे ही [illegible] गर्भस्थ शिशु जरायु में लिपटा हुआ निकलता है ॥ ८ ॥ [illegible] दश मास तक गर्भस्थित शिशु जीवित हो, [illegible] जन्म ले ॥ ९ ॥

[२०]

७९ सूक्त

(ऋषि—सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता—उषा । छन्द—[illegible]

महे नो अद्य बोधयोषो राये [illegible] ।

यथा चिन्नो अबोधयः सत्यश्रवसि वाय्ये [illegible]

या सुनीथे शौचद्रथे [illegible]

सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि [illegible]

सा नो अद्याभरद्वसु [illegible]

यो व्यौच्छः सहीयसि [illegible]

अभि ये त्वा [illegible]

मघैर्मघोनि सुश्रियो [illegible]

[illegible]

परि चिद्वष्टयो [illegible]

हे कान्तिमती उषे ! तुमने जैसे हमको पहिले श्रेष्ठ बुद्धि दी थी, उसी प्रकार आज भी बहुत-साधन प्राप्त करने के लिए बुद्धि दो। हे सुन्दर प्राकट्य वाली उषे ! घोड़ों की प्राप्ति के लिए स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम "सत्यश्रवा" पर कृपा करो ॥ १ ॥ हे सूर्य की पुत्री उषे ! तुमने "शुचद्रथ" के पुत्र "सुनीथि" के लिए अन्धकार को नष्ट किया था। हे सुन्दर उत्पत्तिवाली उषे ! अश्व-लाभ के लिए स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुमने "वय्य" के पुत्र पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार दूर किया था ॥२॥ हे सूर्य-कन्ये ! तुम धन लेकर आती हो। आज तुम हमारे अन्धकार को दूर करो। हे उत्तम जन्म वाली, अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति की जाती है। तुमने "वय्य पुत्र" पराक्रमी "सत्यश्रवा" का अन्धकार मिटाया था ॥ ३ ॥ हे ज्योतिर्मती उषे ! जो ऋत्विक् स्तोत्र से तुम्हारी परिचर्या करते हैं, वे ऐश्वर्य से सम्पन्न और दानी होते हैं। हे ऐश्वर्यशालिनी उषे ! तुम उत्तम जन्म वाली हो। स्तोतागण अश्व-लाभ के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे उषे ! धन के लिए तुम्हारी सेवा में उपस्थित यह साधक अक्षय हविरन्न देकर हमारे अनुकूल हुए थे। हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तोतागण अश्व-के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

ऐषु धा वीरवद्यश उषो मघोनि सूरिषु।
ये नो राधांस्यह्रया मघवानो अरासत सुजाते अश्वसूनृते ॥ ६
तेभ्यो द्युम्नं बृहद्यश उषो मघोन्या वह।
ये नो राधांस्यश्व्या गव्या भजन्त सूरयः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ७
उत नो गोमतीरिष आ वहा दुहितर्दिवः।
साकं सूर्यस्य रश्मिभिः शुक्रैः शोचद्भिरर्चिभिः सुजाते अश्वसूनृते ॥ ८
व्युच्छा दुहितर्दिवो मा चिरं तनुथा अपः।
नेत्त्वा स्तेनं यथा रिपुं तपाति सूरो अर्चिषा सुजाते अश्वसूनृते ॥ ९
एतावद्वेदुषस्त्वं भूयो वा दातुमर्हसि।
या स्तोतृभ्यो विभावर्युच्छन्ती न प्रमीयसे सुजाते अश्वसूनृते ॥ १०।२२

हे ऐश्वर्यवती उषे ! जिसने हमको अश्वों और गौओं से युक्त धन दिया था, उस यजमान को तुम धन और अन्न दो । हे उत्तम जन्म वाली उषे ! सौभाग्य अश्व प्राप्ति के लिये तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ हे सूर्य की पुत्री उषे ! तुम सूर्य रश्मियों और अग्नि की प्रज्वलित ज्वालाओं के सहित हमारे पास अन्न और गौओं को लाओ । हे उत्तम जन्म वाली उषे ! स्तुति करने वाले यजमान अश्व-प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ हे सूर्य-पुत्री उषे ! तुम प्रकाश को फैलाओ । हमारे प्रति देर मत करो । राजा जैसे चोर अथवा शत्रु को पीड़ित करता है, वैसे सूर्य तुम्हें अपनी रश्मियों से पीड़ित न करें । हे उत्तम जन्म वाली देवी उषे ! स्तुति करने वाले यजमान सुन्दर अश्वों की प्राप्ति के निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ९ ॥ हे उषे ! जो माँगा गया है और जो नहीं माँगा गया, तुम वह सब हमको देने की सामर्थ्य से परिपूर्ण हो । हे ज्योतिर्मती ! तुम स्तुति करने वालों का अन्धकार दूर करती हो, परन्तु उनका अनिष्ट नहीं करतीं । हे उत्तम जन्म वाली उषा, स्तुति करने वाले यजमान अश्वों की प्राप्ति के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १० ॥   [११]

८० सूक्त

(ऋषि-सत्यश्रवा आत्रेयः । देवता-उषा । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

द्युतद्यामानं बृहतीमृतेन ऋतावरीमरुणप्सुं विभातीम् ।
देवीमुषसं स्वरावहन्ती प्रति विप्रासो मतिभिर्जरन्ते ॥ १
एषा जनं दर्शता बोधयन्ती सुगान्पथः कृण्वती [illegible] ।
बृहद्रथा बृहती विश्वमिन्वोषा ज्योतिर्यच्छत्यग्रे [illegible]
एषा गोभिररुणेभिर्युजानास्रेधन्ती रयिमप्रायु [illegible]
पथो रदन्ती सुविताय देवी पुरुष्टुता [illegible]
एषा व्येनी भवति द्विबर्हा आविष्कृण्वाना तन्वं [illegible]
ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न [illegible]
एषा शुभ्रा न तन्वो विदानोर्ध्वेव [illegible]

अप द्वेषो बाधमाना तमांस्युषा दिवो दुहिता ज्योतिषागात् ॥ ५
एषा प्रतीची दुहिता दिवो नृन्योषेव भद्रा नि रिणीते अप्सः ।
व्यूर्ण्वती दाशुषे वार्याणि पुनर्ज्योतिर्युवतिः पूर्वथाकः ॥ ६ । २३

तेजस्वी रथ पर चढ़ी हुई, सर्व व्यापिनी, यज्ञों में उत्तम प्रकार से पूजनीय, अरुण वर्ण वाली, सूर्य के पहिले आने वाली उषा की ऋत्विग्गण स्तोत्रों से स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ दर्शनीय रूप वाली उषा सोते हुए प्राणियों को चैतन्य करती है और मार्गों को दिखाती हुई विस्तृत रथ पर चढ़ कर सूर्य के पुरोभाग में चलती है। अत्यन्त महिमामयी तथा संसार में व्याप्त होने वाली उषा दिन के आरम्भकाल में अपना प्रकाश फैलाती है ॥ २ ॥ लाल किरणों में संयोग करती हुई उषा सुख से जाने के लिए मार्गों को चमकाती है तथा सबके लिए वरणीय होती हुई स्वयं प्रकाशित होती हैं। यह देवी अनुरागयुक्त वाणियों से स्तुत होती हुई अक्षय ऐश्वर्यों को स्थिर करती है ॥ ३ ॥ वह शुभ्र प्रकाश वाली होती हुई रात्रि और दिवस, दोनों से ही आगे बढ़ती हुई अपने आगे प्रकाश को विस्तृत करती है। वह नित्य प्रति सूर्य का अनुगमन करती हुई दिशाओं को मापती है। यह देवी अपने रूप को प्राची में प्रकट करती है ॥ ४ ॥ स्नान करके सुन्दर अलंकारों में सजी हुई रमणी के समान अपने रूप को दिखाती हुई उषा प्राची में प्रकट होती है। सूर्य की पुत्री उषा अपने वैरी अन्धकार को भागने के लिए बाध्य करती हुई अपने प्रकाश के सहित आती है ॥ ५ ॥ अपने प्रकाश से संसार को परिपूर्ण करने वाली सूर्य की पुत्री उषा पश्चिम की ओर मुख करके शरीर विन्यास करने वाली रमणी के समान अपने रूप को प्रकट करती है। यह देवी हविदाता यजमान के लिए वरण करने योग्य धन देती है। नित्य तरुणी उषा बारम्बार अपने प्रकाश को दिखाती है ॥ ६ ॥ [२३]

८१ सूक्त

(ऋषि—श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—सविता । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

युञ्जते मन उत युञ्जत धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ॥ १

विश्वा रूपाणि प्रति मुञ्चते कविः प्रासावीद्भद्रं द्विपदे चतुष्पदे ।
वि नाकमख्यत्सविता वरेण्योऽनु प्रयाणमुषसो वि राजति ॥ २
यस्य प्रयाणमन्वन्य इद्ययुर्देवा देवस्य महिमानमोजसा ।
यः पार्थिवानि विममे स एतशो रजांसि देवः सविता महित्वना ॥ ३
उत यासि सवितस्त्रीणि रोचनोत सूर्यस्य रश्मिभिः समुच्यसि ।
उत रात्रीमुभयतः परीयस उत मित्रो भवसि देव धर्मभिः ॥ ४
उतेशिषे प्रसवस्य त्वमेक इदुत पूषा भवसि देव यामभिः ।
उतेदं विश्वं भुवनं वि राजसि श्यावाश्वस्ते सवितः स्तोममानशे ॥५।२१

विद्वान् लोग अपने चित्त को श्रेष्ठ कर्मों में लगाते हैं। वे सभी महान्, स्तुति के पात्र और मेधावी सवितादेव की प्रेरणा से यज्ञानुष्ठान में प्रवृत्त होते हैं। वे होताओं के कार्यों के ज्ञाता हैं, वही उन्हें यज्ञ कार्य में लगाते हैं। उन सर्वैश्वर्यवान सवितादेव की महिमा स्तुति के योग्य है ॥ १ ॥ वे मेधावी सवितादेव स्वयं ही सब रूपों के धारण करने वाले हैं। वे मनुष्य, पशु आदि सब प्राणियों के कल्याण के ज्ञाता हैं। वे सब के द्वारा वरण करने योग्य, सब को प्रेरणा देने वाले तथा स्वर्ग को प्रकाशित करने वाले हैं। वे उषा के आविर्भूत होने के पश्चात् उदित होते हैं ॥ २ ॥ अग्नि आदि सभी देवता ज्योतिर्मान् सवितादेव का अनुगमन करते हुए महिमावान् होते हैं। जो सवितादेव अपनी महिमा से पृथिवी आदि लोकों को परिपूर्ण करने में समर्थ हैं, वे अपने तेज से ही अत्यन्त महिमा वाले हैं ॥ ३ ॥ हे सवितादेव! तुम तीनों लोकों में गमन करते हुए अपनी रश्मियों से सुसंगति करते हो। तुम ही रात्रि को दोनों ओर से व्याप्त करते हो। हे सवितादेव! तुम संसार के धारण करने वाले होकर सब के मित्र बनते हो ॥ ४ ॥ हे सवितादेव! तुम एक ही इस जगत को उत्पन्न करने में पूरी तरह समर्थ हो और तुम एक ही अपने नियमों द्वारा सब की रक्षा करते हो। तुम ही इस सम्पूर्ण भुवन को प्रकाशित करते हुए उस पर शासन करते हो! हे सवितादेव श्यावाश्व ऋषि तुम्हारी स्तुति के योग्य सामर्थ्य से युक्त हैं ॥ ५ ॥ [२१]

८२ सूक्त

(ऋषि–श्यावाश्व आत्रेयः । देवता—सविता । छन्द–अनुष्टुप्, गायत्री)

तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम् ।
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि ॥ १
अस्य हि स्वयशस्तरं सवितुः कच्चन प्रियम् ।
न मिनन्ति स्वराज्यम् । २
स हि रत्नानि दाशुषे सुवाति सविता भगः । तं भागं चित्रमीमहे ॥३
अद्या नो देव सवितः प्रजावत्सावीः सौभगम् ।
परा दुःष्वप्न्यं सुव ॥ ४
विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।
यद्भद्रं तन्न आ सुव ॥ ५ । २५

हम साधक सवितादेव से भोग के योग्य ऐश्वर्य की याचना करते हैं। उनकी कृपा से हम भग देवता के पास से श्रेष्ठ ऐश्वर्य तथा उपभोग्य और शत्रुओं का नाश करने वाला धन प्राप्त करें ॥ १ ॥ उन सवितादेव के सर्व-प्रिय, असाधारण, ज्योतिर्मान ऐश्वर्य को कोई राक्षस भी नष्ट करने में समर्थ नहीं हैं ॥ २ ॥ वह सवितादेव तथा यजन के योग्य भग देवता हम हवि देने वालों के लिए रमणीय ऐश्वर्य देते हैं। अतः हम उन भग देवता से भी रमणीय ऐश्वर्य की प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ हे सवितादेव ! इस यज्ञ-दिवस में आज तुम हमको संतानयुक्त ऐश्वर्य को प्रदान करते हुए दुःस्वप्न से उत्पन्न शंका तथा दारिद्र्य के दुःख को दूर करो ॥ ४ ॥ हे सवितादेव ! हमारे सभी अनिष्टों को दूर करते हुए प्रजा, पशु और सुन्दर घर रूप सौभाग्य तथा ऐश्वर्य को हमारे सम्मुख उपस्थित करो ॥ ५ ॥ [२५]

अनागसो अदितये देवस्य सवितुः सवे । विश्वा वामानि धीमहि ॥ ६
आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे । सत्यसवं सवितारम् ॥ ७
य इमे उभे अहनी पुर एत्यप्रयुच्छन् । स्वाधीर्देवः सविता ॥ ८

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।
प्र च सुवाति सविता ॥ ६ । २६

हम साधकगण प्रेरणा देने वाले सविता देव की प्रेरणा से अखंडनीया देवी अदिति का कोई अपराध न करें । हम सभी रमणीय और अभीष्ट धनों को प्राप्त करें ॥ ६ ॥ आज हम इस यज्ञ दिवस में स्तोत्रों द्वारा सर्व देवताओं के स्वामी साधकों के रक्षक सवितादेव की सब प्रकार से उपासना करने में समर्थ हों ॥ ७ ॥ जो सवितादेव भले प्रकार ध्यान करने के योग्य तथा उत्तम कर्म वाले हैं, जो निरालस्य हुए दिन और रात्रि के संधिकाल में गमन करते हैं। हम उन सवितादेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ जो सवितादेव सभी उत्पन्न प्राणियों को अपने यश से अवगत कराते हैं, जो सब जीवों को प्रेरणा देते हैं, उन सवितादेव की इस यज्ञ-दिवस में हम स्तुति करते हैं ॥ ६ ॥ [२६]

८३ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः देवता—पर्जन्यः छन्द—त्रिष्टुप्, जगती, पंक्ति)

अच्छा वद तवसं गीर्भिराभिः स्तुहि पर्जन्यं नमसा विवास ।
कनिक्रदद्वृषभो जीरदानू रेतो दधात्योषधीषु गर्भम् ॥ १
वि वृक्षान् हन्त्युत हन्ति रक्षसो विश्वं बिभाय भुवनं महावधात् ।
उतानागा ईषते वृष्ण्यावतो यत्पर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः ॥ २
रथीव कशयाश्वाँ अभिक्षिपन्नाविर्दूतान्कृणुते वर्ष्याँ अह ।
दूरात्सिंहस्य स्तनथा उदीरते यत्पर्जन्यः कृणुते वर्ष्यं नभः ॥ ३
प्र वाता वान्ति पतयन्ति विद्युत उदोषधीर्जिहते पिन्वते स्वः ।
इरा विश्वस्मै भुवनाय जायते यत्पर्जन्यः पृथिवीं रेतसावति ॥ ४
यस्य व्रते पृथिवी नन्नमीति यस्य व्रते शफवज्जर्भुरीति ।
यस्य व्रत ओषधीर्विश्वरूपाः स नः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥ ५ । २७

हे स्तोताओ ! तुम शक्तिशाली पर्जन्य के सम्मुख उपस्थित होकर उनकी स्तुति करो। सुन्दर स्तोत्र रूप वाली स्तुति से उनका स्तवन करो। हविरूप

अन्न से उनकी सेवा करो। जल वृष्टि करने वाले, उदारचेता, गर्जन शब्द वाले पर्जन्य वर्षा द्वारा वनस्पतियों में गर्भ स्थापित करते हैं, फलप्रद बनाते हैं ॥ १ ॥ पर्जन्य देव वृक्षों को भूमिसात करते, असुरों का संहार करते और विकराल होते हुए जगत को डर दिखाते तथा पापियों को विनष्ट करते हैं। इसलिये जो व्यक्ति पापी नहीं हैं वे भी डर जाते हैं और उन वर्षा करने वाले पर्जन्य के सामने से भाग जाते हैं ॥ २ ॥ जैसे रथी चाबुक मार कर घोड़ों को उत्तेजित करते हुए वीरों को उत्साहित करते हैं, वैसे ही पर्जन्य मेघों को प्रेरित करके जल वृष्टि के लिए उत्साहित करते हैं। जब तक पर्जन्य मेघों को अन्तरिक्ष में एकत्र करते हैं, तब तक शेर के समान गर्जने वाले मेघों का शब्द दूर से ही सुनाई देता है ॥ ३ ॥ जब तक पर्जन्यदेव वर्षा द्वारा पृथिवी का पालन करते हैं, तब तक वर्षा के कार्य में योग देने वाली वायु प्रवाहित रहती है। सब ओर विद्युत चमकती, अन्तरिक्ष वृष्टि करता और वनस्पतियाँ वृद्धि को प्राप्त होती हैं। तब पृथिवी सबका हित-साधन करने में सक्षम हो जाती है ॥ ४ ॥ हे पर्जन्य! तुम्हारे कर्म के सामने पृथिवी झुकती है, तुम्हारे ही कर्म द्वारा वनस्पतियाँ विभिन्न वर्ण तथा रूप वाली होती हैं। हे पर्जन्यदेव! हमको अत्यन्त सुख दो ॥ ५ ॥ [२७]

दिवो नो वृष्टिं मरुतो ररीध्वं प्र पिन्वत वृष्णो अश्वस्य धाराः।
अर्वाङेतेन स्तनयित्नुनेह्यपो निषिञ्चन्नसुरः पिता नः ॥६

अभि क्रन्द स्तनय गर्भमा धा उदन्वता परि दीया रथेन।
दृतिं सु कर्ष विषितं न्यञ्चं समा भवन्तूद्वतो निपादाः ॥ ७

महान्तं कोशमुदचा नि षिञ्च स्यन्दन्तां कुल्या विषिताः पुरस्तात्।
घृतेन द्यावापृथिवी व्युन्धि सुप्रपाणं भवत्वघ्न्याभ्यः ॥ ८

यत्पर्जन्य कनिक्रदत्स्तनयन् हंसि दुष्कृतः।
प्रतीदं विश्वं मोदते यत्किं च पृथिव्यामधि ॥ ९

अवर्षीर्वर्षमुदु षू गृभायाकर्धन्वान्यत्येतवा उ।
अजीजन ओषधीर्भोजनाय कमुत प्रजाभ्योऽविदो मनीषाम् ॥ १० । २८

हे मरुद्गण हमारे निमित्त तुम अन्तरिक्ष से वृष्टि को प्रेरित करो।

वर्षा करने वाले तथा सर्वत्र व्याप्त मेघों से जल गिराओ। हे पर्जन्य तुम ! जल सींचने वाले गर्जनयुक्त मेघ सहित हमारे सामने आओ। क्योंकि तुम जल की वर्षा द्वारा हमारा पालन करने वाले हो ॥ ६ ॥ हे पर्जन्य ! तुम गर्जनशील होओ। जल वृष्टि द्वारा वनस्पतियों को गर्भयुक्त फलप्रद बनाओ। अपने जल युक्त रथ से अन्तरिक्ष में घूमो। जल युक्त मेघ को वृष्टि के लिए प्रेरित करो। ऊँचे नीचे प्रदेशों को समतल करो ॥ ७ ॥ हे पर्जन्य ! जल के कोष रूप मेघ को उत्तेजित कर वृष्टि कराओ। वेगवती नदियाँ प्रवाहित हों। जल द्वारा आकाश और पृथिवी को भिगो दो। गौओं के पीने के लिए मधुर जल की कमी न रहे ॥ ८ ॥ हे पर्जन्य ! जब तुम गम्भीर गर्जन द्वारा मेघों को चीरते हो, तब यह सम्पूर्ण संसार और पृथिवी के सभी जीव बल को प्राप्त करते हैं ॥ ९ ॥ हे पर्जन्य तुमने जल-वृष्टि द्वारा मरुभूमि को उर्वरा बनाने के लिए उसे जल से परिपूर्ण कर दिया। मनुष्य के लाभार्थ वनस्पतियों को प्रकट कर स्तोताओं द्वारा पूजे गए ॥ १० ॥ [२८]

८४ सूक्त

· (ऋषि—अत्रिः । देवता—पृथिवी । छन्द—अनुष्टुप्)

बळित्था पर्वतानां खिद्रं बिभर्षि पृथिवि ।
प्र या भूमिं प्रवत्वति मह्ना जिनोषि महिनि ॥ १
स्तोमासस्त्वा विचारिणि प्रति ष्टोभन्त्यक्तुभिः ।
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ॥ २
दृळ्हा चिद्या वनस्पतीन्क्ष्मया दर्धर्ष्योजसा ।
यत्ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ॥ ३।२९

हे पृथिवी ! तुम उत्तम गुण वाली हो। तुम पर्वतों के बल से प्राणियों का पालन करती हो। हे पूजनीया ! तुम पर्वतों के समान उदार और अपनी उर्वरा भूमि को उत्तम रीति से सींचने वाली होओ ॥ १ ॥ हे गतिमती पृथिवी ! स्तोतागण अपने सुन्दर स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अर्जुनी ! तुम हिनहिनाते हुए अश्व के समान मेघ को उसके उत्तम कर्म में प्रेरित करती हो ॥ २ ॥ हे पृथिवी ! [illegible]

को धारण करती हो और तेजोमय अन्तरिक्ष से विद्युत की चमक के साथ तुम
पर वर्षा होती है। इसलिए तुम अत्यन्त पूजनीया हो ॥ ३ ॥ [२९

८५ सूक्त

(ऋषि-अत्रिः । देवता—वरुणः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

प्र सम्राजे बृहदर्चा गभीरं ब्रह्म प्रियं वरुणाय श्रुताय ।
वि यो जघान शमितेव चर्मोपस्तिरे पृथिवीं सूर्याय ॥ १
वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान वाजमर्वत्सु पय उस्रियासु ।
हृत्सु क्रतुं वरुणो अप्स्वग्निं दिवि सूर्यमदधात्सोममद्रौ ॥ २॥
नीचीनवारं वरुणः कवन्धं प्र ससर्ज रोदसी अन्तरिक्षम् ।
तेन विश्वस्य भुवनस्य राजा यवं न वृष्टिर्व्युनत्ति भूम ॥ ३
उनत्ति भूमिं पृथिवीमुत द्यां यदा दुग्धं वरुणो वष्ट्यादित् ।
समभ्रेण वसत पर्वतासस्तविषीयन्तः श्रथयन्त वीराः ॥४
इमामू ष्वासुरस्य श्रुतस्य महीं मायां वरुणस्य प्र वोचम् ।
मानेनेव तस्थिवाँ अन्तरिक्षे वि यो ममे पृथिवीं सूर्येण ॥ ५ । ३०

हे अत्रि ऋषि ! तुम भले प्रकार विराजमान, सर्वविख्यात और विघ्न के शमन करने वाले वरुण देवता के लिए सुन्दर और प्रिय स्तोत्र का पा करो। जैसे पशुओं का वध करने वाला, पशु-चर्म को बढ़ाता है, वैसे ही वरुण सूर्य के विचरण के लिए अन्तरिक्ष को विस्तीर्ण करते हैं ॥ १ ॥ वृक्षों के ऊपर भाग में वरुण अंतरिक्ष को फैलाते हैं। वे अश्वों में बल, गौओं में दूध और मनुष्यों में सद्भाव प्रेरित करते हैं। वे जल में अग्नि, अन्तरिक्ष में आदित्य तथा पर्वतों पर सोमादि ओषधियों की स्थापना करते हैं ॥ २ ॥ वरुणदे स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष के हित-साधनार्थ मेघ के निम्न भाग को चीर हैं। जैसे वृष्टि अनाजों को सींचती है, वैसे ही वरुणदेव सम्पूर्ण पृथिवी को गीली कर देते हैं ॥ ३ ॥ वरुणदेव जब वृष्टि की इच्छा करते हैं, तब अन्तरिक्ष और दिव्यलोक को भिगोते हैं। फिर मेघों के द्वारा पर्वत शिखरों को

रख देते हैं। मरुद्गण अपने पराक्रम से हृष्ट हुए मेघों को ढीला करते हैं ॥४॥ हम प्रसिद्ध तथा राक्षसों का संहार करने वाले वरुण की बुद्धि की प्रशंसा करते हैं। वे वरुणदेव अन्तरिक्ष में स्थित होकर सूर्य द्वारा पृथिवी और अंतरिक्ष को व्याप्त करते हैं ॥ ५ ॥ [३०]

इमामू नु कवितमस्य मायां महीं देवस्य नकिरा दधर्ष ।
एकं यदुद्ना न पृणन्त्येनीरासिञ्चन्तीरवनयः समुद्रम् ॥ ६
अर्यम्यं वरुण मित्र्यं वा सखायं वा सदमिद् भ्रातरं वा ।
वेशं वा नित्यं वरुणारणं वा यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् ॥ ७
कितवासो यद्रिरिपुर्न दीवि यद्वा घा सत्यमुत यन्न विद्म ।
सर्वा ता वि ष्य शिथिरेव देवाधा ते स्याम वरुण प्रियासः ॥ ८ । ३१

तेजस्वी, ज्ञानी और महान् वरुणदेव की प्रसिद्ध बुद्धि का कोई खंडन नहीं कर सकता। केवल जल सींचने वाली उज्ज्वल नदियाँ जल द्वारा इसके समुद्र को भी पूर्ण करने में समर्थ नहीं हो सकतीं। यह केवल वरुण की ही महान् सामर्थ्य का फल है ॥ ६ ॥ हे वरुण! यदि हम कभी किसी भी मित्र, साथी, दुष्टों के शासक, भ्राता, पड़ौसी, हमसे युद्ध न करने वाले व्यक्तियों के प्रति कोई अपराध कर बैठें तो तुम उन अपराधों के पाप को नष्ट कर दो ॥७॥ हे वरुण! जुआ खेलने वाले के समान यदि हम जानते हुए या अनजाने में भी कोई अपराध करें तो तुम ढीले बंधन के समान उन्हें छोड़ दो। इसके पश्चात् हम तुम्हारे प्रिय हों ॥ ८ ॥ [३१]

८६ सूक्त

(ऋषि—अत्रिः। देवता—इन्द्राग्नि। छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

इन्द्राग्नी यमवथ उभा वाजेषु मर्त्यम् ।
दृळ्हा चित्स प्र भेदति द्युम्ना वाणीरिव त्रितः ॥ १
या पृतनासु दुष्टरा या वाजेषु श्रवाय्या ।
या पञ्च चर्षणीरभीन्द्राग्नी ता हवामहे ॥ २

तयोरिदमवच्छ्वस्तिग्मा दिद्युन्मघोनोः ।
प्रति द्रुणा गभस्त्योर्गवां वृत्रघ्न एषते ॥ ३
ता वामेषे रथानामिन्द्राग्नी हवामहे ।
पती तुरस्य राधसो विद्वांसा गिर्वणस्तमा ॥ ४
ता वृधन्तावनु द्यून्मर्ताय देवावदभा ।
अर्हन्ता चित्पुरो दधेंऽशेव देवावर्वते ॥ ५
एवेन्द्राग्निभ्यामहा वि हव्यं शूष्यं घृतं न पूतमद्रिभिः ।
ता सूरिषु श्रवो बृहद्रयिं गृणत्सु दिधृतमिषं गृणत्सु दिधृतम् ॥६ । ३२

हे इन्द्राग्ने ! तुम मरणधर्मा मनुष्यों की रणक्षेत्र में रक्षा करो। तुम्हारी रक्षा को पाकर वह बड़े-बड़े दुःखों से पार हो जाता है और वैरियों के वाक्यों को ज्ञानमयी वाणियों द्वारा खण्डन करता हुआ तीनों स्थानों में व्याप्त होता है ॥ १ ॥ जो इन्द्राग्नि युद्ध में किसी के द्वारा वशीभूत नहीं होते जो रणभूमि में सदा प्रशंसा प्राप्त करते हैं। जो पाँचों प्रकार के प्राणियों की रक्षा करते हैं, उन इन्द्राग्नि की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ इन्द्र और अग्नि का बल शत्रुओं को हराता है। जब यह दोनों एक रथ पर चढ़ कर गौओं के छुड़ाने के लिए तथा वृत्र का हनन करने के लिए चलते हैं, तब इन दोनों पराक्रमियों के हाथों में तीक्ष्ण वज्र स्थित रहता है ॥ ३ ॥ हे वैभव के स्वामी गतिशील, सर्वों के जानने वाले, अत्यन्त पूजनीय इन्द्र और अग्निदेव ! युद्ध में तुम्हारे रथ को लाने के लिए हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दोनों अजेय हो। हम अश्व-प्राप्ति के लिए तुम दोनों की स्तुति करते हैं तुम दोनों ही मनुष्यों के समान बढ़ते तथा सूर्य के समान प्रकाशमान रह हो ॥ ५ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुमको पाषाणों से कूटे हुए सोम-रस के समान पु वर्द्धक हव्य दिया गया है। तुम दोनों मनुष्यों को अन्न दो। स्तुति करने वा को अन्न-धन प्रदान करो ॥ ६ ॥ [३

८७ सूक्त

(ऋषि–एवयामरुदात्रेयः । देवता–मरुतः । छन्द–जगती)

प्र वो महे मतयो यन्तु विष्णवे मरुत्वते गिरिजा एवयामरुत् ।

प्र शर्धाय प्रयज्यवे सुखादये तवसे भन्ददिष्टये धुनिव्रताय शवसे ॥ १
प्र ये जाता महिना ये च नु स्वयं प्र विद्मना ब्रुवत एवयामरुत् ।
क्रत्वा तद्वो मरुतो नाधृषे शवो दाना मह्ना तदेषामधृष्टासो नाद्रयः ॥ २
प्र ये दिवो बृहतः शृण्विरे गिरा सुशुक्वानः सुभ्व एवयामरुत् ।
न येषामिरी सधस्थ ईष्ट आँ अग्नयो न स्वविद्युतः प्र स्यन्द्रासो
धुनीनाम् ॥ ३
स चक्रमे महतो निरुरुक्रमः समानस्मात्सदस एवयामरुत् ।
यदायुक्त त्मना स्वादधि ष्णुभिर्विष्पर्धसो विमहसो जिगाति
शेवृधो नृभिः ॥ ४
स्वनो न वोऽमवान्रेजयद्वृषा त्वेषो ययिस्तविष एवयामरुत् ।
येना सहन्त ऋञ्जत स्वरोचिषः स्थारश्मानो हिरण्ययाः स्वायुधास
इष्मिणः ॥ ५ । ३२

"एवया" ऋषि की वाणी से निकले हुए स्तोत्र मरुद्गण के सहित विष्णु के समीप पहुँचें और वे ही स्तोत्र पूज्य, पराक्रमी, उत्तम प्रकार से सजे हुए, स्तुतियों की कामना करने वाले, मेघों को प्रेरित करने वाले तथा महान् और सामर्थ्यवान् मरुद्गण के समीप उपस्थित हों ॥ १ ॥ जो मरुद्गण महान् देवता इन्द्र के साथ प्रकट हुए, जो यज्ञ में जाने सम्बन्धी भाव सहित उत्पन्न हुए उन मरुद्गण की "एवया" ऋषि स्तुति करते हैं। हे मरुद्गण ! तुम्हारा बल अभीष्ट फल प्रदान करने के कारण महान् हो गया है। तुम पर्वतों के समान दृढ़ हो ॥ २ ॥ जो तेजस्वी स्वच्छन्द गमनशील स्वर्ग से आह्वान सुनते हैं, अपने घर में प्रतिष्ठित करके जिन्हें हटाने की सामर्थ्य किसी में नहीं है, जो अपने तेज से तेजस्वी तथा अग्नि के समान नदियों को प्रवाहित करते हैं, उन मरुतों को एवया ऋषि स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ अपनी इच्छा से जाने वाले मरुद्गण के घोड़े जब रथ में जोड़े जाते हैं, तब एवया मरुत् उनकी कामना करते हैं। वे मरुद्गण सर्वत्र व्याप्त होने वाले और अन्तरिक्ष से आने वाले हैं। परस्पर स्पर्द्धा करने वाले, महान् पराक्रमी तथा कल्याण-

कारी मरुद्गण अपने स्थान से निकल पड़ते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम अपने ही तेज में स्थित, सदा एक सी कांति वाले, दिव्य अलंकारों से सुसज्जित तथा अन्न प्रदान करने वाले हो। तुम अपने कार्य को सिद्ध करने के लिए जिस शब्द द्वारा शत्रुओं को वशीभूत करते हो, वह जल की वृष्टि करने वाला, तेजोमय, विशाल, पराक्रमी और गर्जन "एवयामरुत्" को कम्पित करने वाला न हो ॥ ५ ॥ [२३]

अपारो वो महिमा वृद्धशवसस्त्वेषं शवोऽवत्वेवयामरुत् ।
स्थातारो हि प्रसितौ संदृशि स्थन ते न उरुष्यता निदः शुशुक्वांसो
नाग्नयः ॥ ६
ते रुद्रासः सुमखा अग्नयो यथा तुविद्युम्ना अवन्त्वेवयामरुत् ।
दीर्घं पृथु पप्रथे सद्म पार्थिवं येषामज्मेष्वा महः शर्धांस्यद्भुतैनसाम् ॥ ७
अद्वेषो नो मरुतो गातुमेतन श्रोता हवं जरितुरेवयामरुत् ।
विष्णोर्महः समन्यवो युयोतन स्मद्रथ्यो न दंसनाप द्वेषांसि सनुतः ॥८
नो यज्ञं यज्ञियाः सुशमि श्रोता हवमरक्ष एवयामरुत् ।
ासो न पर्वतासो व्योमनि यूयं तस्य प्रचेतसः स्यात दुर्धर्तवो
निदः ॥ ९ । ३४

हे समान शक्ति वाले मरुद्गण ! तुम्हारी महिमा का पार नहीं पाया ा सकता। तुम्हारे आश्रय से एवयामरुत् की रक्षा हो। यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों ह नियामक तुम्हीं हो। तुम प्रदीप्त अग्नि के समान प्रकाशमान् हो। हमको ुष्ट, निन्दा करने वालों की निन्दा से बचाओ ॥ ६ ॥ अग्नि के समान प्रदीप्ति ाले पूज्य मरुद्गण ! तुम्हारे द्वारा विस्तीर्ण स्थान के समान अन्तरिक्ष प्रसिद्धि को प्राप्त होता है। तुम पाप से रहित हो तथा अपने गमन-समय अपना महान् तेज प्रकट करते हो। तुम एवयामरुत् के रक्षक होओ ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! तुम द्वेष से रहित हो। तुम हमारे स्तोत्र के प्रति सुसंगत होओ और स्तुति करने वाले एवयामरुत् का आह्वान सुनो। तुम इन्द्र के साथ मिल कर यज्ञ-भाग प्राप्त करते हो। हे मरुद्गण ! जैसे वीर पुरुष शत्रुओं को दूर

भगाता है, वैसे ही तुम हमारे घोर शत्रुओं को दूर भगाओ ॥ ८ ॥ हे यज्ञादि कार्यों में बुलाये जाने वाले मरुतो ! तुम हमारे यज्ञ में आओ, जिससे यह यज्ञ पूर्ण हो। तुम विघ्नों से दूर रहते हो। हमारे आह्वान को सुनो। हे श्रेष्ठ ज्ञानी मरुद्गण ! तुम विन्ध्यादि पर्वतों के समान अत्यन्त बढ़े हुए हो। तुम अन्तरिक्ष में रहते हुए उदारचेता तथा श्रेष्ठ शासक बनो ॥ ९ ॥ [१४]

॥ इति पञ्चमं मण्डलम् समाप्तम् ॥

॥ अथ षष्ठं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

त्वं ह्यग्ने प्रथमो मनोतास्या धियो अभवो दस्म होता ।
त्वं सीं वृषन्नकृणोर्दुष्टरीतु सहो विश्वस्मै सहसे सहध्यै ॥ १
अधा होता न्यसीदो यजीयानिळस्पद इषयन्नीड्यः सन् ।
तं त्वा नरः प्रथमं देवयन्तो महो राये चितयन्तो अनु ग्मन् ॥ २
वृतेव यन्तं बहुभिर्वसव्यैस्त्वे रयिं जागृवांसो अनु ग्मन् ।
रुशन्तमग्निं दर्शतं बृहन्तं वपावन्तं विश्वहा दीदिवांसम् ॥ ३
पदं देवस्य नमसा व्यन्तः श्रवस्यवः श्रव आपन्नमृक्तम् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियानि भद्रायां ते रणयन्त संदृष्टौ ॥ ४
त्वां वर्धन्ति क्षितयः पृथिव्यां त्वां राय उभयासो जनानाम् ।
त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् ॥ ५ । ३४

हे अग्ने ! तुम देवताओं में अग्रणी हुए हो। देवताओं का चित्त तुम में लगा है। तुम दर्शन करने के योग्य हो। तुम यज्ञ में देवताओं के बुलाने वाले होता हो। हे कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्निदेव ! तुम हमारे शत्रुओं को हराने के लिए हमको शक्ति दो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम यजमानों के [illegible] करते हो। तुम [illegible]

स्तुतियों के पात्र होते हो। तुम इस वेदी पर प्रतिष्ठित होओ। धर्म रूप अनुष्ठान के करने वाले ऋत्विगगण दिव्य धन-लाभ की कामना से देवताओं में में सर्व प्रथम तुमको ही प्रदीप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम अत्यन्त तेजस्वी, दर्शनीय, हवियों के भक्षण करने वाले तथा सदा ही ज्योतिर्मान् रहते हो। तुम वसुओं के श्रेष्ठ मार्ग से गमन करते हो। धन की कामना करने वाले यजमान तुम्हारा ही अनुगमन करते हैं ॥ ३ ॥ अन्नों की कामना करने वाले यजमान अग्नि के आह्वान योग्य स्थान में जाकर स्तोत्रों द्वारा उसे प्रसन्न करते हैं और अभिलाषित अन्न प्राप्त करते हैं। वे अग्नि के दर्शन होने पर प्रसन्न होते हुए स्तोत्र उच्चारित करते और तुम्हारे नामों का कीर्तन करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने! यजमान वेदी पर प्रतिष्ठित कर तुम्हारी वृद्धि करते हैं। तुम पशु तथा अन्य धनों की यजमानों के लिए वृद्धि करते हो। अध्वर्यु आदि भी दोनों धनों की कामना करते हुए तुम्हें बढ़ाते हैं। हे दुःखों के नाश करने वाले अग्निदेव! तुम स्तुतियों के पात्र होकर मनुष्यों की माता पिता रूप रक्षा करते हो ॥ ५ ॥ [३५]

पर्येण्य. स प्रियो विक्ष्वग्नि र्होता मन्द्रो नि षसादा यजीयान् ।
८ त्वा वयं दम आ दीदिवांसमुप ज्ञुबाधो नमसा सदेम ॥ ६
तं त्वा वयं सुध्यो नव्यमग्ने सुम्नायव ईमहे देवयन्तः ।
त्वं विशो अनयो दीद्यानो दिवो अग्ने बृहता रोचनेन ॥ ७
विशां कविं विश्पतिं शश्वतीनां नितोशनं वृषभं चर्षणीनाम् ।
प्रेतीषणिमिषयन्तं पावकं राजन्तमग्निं यजतं रयीणाम् ॥ ८
सो अग्न ईजे शशमे च मर्तो यस्त आनट् समिधा हव्यदातिम् ।
य आहुतिं परि वेदा नमोभिर्विश्वेत्स वामा दधते त्वोतः ॥ ९
अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरग्ने समिधोत हव्यैः ।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ १०
आ यस्ततन्थ रोदसी वि भासा श्रवोभिश्च श्रवस्य स्तरुत्रः ।
बृहद्भिर्वाजै स्थविरेभिरस्मे रेवद्भिरग्ने वितरं वि भाहि ॥ ११

नृवद्वसो सदमिद्धेह्यस्मे भूरि तोकाय तनयाय पश्वः ।
पूर्वीरिषो बृहतीरारेअघा अस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥ १२
पुरूण्यग्ने पुरुधा त्वाया वसूनि राजन्वसुता ते अश्याम् ।
पुरूणि हि त्वे पुरुवार सन्त्यग्ने वसु विधते राजनि त्वे ॥ १३ । ३६

कामनाओं को वर्षा करने वाले, पूजन के पात्र, प्रजाओं में धन-कर्म संपादन करने वाले, अत्यन्त यजन के योग्य अग्नि वेदी पर स्थापित किये जाते हैं। हे अग्ने! तुम गृह में प्रज्वलित होते हो। हम स्तुति करने वाले घुटने टेक कर स्तोत्रों का उच्चारण करते हुए तुम्हारी वन्दना करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम स्तुति के पात्र हो। हम विवेक बुद्धि वाले मनुष्य सुख की इच्छा करते हुए तुम्हारी कामना करते तथा तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अग्ने! तुम प्रदीप्त तेज वाले हो। तुम अत्यन्त प्रकाश वाले सूर्य के समान प्रकाशमान होते हुए दिव्यलोक की प्राप्ति कराओ ॥ ७ ॥ मनुष्यों के स्वामी, ज्ञान से परिपूर्ण, शत्रुओं का नाश करने वाले, अभीष्ट को पूर्ण करने वाले, सदा वर्द्धमान, कर्मों के धारणकर्त्ता, पवित्रता के सम्पादन करने वाले, धन चाहने वालों द्वारा कामना किये जाते हुए तेजस्वी अग्निदेव की हम स्तुति करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने! तुम्हारा यजन स्तवन करने वाला अथवा हविदाता यजमान जो स्तुति युक्त आहुति देता है, वह तुम्हारी कृपा से सभी इच्छित धनों को प्राप्त करता है ॥ ९ ॥ हे अग्ने हम हव्य देते हुए तथा नमस्कार पूर्वक तुम्हारा स्तवन करते हैं। तुम महान् हो। हम स्तोत्र सहित तुम्हारी पूजा करते हैं। हम तुम्हारी सुन्दर कृपा पाने के लिए यत्नशील हैं, इस कार्य में हमको सफलता मिले ॥ १० ॥ हे अग्ने! तुमने अपने तेज से आकाश-पृथिवी को बढ़ाया है। तुम संकटों से छुड़ाने वाले तथा स्तुतियों से पूजन करने योग्य हो। तुम हमारे पास बहुत अन्न और महान् धन के साथ प्रज्वलित होओ ॥ ११ ॥ हे ऐश्वर्यशाली अग्निदेव! हमको संतानयुक्त धन दो। हमारे पुत्र पौत्रों को पशु आदि धन दो। हमको हमारी इच्छा पूर्ण करने वाला, पाप से शून्य सुख तथा ऐश्वर्य सुख प्रदान करो ॥ १२ ॥ हे ज्योतिर्मान अग्निदेव! हम तुम्हारे पास से बहु तथा गवादि पशुओं से युक्त धन लाभ करें। हे अग्ने! तुम

सब के लिए वरण करने योग्य, ऐश्वर्यवान् तथा रमणीय हो। तुम प्रचुर धनों के स्वामी हो ॥ १३ ॥ [३६]

२ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः दे०—अग्निः । छन्द—उष्णिक् अनुष्टुप्, जगती)

त्वं हि क्षैतवद्यशोऽग्ने मित्रो न पत्यसे ।
त्वं विचर्षणे श्रवो वसो पुष्टिं न पुष्यसि ॥ १
त्वां हि ष्मा चर्षणयो यज्ञेभिर्गीर्भिरीळते ।
त्वां वाजी यात्यवृको रजस्तूर्विश्वचर्षणिः ॥ २
सजोषस्त्वा दिवो नरो यज्ञस्य केतुमिन्धते ।
यद्ध स्य मानुषो जनः सुम्नायुर्जुह्वे अध्वरे ॥ ३
ऋधद्यस्ते सुदानवे धिया मर्तः शशमते ।
ऊती ष बृहतो दिवो द्विषो अंहो न तरति ॥ ४
समिधा यस्त आहुतिं निशितिं मर्त्यो नशत् ।
वयावन्तं स पुष्यति क्षयमग्ने शतायुषम् ॥ ५ ॥ १

हे अग्ने! तुम मित्र के समान अन्न और तेज के स्वामी हो। हे सर्व-..., तुम अन्न और पोषण योग्य पदार्थों द्वारा हमको पुष्ट बनाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने! स्तोतागण हवियों के साधन रूप हव्य और स्तोत्र द्वारा तुम्हारी पूजा करते हैं। अहिंसित, जल को प्रेरणा देने वाले और प्राणियों को व्याप्त करने वाले आदित्य तुम्हें प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! समान प्रीति वाले ऋत्विक् तुम्हें प्रज्वलित करते हैं। तुम यज्ञ के ध्वज रूप हो। मनु के संतान रूप यजमान सुख की कामना वाले होकर यज्ञ में तुम्हें बुलाते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! तुम उदार मन वाले हो। जो मरणधर्मा यजमान अनुष्ठान में लग कर तुम्हारी स्तुति करे, वह सम्पन्न हो। हे अग्ने! तुम तेजस्वी हो। यह यजमान तुम्हारे रक्षा साधनों को पाकर शत्रुओं को नष्ट करे ॥ ४ ॥ हे अग्ने जो यजमान तुमको मंत्र युक्त आहुति से पुष्ट करता है, वह संतानवान होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता हुआ सुन्दर घर में निवास करता है ॥ ५ ॥ [१]

त्वे यस्ते धूम ऋण्वति दिवि षञ्छुक्र आततः ।
सूरो न हि द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे ॥ ६
अधा हि विक्ष्वीड्योऽसि प्रियो नो अतिथिः ।
रण्वः पुरीव जूर्यः सूनुर्न त्रययाय्यः ॥ ७
क्रत्वा हि द्रोणे अज्यसेऽग्ने वाजी न कृत्व्यः ।
परिज्मेव स्वधा गयोऽत्यो न ह्वार्यः शिशुः ॥ ८
त्वं त्या चिदच्युताग्ने पशुर्न यवसे ।
धामा ह यत्ते अजर वना वृश्चन्ति शिक्वसः ॥
वेषि ह्यध्वरीयतामग्ने होता दमे विशाम् ।
समृधो विश्पते कृणु जुषस्व हव्यमङ्गिरः ॥ १०
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नृन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ ११ । २

हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । तुम्हारा उज्ज्वल धूम अंतरिक्ष में फैलता है और मेघ के रूप में बदल जाता है । हे पवित्र करने वाले अग्निदेव ! तुम स्तुतियों से प्रसन्न होते हुए आदित्य के समान प्रकाशमान होते हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम स्तुतियों के पात्र हो । हमारे लिए तुम अतिथि के समान पूज्य हो । तुम ग्राम में रहने वाले जन-कल्याणार्थ उपदेश करने वाले वृद्ध पुरुष के समान आश्रय योग्य तथा पुत्र के समान पालन करने योग्य हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अरणि मन्थन द्वारा ही तुम्हारा विद्यमान होना सिद्ध होता है । जैसे घोड़ा अपने सवार को ले जाता है, वैसे ही तुम हव्य को ले जाने वाले होओ । वायु के समान तुम सर्वत्र जाते हो, हमको अन्न और घर दो । तुम बालक के समान शुद्ध भाव वाले हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! घास आदि के निमित्त छोड़ा गया पशु जैसे सब घास को खा लेता है, वैसे ही तुम प्रौढ़ काष्ठों को तुरन्त खा जाते हो । हे अग्ने ! तुम अविनाशी एवं तेजस्वी हो । तुम्हारी ज्वालाएं वनों को भस्म कर डालती हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ कर्म की इच्छा करने

वाले यजमान के घर होता बन कर प्रवेश करते हो । तुम मनुष्यों का पालन करने वाले हो । हमारे लिए समृद्धि की कामना करो । हे अग्ने ! तुम हमारी हवियों को ग्रहण करो ॥ १० ॥ हे सुन्दर तेज वाले अग्ने ! तुम शांत और विकराल गुणों से युक्त तथा आकाश और पृथिवी में व्याप्त हो । तुम हमारे स्तोत्र को देवताओं के निकट पहुँचाओ । हम स्तुति करने वालों को सुन्दर आवासयुक्त सौभाग्य प्राप्त कराओ । हम शत्रुओं, संकटों और पापों से दूर हो जाँय, हम अन्य जन्मों में भी पापों से बचें । हे अग्ने ! तुम्हारे रक्षा-साधनों के बल पर हम शत्रुओं से मुक्त हों ॥ ११ ॥ [२]

३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अग्ने स क्षेपदृतपा ऋतेजा उरु ज्योतिर्नशते देवयुष्टे ।
यं त्वं मित्रेण वरुणः सजोषा देव पासि त्यजसा मर्तमंहः ॥ १
ईजे यज्ञेभिः शशमे शमीभिर्ऋधद्वारायाग्नये ददाश ।
एवा चन तं यशसामजुष्टिर्नांहो मर्तं नशते न प्रदृप्तिः ॥ १
सूरो न यस्य दृशतिररेपा भीमा यदेति शुचतस्त आ धीः ।
हेषस्वतः शुरुधो नायमक्तोः कुत्रा चिद्रण्वो वसतिर्वनेजाः ॥ ३
तिग्मं चिदेम महि वर्पो अस्य भसदश्वो न यमसान आसा ।
विजेहमानः परशुर्न जिह्वां द्रविर्न द्रावयति दारु धक्षत् ॥ ४
स इदस्तेव प्रति धादसिष्यञ्छिशीत तेजोऽयसो न धाराम् ।
चित्रध्रजतिररतिर्यो अक्तोर्वेर्न द्रुषद्वा रघुपत्मजंहाः ॥ ५ । ३

हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ के निमित्त उत्पन्न हुआ है और यज्ञानुष्ठानों को करता है, वह दीर्घायु प्राप्त करे । तुम वरुण और मित्र से समान प्रीति वाले होकर अपने तेज द्वारा जिस यजमान को पापों से बचाते हो, वह देवताओं की कामना करने वाला यजमान तुम्हारी महत्ती रक्षा प्राप्त करता है ॥ १ ॥ सर्वश्रेष्ठ वैभव से सम्पन्न अग्नि के लिए जो साधक हवि देता है । उसे पुत्रों का अभाव नहीं होता और मिथ्याभिमान तथा पाप उसके पास

नहीं पहुँचते ॥ २ ॥ सूर्य के समान ही अग्नि का दर्शन भी पाप से बचाता है। हे अग्ने ! तुम्हारी प्रज्वलित ज्वाला पापियों को भयकारी एवं सर्वत्र गमन करने वाली है। रात्रि में रँभाने वाली गौ के समान अग्निदेव चलते हुए शब्दवान् होते हैं। सबको निवास देने वाले अग्नि वनयुक्त पर्वत के उपभाग में क्रीड़ा करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि का रूप प्रकाश से उज्ज्वल है। इनका मार्ग तीक्ष्ण है। यह पशु के समान मुख से तृणादि का भक्षण करते हैं। कुठार की तीक्ष्णधार काष्ठ को काट डालती है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को तृणादि पर डालते हैं। जैसे स्वर्णकार सोने आदि को पानी बना देता है, वैसे ही अग्नि सम्पूर्ण जङ्गल को द्रवीभूत कर डालते हैं ॥ ४ ॥ जैसे बाण संधान करने वाला लक्ष्य पर बाण चलाता है, वैसे ही अग्नि अपनी ज्वाला को चलाते हैं। जैसे कुठार का स्वामी अपने कुठार की धार तेज करता है, वैसे ही अग्नि भी अपनी ज्वाला को तीक्ष्ण करते हैं। वृक्ष के ऊपर रहने वाले पक्षी के समान अद्भुत गति वाले अग्नि रात्रि को लाँघ जाते हैं ॥ ५ ॥ [१]

स ईं रेभो न प्रति वस्त उस्राः शोचिषा रारपीति मित्रमहाः।
नक्तं य ईमरुषो यो दिवा नॄनमर्त्यो अरुषो यो दिवा नॄन् ॥ ६
दिवो न यस्य विधतो नवीनोद्वृषा रुक्ष ओषधीषु नूनोत्।
घृणा न यो ध्रजसा पत्मना यन्ना रोदसी वसुना दं सुपत्नी ॥ ७
धायोभिर्वा यो युज्येभिरर्कैर्विद्युन्न दविद्योत्स्वेभिः शुष्मैः।
शर्धो वा यो मरुतां ततक्ष ऋभुर्न त्वेषो रभसानो अद्यौत् ॥ ८ । ४

अग्निदेव स्तुति योग्य आदित्य के समान प्रज्वलित ज्वाला को फैलाते हैं। सब के अनुकूल रहने वाले प्रकाश को फैलाते हुए तेज से शब्दवान् होते हैं। रात में प्रदीप्त हुए अग्नि दिन के समान ही मनुष्यों को कर्म में प्रेरित करते हैं। वे अमरत्व से युक्त दर्शनीय अग्नि अपने चमकते हुए तेज से ज्वालाओं को प्रेरित करते हैं ॥ ६ ॥ जिन अग्नि का प्रकाशमान् रश्मि फैलाने वाला प्राकट्य हुआ है, वे कामनाओं की वर्षा करने वाले ज्योतिर्मान अग्नि औषधि रूप काष्ठ में महान् शब्द करते हैं। जो तेजस्वी ऊपर की ओर अपने तेज से उठते हैं, वे हमारे शत्रुओं को हराते हुए दिव्यलोक और भूलोक

को ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हैं ॥ ७ ॥ जो अग्नि अश्व के समान नियुक्त हुए पूजनीय तेज सहित गमन करते हैं, वे अपने तेज से ही विद्युत के समान दीप्तिमान् होते हैं। जो अग्नि मरुद्गण के वल को घटाते हैं, वे अत्यन्त तेजस्वी, सूर्य के समान प्रकाशमान तथा अत्यन्त वेगवान् होते हैं ॥ ८ ॥ [४]

४ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यथा होतर्मनुषो देवताता यज्ञेभिः सूनो सहसो यजासि ।
एवा नो अद्य समना समानानुशन्नग्न उशतो यक्षि देवान् ॥ १
स नो विभावा चक्षणिर्न वस्तोरग्निर्वन्दारु वेद्यश्चनो धात् ।
विश्वायुर्यो अमृतो मर्त्येषूषर्भुद्भूदतिथिर्जातवेदाः ॥ २
द्यावो न यस्य पनयन्त्यभ्वं भासांसि वस्ते सूर्यो न शुक्रः ।
वि य इनोत्यजरः पावकोऽश्नस्य चिच्छिश्नथत्पूर्व्याणि ॥ ३
वद्मा हि सूनो अस्यद्मसद्वा चक्रे अग्निर्जनुषाज्मान्नम् ।
स त्वं न ऊर्जसन ऊर्जं धा राजेव जेरवृके क्षेष्यन्तः ॥ ४
नितिक्ति यो वारणमन्नमत्ति वायुर्न राष्ट्र्यत्येत्यक्तून् ।
तुर्याम यस्त आदिशामरातीरत्यो न ह्रुतः पततः परिह्रुत् ॥ ५ । ५

हे देवताओं के बुलाने वाले वल के पुत्र अग्निदेव ! जैसे विद्वानों के यज्ञ में तुमने हवि द्वारा देवताओं का यजन किया, वैसे ही हमारे इस यज्ञ में इन्द्रादि देवताओं को तुम अपने ही समान वल वाला समझते हुए उनका ही यजन करो ॥ १ ॥ जो सूर्य के समान अत्यन्त तेजस्वी, सब के लिए सरलता से जानने योग्य, दिन के प्रकाशक, आश्रयभूत, अविनाशी, अतिथि रूप मेधावी तथा उषा वेला में चैतन्य होने वाले हैं, वे अग्नि हमको प्रशंसित धन-लाभ करावें ॥ २ ॥ स्तुति करने वाले जिन अग्निदेव के महान् कर्मों का संकीर्तन करते हैं, वे उज्ज्वल वर्ण वाले अग्नि सूर्य के समान अपने तेज को फैलाते हैं। अजर तथा पवित्र करने वाले अग्नि अपने तेज से ही सब पदार्थों

को दिखाते हैं और असुरादि का वध करते हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम सब को प्रेरणा देने वाले तथा स्तुति के योग्य हो । तुम हवियों से प्रसन्न होते हुए उपासकों को अन्न युक्त घर देते हो । हे अन्नदाता अग्ने ! हमको अन्न दो । हमारे शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो और हमारी यज्ञ-वेदी में विराजमान होओ ॥ ४ ॥ जो अग्नि अपने तेज को बढ़ाते हैं, जो अन्धकार को दूर करते हैं, जो हवि ग्रहण करते और वायु के समान सब पर शासन करते हैं, वे अग्नि रात्रि को पार करते हैं । हे अग्ने ! हम तुम्हारी कृपा से हवि न देने वाले पर विजय प्राप्त करें । तुम अश्व के समान वेगवान् होते हुए हम पर आक्रमण करने वाले शत्रु का संहार करो ॥ ५ ॥ [५]

आ सूर्यो न भानुमद्भिरर्कैरग्ने ततन्थ रोदसी वि भासा ।
चित्रो नयत्परि तमांस्यक्तः शोचिषा पत्मन्नौशिजो न दीयन् ॥६
त्वां हि मन्द्रतममर्कशोकैर्ववृमहे महि नः श्रोष्यग्ने ।
इन्द्रं न त्वा शवसा देवता वायुं पृणन्ति राधसा नृतमाः ॥ ७
नू नो अग्नेऽवृकेभिः स्वस्ति वेषि रायः पथिभिः पर्ष्यंहः ।
ता सूरिभ्यो गृणते रासि सुम्नं मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ८ । ६

हे अग्ने ! तुम आकाश-पृथिवी को सूर्य के समान आच्छादित करते हो । अपने मार्ग पर नियमित रूप से चलने वाले सूर्य के समान अद्भुत गति वाले अग्नि अँधेरे को नष्ट करें ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त पूजनीय एवं तेजस्वी हो । हम तुम्हारा गुणगान करते हैं । तुम हमारे महान् स्तोत्र को सुनो । हे अग्ने ! ऋत्विगण तुम्हें हवियों से प्रसन्न करते हैं । तुम वायु के समान बली और इन्द्र के समान दिव्य गुणों से युक्त हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम चोरों से शून्य मार्ग द्वारा शीघ्र ही हमारे लिए श्रेष्ठ [illegible] पहुँचाओ । हमको पापों से छुड़ाओ । स्तुति करने वालों को तुम [illegible] दो, वही सुख हमको दो । हम सुन्दर संतान वाले होकर [illegible] पूर्वक जीएँ ॥ ८ ॥

५ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

हुवे वः सूनुं सहसो युवानमद्रोघवाचं मतिभिर्यविष्ठम्।
य इन्वति द्रविणानि प्रचेता विश्ववाराणि पुरुवारो अध्रुक्॥ १
त्वे वसूनि पुर्वणीक होतर्दोषा वस्तोरेरिरे यज्ञियासः।
क्षामेव विश्वा भुवनानि यस्मिन्त्सं सौभगानि दधिरे पावके॥ २
त्वं विक्षु प्रदिवः सीद आसु क्रत्वा रथीरभवो वार्याणाम्।
अत इनोषि विधते चिकित्वो व्यानुषग्जातवेदो वसूनि॥ ३
यो नः सनुत्यो अभिदासदग्ने यो अन्तरो मित्रमहो वनुष्यात्।
तमजरेभिर्वृषभिस्तव स्वैस्तपा तपिष्ठ तपसा तपस्वान्॥ ४
यस्ते यज्ञेन समिधाय उक्थैरर्केभिः सूनो सहसो ददाशत्।
स मर्त्येष्वमृत प्रचेता राया द्युम्नेन श्रवसा वि भाति॥ ५
स तत्कृधीषितस्तूयमग्ने स्पृधो बाधस्व सहसा सहस्वान्।
यच्छस्यसे द्युभिरक्तो वचोभिस्तज्जुषस्व जरितुर्घोषि मन्म॥ ६
अश्याम तं काममग्ने तवोती अश्याम रयिं रयिवः सुवीरम्।
अश्याम वाजमभि वाजयन्तोऽश्याम द्युम्नमजराजरं ते॥ ७

हे अग्ने! हम स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बुलाते हैं। तुम बल के पुत्र, सतत युवा, महान् स्तोत्रों द्वारा स्तुत्य, मेधावी तथा द्रोह से शून्य हो। ऐसे गुण वाले अग्नि स्तुति करने वाले मनुष्यों को उनका इच्छित ऐश्वर्य देते हैं॥ १॥ हे अग्ने! तुम बहुत ज्वालाओं से युक्त तथा देवताओं के बुलाने वाले हो। यज्ञ करने वाले यजमान दिनरात तुमको हविरन्न प्रदान करते रहते हैं। जैसे देवताओं ने सभी प्राणियों को पृथिवी पर स्थापित किया था, वैसे ही अग्नि में सभी धनों को धारण कराया था॥ २॥ हे अग्ने! तुम अपने सामर्थ्य से श्रेष्ठ कामनाओं को प्राप्त करते हो और श्रेष्ठ सम्पत्ति को प्राप्त करने वालों में तुम्हीं प्रधान हो। हे मेधावी! तुम अपने उपासकों को विभिन्न ऐश्वर्य

निरन्तर देते रहो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! जो शत्रु छिपा रह कर हमारा नाश करना चाहता है अथवा जो शत्रु हमारे भीतर घुस कर हमारा नाश करने की इच्छा करता है, इन दोनों प्रकार के शत्रुओं को तुम अपने तेज से भस्म कर डालो । तुम्हारा तेज अजर, वृष्टि का कारण रूप सामर्थ्य से युक्त है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! जो यजमान यज्ञ-कर्म से तुम्हारी सेवा करता है अथवा जो यजमान स्तवनीय स्तोत्र और हवियों द्वारा तुम्हारी सेवा करता है, वह यजमान मनुष्यों में उत्तम ज्ञानी है तथा वह श्रेष्ठ धन धान्य को प्राप्त करता हुआ सुशोभित होता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस कर्म में नियुक्त हुए हो उसे शीघ्र सम्पन्न करो । तुम शक्तिशाली हो, अतः दूसरों को वश में करने वाली शक्ति से शत्रुओं को नष्ट करो । यह स्तोता, स्तुतियों से तुम्हारी अर्चना करता है । तुम इस स्तोत्र को स्वीकार करो । ये अग्निदेव प्रकाशमान तेज से परिपूर्ण हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे आश्रय में हमको इच्छित फल-लाभ हो । हे ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हम सुन्दर संतान से पूर्ण ऐश्वर्य को प्राप्त करें । अन्न की कामना करते हुए हम तुम्हारे द्वारा दिए हुए अन्न को पावें । हे अग्ने ! तुम अजर हो । हम तुम्हारे अत्यन्त तेजस्वी और जरा रहित यश से यशस्वी बनें ॥ ७ ॥ [७]

६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्र नव्यसा सहसः सूनुमच्छा यज्ञेन गातुमव इच्छमानः ।
वृश्चद्वनं कृष्णयामं रुशन्तं वीती होतारं दिव्यं जिगाति ॥ १
स श्वितानस्तन्यतू रोचनस्था अजरेभिर्नानदद्भिर्यविष्ठः ।
यः पावकः पुरुतमः पुरूणि पृथून्यग्निरनुयाति भर्वन् ॥ २
वि ते विष्वग्वातजूतासो अग्ने भामासः शुचे शुचयश्चरन्ति ।
तुविम्रक्षासो दिव्या नवग्वा वना वनन्ति धृषता रुजन्तः ॥ ३
ये ते शुक्रासः शुचयः शुचिष्मः क्षां वपन्ति विषितासो अश्वाः ।
अध भ्रमस्त उर्विया वि भाति यातयमानो अधि सानु पृश्नेः ॥ ४

अध जिह्वा पापतीति प्र वृष्णो गोषुयुधो नाशनिः सृजाना ।
शूरस्येव प्रसितिः क्षातिरग्नेर्दुर्वर्तु र्भीमो दयते वनानि ॥ ५
आ भानुना पार्थिवानि ज्रयांसि महस्तोदस्य धृषता ततन्थ ।
स बाधस्वाप भया सहोभिः स्पृधो वनुष्यन्वनुषो नि जूर्व ॥ ६
स चित्र चित्रं चितयन्तमस्मे चित्रक्षत्र चित्रतमं वयोधाम् ।
चन्द्रं रयिं पुरुवीरं बृहन्तं चन्द्र चन्द्राभिर्गृणते युवस्व ॥ ७ ।-८

अन्न की कामना करने वाले यजमान स्तुति के पात्र एवं बल के आधार अग्नि के पास यज्ञ कर्म से युक्त होकर जाते हैं। वे अग्नि जङ्गलों को भस्म करने वाले, उज्वल, कामना के योग्य एवं दिव्य होता स्वरूप हैं ॥ १ ॥ वे सब के पवित्र करने वाले एवं महान् हैं। उज्वल वर्ण वाले, अन्तरिक्ष में व्याप्त, जरा रहित, शब्दकारी हैं। वे मरुद्गण से सुसंगत होते हैं। वे असंख्य कठोर काष्ठों को भक्षण करते हुए चलते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी ज्वालाऐं वायु के योग से असंख्य काष्ठों को भस्म करती हुई सर्वत्र व्याप्त होती हैं। प्रज्वलित अग्नि से उत्पन्न ज्वालाऐं अपनी गमनशील कान्ति से जङ्गलों को भस्मीभूत करती हैं ॥ ३ ॥ हे तेजोमय अग्ने! तुम्हारी जो प्रदीप्त ज्वालाऐं वनों को जलाती हैं, वे छोड़े हुए घोड़ों के समान इधर-उधर जाती हैं। तुम्हारी गतिशील ज्वालाएं पृथिवी पर अद्भुत रूप से क्रीड़ा करती हुई विराजमान होती हैं ॥ ४ ॥ वृष्टि के कारणभूत अग्नि की ज्वालाऐं बारम्बार उठती हैं, उसी प्रकार, जैसे गौओं के लिए संग्राम करने वाले इन्द्र का वज्र बारम्बार उठता है। वीर पुरुषों के पराक्रम के समान अग्नि की ज्वालाओं को कोई रोक नहीं सकता। वे अपने विकराल रूप से जंगलों को भस्म कर डालती हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम अपनी सशक्त ज्वालाओं द्वारा अपने ऐश्वर्य को सम्पूर्ण पृथिवी पर फैलाओ। तुम सब संकटों को मिटाओ और अपने तेज की सामर्थ्य से हमसे द्वेष करने वालों को वश में करते हुए शत्रुओं का नाश कर डालो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम अद्भुत तेज वाले हो। हम प्रसन्न करने वाले स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम अत्यन्त विचित्र रूप वाले,

यशस्वी, अन्नों के देने वाले हो। हमको पुत्र-पौत्रादि से युक्त महान ऐश्वर्य दो ॥ ७ ॥ [८]

७ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-वैश्वानरः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः जगती)

मूर्धानं दिवो अरतिं पृथिव्या वैश्वानरमृत आ जातमग्निम् ।
कविं सम्राजमतिथिं जनानामासन्ना पात्रं जनयन्त देवाः ॥ १
नाभिं यज्ञानां सदनं रयीणां महामाहावमभि सं नवन्त ।
वैश्वानरं रथ्यमध्वराणां यज्ञस्य केतुं जनयन्त देवाः ॥ २
त्वद्विप्रो जायते वाज्यग्ने त्वद्वीरासो अभिमातिषाहः ।
वैश्वानर त्वमस्मासु धेहि वसूनि राजन्स्पृहयाय्याणि ॥ ३
त्वां विश्वे अमृत जायमानं शिशुं न देवा अभि सं नवन्ते ।
तव क्रतुभिरमृतत्वमायन्वैश्वानर यत्पित्रोरदीदेः ॥ ४
वैश्वानर तव तानि व्रतानि महान्यग्ने नकिरा दधर्ष ।
यज्जायमानः पित्रोरुपस्थेऽविन्दः केतुं वयुनेष्वह्नाम् ॥ ५
वैश्वानरस्य विमितानि चक्षसा सानूनि दिवो अमृतस्य केतुना ।
तस्येदु विश्वा भुवनाधि मूर्धनि वया इव रुरुहुः सप्त विस्रुहः ॥ ६
वि यो रजांस्यमिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो विदिवो रोचना कविः ।
परि यो विश्वा भुवनानि पप्रथेऽदब्धो गोपा अमृतस्य रक्षिता ॥ ७ । ६

वैश्वानर अग्नि, आकाश के मूर्धा के समान, पृथिवी पर गमन करने वाले, यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए उत्पन्न, ज्ञानी, भले प्रकार सुशोभित तथा यजमानों के लिए अतिथि के समान हैं, वे रक्षा साधनों से युक्त तथा देवताओं के मुख रूप हैं। उपासकगण उन्हीं अग्निदेवता को प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ स्तुति करने वाले यजमान हवियों के पालनकर्त्ता और यज्ञ स्वरूप अग्नि की श्रद्धा सहित स्तुति करते हैं। यज्ञ के द्रव्यों को वहन करने वाले तथा यज्ञ के ध्वजस्वरूप वैश्वानर अग्नि को देवताओं ने उत्पन्न किया है ॥ २ ॥

देव ! हविरन्न से सम्पन्न यजमान तुमसे ही ज्ञान प्राप्त करता है। वीर पुरुष तुम्हारी कृपा से ही शत्रुओं को वशीभूत करने में समर्थ होते हैं। हे प्रकाशमान् वैश्वानर अग्ने ! तुम हमको अभीष्ट धन दो ॥ ३ ॥ हे अमरत्वगुण-युक्त अग्ने ! तुम दो अरणियों से पुत्र के समान प्रकट हुए हो। सभी देवता तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे वैश्वानर अग्ने ! जब तुम आश्रय देने वाली आकाश और पृथिवी के मध्य प्रज्वलित होते हो, तब यजमान तुम्हारे यज्ञीय कर्म द्वारा अविनाशी पद प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे वैश्वानर अग्ने ! तुम्हारे प्रख्यात कर्मों में कोई विघ्न नहीं डाल सकता। माता-पिता के समान आकाश-पृथिवी की आश्रित अरणियों में उत्पन्न होकर तुमने दिनों के दिखाने वाले सूर्य की स्थापना की ॥ ५ ॥ वैश्वानर अग्नि के तेज से दिव्यलोक के उच्च स्थान बने हैं। वैश्वानर के मूर्धा रूप मेघ में जल-राशि चलती है और उससे सात नदियाँ प्रवाहित होती हैं ॥ ६ ॥ पवित्र करने वाले जिन वैश्वानर ने जलों की रचना की थी तथा तेज से सम्पन्न होकर जिन्होंने आकाश में चमकते हुए नक्षत्रों को बनाया था और जिन्होंने सभी प्राणियों के लिए चारों दिशाएँ प्राप्त की थीं, वे अग्नि जलों के रक्षक, तथा किसी के द्वारा न जीते जाने योग्य हैं ॥ ७ ॥ [६]

८ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-वैश्वानरः छन्द-जगती, त्रिष्टुप्)

पृक्षस्य वृष्णो अरुषस्य नू सहः प्र नु वोचं विदथा जातवेदसः ।
वैश्वानराय मतिर्नव्यसी शुचिः सोमइव पवते चारुरग्नये ॥ १
स जायमानः परमे व्योमनि व्रतान्यग्निर्व्रतपा अरक्षत ।
व्यन्तरिक्षममिमीत सुक्रतुर्वैश्वानरो महिना नाकमस्पृशत् ॥ २
व्यस्तभ्नाद्रोदसी मित्रो अद्भुतोऽन्तर्वावदकृणोज्ज्योतिषा तमः ।
वि चर्मणीव धिषणे अवर्तयद्वैश्वानरो विश्वमधत्त वृष्ण्यम् ॥ ३
अपामुपस्थे महिषा अगृभ्णत विशो राजानमुप तस्थुर्ऋग्मियम् ।
आ दूतो अग्निमभरद्विवस्वतो वैश्वानरं मातरिश्वा परावतः ॥ ४

दुग्धे विदथ्यं गृणत्सुवीऽग्ने रयिं मघोनं धेहि नव्यसीम् ।
पद्येव राजन्नघशंसमजर नीचा नि वृश्च वनिनं न तेजसा ॥ ५
अस्मादग्ने मघवत्सु धारयानामि क्षत्रमजरं सुवीर्यम् ।
वयं जयेम शतिनं सहस्रिणं वैश्वानर वाजमग्ने तवोतिभिः ॥ ६
अदब्धेभिस्तव गोपाभिरिष्टेऽस्माकं पाहि त्रिषधस्थ सूरीन् ।
रक्षा च नो ददुषां शर्धो अग्ने वैश्वानर प्र च तारीः स्तवानः ॥ ७।१०

कर्मों के स्वामी, जन्म से ही मेधावी, प्रकाशमान, सर्वत्र व्याप्त अग्नि के तेज की हम इस यज्ञ में हार्दिक स्तुति करते हैं । उनके समक्ष पवित्र, अभिनव तथा सुन्दर स्तोत्र सोमरस के समान उपस्थित होता है ॥ १ ॥ सत्य-कर्मों की रक्षा करने वाले वैश्वानर अग्नि श्रेष्ठ आकाश में प्रकट होकर वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के कर्मों का पालन करते हैं । वे ही अन्तरिक्ष की सीमा का निर्धारण करते हैं । श्रेष्ठ कर्मों वाले वैश्वानर अग्नि अपने तेज से आकाश तक पहुँचते हैं ॥ २ ॥ मित्र के समान हितकारी एवं अद्भुत रूप वाले वैश्वानर अग्नि ने आकाश और पृथिवी को अपने-अपने स्थान पर स्थिर कर दिया किया । उन्होंने अपने तेज से अन्धकार को हटाया और आश्रयभूत आकाश पृथिवी को पशुओं के चमड़े के समान बढ़ाया । वे अग्नि समस्त पदार्थों के धारण करने वाले हैं ॥ ३ ॥ महान कर्म वाले मरुद्गण ने अन्तरिक्ष में अग्नि को स्थापित किया था और मनुष्यों में उनको स्वामी बना कर पूजा की । देवताओं के दूत रूप मातरिश्वा इन वैश्वानर अग्नि को सूर्य मं[illegible] से इस भूलोक पर ले आए ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ के योग्य हो । [illegible] मायक तुम्हारे लिए अभिनव स्तोत्रों को कहते हैं, उन्हें तुम यशस्वी संता[illegible] तथा सुन्दर ऐश्वर्य देते हो । हे अग्ने ! तुम ऊँचा तथा उच्च स्थान प[illegible] प्रतिष्ठित हो । अपने तेज से शत्रु को उसी प्रकार गिरा दो जैसे वज्र वृ[illegible] को गिरा देता है ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! हम हविरन्न से सम्पन्न हैं । तुम हम[illegible] अक्षुण्ण धन और ऐश्वर्य तथा जरावस्था से रहित एवं शत्रु को दबा दे[illegible] वाला श्रेष्ठ बल-वीर्य प्राप्त कराओ । हे वैश्वानर अग्ने ! हम तुम्हारे रक्षा साधनों के सहारे सैकड़ों और हजारों संख्या वाले ऐश्वर्य को जीत लें ॥ ६ [illegible]

हे तीनों लोकों के स्वामी अग्निदेव ! तुम किसी के द्वारा भी नष्ट न किये जाने योग्य तथा रक्षा करने वाले बल से स्तुति करने वालों की रक्षा करो। हे वैश्वानर अग्ने ! तुम हवि देने वाले यजमान के बल-वीर्य की रक्षा करो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम हमको दुःखों से पार करो ॥ ७ ॥ [१०]

६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—वैश्वानरः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

अहश्च कृष्णमहरर्जुनं च वि वर्तेते रजसी वेद्याभिः।
वैश्वानरो जायमानो न राजावातिरज्ज्योतिषाग्निस्तमांसि ॥ १
नाहं तन्तुं न वि जानाम्योतुं न यं वयन्ति समरेऽतमानाः।
कस्य स्वित्पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥ २
स इत्तन्तुं स वि जानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन्परो अन्येन पश्यन् ॥ ३
अयं होता प्रथमः पश्यतेममिदं ज्योतिरमृतं मर्त्येषु।
स जज्ञे ध्रुव आ निषत्तोऽमर्त्यस्तन्वा वर्धमानः ॥ ४
ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु ॥ ५
वि मे कर्णा पतयतो वि चक्षुर्वीदं ज्योतिर्हृदय आहितं यत्।
वि मे मनश्चरति दूरआधीः किं स्विद्वक्ष्यामि किमु नू मनिष्ये ॥ ६
विश्वे देवा अनमस्यन्भियानास्त्वामग्ने तमसि तस्थिवांसम्।
वैश्वानरोऽवतूतये नोऽमर्त्योऽवतूतये नः ॥ ७ । ११

काले रंग की रात और उज्ज्वल वर्ण वाला दिन संसार को रंगते हुए, नियमित रूप से बदलते रहते हैं। वैश्वानर अग्नि राजा के समान दैदीप्यमान होते हुए अँधेरे को नष्ट करते हैं ॥ १ ॥ मैं ताना या बाना कुछ नहीं जानता तथा प्रयत्न द्वारा जो वस्त्र बुना जाता है, उसके संबन्ध में भी मुझे कुछ ज्ञान

नहीं है। इस लोक में निवास करने वाले पिता के उपदेश को सुनने वाला पुत्र अन्य लोक की वाणी में उपदेश कर सकता है ॥ २ ॥ ज्ञाता या माता के सम्बन्ध में केवल वैश्वानर ही जानते हैं। वे समय-समय पर उपदेश देते हैं। जल की रक्षा करने वाले तथा पृथिवी पर गमन करने वाले अग्नि अंतरिक्ष में आदित्य के रूप में चमकते हैं और संसार को प्रकाश देते हैं ॥ ३ ॥ हे मित्रगणो! यह वैश्वानर अग्नि प्रथम होता है, इसमें साक्षात् किया करो। यह मरणधर्मा मनुष्यों के मध्य रहने वाली अमर ज्योति के समान है। यह कभी भी न मरने वाले नित्य होते हुए शरीर में सदा बढ़ते हैं ॥ ४ ॥ मन से भी अधिक वेग वाले वैश्वानर अग्नि की स्थिर ज्योति सुख रूप मार्गों को दिखाने के लिए प्राणियों के भीतर निवास करती है। सभी देवता समान मति वाले होकर, श्रद्धा सहित सुकृत कर्मों के करने वाले वैश्वानर के अभिमुख जाते हैं ॥ ५ ॥ हे अग्ने! तुम्हारे गुण को सुनने के लिए हमारे दोनों कान और तुम्हारे दर्शन करने के लिए हमारे नेत्र उपस्थित होते हैं। हमारे अन्तःकरण में जो ज्योति निवास करती है, वह भी तुम्हारे रूप को जानने की इच्छा करती है। हमारा मन भी दूरस्थ ज्योति का ध्यान करता हुआ विचार-मग्न रहता है। फिर हम वैश्वानर के रूप को वाणी द्वारा कैसे कहें? ॥ ६ ॥ हे वैश्वानर अग्ने! समस्त देवता तुम्हें प्रणाम करते हैं। तुम अन्धकार में रहे दीपक के समान चमकने वाले हो। अपने रक्षा-साधनों से हमारी रक्षा करो। हम तुम्हारी शरण में आते हैं। वे अमरत्व गुण वाले अग्नि हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ ७ ॥ [11]

१० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, बृहती)

पुरो वो मन्द्रं दिव्यं सुवृक्तिं प्रयति यज्ञे अग्निमध्वरे दधिध्वम्।
पुर उक्थेभिः स हि नो विभावा स्वध्वरा करति जातवेदाः ॥ १
तमु द्युमः पुर्वणीक होतरग्ने अग्निभिर्मनुष इधानः।
स्तोमं यमस्मै ममतेव शूषं घृतं न शुचि मतयः पवन्ते

पीपाय स श्रवसा मर्त्येषु यो अग्नये ददाश विप्र उक्थैः ।
चित्राभिस्तमूतिभिश्चित्रशोचिर्व्रजस्य साता गोमतो दधाति ॥ ३
आ यः पप्रौ जायमान उर्वी दूरेदृशा भासा कृष्णाध्वा ।
अध बहु चित्तम ऊर्म्यायास्तिरः शोचिषा ददृशे पावकः ॥ ४
नू नश्चित्रं पुरुवाजाभिरूती अग्ने रयिं मघवद्भ्यश्च धेहि ।
ये राधसा श्रवसा चात्यन्यान्त्सुवीर्येभिश्चाभि सन्ति जनान् ५॥
इमं यज्ञं चनो धा अग्न उशन्यं त आसानो जुहुते हविष्मान् ।
भरद्वाजेषु दधिषे सुवृक्तिमवीर्वाजस्य गध्यस्य सातौ ॥ ६
वि द्वेषांसीनुहि वर्धयेळां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ७ । १२

हे विज्ञजनो ! प्रयत्न से साध्य इस यज्ञ में विघ्नादि से बचे रहने के लिए सब प्रकार के दोषों से रहित अग्नि की स्तोत्रों द्वारा सम्मुख स्थापना करो, क्योंकि वे सभी उत्पन्न पदार्थों के ज्ञाता यज्ञ में हमारे लिए कल्याणकारी कर्मों का सम्पादन करते हैं ॥ १ ॥ हे असंख्य ज्वालाओं से प्रकाशमान् अग्ने ! तुम देवताओं को आहूत करने में समर्थ हो । तुम अपने अंश रूप अग्नियों सहित बढ़ते हुए, स्तुति करने वालों के स्तोत्र को सुनो । ममता के समान यह स्तुति करने वाले यजमान अग्नि के निमित्त सुन्दर स्तोत्र को घृत के समान निवेदन करते हैं ॥ २ ॥ अग्नि में जो मनुष्य स्तोत्र के सहित हव्य देता है, वह अग्नि की कृपा से सभी मनुष्यों में समृद्धिशाली हो जाता है । वे अग्निदेव अद्भुत ज्वालाओं से युक्त एवं अद्भुत रक्षा-साधनों सहित उस स्तोता को गोशाला से युक्त गौऐं प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ अग्नि ने उत्पन्न होकर दूर से ही दिखाई देने वाले अपने तेज से आकाश-पृथिवी को परिपूर्ण किया । वह अग्नि रात्रि के घोर अँधेरे को अपने प्रकाश से दूर करते हुए दिखाई देते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हम हविरन्न वाले हैं । तुम शीघ्र ही हमको अपने रक्षा-साधनों से युक्त अद्भुत धन दो । जो पुत्र अन्य मनुष्यों को अपने वश में कर सके ऐसा अन्न, धन से युक्त तथा वीर्यवान् पुत्र हमको प्राप्त कराओ ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! जो हवियों से सम्पन्न मनुष्य तुम्हारा यज्ञ करता है, तुम उसकी हवि की कामना करते हुए यज्ञ के साधन रूप उस अन्न को ग्रहण करो । हे

अग्ने ! उन पर पूर्ण कृपा करो, जिससे वे यजमान विभिन्न अन्नों को प्राप्त कर सकें ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! द्वेष करने वाले शत्रुओं को दूर करो। तुम हमारे अन्न को बढ़ाओ। हम सुन्दर सन्तानों से सम्पन्न हुए साधक भी हेमन्तों तक सुख से रहें ॥ ७ ॥ [१२]

११ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यजस्व होतरिषितो यजीयानग्ने बाधो मरुतां न प्रयुक्ति।
आ नो मित्रावरुणा नासत्या द्यावा होत्राय पृथिवी ववृत्याः ॥ १
त्वं होता मन्द्रतमो नो अध्रुगन्तर्देवो विदथा मर्त्येषु।
पावकया जुह्वा वह्निरासाग्ने यजस्व तन्वं तव स्वाम् ॥ २
धन्या चिद्धि त्वे धिषणा वष्टि प्र देवाञ्जन्म गृणते यजध्यै।
वेपिष्ठो अङ्गिरसां यद्ध विप्रो मधु च्छन्दो भनति रेभ इष्टौ ॥ ३
अदिद्युतत्स्वपाको विभावाग्ने यजस्व रोदसी उरूची।
आयुं न यं नमसा रातहव्या अञ्जन्ति सुप्रयसं पञ्च जनाः ॥ ४
वृञ्जे ह यन्नमसा बर्हिरग्नावयामि स्रुग्घृतवती सुवृक्तिः।
अम्यक्षि सद्म सदने पृथिव्या अश्रायि यज्ञः सूर्ये न चक्षुः ॥ ५
दशस्या नः पुर्वणीक होतर्देवेभिरग्ने अग्निभिरिधानः।
रायः सूनो सहसो वावसाना अति स्रसेम वृजनं नांहः ॥ ६ । १३

हे होता रूप अग्ने ! तुम यज्ञ करने वालों में महान् हो। तुम हमारे द्वारा प्रेरित होकर मरुतों को मनुष्यों की पूजाओं में रोकने और उत्तम कर्म रूप मार्ग में लगाने वाला यज्ञ कराओ। तुम मित्र, वरुण तथा असत्य कार्य न करने वाले दोनों देव और आकाश-पृथिवी को हमारे यज्ञ-कार्य में लगाओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त पूजनीय हो। तुम हमसे द्वेष नहीं करते। तुम सदा हमारे प्रति दानशील रहते हो। हे अग्ने ! तुम हवियों के वाहक हो। तुम्हीं पवित्र करने वाले हो तथा देवताओं की जुहू द्वारा [illegible]

द्वारा अपने देह को प्राप्त करने वाले हो ॥२॥ हे अग्ने ! धन की कामना करने वाली स्तुति तुम्हें चाहती है। तुम्हारे प्रज्ज्वलित होने पर ही इन्द्रादि देवताओं का यज्ञ करने में यजमान लोग सफलता प्राप्त करते हैं। सब ऋषियों में अंगिरा ऋषि अत्यन्त स्तुति करते हैं और विद्वान् भरद्वाज प्रसन्नताप्रद स्तोत्रों का पाठ करते है ॥ ३ ॥ मेधावी एवं तेजस्वी अग्नि भले प्रकार शोभायमान होते हैं। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त विस्तृत आकाश-पृथिवी की हवियों से परिचर्या करो। तुम सुन्दर हविरन्न से युक्त हो। हविदाता ऋत्विक्, यजमान के समान ही हव्य द्वारा अग्नि को संतुष्ट करते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि के पास जब हव्ययुक्त कुश लाया जाता है और शुद्ध घृत से युक्त स्रुक कुश पर रखा जाता है, तब अग्नि के लिए पृथिवी पर वेदी बनाई जाती है। जैसे सूर्य अपने तेज से स्थित होते हैं, वैसे ही यजमान का यज्ञ अग्नि के आश्रित होता है ॥ ५ ॥ हे देवताओं को बुलाने वाले तथा असंख्य ज्वालाओं से युक्त अग्निदेव ! तुम तेजस्वी हो। तुम अन्य अग्नियों सहित अपने तेज को बढ़ाते हुए हमको धन दो। हम तुम्हें हव्य प्रदान करते हैं। हम इस शत्रु रूपी पाप बन्धन से छूट जाँय ॥ ६ ॥ [१२]

१२ सूक्त

ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मध्ये होता दुरोणे बर्हिषो राळग्निस्तोदस्य रोदसी यजध्यै ।
य स सूनुः सहस ऋतावा दूरात्सूर्यो न शोचिषा ततान ॥ १
। यस्मिन्त्वे स्वपाके यजत्र यक्षद्राजन्त्सर्वतातेव नु द्यौः ।
ाषधस्थस्ततरुषो न जंहो हव्या मघानि मानुषा यजध्यै ॥ २
जिष्ठा यस्यारतिर्वनेराट् तोदो अध्वन्न वृधसानो अद्यौत् ।
द्रोघो न द्रविता चेतति त्मन्नमर्त्योऽवर्त्र ओषधीषु ॥ ३
ास्माकेभिरेतरी न शूषैरग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
द्रन्नो वन्वन् क्रत्वा नार्वोस्रः पितेव जारयायि यज्ञैः ॥४
ध स्मास्य पनयन्ति भासो वृथा यत्तक्षदनुयाति पृथ्वीम् ।

सद्यो य. स्यन्द्रो विषितो धवीयानृणो न तायुरति धन्वा राट् ॥ ५

स त्वं नो अर्वन्निदाया विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिधानः ।

वेषि रायो वि यासि दुच्छुना मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ । १४

देवताओं का आह्वान करने वाले एवं यज्ञ के स्वामी अग्निदेव आकाश-पृथिवी को पूर्ण करने के लिए यजमान के घर में स्थापित होते हैं। वे यज्ञ-कर्मों से युक्त, बल के पुत्र अग्नि अपने प्रकाश द्वारा सूर्य के समान इस अखिल विश्व को दूर से ही प्रकाशित करते हैं ॥ १ ॥ हे यज्ञशील, तेजोमय अग्निदेव! तुम मेधावी हो। तुम तीनों लोकों में व्याप्त होकर मनुष्यों द्वारा दिए गए उत्तम हव्य पदार्थ को देवताओं के पास पहुँचाने में सूर्य के समान तेजस्वी होओ। हे अग्ने! सभी यजमान श्रद्धा सहित बहुत हव्य भेंट करते हैं ॥ २ ॥ जिन अग्निदेवता की सर्वत्र व्याप्त होने वाली एवं अत्यन्त दीप्तिमती ज्वालाएं जङ्गल में प्रज्वलित होती हैं, वे समृद्धि को प्राप्त हुए अग्नि सूर्य के समान अन्तरिक्ष के मार्ग में व्याप्त होते हैं। वे सब का कल्याण करने वाले, कभी भी क्षीण न होने वाली वनस्पतियों में वायु के समान वेग से जाते तथा अपने प्रकाश से सम्पूर्ण संसार को प्रकाशित करते हैं ॥ ३ ॥ ज्ञानवान् अग्नि यज्ञ करने वालों के सुखकारी स्तोत्र के समान हमारे स्तोत्र से यज्ञ-स्थान में पूजे जाते हैं। यजमान, वन जङ्गल में बढ़ कर वनस्पतियों के भक्षण करने वाले, पदार्थों के जनक बैल के समान, शीघ्र कर्म करने वाले अग्नि की स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ अकस्मात् जब अग्नि वृक्षों को भस्म कर भूमि पर फैल जाते हैं, तब स्तुति करने वाले मनुष्य इस लोक में अग्नि की ज्वालाओं की स्तुति करते हैं। अबाधित भाव से पृथिवी को भोगने वाले अग्नि तेजस्वी होकर विराजते हैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुओं का नाश करने वाले अग्निदेव! तुम अपनी ज्वालाओं सहित प्रकट होकर हमको निन्दकों से बचाओ। तुम हमको ऐश्वर्य दो। दुःख देने वाली शत्रु-सेनाओं का नाश करो। हम उत्तम वीरों से युक्त होकर सौ हेमन्त ऋतुओं तक सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करें ॥ ६ ॥

१३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अग्निः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वद्विश्वा सुभग सौभगान्यग्ने वि यन्ति वनिनो न वयाः ।
श्रुष्टी रयिर्वाजो वृत्रतूर्ये दिवो वृष्टिरीड्यो रीतिरपाम् ॥ १
त्वं भगो न आ हि रत्नमिषे परिज्मेव क्षयसि दस्मवर्चाः ।
अग्ने मित्रो न बृहत ऋतस्यासि क्षत्ता वामस्य देव भूरेः ॥ २
स सत्पतिः शवसा हन्ति वृत्रमग्ने विप्रो वि पणेर्भर्ति वाजम् ।
यं त्वं प्रचेत ऋतजात राया सजोषा नप्त्रापां हिनोषि ॥ ३
यस्ते सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैर्यज्ञैर्मर्तो निशितिं वेद्यानट् ।
विश्वं स देव प्रति वारमग्ने धत्ते धान्यं पत्यते वसव्यैः ॥ ४
ता नृभ्य आ सौश्रवसा सुवीराग्ने सूनो सहसः पुष्यसे धाः ।
कृणोषि यच्छवसा भूरि पश्वो वयो वृकायारये जसुरये ॥ ५
वद्मा सूनो सहसो नो विहाया अग्ने तोकं तनयं वाजि नो दाः ।
विश्वाभिर्गीर्भिरभि पूर्तिमश्यां मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ ६ । १५

हे सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त अग्निदेव ! इन विभिन्न प्रकार के ऐश्वर्यों को तुमने ही उत्पन्न किया है। वृक्ष से जैसे विभिन्न आकार वाली शाखाएं उपजती हैं, वैसे ही तुमसे पशु उत्पन्न होते हैं। रणस्थल में शत्रुओं पर विजय पाने वाला बल भी तुम्हारे द्वारा ही उत्पन्न हुआ है। अन्तरिक्ष से होने वाली वर्षा के उत्पत्तिकर्त्ता भी तुम ही हो, इसलिए तुम सभी के लिए पूजनीय हो ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम उपासना के योग्य हो, हमको सुन्दर धन दो। तुम्हारा तेज देखने योग्य है, तुम सर्वत्र व्याप्त वायु के समान सर्वत्र विद्यमान हो। हे तेजस्विन् ! तुम मित्र के समान प्रचुर ज्ञान के देने वाले होओ तथा उपभोग के योग्य सुन्दर ऐश्वर्य को प्राप्त कराओ ॥ २ ॥ हे उत्तम ज्ञान से युक्त, यज्ञ के लिए प्रकट हुए अग्ने ! तुम जलधाराओं को व्याप्त करने वाले विद्युत रूप अग्नि के साथ मिलकर जिस मनुष्य को धन की प्रेरणा देते

हो, वह सज्जनों का पालक मेधावी मनुष्य तुम्हारे बल से ही शत्रुओं को नष्ट करता है और पणि के बल को घटाता है ॥ ३ ॥ हे बल के पुत्र एवं तेजोमय अग्ने ! जो मनुष्य उपासना, यज्ञ कर्म एवं स्तुतियों से तुम्हारे तीक्ष्ण तेज को आकर्षित कर लेता है, वह हर प्रकार से समृद्ध होता हुआ अन्न आदि दान करता है तथा ऐश्वर्य से युक्त होता है ॥ ४ ॥ हे बल के पुत्र अग्ने ! तुम हमारा पालन करने के लिए श्रेष्ठ पुत्रों सहित सुन्दर अन्न दो । जो पशु आदि से उत्पन्न दही आदि खाद्य तुम हमारे विरोधियों से लाते हो, वह खाद्य हमको प्रचुर परिमाण में दो ॥ ५ ॥ हे बल के पुत्र अग्निदेव, तुम पराक्रमी हो । हमको उपदेश देने वाले होओ । हमें अन्न सहित सन्तान दो । हम स्तुतियाँ करके अपने अभीष्ट को पूर्ण कर पावें । हम सुन्दर सन्तानों के सहित सौ हेमन्तों तक उपभोग के योग्य सुख पाते हुए जीवें ॥ ६ ॥ [१५]

१४ सूक्त

(ऋषि—भारद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः । छन्द—उष्णिक्,
त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्, जगती)

अग्ना यो मर्त्यो दुवो धियं जुजोष धीतिभिः ।
भसन्नु ष प्र पूर्व्य इषं वुरीतावसे ॥ १
अग्निरिद्धि प्रचेता अग्निर्वेधस्तम ऋषिः ।
अग्निं होतारमीळते यज्ञेषु मनुषो विशः ॥ २
नाना ह्यग्नेऽवसे स्पर्धन्ते रायो अर्यः ।
तूर्वन्तो दस्युमायवो व्रतैः सीक्षन्तो अव्रतम् ॥ ३
अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति सत्पतिम् ।
यस्य त्रसन्ति शवसः सञ्चक्षि शत्रवो भिया ॥ ४
अग्निर्हि विद्मना निदो देवो मर्तमुरुष्यति ।
सहावा यस्यावृतो रयिर्वाजेष्ववृतः ॥ ५
अच्छा नो मित्रमहो देव देवानग्ने वोचः सुमतिं रोदस्योः ।
वीहि स्वस्तिं सुक्षितिं दिवो नॄन्द्विषो अंहांसि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ ६ । १६

जो साधक यज्ञादि कर्म करता हुआ स्तोत्र द्वारा अग्नि की सेवा करता है, वह मनुष्यों में प्रमुख एवं तेजस्वी होता है तथा अपने पुत्र आदि का पालन करने के लिए वह शत्रुओं के पास से बहुत अन्न प्राप्त करता है ॥ १ ॥ एक मात्र अग्नि ही सर्वोत्कृष्ट ज्ञानी हैं, उनके समान अन्य कोई भी नहीं है। वे यज्ञ कर्म का निर्वाह करने वाले तथा सर्वद्रष्टा हैं। यजमानों के पुत्रादि अग्नि को यज्ञ में देवताओं का आह्वान करने वाले मान कर स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने! शत्रुओं का धन उनके पास से हट कर तुम्हारी स्तुति करने वालों की रक्षा करता है। शत्रुओं को जीतने वाले तुम्हारे उपासक तुम्हारा यज्ञ करते हुए यज्ञ न करने वालों को वश में करने की कामना करते हैं ॥ ३ ॥ स्तुति करने वालों को अग्नि उत्तम कर्म वाला, शत्रु को जीतने वाला तथा श्रेष्ठ कार्यों की रक्षा करने वाला पुत्र देते हैं, जिसके देखने से ही शत्रु उससे डर कर काँपने लगते हैं ॥ ४ ॥ अग्नि ही अपने ज्ञान के बल से तेजस्वी होकर निन्दा करने वालों को वशीभूत करते हुए मनुष्यों की रक्षा करते हैं। वह स्वयं तथा उनका वरणीय बल युद्ध काल में किसी पर अप्रकट नहीं रहता ॥ ५ ॥ हे सुन्दर तेजवाले, दानशील, आकाश और पृथिवी में व्याप्त अग्ने! तुम हमारी स्तुतियों को देवताओं से कहो। हम स्तुति करने वालों को सुन्दर निवासप्रद सुख-लाभ कराओ। हम शत्रुओं, पापों तथा कष्टों से रक्षित रहें। हे अग्ने! हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से शत्रुओं से पार हो जाँय ॥ ६ ॥

१५ सूक्त [१६]

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—अग्निः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, शक्वरी, पंक्तिः, बृहती, अनुष्टुप्)

इमम् षु वो अतिथिमुषर्बुधं विश्वासां विशां पतिमृञ्जसे गिरा।
वेतीद्दिवो जनुषा कच्चिदा शुचिर्ज्योक् चिदत्ति गर्भो यदच्युतम् ॥ १
मित्रं न यं सुधितं भृगवो दधुर्वनस्पतावीड्यमूर्ध्वशोचिषम्।
स त्वं सुप्रीतो वीतहव्ये अद्भुत प्रशस्तिभिर्महयसे दिवेदिवे ॥ २
स त्वं दक्षस्यावृको वृधो भूरर्यः परस्यान्तरस्य तरुषः।

राय: सूनो सहसो मर्त्येष्वा छर्दिर्यच्छ वीतहव्याय सप्रथो भरद्वाजाय सप्रथ: ॥ ३

द्युतानं वो अतिथिं स्वर्णरमग्निं होतारं मनुष: स्वध्वरम् ।
विप्रं न द्युक्षवचसं सुवृक्तिभिर्हव्यवाहमरतिं देवमृञ्जसे ॥ ४

पावकया यश्चितयन्त्या कृपा क्षामन्रुरुच उषसो न भानुना ।
तूर्वन्न यामन्नेतशस्य नू रण आ यो घृणे न ततृषाणो अजरः ॥५॥१७

हे वीतहव्य, हे विप्र ! तुम उषाकाल में चैतन्य होने वाले, लोकों के पालक, स्वभाव से ही निर्मल, अतिथि के समान पूज्य अग्नि की सेवा करो। वे अग्निदेव दिव्यलोक से प्रकट होते हुए हविरन्न का सेवन करते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम विचित्र हो। तुम औषधियों में व्याप्त, स्तुतियों के वहन करने वाले और ऊपर को उठती हुई ज्वालाओं से युक्त हो। तुमको भृगुवंशीय ऋषिजन घर में मित्र के समान रखते हैं। वीतहव्य नित्य प्रति अपने श्रेष्ठ स्तोत्र से तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अग्ने ! तुम उन ऋषियों पर कृपा करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! यज्ञादि कर्मों में चतुर व्यक्ति को तुम सम्पन्न करते हुए दूर के या पास के शत्रु से उसकी रक्षा करते हो। हे अग्ने ! तुम अत्यन्त महान् हो। मनुष्यों में श्रेष्ठ भरद्वाज वंशीय को ऐश्वर्य युक्त घर लाभ कराओ ॥ ३ ॥ हे वीतहव्य ! तुम सुन्दर स्तुति से हव्यों को वहन करने वाले तेजस्वी, स्वर्ग प्राप्त कराने वाले, अतिथि के समान पूजनीय, देवताओं का आह्वान करने में समर्थ, यज्ञ-कार्य का सम्पादन करने वाले, ज्ञानी एवं ओज-मयी वाणी से युक्त अग्नि देवता की स्तुति करो ॥ ४ ॥ उषा जैसे प्रकाश से ही अच्छी लगती, वैसे ही पृथिवी को पवित्र करने वाले और चैतन्य करने वाले अग्नि अपने तेज से सुशोभित होते हैं। जो एतश ऋषि की रक्षा के लिए रणक्षेत्र में शत्रु का नाश करने वाले वीर के समान शीघ्र ही चैतन्य हुए, जो सब पदार्थों के भक्षण करने में समर्थ तथा कभी क्षीण न होने वाले हैं, हे वीतहव्य ! उन अग्नि की परिचर्या करो ॥ ५ ॥ [१७]

अग्निमग्निं व: समिधा दुवस्यत प्रियंप्रियं वो अतिथिं गृणीषणि ।
उप वो गीर्भिरमृतं विवासत देवो देवेषु वनते हि वार्यं ।

देवो देवेषु वनते हि नि दुवः ॥ ६
समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम् ।
विप्रं होतारं पुरुवारमद्रुहं कविं सुम्नैरीमहे जातवेदसम् ॥ ७
त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।
देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ॥८
विभूषन्नग्न उभयाँ अनु व्रता दूतो देवानां रजसी समीयसे ।
यत्ते धीतिं सुमतिमावृणीमहेऽध स्मा नस्त्रिवरूथः शिवो भव ॥९
तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वञ्चमविद्वांसो विदुष्टरं सपेम ।
स यक्षद् विश्वा वयुनानि विद्वान् प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत् ॥ १०॥

हे स्तुति करने वालो ! अतिथि के समान आदरणीय एवं अत्यन्त प्रीतिदायक अग्नि की समिधा-द्वारा परिचर्या करो । वे अग्नि सभी देवताओं में दानशील स्वभाव के हैं और समिधाओं के ग्रहण करने वाले हैं । वे हमारी पूजा को स्वीकार करते हैं, अतः उन अविनाशी अग्नि के समक्ष स्तोत्रों द्वारा स्तुतियाँ करो ॥ ६ ॥ समिधाओं से प्रज्वलित हुए अग्नि की हम स्तोत्रों से पूजा करते हैं । वह स्वयं पवित्र हैं तथा सब को पवित्र करने वाले हैं । हम उन दृढ़ विचार वाले अग्नि को श्रेष्ठ यज्ञ-स्थान में प्रतिष्ठित करते हैं । हम मेधावी देवताओं के आह्वाक, सब के द्वारा वरण करने योग्य, उत्तम स्वभाव वाले एवं सर्वदर्शी अग्नि की सुन्दर स्तोत्रों द्वारा उपासना करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! देवता और मनुष्य दोनों ही तुम्हें दूत नियुक्त करते हैं । तुम अविनाशी, रक्षक, हव्य-वाहक एवं स्तुतियों के पात्र हो । वे दोनों ही प्रजापालक, सर्वव्यापक एवं चैतन्य रहने वाले अग्निदेव को नमस्कार और हव्य सहित प्रतिष्ठापित करते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! देवता और मनुष्यों को विशेष प्रकार से अनुग्रहीत करते हुए तुम देवताओं के दूत होकर आकाश-पृथिवी में घूमते हो । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों और सुन्दर यज्ञानुष्ठान द्वारा तुम्हारी उपासना करते हैं । तुम तीनों लोकों में व्याप्त होने वाले होते हुए हमको सुखी बनाओ ॥ ९ ॥ हम अल्प बुद्धि वाले मनुष्य सुन्दर अङ्ग वाले, मनोहर

ाले, सब के ज्ञाता, गमनशील अग्नि की सेवा करते हैं। जानने योग्य
स्तुओं के ज्ञाता अग्नि देवताओं के लिए यज्ञ करें और हमारी हवियों [१८]
वताओं को पहुँचावें ॥ १० ॥

े पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम् ।
ज्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया ॥ ११
ग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥ १२
ग्निर्होता गृहपतिः स राजा विश्वा वेद जनिमा जातवेदाः ।
देवानामुत यो मर्त्यानां यजिष्ठः स प्र यजतामृतावा ॥ १३
अग्ने यदद्य विशो अध्वरस्य होतः पावकशोचे वेष्ट्वं हि यज्वा ।
ऋता यजासि महिना वि यद्भूर्हव्या वह यविष्ठ या ते अद्य ॥ १४
अभि प्रयांसि सुधितानि हि ख्यो नि त्वा दधीत रोदसी यजध्यै ।
अवा नो मघवन्वाजसातावग्ने विश्वानि दुरिता तरेम ता तरेम
तवावसा तरेम ॥ १५ । १६

हे धीरता से युक्त अग्ने ! तुम क्रांतदर्शी हो। जो साधक तुम्हारी
स्तुति करते हैं, तुम उनकी रक्षा करते हुए उनका अभीष्ट सिद्ध करते हो।
जो यजमान यज्ञानुष्ठान करता हुआ हविदान करता है, उसको तुम धन और
ऐश्वर्य देते हो ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं से हमारी रक्षा करो। हे पराक्रमी
अग्नि, तुम हमको पापों से बचाओ। हमारे द्वारा दिया हुआ हव्य तुमको
प्राप्त हो। तुम्हारे द्वारा दिया हुआ सहस्रों प्रकार का सुन्दर ऐश्वर्य हम
स्तोताओं को प्राप्त हो ॥ १२ ॥ देवताओं का आह्वान करने वाले, तेजस्वी
एवं सर्वज्ञाता अग्नि हमारे घर के स्वामी हैं। वे सब प्राणियों के जानने वाले
हैं। जो अग्नि देवताओं और मनुष्यों में अत्यन्त यज्ञ करते हैं, वे सत्यवान
अग्नि सुन्दर विधिपूर्वक यज्ञ करें ॥ १३ ॥ हे पवित्र ज्वालाओं वाले ए
यज्ञ का सम्पादन करने वाले अग्ने ! इस समय यजमान जो यज्ञ-कर्म कर
है, उसकी तुम इच्छा करो, तुम देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले हो, य
इस यज्ञ में देवताओं का यज्ञ करो। हे सतत तरुण अग्ने ! तुम अ

से ही महान् हो। आज हम जो हवियाँ देते हैं, उन्हें ग्रहण करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! वेदी पर विधिपूर्वक रखे हुए हव्य-पदार्थ का अवलोकन करो। यजमान ने आकाश-पृथिवी के निमित्त यज्ञ करने के लिए तुम्हारी स्थापना की है। हे अग्ने तुम ऐश्वर्यवान् हो, रण-क्षेत्र में हमारी रक्षा करो, जिससे हम सभी दुःखों से छूट जाँय ॥ १५ ॥ [१६]

अग्ने विश्वेभिः स्वनीक देवैरूर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् ।
कुलायिनं घृतवन्तं सवित्रे यज्ञं नय यजमानाय साधु ॥ १६
इममु त्यमथर्ववदग्निं मन्थन्ति वेधसः ।
यमङ्कूयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याभ्यः ॥ १७
जनिष्वा देववीतये सर्वताता स्वस्तये ।
आ देवान् वक्ष्यमृतॉं ऋतावृधो यज्ञं देवेषु पिस्पृशः ॥ १८
वयमु त्वा गृहपते जनानामग्ने अकर्म्म समिधा बृहन्तम् ।
अस्थूरि नो गार्हपत्यानि सन्तु तिग्मेन नस्तेजसा संशिशाधि ॥ १९।२०

हे सुन्दर ज्वालाओं से युक्त अग्ने ! तुम सभी देवताओं में आगे रह कर ऊन युक्त एवं घृत युक्त उत्तर वेदी पर विराजमान होओ और हविदाता यजमान के यज्ञ को भले प्रकार देवताओं को प्राप्त कराने वाले होओ ॥ १६ ॥ कर्म-विधायक ऋत्विग्गण मेधावी अथर्वा ऋषि के समान मंथन करते हुए अग्नि को प्रकट करते थे। इधर उधर विचरणशील ज्ञानी अग्नि को रात्रि के अँधेरे में प्रदीप्त करते थे ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं की कामना करने वाले यजमान के सुख को स्थायी बनाने के लिए यज्ञ में मंथन द्वारा उत्पन्न होओ। तुम यज्ञ के बढ़ाने वाले तथा अमरधर्मा देवताओं को यज्ञ में लाओ। फिर हमारे यज्ञ को देवताओं को प्राप्त कराओ ॥ १८ ॥ हे यज्ञ की रक्षा करने वाले अग्निदेव ! प्राणियों के बीच हम अपनी समिधाओं से तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं। हमारे गार्हपत्य अग्नि पुत्र, पशु और विविध ऐश्वर्य सम्पन्न करें। तुम हमको अपने सुन्दर तेज से युक्त करो ॥ १९ ॥ [२०]

१६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता-अग्निः । छन्द—उष्णिक्, गायत्री,
त्रिष्टुप, पंक्तिः, अनुष्टुप)

ग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः । देवेभिर्मानुषे जने ॥ १
नो मन्द्राभिरध्वरे जिह्वाभिर्यजा महः । आ देवान्वक्षि यक्षि च ॥२
त्था हि वेधो अध्वनः पथश्च देवाञ्जसा । अग्ने यज्ञेषु सुक्रतो ॥ ३
वामीळे अध द्विता भरतो वाजिभिः शुनम् । ईजे यज्ञेषु यज्ञियम् ॥ ४
त्वमिमा वार्या पुरु दिवोदासाय सुन्वते । भरद्वाजाय दाशुषे ॥ ५।२१

हे अग्ने ! तुम होम सम्पादक अथवा देवताओं के बुलाने वाले हो। तुम मनु के वंशजों के द्वारा किए जाने वाले यज्ञ में देवताओं द्वारा होता बनाए गए हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम आनन्ददायक ज्वालाओं सहित हमारे यज्ञ में देवताओं की स्तुति करो। यहाँ इन्द्रादि देवों को बुलाओ और उन्हें हविरन्न प्रदान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम सुन्दर कर्म करने वाले तथा दानादि गुण से युक्त हो। तुम यज्ञ में विस्तृत और छोटे दोनों प्रकार के मार्गों के जानने वाले हो। इस मार्ग-भ्रष्ट साधक को फिर अच्छे मार्ग पर लाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! "दुष्यन्त" के पुत्र "भरत" हवि देने वाले ऋत्विजों सहित सुख के निमित्त तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे द्वारा कामनाओं की पूर्ति एवं अनिष्ट की शांति होती है, तुम यज्ञ के योग्य हो। हम स्तुति करने के पश्चात् तुम्हारा यज्ञ करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! सोम सिद्ध करने वाले "दिवोदास" को तुमने जैसे बहुत प्रकार का सुन्दर धन दिया था, वैसे ही हविदाता "भरद्वाज" को बहुसंख्यक श्रेष्ठ धन दो ॥ ५ ॥ [२१]

त्वं दूतो अमर्त्य आ वहा दैव्यं जनम् । शृण्वन्विप्रस्य सुष्टुतिम् ॥ ६
त्वामग्ने स्वाध्यो मर्तासो देववीतये । यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७
तव प्र यक्षि सन्दृशमुत क्रतुं सुदानवः । विश्वे जुषन्त कामिनः ॥ ८
त्वं होता मनुर्हितो वह्निरासा विदुष्टरः । अग्ने यक्षि दिवो विशः ।

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्य दातये ।
नि होता सत्सि बर्हिषि ॥ १० ।

हे अग्ने ! तुम अमृत्व गुण से युक्त हो। तुम दौत्य गुण से हो। विद्वान् भरद्वाज ऋषि की स्तुतियाँ सुन कर हमारे यज्ञ में देवताओं को लाओ ॥ ६ ॥ हे ज्योतिर्मान् अग्ने ! तुम्हारा चिन्तन करने वाले मनुष्य देवताओं को प्रसन्न करने वाले यज्ञ में तुम्हारी स्तुति करते हैं और तुमसे अभीष्टों की प्रार्थना करते हैं ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हम तुम्हारे तेज को भले प्रकार पूजते हैं तथा तुम्हारे श्रेष्ठ दानमय कर्म की स्तुति करते हैं। केवल हम ही नहीं, अन्य यजमान भी तुम्हारी कृपा से सफलता की कामना करते हुए यज्ञानुष्ठान में लगते हैं ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुमको मनु ने होता के कार्य में नियुक्त किया। तुम ज्वालायुक्त मुख से हवियाँ वहन करने वाले अत्यन्त मेधावी हो। तुम देवताओं के लिए यज्ञ करो ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम हवि-सेवन के लिए आओ और देवताओं के पास हवि पहुँचाने के लिए स्तुतियाँ ग्रहण करते हुए होता से कुश पर विराजमान होओ ॥ १० ॥ [२२]

तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि । बृहच्छोचा यविष्ठ्य ॥ ११
स नः पृथु श्रवाय्यमच्छा देव विवाससि । बृहदग्ने सुवीर्यम् ॥ १२
त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत । मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ १३
तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः । वृत्रहणं पुरन्दरम् ॥ १४
तमु त्वा पाथ्यो वृषा समीधे दस्युहन्तमम् ।
धनञ्जयं रणेरणे ॥ १५ । २३

हे अग्ने ! हम समिधाओं से तुम्हें बढ़ाते हैं। हे सतत तरुण अग्ने तुम अत्यन्त प्रकाश वाले होओ ॥ ११ ॥ हे ज्योतिर्मान् अग्ने ! तुम हम को विस्तृत, महान् एवं प्रशंसा के योग्य ऐश्वर्य दो ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! मूर्धा के समान संसार के धारण करने वाले तुम्हें अरणिद्वय से "अथर्वा" ऋषि ने प्रकट किया ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! "अथर्वा" के पुत्र "दध्यङ्" ऋषि ने तुम्हें प्रदीप्त किया था। तुम शत्रुओं को मारने तथा उनके नगरों को ध्वंस करने

॥ १४ ॥ हे अग्ने ! "पाय्य पुत्र" भारद्वाज ऋषि ने तुम्हें चैतन्य
। तुम राक्षसों के मारने वाले तथा धनों के जीतने वाले
॥ १५ ॥ [२१]

पु ववाग्नि तेऽग्न इत्थेतरा गिरः । एभिर्वर्धास इन्दुभिः ॥ १६
क्व च ते मनो दक्षं दधस उत्तरम् । तत्रा सदः कृणवसे ॥ १७
हि ते पूर्तमक्षिपद्भुवन्नेमानां वसो । अथा दुवो वनवसे ॥ १८
ग्निरगामि भारतो वृत्रहा पुरुचेतनः । दिवोदासस्य सत्पतिः ॥१९
स हि विश्वाति पार्थिवा रयिं दाशन्महित्वना ।
वन्वन्नवातो अस्तृतः ॥ २० । २४

हे अग्ने ! तुम यहाँ आओ । हम तुम्हारे निमित्त प्रिय स्तोत्र को कहते हैं, उसे सुनो । यहाँ आकर इन सोम-रसों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा कृपापूर्ण हृदय जिस देश तथा जिस साधक की ओर आकृष्ट होता है, वह उत्कृष्ट बल तथा अन्न का धारण करने वाला है । तुम्हारा स्थान उसी यजमान के हृदय में है ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तेज पुञ्ज नेत्र हमारे लिए संहारक नहीं है । वह हमको सदा देखने की सामर्थ्य दे । हे गृहदाता अग्ने ! तुम इन साधकों द्वारा की जाने वाली सेवा को स्वीकार करो ॥ १८ ॥ हम स्तुतियों से अग्नि को बुलाते हैं । वे अग्नि हवियों के स्वामी तथा "दिवोदास" के शत्रुओं को मारने वाले हैं । वे यजमानों की रक्षा करने वाले एवं मर्यादाता हैं ॥ १९ ॥ वे अग्नि अपनी कृपा से हमको पृथिवी पर प्राप्त होने वाले सभी धन दें । वे अपने तेज से शत्रुओं को भस्म करते हैं । उनकी हिंसा करने में कोई भी समर्थ नहीं है ॥ २० ॥ [२४]

स प्रत्नवन्नवीयसाग्ने द्युम्नेन संयता । बृहत्ततन्थ भानुना ॥ २१
प्र वः सखायो अग्नये स्तोमं यज्ञं च धृष्णुया ।
अर्च गाय च वेधसे ॥ २२
स हि यो मानुषा युगा सीदद्धोता कविक्रतुः । दूतश्च हव्यवाहनः ॥

ता राजाना शुचिव्रतादित्यान्मारुतं गणम् । वसो यक्षीह रोदसी ॥ २
वस्वी ते अग्ने सन्दृष्टिरिषयते मर्त्याय । ऊर्जो नपादमृतस्य ॥ २५।१

हे अग्ने तुम प्राचीन के समान ही नवीन तेज से इस विस्तृत अन्तरि को बढ़ाते हो ॥ २१ ॥ हे ऋत्विकों ! तुम शत्रु के संहारक और ईश्वर समान शक्तिमान अग्नि की स्तुति करते हुए हवियाँ दो ॥ २२ ॥ वे अग्नि हमारे यज्ञ में कुश पर विराजमान हों । जो अग्नि देवताओं का आह्वान कर वाले हैं, वे अत्यन्त मेधावी, यज्ञकर्म में देवताओं के दूत तथा हवियों व वहन करते हैं ॥ २५ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्तम निवास देते हो । तुम इस य में विराजमान प्रख्यात, सुन्दर कर्म वाले मित्रावरुण, मरुत् और आकार पृथिवी के निमित्त यज्ञ करो ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम अविनाशी हो । तुम्हार विस्तृत तेज यजमानों को अन्न-लाभ कराता है ॥ २५ ॥ [२५

क्त्वा दा अस्तु श्रेष्ठोऽद्य त्वा वन्वन्त्सुरेक्णाः ।
मर्त आनाश सुवृक्तिम् ॥ २
ते ते अग्ने त्वोता इषयन्तो विश्वमायुः ।
तरन्तो अर्यो अरातीर्वन्वन्तो अर्यो अरातीः ॥ २७
अग्निस्तिग्मेन शोचिषा यासद्विश्वं न्यत्रिणम् ।
अग्निर्नो वनते रयिम् ॥ २
सुवीरं रयिमा भर जातवेदो विचर्षणे । जहि रक्षांसि सुक्रतो ॥ २
त्वं नः पाह्यंहसो जातवेदो अघायतः ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्कवे ॥ ३० । २

हे अग्ने ! हविदाता तुम्हारी सेवा करते हुए आज सुन्दर कर्म से यु हों । वे सदा तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥ २६ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारी स्तु करने वाले तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं । वे सब कामना करते हुए पू आयु भोगते और अन्न-लाभ करते हैं । वे आक्रमण करने वालों को हरा और नष्ट करते हैं ॥ २७ ॥ वे अपने तीक्ष्ण तेज से सब पदार्थों का भक्ष करने में समर्थ हैं वे राक्षसों के हन्ता और हमारे लिए धनदाता हैं ॥ २८

हे अग्ने ! तुम सर्वदर्शी हो । तुम पुत्र-पौत्रों सहित सुन्दर धन को प्राप्त कराओ । वह अन्न आकाश में, देवताओं में प्रशंसित तथा सुशोभित हो ॥ ३६ ॥ हे बल के पुत्र अग्नि ! तुम्हारा तेज अत्यन्त रमणीय है । हव्य रूप अन्न सहित स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ३७ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारा तेज सुवर्ण के समान प्रकाशमान है । जैसे थका हुआ मनुष्य छाया के आश्रय में बैठता है, वैसे ही हम तुम्हारा आश्रय प्राप्त करते हैं ॥ ३८ ॥ वे अग्नि महा बलवान् धनुषधारण करने वाले पुरुष के समान बाणों से शत्रु को मारने वाले हैं । उनके तीक्ष्ण सींग बैल के समान हैं । हे अग्ने ! तुमने त्रिपुरासुर के तीनों नगर नष्ट किये हैं ॥ ३९ ॥ अरणि के मथने से प्रकट हुए अग्नि को अध्वर्यु गण पुत्र के समान धारण करते हैं, हे ऋत्विको ! उन हवि भक्षण करने वाले यज्ञ-संपादक अग्नि की सेवा करो ॥ ४० ॥ [२८]

प्र देवं देववीतये भरता वसुवित्तमम् । आ स्वे योनौ नि षीदतु ॥४१

आ जातं जातवेदसि प्रियं शिशीतातिथिम् । स्योन आ गृहपतिम् ॥४२

अग्ने युक्ष्वा हि ये तवाश्वासो देव साधवः । अरं वहन्ति मन्यवे ॥४३

अच्छा नो याह्या वहाभि प्रयांसि वीतये । आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ४४

उदग्ने भारत द्युमदजस्रेण दविद्युतत् । शोचा वि भाह्यजर ॥४५।२९

हे अध्वर्युओ ! तुम देवताओं के सेवन के लिए अग्नि में हव्य डालो । अग्नि प्रकाशवान् एवं ऐश्वर्यों के जानने वाले हैं । वे आह्वान करने योग्य स्थान पर विराजमान हों ॥ ४१ ॥ हे अध्वर्युओ ! अतिथि के समान सम्माननीय और निवास देने वाले अग्नि की सुन्दर वेदी में स्थापना करो ॥ ४२ ॥ हे अग्ने ! तुम ज्योतिर्मान् हो । अपने रथ में उन सभी सुन्दर घोड़ों को जोड़ो जो तुम्हें यज्ञ में पहुँचाते हैं ॥ ४३ ॥ हे अग्ने ! तुम हमारे सामने पधारो । हव्य भक्षण करने और सोम पीने के लिए देवताओं को लाओ ॥ ४४ ॥ हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले हो । तुम ऊपर को उठते हुए बढ़ो । तुम अजर हो । तुम अपने उत्कृष्ट तेज से प्रकाशमान् होओ । तुम चैतन्य होकर समस्त संसार को चैतन्य करो ॥ ४५ ॥ [२९]

ीति यो देवं मर्तो दुवस्येदग्निमीळीताध्वरे हविष्मान् ।
होतारं सत्ययजं रोदस्योरुत्तानहस्तो नमसा विवासेत् ॥ ४६
आ ते अग्न ऋचा हविर्हृदा तष्टं भरामसि ।
ते ते भवन्तूक्षण ऋषभासो वशा उत ॥ ४७
अग्निं देवासो अग्रियमिन्धते वृत्रहन्तमम् ।
येना वसून्याभृता तृळ्हा रक्षांसि वाजिना ॥ ४८ । ३०

जो हविर्वान् यजमान अपनी हवियों से जिस किसी देवता की उपासना करता है, उस यज्ञ में अग्नि की पूजा होती है। वे आकाश-पृथिवी में व्याप्त देवताओं के बुलाने वाले और सत्यरूप हवियों से यजनीय हैं। यजमान इस अग्नि की नमस्कार पूर्वक सेवा करते हैं ॥ ४६ ॥ हे अग्ने! हम सुन्दर रूप से तैयार हव्य तुम्हें देते हैं। वह हव्य सामर्थ्य वाले बैल के और गौ के दुग्ध में परिवर्तित होवे ॥ ४७ ॥ जिस पराक्रमी अग्नि ने यज्ञ में बाधा देने वाले राक्षसों को मारा, जिस अग्नि ने दुष्टों के धन को छीन लिया, उस वृत्र का संहार करने वाले अग्नि को मेधावी जन चैतन्य करते हैं ॥४८॥ [१०]

१७ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

पिबा सोममभि यमुग्र तर्द ऊर्वं गव्यं महि गृणान इन्द्र ।
वि यो धृष्णो वधिषो वज्रहस्त विश्वा वृत्रममित्रिया शवोभिः ॥ १
स ईं पाहि य ऋजीषी तरुत्रो यः शिप्रवान् वृषभो यो मतीनाम् ।
यो गोत्रभिद्वज्रभृद्यो हरिष्ठाः स इन्द्र चित्राँ अभि तृन्धि वाजान् ।
एवा पाहि प्रत्नथा मन्दतु त्वा श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः ।
आविः सूर्यं कृणुहि पीपिहीषो जहि शत्रूँरभि गा इन्द्र तृन्धि ॥
ते त्वा मदा बृहदिन्द्र स्वधाव इमे पीता उक्षयन्त द्युमन्तम्
महामनूनं तवसं विभूतिं मत्सरासो जर्हृषन्त प्रसाहम् ॥

येभिः सूर्यमुषसं मन्दसानोऽवासयोऽप दृळ्हानि दर्द्रत् ।
महामद्रिं परि गा इन्द्र सन्तं नुत्था अच्युतं सदसस्परि स्वात् ॥ ५ । १

हे पराक्रमी इन्द्र ! अंगिरा द्वारा स्तुत होकर तुमने सोम पीने के लिए पणियों द्वारा चुराई गईं गायों को खोज निकाला । हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! तुमने अपने पराक्रम से सब शत्रुओं का हनन किया है । तुम सोम-पान करो ॥ १ ॥ हे सोमपाये ! तुम शत्रुओं से रक्षा करने वाले हो । स्तुति करने वाले के अभीष्ट को पूर्ण करने वाले हो । हे इन्द्र ! तुम पर्वतों को तोड़ने वाले तथा घोड़ों को जोड़ने वाले हो । तुम हमारे लिए अद्भुत धन प्रकट करो और सोम-पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने पूर्वकाल में सोमरस पिया था, उसी प्रकार हमारे सोम-रस को भी पिओ । यह रस तुम्हें हृष्ट बनावे । तुम हमारी स्तुतियों को सुनते हुए वृद्धि को प्राप्त होओ । हमको अन्न प्राप्त कराने के लिए सूर्य को प्रकट करो । हमारे शत्रुओं का संहार करो और पणियों द्वारा चुराई गईं गौओं को प्रकट करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम अन्नवान् एवं तेजस्वी हो । यह पान किया हुआ सोमरस तुम्हें हृष्ट करे । तुम अत्यन्त गुणी वृद्ध तथा महान् हो । हमारे शत्रुओं को हराओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र सोमरस से हृष्टि को प्राप्त कर तुमने अन्धकार को मिटाया और सूर्य तथा उषा को अपने-अपने स्थान पर नियुक्त किया । तुमने अविचल पर्वत को ध्वस्त किया । उस पर्वत में पणियों द्वारा चुराई गई गौऐं उपस्थित थीं ॥ ५ ॥ [१]

तव क्रत्वा तव तद्दंसनाभिरामासु पक्वं शच्या नि दीधः ।
और्णोर्दुर उस्रियाभ्यो वि दृळ्होदूर्वाद् गा असृजो अङ्गिरस्वान् ॥ ६
पप्राथ क्षां महि दंसो व्युर्वीमुप द्यामृष्वो बृहदिन्द्र स्तभायः ।
अधारयो रोदसी देवपुत्रे प्रत्ने मातरा यह्वी ऋतस्य ॥ ७
अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय ।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र ॥ ८
अध द्यौश्चित्ते अप सा नु वज्राद् द्वितानमद्भियसा स्वस्य मन्योः ।
अहिं यदिन्द्रो अभ्योहसानं नि चिद्विश्वायुः शयथे जघान ॥ ९

अध त्वष्टा ते मह उग्र वज्रं सहस्रभृष्टिं ववृतच्छताश्रिम् ।
निकाममरमणसं येन नवन्तमहिं सं पिणगृजीषिन् ॥ १० । २

- हे इन्द्र ! तुमने अपनी प्रज्ञा, कर्म और पराक्रम से गौओं को दुग्धवती बनाया । तुमने गौओं के निकलने को शिलाओं को हटाया । अंगिराओं से मिल कर गौओं को मुक्त कराया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने कर्म से विस्तृत पृथिवी को परिपूर्ण किया । तुम महान् हो । तुमने दिव्य लोक को गिरने से बचाने के लिए धारण किया है । तुमने पालन करने के लिए आकाश पृथिवी को धारण किया है । उन आकाश-पृथिवी के देवता पुत्र हैं । वे यज्ञ कर्म करने वाले तथा महत्ववती हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र वृत्रासुर से युद्ध करने जब देवता चले तब सभी देवताओं ने मिलकर तुम्हें ही नेता बनाया । तुमने मरुद्गण को युद्ध में सहायता दी थी । तुम अत्यन्त पराक्रमी हो ॥ ८ ॥ मधुर वज्र वाले इन्द्र ने आक्रमणकारी वृत्र को जब मारा तब उसके क्रोध और वज्र से भयभीत स्वर्ग भी सन्न रह गया ॥ ९ ॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! त्वष्टा ने तुम्हारे भी गांठ तथा सहस्रधार वाले वज्र को बनाया था । हे सोम पायी इन्द्र ! उसी वज्र से तुमने वृत्र को मारा था ॥ १० ॥ [२]

वर्धान्यं विश्वे मरुतः सजोषाः पचच्छतं महिषाँ इन्द्र तुभ्यम् ।
पूषा विष्णुस्त्रीणि सरांसि धावन्वृत्रहणं मदिरमंशुमस्मै ॥ ११
आ क्षोदो महि वृतं नदीनां परिष्ठितमसृज ऊर्मिमपाम् ।
तासामनु प्रवत इन्द्र पन्थां प्रार्दयो नीचीरपसः समुद्रम् ॥ १२
एवा ता विश्वा चकृवांसमिन्द्रं महामुग्रमजुर्यं सहोदाम् ।
सुवीरं त्वा स्वायुधं सुवज्रमा ब्रह्म नव्यमवसे ववृत्यात् ॥ १३
स नो वाजाय श्रवस इषे च राये धेहि द्युमत इन्द्र विप्रान् ।
भरद्वाजे नृवत इन्द्र सूरीन्दिवि च स्मैधि पार्ये न इन्द्र ॥ १४
अया वाजं देवहितं सनेम मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १५ । ३

हे इन्द्र ! मरुद्गण तुम्हें अपने स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं और तुम्हारे पूषा तथा विष्णु सौ महिष प्रस्तुत करते हैं । तीन पात्रों को पूर्ण करने के

सोम गिरता है । सोम पीकर इन्द्र वृत्र का नाश करने में समर्थ होते हैं ॥११॥ हे इन्द्र ! तुमने वृत्र द्वारा रोकी गई नदियों के जल को छोड़ा जिससे वे बहने लगीं । तुमने उन नदियों को नीचे मार्ग की ओर प्रवाहित कर जल की तरङ्गों को उन्मुक्त किया । फिर तुमने उस वेगवान् जल को समुद्र में मिलाया ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुम ऐसे सभी कार्यों के कर्त्ता, ओजस्वी, अजर, बलों के देने वाले, ऐश्वर्यवान् एवं वज्रधारी हो । हमारा अभिनव स्तोत्र तुम्हें हमारी रक्षा के निमित्त बढ़ावे ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त पुष्टि, बल, अन्न और ऐश्वर्य धारण करो । हम ज्ञानी हैं । हमको सेवकों से युक्त करो । तुम स्तुति करने वाले पुत्रों, पौत्रों को प्राप्त कराओ । हे इन्द्र ! आगामी दिनों में हमारी रक्षा करना ॥ १४ ॥ हम इस स्तुति को करते हुए इन्द्र से अन्न-लाभ करें । हम सुन्दर पुत्र-पौत्रों से युक्त हुए सौ वर्ष तक सुख भोग करें ॥१५॥ [३]

१८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्तिः, उष्णिक्)

तमु ष्टुहि यो अभिभूत्योजा वन्वन्नवातः पुरुहूत इन्द्रः ।
अषाळ्हमुग्रं सहमानमाभिर्गीर्भिर्वर्ध वृषभं चर्षणीनाम् ॥ १
स युध्मः सत्वा खजकृत्समद्वा तुविम्रक्षो नदनुमाँ ऋजीषी ।
बृहद्रेणुश्च्यवनो मानुषीणामेकः कृष्टीनामभवत्सहावा ॥ २
त्वं ह नु त्यददमायो दस्यूँरेकः कृष्टीरवनोरार्याय ।
अस्ति स्विन्नु वीर्यं तत्त इन्द्र न स्विदस्ति तदृतुथा वि वोचः ॥३
सदिद्धि ते तुविजातस्य मन्ये सहः सहिष्ठ तुरतस्तुरस्य ।
उग्रमुग्रस्य तवसस्तवीयोऽरध्रस्य रध्रतुरो बभूव ॥ ४
तन्नः प्रत्नं सख्यमस्तु युष्मे इत्था वदद्भिर्वलमङ्गिरोभिः ।
हन्नच्युतच्युद्दस्मेषयन्तमृणोः पुरो वि दुरो अस्य विश्वाः ॥ ५ । ४

हे भरद्वाज ! तुम तेजस्वी, शत्रु नाशक, बहुतों द्वारा बुलाए गए इन्द्र स्तुति करो । तुम इन स्तोत्रों से मनुष्यों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले

नगरों को नष्ट करने और शत्रुओं के हनन करने के लिए तुरंत उद्यत होते हैं। हे इन्द्र ! तुमने राक्षसों को नष्ट किया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का हनन करने वाले हो। तुम प्रशंसनीय बल वाले अपने रथ पर शत्रु-नाश के लिए चढ़ते हो। तुम अपने दाहिने हाथ में वज्र धारते हो। हे इन्द्र ! तुम प्रचुर धन से युक्त हो। दुष्टों की माया को दूर करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जैसे अग्नि को जलाते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं को नष्ट करो। तुम वज्र के समान भयंकर हो। तुम राक्षसों को जलाओ। इन्द्र ने वज्र से शत्रुओं को चीर डाला। इन्द्र युद्ध में गर्जन करते हुए सभी संकटों को दूर करते हैं ॥ १० ॥ [५]

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२
अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ १३
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४
अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ । ६

हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गये हो। कोई भी दुष्ट तुम्हें बलहीन नहीं बना सकता। तुम ऐश्वर्य से युक्त होकर असंख्य वाहनों द्वारा हमारे सामने आओ ॥ ११ ॥ अत्यन्त यश और धन वाले, शत्रु-हन्ता तथा प्रवृद्ध इन्द्र की महिमा आकाश और पृथिवी से भी बढ़ी हुई है। शत्रुओं के हराने वाले मेधावी इन्द्र अजातशत्रु हैं, उनका प्रतिद्वन्द्वी कोई भी नहीं है ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" से "कुत्स" की तथा शत्रुओं से "आयु" और "दिवोदास" की रक्षा की। तुमने "शम्बर" के पास से "अतिथिग्व" को

बहुत धन दिलाया। हे इन्द्र ! तुमने यज्ञ में "शम्बर" का वध किया और पृथिवी पर रहने वाले, शीघ्र चलने वाले "दिवोदास" की संकटों से रक्षा की ॥ १३ ॥ हे ज्योतिर्मान् इन्द्र ! सभी स्तोता मेघ को नष्ट करने के लिए तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम सभी विद्वानों में श्रेष्ठ हो। स्तुति करने वालों की स्तुति से प्रसन्न होकर तुम दरिद्रता से दुखी यजमानों और उनकी संतान को सुखी करो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! आकाश-पृथिवी और स्वर्ग तुम्हारी शक्ति को स्वीकार करते हैं। हे इन्द्र ! तुम यज्ञादि कर्मों को अनुष्ठित करो और उसके पश्चात् यज्ञ में अभिनव स्तोत्र को प्रकट करो ॥१५॥ [९]

१९ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता–इन्द्रः। छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानाम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ । ७

स्तुति करने वाले मनुष्यों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र आवें। दोनों लोकों पर अपना पराक्रम फैलाने वाले एवं शत्रुओं द्वारा अहिंसित इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं। वे प्रशंसनीय कर्मों से युक्त तथा यजमानों के जानने वाले हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उत्पन्न होते ही बढ़ते हैं। हमारी स्तुति दान के लिए इन्द्र को आकर्षित करती है। इन्द्र अजर, महान्, युवा, गमनशील तथा शत्रुओं से न हारने वाले बल से बढ़े हुए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अन्न देने के लिए हमारे सामने अपने अत्यन्त दानशील हाथों को लाओ। तुम शान्त चित्त

नगरों को नष्ट करने और शत्रुओं के हनन करने के लिए तुरंत उद्यत होते हैं। हे इन्द्र ! तुमने राक्षसों को नष्ट किया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं का हनन करने वाले हो। तुम प्रशंसनीय बल वाले अपने रथ पर शत्रु-नाश के लिए चढ़ते हो। तुम अपने दाहिने हाथ में वज्र धारते हो। हे इन्द्र ! तुम प्रचुर धन से युक्त हो। दुष्टों की माया को दूर करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जैसे अग्नि को जलाते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं को नष्ट करो। तुम वज्र के समान भयंकर हो। तुम राक्षसों को जलाओ। इन्द्र ने वज्र से शत्रुओं को चीर डाला। इन्द्र युद्ध में गर्जन करते हुए सभी संकटों को दूर करते हैं ॥ १० ॥ [५]

आ सहस्रं पथिभिरिन्द्र राया तुविद्युम्न तुविवाजेभिरर्वाक् ।
याहि सूनो सहसो यस्य नू चिददेव ईशे पुरुहूत योतोः ॥ ११
प्र तुविद्युम्नस्य स्थविरस्य घृष्वेर्दिवो ररप्शे महिमा पृथिव्याः ।
नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति न प्रतिष्ठिः पुरुमायस्य सह्योः ॥ १२
प्र तत्ते अद्या करणं कृतं भूत्कुत्सं यदायुमतिथिग्वमस्मै ।
पुरू सहस्रा नि शिशा अभि क्षामुत्तूर्वयाणं धृषता निनेथ ॥ १३
अनु त्वाहिघ्ने अध देव देवा मदन्विश्वे कवितमं कवीनाम् ।
करो यत्र वरिवो बाधिताय दिवे जनाय तन्वे गृणानः ॥ १४
अनु द्यावापृथिवी तत्त ओजोऽमर्त्या जिहत इन्द्र देवाः ।
कृष्वा कृत्नो अकृतं यत्ते अस्त्युक्थं नवीयो जनयस्व यज्ञैः ॥ १५ । ६

हे इन्द्र ! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गये हो। कोई भी दुष्ट तुम्हें बलहीन नहीं बना सकता। तुम ऐश्वर्य से युक्त होकर असंख्य वाहनों द्वारा हमारे सामने आओ ॥ ११ ॥ अत्यन्त यश और धन वाले, शत्रु-हन्ता तथा प्रवृद्ध इन्द्र की महिमा आकाश और पृथिवी से भी बढ़ी हुई है। शत्रुओं के हराने वाले मेधावी इन्द्र अजातशत्रु हैं, उनका प्रतिद्वन्दी कोई भी नहीं है ॥१२॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" से "कुत्स" की तथा शत्रुओं से "आयु" और "दिवोदास" की रक्षा की। तुमने "शम्बर" के पास से "अतिथिग्व" को

बहुत धन दिलाया। हे इन्द्र ! तुमने यज्ञ से "शम्बर" का वध किया और पृथिवी पर रहने वाले, शीघ्र चलने वाले "दिवोदास" की संकटों से रक्षा की ॥ १३ ॥ हे ज्योतिर्मान् इन्द्र ! सभी स्तोता मेघ को नष्ट करने के लिए तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम सभी विद्वानों में श्रेष्ठ हो। स्तुति करने वालों की स्तुति से प्रसन्न होकर तुम दरिद्रता से दुःखी यजमानों और उनकी संतान को सुखी करो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! आकाश-पृथिवी और स्वर्ग तुम्हारी शक्ति को स्वीकार करते हैं। हे इन्द्र ! तुम यज्ञादि कर्मों को अनुष्ठित करो और उसके पश्चात् यज्ञ में अभिनव स्तोत्र को प्रकट करो ॥१५॥ [६]

१६ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता—इन्द्रः । छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

महाँ इन्द्रो नृवदा चर्षणिप्रा उत द्विबर्हा अमिनः सहोभिः ।
अस्मद्र्यग्वावृधे वीर्यायोरुः पृथुः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥ १
इन्द्रमेव धिषणा सातये धाद् बृहन्तमृष्वमजरं युवानाम् ।
अषाळ्हेन शवसा शूशुवांसं सद्यश्चिद्यो वावृधे असामि ॥२
पृथू करस्ना बहुला गभस्ती अस्मद्र्यक्सं मिमीहि श्रवांसि ।
यूथेव पश्वः पशुपा दमूना अस्माँ इन्द्राभ्या ववृत्स्वाजौ ॥ ३
तं व इन्द्रं चतिनमस्य शाकैरिह नूनं वाजयन्तो हुवेम ।
यथा चित्पूर्वे जरितार आसुरनेद्या अनवद्या अरिष्टाः ॥ ४
धृतव्रतो धनदाः सोमवृद्धः स हि वामस्य वसुनः पुरुक्षुः ।
सं जग्मिरे पथ्या रायो अस्मिन्त्समुद्रे न सिन्धवो यादमानाः ॥ ५ । ७

स्तुति करने वाले मनुष्यों की कामनाओं के पूर्ण करने वाले इन्द्र आवें। दोनों लोकों पर अपना पराक्रम फैलाने वाले एवं शत्रुओं द्वारा अहिंसित इन्द्र प्रवृद्ध होते हैं। वे प्रशंसनीय कर्मों से युक्त तथा यजमानों के जानने वाले हैं ॥ १ ॥ इन्द्र उत्पन्न होते ही बढ़ते हैं। हमारी स्तुति दान के लिए इन्द्र को आकर्षित करती है। इन्द्र अजर, महान्, युवा, गमनशील तथा शत्रुओं से न हारने वाले बल से बढ़े हुए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अन्न देने के लिए हमारे सामने अपने अत्यन्त दानशील हाथों को लाओ। तुम शान्त चित्त

वाले हो । जैसे पशु-स्वामी अपने पशुओं को चलाता है, वैसे ही तुम रण-क्षेत्र में हमको चलाओ ॥ ३ ॥ हम अन्नों की कामना वाले स्तोता इस यज्ञ में सहायक मरुद्गण के साथ शत्रु-संहारक इंद्र की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राचीन कालीन स्तुति करने वालों के समान हम भी पाप से रहित अहिंसित तथा अनिन्द्य हों ॥ ४ ॥ जैसे बहती हुई नदियाँ समुद्र में गिरती हैं, वैसे ही स्तोताओं का अन्न इन्द्र की ओर बढ़ता है। वे इन्द्र धनों के स्वामी, कर्मवान् तथा सोम-रस से पुष्ट होने वाले हैं ॥ ५ ॥ [७]

शविष्ठं न आ भर शूर शव ओजिष्ठमोजो अभिभूत उग्रम् ।
विश्वा द्युम्ना वृष्ण्या मानुषाणामस्मभ्यं दा हरिवो मादयध्यै ॥ ६
यस्ते मदः पृतनाषाळमृध्र इन्द्र तं न आ भर शूशुवांसम् ।
येन तोकस्य तनयस्य सातौ मंसीमहि जिगीवांसस्त्वोताः ॥ ७
आ नो भर वृषणं शुष्ममिन्द्र धनस्पृतं शूशुवांसं सुदक्षम् ।
येन वंसाम पृतनासु शत्रून्तवोतिभिरुत जामीँरजामीन् ॥ ८
आ ते शुष्मो वृषभ एतु पश्चादोत्तरादधरादा पुरस्तात् ।
आ विश्वतो अभि समेत्वर्वाङिन्द्र द्युम्नं स्वर्वद्धेह्यस्मे ॥ ९
नृवत्त इन्द्र नृतमाभिरूती वंसीमहि वामं श्रोमतेभिः ।
ईक्षे हि वस्व उभयस्य राजन्धा रत्नं महि स्थूरं बृहन्तम् ॥ १०
मरुत्वन्तं वृषभं वावृधानमकवारिं दिव्यं शासमिन्द्रम् ।
विश्वासाहमवसे नूतनायोग्रं सहोदामिह तं हुवेम ॥ ११
जनं वज्रिन्महि चिन्मन्यमानमेभ्यो नृभ्यो रन्धया येष्वस्मि ।
अधा हि त्वा पृथिव्यां शूरसातौ हवामहे तनये गोष्वप्सु ॥ १२
वयं त एभिः पुरुहूत सख्यैः शत्रोः शत्रोरुत्तर इत्स्याम ।
घ्नन्तो वृत्राण्युभयानि शूर राया मदेम बृहता त्वोताः ॥ १३ । ८

हे इन्द्र ! हमको श्रेष्ठ बल प्रदान करो। तुम हमको अत्यन्त ते दो। तुम शत्रुओं के हराने वाले हो। हे अश्ववान् इन्द्र ! तुम हमको वीर्यवा तेज से युक्त तथा मनुष्यों के उपभोग्य ऐश्वर्य दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तु

इनको शत्रुओं को वश में करने वाला धन दो। हम तुम्हारे रक्षा-साधनों से विजय प्राप्त करें। पुत्र-पौत्र की प्राप्ति के लिए तुम्हारी रक्षा में हम तुम्हारी स्तुति करें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! हमको कामनाओं का पूरक मैत्र्यादि से युक्त धन दो। धन की रक्षा करने वाला, बड़ा हुआ और सुन्दर बल दो। हे इन्द्र! तुम्हारे रक्षा-साधन से हम युद्धस्थल में उग्र बल से ही शत्रुओं का संहार करें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारा कामना-पूरक बल चारों दिशाओं से हमारी ओर आवे। वह प्रत्येक दिशा से हमारे पास आवे। तुम हमको हर प्रकार का श्रेष्ठ धन दो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे आश्रय में हम सेवकों युक्त, सुनने योग्य यश वाले धन का उपभोग करते हैं। हे इन्द्र! तुम दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी हो। तुम हमको महान् धन दो ॥ १० ॥ अभिनव रक्षा के लिए हम इस यज्ञ में इन्द्र को बुलाते हैं, जो मरुद्गण के साथ सम्पन्न बलवान्, तेजस्वी, अभीष्टवर्षी, समृद्ध, विकराल एवं शासन करने वाले हैं ॥ ११ ॥ हे वज्रिन्! हम जिन मनुष्यों में रहते हैं, उन सबसे अपने को महान् समझने वाले को तुम अपने वश में करो। हम युद्ध-काल में पशु, पुत्र और अन्न की प्राप्ति के लिए तुम्हें आहूत करते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। हम इन स्तोत्र रूप मित्रता-कार्य के द्वारा तुम्हारी सहायता से शत्रुओं को मारें और उनसे बलवान बनें। हे इन्द्र! तुम पराक्रमी हो, हम तुम्हारे आश्रय में सम्पन्न धन-लाभ कर सुखी हों ॥ १३ ॥ [८]

२० सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द-अनुष्टुप्, पंक्ति
त्रिष्टुप्)

द्यौर्न य इन्द्राभि भूमार्यस्तस्थौ रयिः शवसा पृत्सु जनान् ।
तं नः सहस्रभरमुर्वरासां दद्धि सूनो सहसो वृत्रतुरम् ॥ १
दिवो न तुभ्यमन्विन्द्र सत्रासुर्यं देवेभिर्धायि विश्वम् ।
अहिं यद्वृत्रमपो वव्रिवांसं हन्नृजीषिन्विष्णुना सचानः ॥२
तूर्वन्नोजीयान्तवसस्तवीयान्कृतब्रह्मेन्द्रो वृद्धमहाः ।
राजाभवन्मधुनः सोम्यस्य विश्वासां यत्पुरां दर्त्नुमावत् ॥ ३

शतैरपद्रन्पणय इन्द्रात्र दशोणये कवयेऽर्कसातौ ।
वधैः शुष्णस्याशुषस्य मायाः पित्वो नारिरेचीत्किं चन प्र ॥ ४
महो द्रुहो अप विश्वायु धायि वज्रस्य यत्पतने पादि शुष्णः ।
उरु ष सरथं सारथये करिन्द्रः कुत्साय सूर्यस्य सातौ ॥ ५ । ९

हे इन्द्र ! जैसे सूर्य अपने प्रकाश से पृथिवी को भर देते हैं, वैसे ही तुम शत्रुओं पर छा जाने वाला पुत्र और ऐश्वर्य दो। वह पुत्र असंख्य धन वाला, उर्वरा भूमि का स्वामी तथा शत्रुओं का नाश करने वाला हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले ने सूर्य के समान बल अपने स्तोत्र द्वारा तुमको भेंट किया था। हे सोमपाये ! तुमने विष्णु से मिलकर जलों के रोकने वाले वृत्र को मारा था ॥ २ ॥ जब इन्द्र ने भी सभी पुरियों को ध्वस्त करने वाले वज्र को पाया था, तब वे मधुर सोम-रस के प्राप्त करने वाले हुए थे। वे इन्द्र हिंसा करने वालों के हिंसक, पराक्रमी, अन्नदाता, अत्यन्त ओजस्वी तथा बढ़े हुए तेज से युक्त हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में बहुत अन्न देने वाले तुम्हारे सहायक "कुत्स" से डर कर सौ सेनाओं सहित पणि भाग गया। तुमने "शुष्ण" की माया को अस्त्रों से छिन्न भिन्न कर उसके सम्पूर्ण अन्न को छीन लिया ॥ ४ ॥ वज्र की मार से गिर कर "शुष्ण" मर गया। उस समय उस द्रोही शुष्ण का सभी बल नष्ट होगया था। इन्द्र ने सूर्य की उपासना के लिए अपने सारथि रूप "कुत्स" को रथ बढ़ाने के लिए कहा ॥ ५ ॥ [९]

प्र श्येनो न मदिरमंशुमस्मै शिरो दासस्य नमुचेर्मथायन् ।
प्रावन्नमीं साप्यं ससन्तं पृणग्राया समिषा सं स्वस्ति ॥६
वि पिप्रोरहिमायस्य दृळ्हाः पुरो वज्रिञ्छवसा न दर्दः ।
सुदामन्तद्रेक्णो अप्रमृष्यमृजिश्वने दात्रं दाशुषे दाः ॥ ७
स वेतसुं दशमायं दशोणिं तूतुजिमिन्द्रः स्वभिष्टिसुम्नः ।
आ तुग्रं शश्वदिभं द्योतनाय मातुर्न सीमुप सृजा इयध्यै ॥ ८
स ईं स्पृधो वनते अप्रतीतो बिभ्रद्वज्रं वृत्रहणं गभस्तौ ।
तिष्ठद्धरी अध्यस्तेव गर्ते वचोयुजा वहत इन्द्रमृष्वम् ॥ ९

सनेम तेऽवसा नव्य इन्द्र प्र पूरवः स्तवन्त एना यज्ञैः ।
सप्त यत्पुरः शर्म शारदीर्दर्द्धन्दासीः पुरुकुत्साय शिक्षन् ॥ १०
त्वं वृध इन्द्र पूर्व्यो भूर्वरिवस्यन्नुशने काव्याय ।
परा नववास्त्वमनुदेयं महे पित्रे ददाथ स्वं नपातम् ॥ ११
त्वं धुनिरिन्द्र धुनिमतीरृणोरपः सीरा न स्रवन्तीः ।
प्र यत्समुद्रमति शूर पर्षि पारया तुर्वशं यदुं स्वस्ति ॥ १२
तव ह त्यदिन्द्र विश्वमाजौ सस्तो धुनीचुमुरी या ह सिष्वप् ।
दीदयदित्तुभ्यं सोमेभिः सुन्वन्दभीतिरिध्मभृतिः पक्थ्यर्कैः ॥ १३ । २०

इन्द्र ने जीवों की रक्षा के लिए "नमुचि" के मस्तक को चूर चूर कर दिया और "सप्य" के पुत्र "निद्रित" नामी ऋषि की रक्षा करते हुए उन्हें पशु, धन तथा अन्नवान् बनाया। उस समय श्येन पक्षी उनको हृष्ट बनाने वाले सोम को लेकर आया ॥ ६ ॥ हे वज्रिन् ! तुमने मायावी "पिप्रु" के दृढ़ दुर्गों को तोड़ डाला। हे सुन्दर दान वाले, तुमने हवि रूप अन्न प्रदान करने वाले ऋजिश्वा को धन दिया था ॥ ७ ॥ सुन्दर सुख देने वाले इन्द्र ने अनेक असुरों को "द्योतन" के पास सदा आने के लिए ऐसे ही वश में किया, जैसे माता के पास जाने के लिए पुत्र वश में रहते हैं ॥ ८ ॥ शत्रुओं द्वारा न हारने वाले इन्द्र अपने हाथ में शत्रुओं के मारने वाले अस्त्रों को धारण कर वृत्रादि का नाश करते हैं। जैसे वीर पुरुष रथ पर चढ़ता है, वैसे ही वे अपने घोड़ों पर चढ़ते हैं। वे हमारी वाणी से पूजित हुए घोड़े इन्द्र को यहाँ लावें ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हम उपासकगण तुम्हारे आश्रय में अभिनव धन की प्राप्ति के लिए उपासना करते हैं। स्तोतागण यज्ञों को करते हुए स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! तुमने शारदासुर की सात पुरियों को वज्र से चूर्ण कर दिया ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! धन की कामना करते हुए उशना के निमित्त तुम कल्याणकारी हुए थे। तुमने नववास्त्व नामक राक्षस को मारा था और सामर्थ्यवान् उशना के सामने उसके देवपुत्र को उपस्थित किया था ॥११॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं को कम्पायमान करते हो। तुमने निरुद्ध जल को प्रवाहमान बनाया। हे वीर पुरुष ! जब समुद्र

लाँघने में सफल होते हो, तब समुद्र के पार रहने वाले "तुर्वश" और "यदु" को समुद्र के पार लगाते हो ॥१२॥ हे इन्द्र ! युद्ध में यह सब कार्य तुम्हारे ही वश के हैं। तुमने ही "धुनी" और "चुमुरी" नामक दो असुरों को मारा। हे इन्द्र ! हव्य परिपक्व करने वाले, सोमाभिष करने वाले, समिधावान् राजर्षि "दभीति" ने हव्य से तुम्हें बढ़ाया ॥ १३ ॥ [१०]

२१ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, बृहती)

इमा उ त्वा पुरुतमस्य कारोर्हव्यं वीर हव्या हवन्ते ।
धियो रथेष्ठामजरं नवीयो रयिर्विभूतिरीयते वचस्या ॥ १
तमु स्तुप इन्द्रं यो विदानो गिर्वाहसं गीर्भिर्यज्ञवृद्धम् ।
यस्य दिवमति मह्ना पृथिव्याः पुरुमायस्य रिरिचे महित्वम् ॥ २
स इत्तमोऽवयुनं ततन्वत्सूर्येण वयुनवच्चकार ।
कदा ते मर्ता अमृतस्य धामेयक्षन्तो न मिनन्ति स्वधावः ॥ ३
यस्ता चकार स कुह स्विदिन्द्रः कमा जनं चरति कासु विक्षु ।
कस्ते यज्ञो मनसे शं वराय को अर्क इन्द्र कतमः स होता ॥ ४
इदा हि ते वेविषतः पुराजाः प्रत्नास आसुः पुरुकृत्सखायः ।
ये मध्यमास उत नूतनास उतावमस्य पुरुहूत बोधि ॥ ५ । ११

हे पराक्रमी इन्द्र ! बहुत कामना वाले भरद्वाज की सुन्दर स्तुतियाँ तुम्हें बुलाती हैं। तुम रथवान्, अजर एवं अभिनव रूप वाले हो। हविरन्न तुम्हारा अनुगमन करते हैं ॥ १ ॥ सर्व ज्ञाता, स्तुतियों द्वारा प्राप्य, यज्ञ द्वारा बढ़ने वाले इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। वे अत्यन्त मेधावी इन्द्र आकाश और पृथिवी की महिमा से भी अधिक महान् हैं ॥ २ ॥ इन्द्र ने ही वृत्र द्वारा फैलाए गए अन्धकार को सूर्य के तेज से नष्ट किया। हे पराक्रमी इन्द्र ! तुम कभी भी नाश को प्राप्त नहीं होते। मनुष्य तुम्हारे स्थान की सदा कामना करते हैं। वे मनुष्य सदा अहिंसक रहते हैं ॥ ३ ॥ जिन इन्द्र ने वृत्रादि राक्षसों के हनन जैसे प्रसिद्ध कार्य किए हैं, वे इस समय कहाँ हैं?

सहायक रहा है ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुति करने वालों के पालक हो। तुम हम स्तोताओं की प्रार्थना को शीघ्र श्रवण करो। हम वर्तमान कालीन स्तोता अभिनव स्तोत्र की इच्छा करते हैं। हे इन्द्र ! तुम सुन्दर आह्वान वाले होकर प्राचीन अंगिराओं के मित्र हुए थे। अब हमारी स्तुति भी श्रवण करो ॥ ८ ॥ हे भरद्वाज ! हमारी अभीष्ट पूर्ति एवं रक्षा के निमित्त वरुण, मित्र, इन्द्र, मरुत्, पूषा, विष्णु, अग्नि, सविता, वनस्पतियों के देवता और पर्वतों की स्तुति करो ॥ ६ ॥ हे अत्यन्त-पराक्रमी इन्द्र ! यह स्तोता उपासना के योग्य स्तोत्रों से तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे अविनाशी, तुम मेरी स्तुति को श्रवण करो, क्योंकि तुम्हारे समान अन्य कोई देवता नहीं है ॥ १० ॥ हे सर्वज्ञ इन्द्र ! तुम सब देवताओं सहित मेरे स्तुति योग्य स्तोत्र के सामने आओ। जो देव अग्नि की जिह्वा रूप हैं, जो यज्ञ में हव्य सेवन करते हैं, जिन्होंने शत्रुओं का नाश करने के लिए राजर्षि मनु को सर्वोपरि बनाया, तुम उन्हीं के साथ यहाँ आओ ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी तथा मार्ग नियत करने वाले हो। तुम सुखपूर्वक जाने योग्य मार्ग में एवं दुर्गम मार्ग में भी हमारे अग्रणी बनो। तुम अपने महान् एवं श्रम रहित घोड़ों के द्वारा हमारे लिए अन्न लेकर आओ ॥ १२ ॥ [१२]

२२ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः ।
यः पत्यते वृषभो वृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान् ॥ १
तमु नः पूर्वे पितरो नवग्वाः सप्त विप्रासो अभि वाजयन्तः ।
नक्षद्दाभं ततुरिं पर्वतेष्ठामद्रोघवाचं मतिभिः शविष्ठम् ॥ २
तमीमह इन्द्रमस्य रायः पुरुवीरस्य नृवतः पुरुक्षोः ।
यो अस्कृधोयु रजरः स्वर्वान्तमा भर हरिवो मादयध्यै ॥३
तन्नो वि वोचो यदि ते पुरा चिज्जरितार आनशुः सुम्नमिन्द्र ।
कस्ते भागः किं वयो दुध्र खिद्वः पुरुहूत पुरूवसोऽसुरघ्नः ॥ ४

तं पृच्छन्ती वज्रहस्तं रथेष्ठामिन्द्रं वेपी वक्वरी यस्य नू गीः ।
तुविग्राभं तुविकूर्मिं रभोदां गातुमिषे नक्षते तुम्रमच्छ ॥ ५ ॥ १३

मनुष्यों पर विजय पाने पर एक मात्र इन्द्र आह्वान करने के योग्य हैं, वे स्तुति करने वाले के पास जाते हैं। जो कामनाओं के वर्षक, पराक्रमी, बहुत विद्वान, सत्यवक्ता एवं शत्रुओं को पीड़ित करने वाले हैं, हम उन इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ नौ महीने के यज्ञानुष्ठान के करने वाले, प्राचीन हमारे अंगिरा आदि एवं सात ऋषियों ने इन्द्र को पराक्रमी और शत्रुनाशक बताते हुए उनकी स्तुति की थी। वे इन्द्र शत्रुओं के हननकर्त्ता, पर्वतभेदक एवं सभी पर शासन करने वाले हैं ॥ २ ॥ हम बहुत से पुत्र-पौत्रों, बांधवों, सेवकों और पशुओं के साथ सुखदायक धन की इन्द्र से याचना करते हैं। हे अश्वों के स्वामी इन्द्र! तुम हमको सुखी करने के लिए वह ऐश्वर्य लेकर यहाँ आओ ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! जिस सुख को प्राचीन स्तोताओं ने प्राप्त किया था, उसी सुख को हमें दो। हे शत्रुओं के विजेता, शत्रुओं द्वारा बुलाये गये, पराक्रमी, ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम दुष्ट राक्षसों का संहार करने में समर्थ हो। तुम्हारे निमित्त यज्ञ में कौन-सा हव्यभाग प्राप्त हुआ है? ॥ ४ ॥ यज्ञादि कर्मों से युक्त तथा गुणगाथा पूर्वक स्तुति करने वाले यजमान वज्रधारी एवं रथारूढ़ इन्द्र की पूजा करते हैं। वे इन्द्र शत्रुओं को ताड़ना देते हैं। वे बहुकर्मा एवं बल प्रदान करने वाले हैं। उनका स्तोता सुख प्राप्त करता एवं शत्रु के सामने वीरता पूर्वक डट जाता है ॥ ५ ॥
[११]

अया ह त्यं मायया वावृधानं मनोजुवा स्वतवः पर्वतेन ।
अच्युता चिद्वीळिता स्वोजो रुजो वि दृळ्हा धृषता विरप्शिन् ॥ ६
तं वो धिया नव्यस्या शविष्ठं प्रत्नं प्रत्नवत्परितंसयध्यै ।
स नो वक्षदनिमानः सुवह्मेन्द्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ ७
आ जनाय द्रुह्वणे पार्थिवानि दिव्यानि दीपयोऽन्तरिक्षा ।
तपा वृषन्विश्वतः शोचिषा तान्ब्रह्मद्विषे शोचय क्षामपश्च ॥ ८
भुवो जनस्य दिव्यस्य राजा पार्थिवस्य जगतस्त्वेषसंदृक् ।

चिष्व वज्रं दक्षिण इन्द्र हस्ते विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः ॥ ९
आ संयतमिन्द्र णः स्वस्ति शत्रुतूर्याय बृहतीममृध्राम् ।
यया दासान्यार्याणि वृत्रा करो वज्रिन्त्सुतुका नाहुषाणि ॥ १०
स नो नियुद्भिः पुरुहूत वेधो विश्ववाराभिरा गहि प्रयज्यो ।
न या अदेवो वरते न देव आभिर्याहि तूयमा मद्र्यद्रिक् ॥ ११ । १४

हे इन्द्र ! तुम अपने बल से बलवान् हो । तुमने मन के वेग के समान जाने वाले और असंख्य गाँठों वाले वज्र से उस माया द्वारा बढ़े हुए वृत्र को मार डाला । हे सुन्दर तेज वाले इन्द्र ! तुमने असुरों की सुन्दर सुदृढ़ पुरियों को ध्वस्त किया ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम प्राचीन कालीन ऋषियों के समान ही अभिनव स्तोत्रों द्वारा तुम्हें बढ़ाते हैं । तुम पुरातन एवं अत्यन्त पराक्रमी हो । वे सुन्दर रूप वाले इन्द्र हमारे रक्षक हों ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम सज्जनों से वैर करने वाले दुष्टों के लिए आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को तीक्ष्ण तेज से भर देते हो । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले एवं अपने तेज से सर्वत्र व्याप्त हो उन दुष्टों को भस्मसात् करो ॥ ८ ॥ हे अत्यन्त तेजस्वी दिखाई पड़ने वाले इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव ऐश्वर्यों के स्वामी हो । तुम अत्यन्त पूजनीय हो । अपने दाहिने हाथ में वज्र ग्रहण कर राक्षसों की माया को छिन्न-भिन्न करते हो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमको महान्, अहिंसित और सुख देने वाला ऐश्वर्य दो, जिससे शत्रुओं का सामर्थ्य बढ़ने न पावे । हे वज्रिन् ! जिस कर्म-साधन से तुमने अकर्मण्यों को कर्मों में लगाया उसी साधन से मनुष्यों के शत्रुओं को मारे जाने योग्य बनाते हो ॥१०॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पूजनीय एवं बहुतों के द्वारा बुलाए गए हो । तुम सभी के द्वारा कामना किए जाने वाले घोड़ों के द्वारा हमारे पास आओ । जिन घोड़ों की गति को देवता या राक्षस कोई भी नहीं रोक सकता, उन घोड़ों के साथ शीघ्र ही हमारे सामने पधारो ॥ ११ ॥ [१४]

२३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

सुत इत्त्वं निमिश्ल इन्द्र सोमे स्तोमे ब्रह्मणि शस्यमान उक्थे ।

यद्वा युक्ताभ्यां मघवन्हरिभ्यां बिभ्रद्वज्रं बाह्वोरिन्द्र यासि ॥ १
यद्वा दिवि पार्ये सुष्विमिन्द्र वृत्रहत्येऽवसि शूरसातौ ।
यद्वा दक्षस्य बिभ्युषो अबिभ्यदरन्धयः शर्धत इन्द्र दस्यून् ॥ २
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं प्रणेनीरुग्रो जरितारमूती ।
कर्ता वीराय सुष्वय उ लोकं दाता वसु स्तुवते कीरये चित् ॥ ३
गन्तेयान्ति सवना हरिभ्यां बभ्रिर्वज्रं पपिः सोमं ददिर्गाः ।
कर्ता वीरं नर्यं सर्ववीरं श्रोता हवं गृणतः स्तोमवाहाः ॥ ४
अस्मै वयं यद्वावान तद्विविष्म इन्द्राय यो नः प्रदिवो अपस्कः ।
सुते सोमे स्तुमसि शंसदुक्थेन्द्राय ब्रह्म वर्धनं यथासत् ॥ ५ । १५

हे इन्द्र ! सोम के सुसिद्ध होने पर और महान स्तोत्र के उच्चारित किए जाने पर तथा शास्त्र सम्मत विधि द्वारा आहूत होने पर तुम अपने रथ में घोड़ों को जोड़ते हो। हे ऐश्वर्यशालिन् ! तुम अपने दो घोड़ों से युक्त रथ पर दोनों हाथों में वज्र लेकर आते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तुति करने वाले यजमान के साथी होकर उसकी रक्षा करते हो और भय रहित होकर धर्मवान् तथा भयग्रस्त यजमान के कार्य में विघ्न उपस्थित करने वाले राक्षसों को पराजित करते हो ॥ २ ॥ इन्द्र सिद्ध सोम रस को पीते हैं। वे स्तुति करने वाले को सुगम मार्ग प्राप्त कराते हैं। वे सोमाभिषव करने वाले को सुन्दर निवास स्थान देते हैं। वे स्तोता को धन देते हैं ॥ ३ ॥ वे इन्द्र अपने दोनों घोड़ों सहित तीनों सवनों में आते हैं। वे वज्र के धारण करने वाले हैं। वे सुसिद्ध सोम को पीते हैं। वे गौओं का दान करने वाले को पुत्र देते और स्तोत्र करने वाले के स्तोत्र को सुनते हैं ॥ ४ ॥ जो प्राचीन इन्द्र हमारे रक्षण कार्यों को करते हैं, उन्हीं इन्द्र के इच्छित स्तोत्र को हम उच्चारित करते हैं। सोम सिद्ध होने पर हम इन्द्र की स्तुति करते हैं। स्तोत्र उच्चारण करते हुए साधक उनको प्रवृद्ध करने के लिए हवियाँ देते हैं ॥ ५ ॥ [१५]

ब्रह्माणि हि चकृषे वर्धनानि तावत्त इन्द्र मतिभिर्विविष्म ।
सुते सोमे सुतपाः शन्तमानि रान्द्या क्रियास्म वक्षणानि यज्ञैः ॥ ६

स नो वोधि पुरोळाशं रराणः पिबा तु सोमं गोऋजीकमिन्द्र ।
एदं वर्हिर्यजमानस्य सीदोरुं कृधि त्वायत उं लोकम् ॥ ७
स मन्दस्वा ह्यनु जोषमुग्र प्र त्वा यज्ञास इमे अश्नुवन्तु ।
प्रेमे हवासः पुरुहूतमस्मे आ त्वेयं धीरवस इन्द्र यम्याः ॥ ८
तं व सखायः सं यथा सुतेषु सोमेभिरीं पृणता भोजमिन्द्रम् ।
कुवित्तस्मा असति नो भराय न सुष्विमिन्द्रोऽवसे मृधाति ॥ ९
एवेदिन्द्रः सुते अस्तावि सोमे भरद्वाजेषु क्षयदिन्मघोनः ।
असद्यथा जरित्र उत सूरिरिन्द्रो रायो विश्ववारस्य दाता ॥ १०।१९

हे इन्द्र ! जिस उद्देश्य से तुमने स्तोत्रों को वढ़ाया है, उसी उद्देश्य से, वैसे ही स्तोत्रों का उच्चारण हम तुम्हारे लिए करते हैं। हे सोमपायी इन्द्र ! तुम्हारे लिए सोम छन कर तैयार होने पर सुन्दर, सुख देने वाले हवियुक्त स्तोत्रों को उच्चारित करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रसन्न होते हुए हमारे पुरोडास को ग्रहण करो। दही आदि मिश्रित सोम का पान करो। यजमान के कुश पर विराजमान होओ। फिर जो यजमान तुम्हारी कामना करता है, उसके स्थान को वढ़ाओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपनी इच्छानुसार हृष्टि को प्राप्त होओ। यह सोम तुम्हें प्राप्त हो। तुम वहुतों द्वारा वुलाए गए हो। हमारे स्तोत्र तुम्हारे समक्ष पहुँचें। यह स्तुति हमारी रक्षा के लिए तुम्हें प्रेरित करें ॥ ८ ॥ हे स्तुति करने वालो ! सोम सिद्ध होने पर धनदाता इन्द्र को परिपूर्ण करो। यह सोम वहुत परिमाण में इनको अर्पित करो। वह इन्द्र हमको पुष्ट करें और हमारी सन्तुष्टि में वाधक न हों ॥ ९ ॥ सोम छनने पर हविरन्न युक्त यजमान के स्वामी इन्द्र स्तुति करने वाले के लिए श्रेष्ठ मार्ग दिखाने वाले तथा वरणीय धनों के देने वाले हैं, यह जान कर भरद्वाज ने स्तुति की है ॥ १० ॥ [१९]

२४ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–भरद्वाजो वार्हस्पत्यः। देवता–इन्द्रः। छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्, बृहती)

वृषा मद इन्द्रे श्लोक उक्था सचा सोमेषु सुतपा ऋजीषी ।

अर्चत्र्यो मघवा नृभ्य उक्थैर्द्युक्षो राजा गिरामक्षितोतिः ॥ १
ततुरिर्वीरो नर्यो विचेताः श्रोता हवं गृणत उर्व्यूतिः ।
वसुः शंसो नरां कारुधाया वाजी स्तुतो विदथे दाति वाजम् ॥ २
अक्षो न चक्र्योः शूर बृहन्प्र ते मह्ना रिरिचे रोदस्योः ।
वृक्षस्य नु ते पुरुहूत वया व्यूतयो रुरुहुरिन्द्र पूर्वीः ॥ ३
शचीवतस्ते पुरुशाक शाका गवामिव स्रुतयः संचरणीः ।
वत्सानां न तन्तयस्त इन्द्र दामन्वन्तो अदामानः सुदामन् ॥ ४
अन्यदद्य कर्वरमन्यदु श्वोऽसच्च सन्मुहुराचक्रिरिन्द्रः ।
मित्रो नो अत्र वरुणश्च पूषार्यो वशस्य पर्येतास्ति ॥ ५ । १७

सोमपान में इन्द्र का सोम जनित हर्ष यजमान की इच्छाओं को पूर्ण करे। वे इन्द्र स्तोताओं की स्तुति में पूजे जाते तथा वे स्वर्ग के स्वामी इन्द्र रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ वे शत्रुओं की हिंसा करने वाले, बुद्धिमान, पराक्रमी इन्द्र हमारे स्तोताओं के रक्षक, वर देने वाले, प्रशंसित और अन्न प्रदान करने वाले हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! पहियों की धुरी के समान तुम्हारी महिमा आकाश-पृथिवी को स्थिर करती है। तुम बहुतों द्वारा बुलाए गए हो। तुम्हारे रक्षा-साधन वृक्षों की शाखाओं के समान बढ़ते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो। तुम्हारे कर्म गौओं के मार्ग के समान विस्तृत हैं। हे सुन्दर कर्म वाले इन्द्र ! तुम्हारी शक्ति बछड़ों की रस्सी के समान वैरियों को बाँधती है ॥ ४ ॥ इन्द्र अगोचर अद्भुत कार्य करते हैं। वे सत्यासत्य कार्यों को बारम्बार देखते हैं। इन्द्र, मित्र, वरुण, पूषा और सवितादेव इस यज्ञ में हमारी कामनाएं पूर्ण करें ॥ ५ ॥ [१०]

वि त्वदापो न पर्वतस्य पृष्ठादुक्थेभिरिन्द्रानयन्त यज्ञैः ।
तं त्वाभिः सुष्टुतिभिर्वाजयन्त आजिं न जग्मुर्गिर्वाहो अश्वाः ॥ ६
न यं जरन्ति शरदो न मासा न द्याव इन्द्रमवकर्शयन्ति ।
वृद्धस्य चिद्वर्धतामस्य तनूः स्तोमेभिरुक्थैश्च शस्यमाना ॥ ७
न वीळ्वे नमते न स्थिराय न शर्धते दस्युजूताय स्तवान् ।

अज्रा इन्द्रस्य गिरयश्चिहृष्वा गम्भीरे चिद्भवति गाधमस्मै ॥ ८
गम्भीरेण न उरुणामत्रिन्प्रेषो यन्धि सुतपावन्वाजान् ।
स्था ऊ षु ऊर्ध्व ऊती अरिषण्यन्नक्तोर्व्युष्टौ परितक्म्यायाम् ॥ ९
सचस्व नायमवसे अभीक इतो वा तमिन्द्र पाहि रिषः ।
अमा चैनमरण्ये पाहि रिषो मदेम शतहिमाः सुवीराः ॥ १० । १८

हे इन्द्र ! स्तोत्र और हव्य द्वारा स्तोतागण तुमसे अभीष्ट पाते हैं, जैसे पर्वत के ऊँचे भाग से जल प्राप्त होता है। हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों द्वारा पूजनीय हो। जैसे घोड़े वेग से रणक्षेत्र में जाते हैं, वैसे भरद्वाज आदि अन्नाभिलाषी तुम्हारे पास जाते हैं ॥ ६ ॥ जिस इन्द्र को वर्ष और महीने बूढ़ा नहीं बना सकते, दिन जिसे दुर्बल नहीं कर सकते, उस सशक्त इन्द्र का शरीर हमारे स्तोत्रों से पूजित होकर बढ़े ॥ ७ ॥ हम इन्द्र की स्तुति के प्रभाव से दुष्टों के चंगुल में नहीं फँस पाते। इन्द्र के लिए बड़े-बड़े पर्वत भी तुच्छ हैं और अगाध स्थान भी उनके लिए नगण्य हैं ॥ ८ ॥ हे पराक्रमी एवं सोमपायी इन्द्र ! तुम उदार हृदय वाले हो। हमको अन्न और बल दो। तुम हमारी रक्षा के लिए दिन में तथा रात में भी तैयार रहो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में स्तोता की रक्षा के लिए उस पर कृपा करो। पास से या दूर से, जहाँ भी हो, वहीं से उसकी रक्षा करो। घर या जङ्गल में उसे सर्वत्र शत्रुओं से बचाओ। हम सुन्दर पुत्रादि से युक्त होकर सौ वर्ष तक सुख-पूर्वक जीवन यापन करें ॥ १० ॥ [१८]

२५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—इन्द्रः। छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

या त ऊतिरवमा या परमा या मध्यमेन्द्र शुष्मिन्नस्ति ।
ताभिरू षु वृत्रहत्येऽवीर्न एभिश्च वाजैर्महान्न उग्र ॥ १
आभिः स्पृधो मिथतीररिषण्यन्नमित्रस्य व्यथया मन्युमिन्द्र ।
आभिर्विश्वा अभियुजो विषूचीरार्याय विशोऽव तारीर्दासीः ॥ २
इन्द्र जामय उत येऽजामयोऽर्वाचीनासो वनुषो युयुज्रे ।

ां विथुरा शवांसि जहि वृष्ण्यानि कृणुही पराचः ॥ ३
ो वा शूरं वनते शरीरैस्तनूरुचा तरुषि यत्कृण्वैते ।
के वा गोषु तनये यदप्सु वि क्रन्दसी उर्वरासु ब्रवैते ॥ ४
हि त्वा शूरो न तुरो न धृष्णुर्न त्वा योधो मन्यमानो युयोध ।
न्द्र नकिष्ट्वा प्रत्यस्त्येषां विश्वा जातान्यभ्यसि तानि ॥ ५ । १९

हे इन्द्र ! तुम रणक्षेत्र में उत्तम, मध्यम और लघु रक्षाओं से हमारी सब प्रकार रक्षा करो । हे इन्द्र ! तुम महान् हो । हमको उपभोग्य अन्न से युक्त करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों के द्वारा शत्रु-सेना को मारने वाली हमारी सेनाओं की रक्षा करते हुए शत्रु के आक्रमण को निष्फल करो । यज्ञादि कार्य करने वाले मनुष्यों के कर्मों में विघ्न डालने वालों को नष्ट करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! पास या दूर से जो शत्रु हमारे सामने आकर हिंसा करना चाहते हैं, उन शत्रुओं को अपने बल से नष्ट करो । इनके पराक्रम को नष्ट कर इन्हें भगा दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारा कृपापात्र पुरुष वीर शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ होता है । ये दोनों पक्ष वाले संतान, गाय, जल और उपजाऊ पृथिवी के लिए संग्राम करते हैं ॥ ४ ॥ हे इंद्र ! तुम्हारे साथ युद्ध कर सकने की सामर्थ्य किसी में नहीं है चाहे वह कैसा ही शत्रुओं का सामना करने वाला, विजय प्राप्त करने वाला योद्धा क्यों न हो । हे इन्द्र ! इनमें तुम्हारा प्रतिद्वन्द्वी कोई नहीं है । तुम इनमें सर्वश्रेष्ठ हो ॥५॥ [१९]

स पत्यत उभयोर्नृम्णमयोर्यदी वेधसः समिथे हवन्ते ।
वृत्रे वा महो नृवति क्षये वा व्यचस्वन्ता यदि वितन्तसैते ॥ ६
अध स्मा ते चर्षणयो यदेजानिन्द्र त्रातोत भवा वरूता ।
अस्माकासो ये नृतमासो अर्य इन्द्र सूरयो दधिरे पुरो नः ॥ ७
अनु ते दायि मह इन्द्रियाय सत्रा ते विश्वमनु वृत्रहत्ये ।
अनु क्षत्रमनु सहो यजत्रेन्द्र देवेभिरनु ते नृषह्ये ॥ ८
एवा नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः ।
॥२ विद्याम वस्तोरवसा गृणन्तो भरद्वाजा उत त इन्द्र नूनम् ॥ ९ । २०

जो व्यक्ति शत्रुओं के रोकने को; अथवा दासों से युक्त श्रेष्ठ घर के निमित्त परस्पर लड़ते हैं, उन दोनों में वही व्यक्ति धन पाता है, जिसके यज्ञ में ऋत्विग्गण इन्द्र के लिए यज्ञ करते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोता जब कांपने लगें तभी तुम उनको रक्षा करो । हे इन्द्र ! हमारे जो श्रेष्ठ व्यक्ति तुम्हें प्राप्त करने वाले हों तुम उन्हें दुःख से बचाओ । हे इन्द्र ! जिन स्तुति करने वालों ने हमको पुरोभाग में स्थापित किया, तुम उनकी रक्षा करने वाले बनो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम महान् हो । शत्रुओं को मारने के लिए सभी शक्ति तुम में केन्द्रित हुई है । हे इन्द्र ! देवताओं ने तुम्हें शत्रुओं के हराने वाला तथा संसार का धारण करने वाला बल दिया है ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! इस प्रकार स्तुति की जाने पर तुम युद्ध में शत्रुओं का वध करने के लिए हमको उत्साहित करो । हिंसा करने वाली राक्षसी-सेना को तुम हमारे निमित्त वशीभूत करो । हे इन्द्र ! हम तुम्हारे स्तोता भरद्वाज अन्न युक्त गृह प्राप्त करें ॥ ९ ॥ [२०]

२६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द-पंक्ति, त्रिष्टुप्)

श्रुधी न इन्द्र ह्वयामसि त्वा महो वाजस्य सातौ वावृषाणाः ।
सं यद्विशोऽयन्त शूरसाता उग्रं नोऽवः पार्ये अहन्दाः ॥ १
त्वां वाजी हवते वाजिनेयो महो वाजस्य गध्यस्य सातौ ।
त्वां वृत्रेष्विन्द्र सत्पतिं तरुत्रं त्वां चष्टे मुष्टिहा गोषु युध्यन् ॥ २
त्वं कविं चोदयोऽर्कसातौ त्वं कुत्साय शुष्णं दाशुषे वर्क् ।
त्वं शिरो अमर्मणः पराहन्नतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥ ३
त्वं रथं प्र भरो योधमृष्वमावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम् ।
त्वं तुग्रं वेतसवे सचाहन्त्वं तुजिं गृणन्तमिन्द्र तूतोः ॥ ४
त्वं तदुक्थमिन्द्र बर्हणा कः प्र यच्छता सहस्रा शूर दर्षि ।
अव गिरेर्दासं शम्बरं हन्प्रावो दिवोदासं चित्राभिरूती ॥ ५ । २१

हे इन्द्र ! अन्न लाभ के लिए हम स्तुति करने वाले तुम्हें सोम-रस

से सींचते हुए, तुम्हारा आह्वान करते हैं। तुम हमारे आह्वान को सुनो। जब वीरगण युद्ध के लिए जाँय, तब तुम उनकी भले प्रकार रक्षा करना ॥ १ ॥ हे इन्द्र! महान् अन्न की प्राप्ति के लिए अन्नवान् होकर भरद्वाज तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र! तुम सज्जनों के रक्षक और दुष्टों के मारने वाले हो। भरद्वाज तुम्हारा आह्वान करते हैं। ये मुष्टिका द्वारा ही शत्रुओं का नाश कर देते हैं। जब ये गौओं के लिए संग्राम करते हैं, तब तुम्हारे भरोसे रहते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! अन्न प्राप्ति के लिए तुम "भार्गव ऋषि" को प्रेरणा दो। हविदाता "कुत्स" के निमित्त तुमने "शुष्णासुर" को मारा था। तुमने "अतिथिग्व" को सुख देने के लिए "शम्बरासुर" का सिर काट डाला था, वह अपने को अमर समझता था ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुमने "वृषभ" नामक राजा को युद्ध साधक रथ दिया। जब वे दस दिनों तक शत्रुओं से युद्ध करते रहे, तब तुमने उनकी रक्षा की थी। "वेतस" के सहायक होकर तुमने "तुग्रासुर" का वध किया था। तुमने स्तुति करने वाले "तुजि" राजा को समृद्ध किया था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र! तुम शत्रु-संहारक हो। तुमने प्रशंसनीय कार्यों का संपादन किया है। हे वीर इन्द्र! तुमने सौ-सौ और हजार-हजार "शम्बर" की सेनाओं को चीर डाला। तुमने यज्ञादि के हिंसक "शम्बरासुर" का हनन किया और अद्भुत रक्षा से तुमने "दिवोदास" की रक्षा की ॥५॥ [२१]

त्वं श्रद्धाभिर्मन्दसानः सोमैर्दभीतये चुमुरिमिन्द्र सिष्वप् ।
त्वं रजिं पिठीनसे दशस्यन्षष्टिं सहस्रा शच्या सचाहन् ॥ ६
अहं चन तत्सूरिभिरानश्यां तव ज्याय इन्द्र सुम्नमोजः ।
त्वया यत्स्तवन्ते सधवीर वीरास्त्रिवरूथेन नहुषा शविष्ठ ॥ ७
वयं ते अस्यामिन्द्र द्युम्नहूतौ सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः ।
प्रातर्दनिः क्षत्रश्रीरस्तु श्रेष्ठो घने वृत्राणां सनये धनानाम् ॥ ८ ।२२

हे इन्द्र! श्रद्धा पूर्वक किये गए अनुष्ठान कर्मों द्वारा सोम रस से मुदित होकर तुमने "दभीति" राजा के निमित्त "चुमुरि" का संहार किया। हे इन्द्र! तुमने "पिठीनस" को "रजि" नामक कन्या दी थी। तुमने अपनी बुद्धि से साठ सहस्र वीरों को एक समय में ही नष्ट किया था ॥ ६ ॥ हे वीरों

के साथी इन्द्र ! तुम तीनों लोकों के रक्षक और शत्रुओं के विजेता हो। स्तुति करने वाले तुम्हारे द्वारा दिए गए सुख और वल की याचना करते हैं। हे इन्द्र ! हम भरद्वाज तुम्हारे द्वारा दिए गए श्रेष्ठ सुख और वल को अपने स्तुति करने वालों के साथ पावें ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे मित्र रूप स्तुति करने वाले हैं। धन-लाभ के लिए किए गए इन स्तोत्रों से हम तुम्हारे प्रीति-पात्र हों। "प्रातर्दन" के पुत्र "क्षत्रश्री" शत्रुओं का हनन कर तथा धन प्राप्त कर सब से अधिक ऐश्वर्यवान् वनें ॥ ८ ॥ [२२]

२७ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो वार्हस्पत्यः । देवता–इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप, उष्णिक्)

किमस्य मदे किम्वस्य पीताविन्द्रः किमस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि किं ते अस्य पुरा विविद्रे किमु नूतनासः ॥ १
सदस्य मदे सद्वस्य पीताविन्द्रः सदस्य सख्ये चकार ।
रणा वा ये निषदि सत्ते अस्य पुरा विविद्रे सदु नूतनासः ॥ २
नहि नु ते महिमनः समस्य न मघवन् मघवत्त्वस्य विद्म ।
न राधसो राधसो नूतनस्येन्द्र नकिर्ददृश इन्द्रियं ते ॥ ३
एतत्त्यत्त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः ।
वज्रस्य यत्ते निहतस्य शुष्मात्स्वनाच्चिदिन्द्र परमो ददार ॥ ४
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषोऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन् ।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन्पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त् ॥ ५।२३

सोम से पुष्ट होकर इन्द्र ने क्या किया ? सोम-पान करके और सोम-रस से मैत्री करके उन्होंने क्या किया ? प्राचीन और नवीन स्तोताओं ने तुमसे क्या पाया ? ॥ १ ॥ सोम पान से पुष्ट होकर इन्द्र ने सुन्दर कर्मों को किया था। सोम-पान के पश्चात् उन्होंने श्रेष्ठ कार्य किया। सोम से मैत्री होने पर शुभ कर्म किया। हे इन्द्र ! प्राचीन और नवीन स्तोताओं ने तुमसे श्रेष्ठ

कर्मों को प्राप्त किया था ॥ २ ॥ हे ऐश्वर्य सम्पन्न इन्द्र ! तुम्हारे समान अन्य किसी की महिमा का हमको ज्ञान नहीं । तुम्हारे समान वैभव और धन को भी हम नहीं जानते । हे इन्द्र ! तुम्हारे जितनी सामर्थ्य कोई भी प्रदर्शित नहीं कर सकता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने जिस पराक्रम से "वरशिख" नामक राक्षस के पुत्रों को मारा था, तुम्हारे उस पराक्रम को क्या हम नहीं जानते ? हे इन्द्र ! बल पूर्वक उद्यत तुम्हारे वज्र के घोर शब्द से ही बलवान "वरशिख" के पुत्र विदीर्ण होगए ॥ ४ ॥ इन्द्र ने राजा "चायमान" के पुत्र "अभ्यवर्ती" को इच्छित धन प्रदान करते हुए "वरशिख" के पुत्रों को मार डाला । "हरियूपिया" नगरी के मध्य स्थित "वरशिख" के वंशज "वृचीवान्" के पुत्रों को इन्द्र ने मारा । तब "वरशिख" के पुत्र मारे गए थे ॥ ५ ॥ [२३]

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या ।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन् ॥ ६
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा ।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद्वृचीवतो दैववाताय शिक्षन् ॥ ७
द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमन्तो मघवा मह्यं सम्राट् ।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम् ॥ ८ । २४

हे इन्द्र ! तुम बहुत मनुष्यों द्वारा आहूत हो । तुम्हें युद्ध में पराजित कर अन्न-यश प्राप्त करने की आशा वाले, यज्ञ-पात्रों के तोड़ने वाले तथा कवच धारण करने वाले "वरशिख" के एक सौ तीस पुत्र आक्रमण करते हुए एक साथ ही नाश को प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ जिनके अश्व आकाश-पृथिवी के बीच चलते हैं, वे इन्द्र "सृञ्जय" राजा के आगे "तुर्वश" राजा को समर्पित करते हैं । उन्होंने "देववात वंशीय" राजा "अभ्यवर्ती" के निकट "वरशिख" के पुत्रों को वश में कर लिया था ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अत्यन्त धन दान करने वाले, राजसूय यज्ञकर्ता "चायमान" के पुत्र "अभ्यवर्ती" ने हमें दासियों सहित रथ और बीस गौएँ प्रदान कीं । पृथु-वंशीय राजा अभ्यवर्ती को हम दक्षिणा का कोई विनाश नहीं कर सकता ॥ ८ ॥ [२४]

२८ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–गावः, गाव इन्द्रो वा । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्)

आ गावो अग्मन्नुत भद्रमक्रन्त्सीदन्तु गोष्ठे रणयन्त्वस्मे ।
प्रजावतीः पुरुरूपा इह स्युरिन्द्राय पूर्वीरुषसो दुहानाः ॥ १
इन्द्रो यज्वने पृणते च शिक्षत्युपेद्ददाति न स्वं मुषायति ।
भूयोभूयो रयिमिदस्य वर्धयन्नभिन्ने खिल्ये नि दधाति देवयुम् ॥ २
न ता नशन्ति न दभाति तस्करो नासामामित्रो व्यथिरा दधर्षति ।
देवांश्च याभिर्यजते ददाति च ज्योगित्ताभिः सचते गोपतिः सह ॥ ३
न ता अर्वा रेणुककाटो अश्नुते न संस्कृतत्रमुप यन्ति ता अभि ।
उरुगायमभयं तस्य ता अनु गावो मर्तस्य वि चरन्ति यज्वनः ॥ ४
गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् गावः सोमस्य प्रथमस्य भक्षः ।
इमा या गावः स जनास इन्द्र इच्छामीद्धृदा मनसा चिदिन्द्रम् ॥ ५
यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु ॥ ६
प्रजावतीः सूयवसं रिशन्तीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ।
मा वः स्तेन ईशत माघशंसः परि वो हेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ७
उपेदमुपपर्चनमासु गोषूप पृच्यताम् ।
उप ऋषभस्य रेतस्युपेन्द्र तव वीर्ये ॥ ८ । २५

गौएं हमारे गृह में आकर हमारा मङ्गल करें। वे हमारे गोष्ठ में प्रवेश करती हुई प्रसन्न हों। इस गोष्ठ में विभिन्न रङ्ग की गौएं सन्तानवती होकर इन्द्र के लिए उषाकाल में दूध दें ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम यज्ञकर्त्ता और स्तोता को आशा किया हुआ धन देते हो। तुम उनको सदा धन देते और उनके अपने धन को कभी नहीं लेते हो। वे इन्द्र लगातार धन-वृद्धि करते हैं और अपनी कामना करने वालों को शत्रुओं द्वारा न मार सकने

योग्य स्थान में आश्रय देते हैं ॥ २ ॥ हमारी गौएं नष्ट न हों। उन्हें चोर न चुरावें। शत्रुओं के हथियार उन पर न गिरें। गौओं के स्वामी जिन गौओं को इन्द्र के निमित्त देते हैं, उन गौओं सहित वे चिरकाल तक सुखी रहें ॥ ३ ॥ युद्ध के लिए आए अश्व उन गौओं न पा सकें। यज्ञ करने वाले यजमान की गौएं स्वाधीनता से घूमती रहें ॥ ४ ॥ गौएं हमारे लिए धन रूप हों। इन्द्र हमको गौएं दें। गौएं हवियों में प्रमुख सोम रूप भोजन दें। गौएं ही इन्द्र रूप होता है, जिन्हें श्रद्धा सहित हम चाहते हैं ॥ ५ ॥ हे गौओ! हमको पुष्ट करो। तुम हमारे कृश और रोगी शरीर को सुन्दर बनाओ। तुम कल्याणमय शब्द करने वाली हो, हमारे घर को कल्याणकारी बनाओ। हे गौओं! यज्ञ मण्डप में तुम्हारा महान् यश ही यश प्राप्त कराता है ॥ ६ ॥ हे गौओं! तुम संतानवती होओ। सुन्दर घास खाओ और सुख-प्राप्य तालाब आदि का स्वच्छ जल पीओ। तुम्हारा स्वामी चोर न हो! हिंसक तुम्हारा शासन न करें। परमात्मा का काल रूप वज्र तुमसे दूर ही रहे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारे बल के लिए गौओं की पुष्टि स्वीकार हो और गौओं में गर्भ धारण करने वाले बैलों का बल स्वीकार हो ॥ ८ ॥ [२१]

२६ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्)

इन्द्रं वो नरः सख्याय सेपुर्महो यन्तः सुमतये चकानाः।
महो हि दाता वज्रहस्तो अस्ति महामु रण्वमवसे यजध्वम् ॥ १
आ यस्मिन्हस्ते नर्या मिमिक्षुरा रथे हिरण्यये रथेष्ठाः।
आ रश्मयो गभस्त्योः स्थूरयोराध्वन्नश्वासो वृषणो युजानाः ॥ २
श्रियं ते पादा दुव आ मिमिक्षुर्धृष्णुर्वज्री शवसा दक्षिणावान्।
वसानो अत्कं सुरभिं दृशे कं स्वर्ण नृतविषिरो बभूथ ॥ ३
स सोम आमिश्लतमः सुतो भूद्यस्मिन्पक्तिः पच्यते सन्ति धानाः।
इन्द्रं नरः स्तुवन्तो ब्रह्मकारा उक्था शंसन्तो देववाततमाः ॥ ४

न ते अन्तः शवसो धाय्यस्य वि तु वावधे रोदसी महित्वा ।
आ ता सूरिः पृणाति तूतुजानो यूथेवाप्सु समीजमान ऊती ॥ ५
एवेदिन्द्रः सुहव ऋष्वो अस्तूती अनूती हिरिशिप्रः सत्वा ।
एवा हि जातो असमात्योजाः पुरू च वृत्रा हनति नि दस्यून् ॥ ६ । १

हे मनुष्यो ! तुम्हारे ऋत्विग्गण मैत्री-भाव से इन्द्र की सेवा करते हैं । वे श्रेष्ठ स्तोत्रों का उच्चारण करते हैं । उनकी बुद्धि सुन्दर तथा उदार हैं, क्योंकि हाथ में वज्र धारण करने वाले इन्द्र महान् धन देते हैं, इसलिए रक्षा के निमित्त उन महान् इन्द्र का पूजन करो ॥ १ ॥ जिस इन्द्र के द्वारा मनुष्यों का हित करने वाला धन एकत्र है, जो इन्द्र स्वर्ण रथ पर आरूढ़ होते हैं, जिनके हाथों में रश्मियाँ नियमित रहती हैं, जिन्हें सेचन समर्थ अश्व रथ में जुड़ कर वहन करते हैं, उन इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए भरद्वाज तुम्हारे चरणों में अपनी सेवा भेंट करते हैं । तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं को हराते हो और वज्रधारण करते हो । तुम्हीं श्रोताओं को धन प्रदान करने वाले हो । हे सब में प्रमुख इन्द्र ! तुम सब के दर्शन के लिए सुन्दर और सदा चलने योग्य रूप धारण करके सूर्य के समान घूमते हो ॥ ३ ॥ अभिषुत होने पर सोम को भले प्रकार मिश्रित किया गया है, उसके तैयार होने पर पकाने योग्य पुरोडाश का पाक किया जाता है । भुने हुए जौ हव्य के लिए तैयार होते हैं । हवि रूप अन्न के तैयार करने वाले ऋत्विग्गण स्तोत्रों से इन्द्र की स्तुति करते हैं । वे स्तोत्र-उच्चारण करते हुए इन्द्र का सामीप्य प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे बल का पार नहीं पाया जाता । आकाश और पृथिवी उस महान् बल से डर जाती हैं । जैसे गौओं का पालने वाला जल से गौओं को तृप्त करता है, वैसे ही स्तुति करने वाली तृप्तिदायक हवियों द्वारा हम विधिवत् यज्ञ करते हुए तुम्हें तृप्त करते हैं ॥ ५ ॥ वे हरी नासिका वाले महान् इन्द्र इस प्रकार सुख से आहूत किये जा सकते हैं । इन्द्र स्वयं पधारें या न भी पधारें, तो भी स्तुति करने वालों को धन प्रदान करते हैं । इस प्रकार महान् पराक्रम वाले इन्द्र प्रकट होकर अनेकों वृत्र जैसे राक्षसों और शत्रुओं का संहार कर डालते हैं ॥ ६ ॥ [१]

३० सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः उष्णिक्)

भूय इद्वावृधे वीर्याय एको अजुर्यो दयते वसूनि ।
प्र रिरिचे दिव इन्द्रः पृथिव्या अर्धमिदस्य प्रति रोदसी उभे ॥ १
अधा मन्ये बृहदसुर्यमस्य यानि दाधार नकिरा मिनाति ।
दिवेदिवे सूर्यो दर्शतो भूद्वि सद्मान्युर्विया सुक्रतुर्धात् ॥ २
अद्या चिन्नू चित्तदपो नदीनां यदाभ्यो अरदो गातुमिन्द्र ।
नि पर्वता अद्मसदो न सेदुस्त्वया दृळ्हानि सुक्रतो रजांसि ॥ ३
सत्यमित्तन्न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवो न मर्त्यो ज्यायान् ।
अहन्नहिं परिशयानमर्णोऽवासृजो अपो अच्छा समुद्रम् ॥ ४
त्वमपो वि दुरो विषूचीरिन्द्र दृळ्हमरुजः पर्वतस्य ।
राजाभवो जगतश्चर्षणीनां साकं सूर्यं जनयन् द्यामुषासम् ॥ ५ । २

वृत्र आदि राक्षसों का हनन कार्य करने के निमित्त इन्द्र पुनः उत्तेजित हुए हैं। वे श्रेष्ठ एवं अजर इन्द्र स्तुति करने वालों को धन दें। इन्द्र आकाश-पृथिवी का अतिक्रमण करते हैं। इन्द्र का अर्द्ध भाग सम्पूर्ण आकाश-पृथिवी के बराबर है ॥ १ ॥ अभी हम इन्द्र की शक्ति की स्तुति करते हैं। यह शक्ति असुरों को दग्ध करने में समर्थ है। इन्द्र जिन कर्मों के धारण करने वाले हैं, उन्हें रोकने में कोई भी समर्थ नहीं है। वे नित्य प्रति वृत्र द्वारा ढके हुए सूर्य को दर्शन देने योग्य बनाते हैं। इन श्रेष्ठ-कर्मा इन्द्र ने ही लोकों को विस्तृत किया है ॥२॥ हे इन्द्र! पूर्व के समान आज भी तुम्हारा नदियों को प्रवाहमान रखने वाला कार्य जारी है। नदियों के प्रवाहित होने के लिए तुमने मार्ग निर्मित किया है। भोजन के लिए बैठे हुए मनुष्य के समान पर्वत भी तुम्हारी आज्ञा से स्थिर होकर बैठे हैं। हे श्रेष्ठ कर्मा इन्द्र! सभी लोकों को तुमने ही स्थिर किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! अन्य कोई देवता तुम्हारे समान नहीं है, यह नितान्त सत्य है। तुम्हारे समान कोई मनुष्य भी नहीं है। तुमसे बढ़

कर कोई देवता या मनुष्य नहीं है, यह भी नितान्त सत्य ही है। जल-राशि को ढक कर शयन करने वाले वृत्र का तुमने वध किया था और जल-राशि को समुद्र में गिरने के लिए छोड़ा था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वृत्र द्वारा ढके हुए जल को सब ओर बहने के लिए तुमने छोड़ा था। तुमने मेघ के बन्धनों को काट डाला। सूर्य, स्वर्ग और उषा को एक समय में ही प्रकाशित करने वाले तुम अखिल विश्व के स्वामी होओ ॥ ५ ॥ [२]

३१ सूक्त

(ऋषि-सुहोत्रः। देवता-इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, शक्वरी)

अभूरेको रयिपते रयीणामा हस्तयोरधिथा इन्द्र कृष्टीः।
वि तोके अप्सु तनये च सूरेऽवोचन्त चर्षणयो विवाचः ॥ १
त्वद्भियेन्द्र पार्थिवानि विश्वाच्युता चिच्च्यावयन्ते रजांसि।
द्यावाक्षामा पर्वतासो वनानि विश्वं दृळ्हं भयते अज्मन्ना ते ॥ २
त्वं कुत्सेनाभि शुष्णमिन्द्राशुषं युध्य कुयवं गविष्टौ।
दश प्रपित्वे अध सूर्यस्य मुषायश्चक्रमविवे रपांसि ॥ ३
त्वं शतान्यव शम्बरस्य पुरो जघन्थाप्रतीनि दस्योः।
अशिक्षो यत्र शच्या शचीवो दिवोदासाय सुन्वते सुतक्रे भरद्वाजाय गृणते वसूनि ॥ ४
स सत्यसत्वन्महते रणाय रथमा तिष्ठ तुविनृम्ण भीमम्।
याहि प्रपथिन्नवसोप मद्रिक्प्र च श्रुत श्रावय चर्षणिभ्यः ॥ ५ ॥ ३

हे वैभव के प्रदानकर्त्ता इन्द्र ! तुम ही धनों के मुख्य स्वामी हो। तुम अपने भुजबल से प्रजाओं के धारण करने वाले हो। मनुष्यगण पुत्र, शत्रु के जीतने वाले पौत्र एवं वृष्टि के उद्देश्य से तुम्हारी विभिन्न स्तुतियाँ करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे डर से, अन्तरिक्ष में उत्पन्न जल गिरने योग्य न होने पर भी मेघ द्वारा गिराये जाते हैं। हे इन्द्र ! आकाश, पृथिवी, पर्वत, वृक्ष तथा सभी स्थावर जंगम जीव तुम्हारे आगमन से भय-भीत होते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! "कुत्स" की सहायता के लिए तुमने "शुष्ण" से युद्ध किया था।

युद्ध में तुमने "कुयव" को मारा था। तुमने संग्राम में सूर्य के रथ के पहिए का हरण किया, उस समय से सूर्य का रथ एक ही पहिए का रह गया। पाँचों राक्षसों का तुमने वध किया था ॥ ३॥ हे इन्द्र! तुमने "शम्बर" नामक राक्षस के सौ पुरों को ध्वस्त किया था। हे मेधावी इन्द्र! तुमने सोम अभिषुत करने वाले "दिवोदास" को तथा स्तुति करने वाले भरद्वाज को धन दिया था ॥४॥ हे अजेय वीरों वाले एवं अत्यन्त धन वाले इन्द्र! तुम भीषण युद्ध के लिए अपने विकराल रथ पर चढ़ो। हे श्रेष्ठ मार्गगामी इन्द्र! तुम अपने रक्षा-साधनों सहित हमारे सामने आओ। हमको सब मनुष्यों में प्रसिद्ध करो ॥ ५ ॥ [३]

३२ सूक्त

(ऋषि—सुहोत्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

अपूर्व्या पुरुतमान्यस्मै महे वीराय तवसे तुराय ।
विरप्शिने वज्रिणे शन्तमानि वचांस्यासा स्थविराय तक्षम् ॥ १
स मातरा सूर्येणा कवीनामवासयद्रुजदद्रिं गृणानः ।
स्वाधीभिर्ऋक्वभिर्वावशान उदुस्रियाणामसृजन्निदानम् ॥ २
स वह्निभिर्ऋक्वभिर्गोषु शश्वन्मितज्ञुभिः पुरुकृत्वा जिगाय ।
पुरः पुरोहा सखिभिः सखीयन्दृळ्हा रुरोज कविभिः कविः सन् ॥ ३
स नीव्याभिर्जरितारमच्छा महो वाजेभिर्महद्भिश्च शुष्मैः ।
पुरुवीराभिर्वृषभ क्षितीनामा गिर्वणः सुविताय प्र याहि ॥ ४
स सर्गेण शवसा तक्तो अत्यैरप इन्द्रो दक्षिणतस्तुराषाट् ।
इत्था सृजाना अनपावृदर्थं दिवेदिवे विविषुरप्रमृष्यम् ॥ ५ । ४

महान्, शत्रुहन्ता, वेगवान्, स्तुत्य, वज्रधारी एवं बढ़े हुए इन्द्र के निमित्त हमने अपने मुख से सुविस्तृत, सुखप्रद एवं अपूर्व स्तोत्रों का उच्चारण किया है ॥ १ ॥ मेधावी अङ्गिराओं के लिए इन्द्र ने स्वर्ग और पृथिवी को सूर्य के प्रकाश से प्रकाशित किया और उन अङ्गिराओं द्वारा स्तुत होकर

पर्वतों को चूर्ण कर डाला। स्तुति करने वाले अङ्गिराओं के द्वारा बारम्बार याचना करने पर इन्द्र ने गौओं को बन्धन से छुड़ा दिया ॥ २ ॥ उन बहु-कर्मा इन्द्र ने यज्ञ करने वाले अङ्गिराओं से मिल कर शत्रुओं को हराया तथा राक्षस-नगरियों को ध्वस्त किया ॥ ३ ॥ हे स्तुति द्वारा उपास्य एवं अभीष्टों के पूर्ण करने वाले इन्द्र! तुम महान् अन्न, बल और बहुत बछड़े वाली युवती बड़वा गौ सहित अपने स्तोताओं को सुखी करने के लिए, उनके सामने पधारो ॥ ४ ॥ दुष्टों को वशीभूत करने वाले इन्द्र सदा अपने बल से गमन-शील तेज द्वारा सूर्य के दक्षिणायन होने पर जल को छोड़ते हैं। इस प्रकार जल-राशि उस सुशान्त समुद्र में नित्य प्रति गिरती है, जिससे वह फिर नहीं लौटती ॥ ५ ॥ [४]

३३ सूक्त

(ऋषि—शुनहोत्रः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः

य ओजिष्ठ इन्द्र तं सु नो दा मदो वृषन्त्स्वभिष्टिर्दास्वान् ।
सौवश्व्यं यो वनवत्स्वश्वो वृत्रा समत्सु सासहदमित्रान् ॥ १
त्वां हीन्द्रावसे विवाचो हवन्ते चर्षणयः शूरसातौ ।
त्वं विप्रेभिर्वि पर्णीरशायस्त्वोत इत्सनिता वाजमर्वा ॥२
त्वं तां इन्द्रोभयाँ अमित्रान्दासा वृत्राण्यार्या च शूर ।
वधीर्वनेव सुधितेभिरत्कैरा पृत्सु दर्षि नृणां नृतम ॥ ३
स त्वं न इन्द्राकवाभिरूती सखा विश्वायुरविता वृधे भूः ।
स्वर्षाता यद्ध्वयामसि त्वा युध्यन्तो नेमधिता पृत्सु शूर ॥ ४
नूनं न इन्द्रापराय च स्या भवा मृळीक उत नो अभिष्टौ ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्मन्दिवि ष्याम पार्ये गोषतमाः ॥ ५ । ५

हे कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र! तुम हमको सुन्दर स्तुति करने वाला, हव्यदाता एक पुत्र दो। वह पुत्र श्रेष्ठ घोड़े पर चढ़ कर युद्ध में सुन्दर घोड़ों वाले विरुद्धाचारी शत्रुओं को पराजित करे ॥ १ ॥ हे इन्द्र!

स्तुति रूप वाणी वाले मनुष्य, युद्ध में रक्षा के निमित्त तुम्हें बुलाते हैं तुमने अङ्गिराओं के साथ पणियों को मारा था। तुम्हारा उपासक तुम्हारा आश्रय प्राप्त करता हुआ अन्न पाता है ॥ २ ॥ हे वीर इन्द्र! तुम दस्यु और आर्य दोनों प्रकार के शत्रुओं को दण्ड देते हो। जैसे काठ के काटने वाला कुल्हाड़ी से वृक्षों को काटता है, वैसे ही युद्ध क्षेत्र में तुम भले प्रकार प्रयुक्त हथियारों से शत्रुओं को काटते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम सब ओर जाने वाले हो। तुम अपने उत्तम रक्षा-साधनों से हमारे ऐश्वर्य के बढ़ाने वाले सखा रूप होओ। क्रुद्ध पुरुषों सहित संग्राम करने वाले हम धन प्राप्ति के लिये तुम्हें बुलाते हैं ॥४॥ हे इन्द्र! तुम इस समय तथा अन्य समयों में हमारे होओ। हमारी अवस्था के अनुसार हमको सुख दो। इस प्रकार के हम स्तोता गौओं के इच्छुक होकर तुम्हारे उज्ज्वल सुख में रहें। हे इन्द्र! तुम महान् हो ॥ ५ ॥ [२]

३४ सूक्त

(ऋषि-शुनहोत्रः । देवता-इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्)

सं च त्वे जग्मुर्गिर इन्द्र पूर्वीर्वि च त्वद्यन्ति विभ्वो मनीषाः ।
पुरा नूनं च स्तुतय ऋषीणां पस्पृध्र इन्द्रे अध्युक्थार्का ॥ १
पुरुहूतो यः पुरुगूर्त ऋभ्वाँ एकः पुरुप्रशस्तो अस्ति यज्ञैः ।
रथो न महे शवसे युजानोस्माभिरिन्द्रो अनुमाद्यो भूत् ॥ २
न यं हिंसन्ति धीतयो न वाणीरिन्द्रं नक्षन्तीदभि वर्धयन्तीः ।
यदि स्तोतारः शतं यत्सहस्रं गृणन्ति गिर्वणसं शं तदस्मै ॥ ३
अस्मा एतद्दिव्यर्चेव मासा मिमिक्ष इन्द्रे न्ययामि सोमः ।
जनं न धन्वन्नभि सं यदापः सत्रा वावृधुर्हवनानि यज्ञैः ॥ ४
अस्मा एतन्मह्याङ्गूषमस्मा इन्द्राय स्तोत्रं मतिभिरवाचि ।
असद्यथा महति वृत्रतूर्य इन्द्रो विश्वायुरविता वृधश्च ॥ ५ । ६

हे इन्द्र! तुममें अगणित स्तोत्र मिलते हैं। तुमसे स्तुति करने वालों की प्रशंसा काफी होती है। पूर्व समय में तथा अब भी ऋषियों में स्तोत्र, साधना और मन्त्रादि युक्त इन्द्र के पूजन में परस्पर स्पर्द्धा होती है ॥ १ ॥

स तु श्रुधि श्रुत्या यो दुवोयुर्द्यौर्न भूमाभि रायो अर्यः ।
असो यथा नः शवसा चकानो युगेयुगे वयसा चेकितानः ॥ ५ ।८

हे इन्द्र ! तुम्हारा सोम पीने से उत्पन्न हुआ आह्लाद हमारे लिए कल्याणकारी होता है । तीनों लोकों में स्थित तुम्हारे धन अवश्य ही सब का मङ्गल करने वाला है । हे इन्द्र ! तुम सत्य ही अन्न प्रदान करने वाले हो । तुम देवताओं में अधिक बल धारण करने वाले हो । १ ॥ वीरत्व लाभ के निमित्त यजमान इन्द्र को पुरोभाग में धारण करते हुए इन्द्र के बल की विशेष प्रकार पूजा करते हैं । वे शत्रुओं के दलों के रोकने वाले तथा उनका हनन करने वाले और उन पर आक्रमण करने वाले इन्द्र वृत्र को मारेंगे, इसीलिए यजमान उनकी सेवा करते हैं ॥ २ ॥ मरुद्गण सुसंगत होकर इन्द्र की सेवा करते हैं और वीर्य, बल एवं रथ में जुड़ने वाले उनके घोड़े भी इन्द्र की सेवा करते हैं । जैसे नदियाँ समुद्र में प्रवेश करती हैं, वैसे ही उपासना-रूप एवं बल से युक्त स्तुतियाँ इन्द्र से मिलती हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति की जाने पर तुम बहुतों को अन्न प्रदान करने और गृह दिलाने वाले अन्न को प्रवाहित करो । तुम सब प्राणियों के मुख्य स्वामी तथा सभी उत्पन्न जीवों के एक मात्र ईश्वर हो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुनने योग्य स्तोत्रों को सुनो । हमारी सेवा की कामना करते हुए सूर्य के समान, शत्रुओं के धन के जेता बनो । हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बली हो । तुम हर समय में स्तुत होकर और हव्यरूप अन्न से प्रकाशमान होकर पहले के समान ही हमारे पास रहो ॥ ५ ॥ [८]

३७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अर्वाग्रथं विश्ववारं त उग्रेन्द्र युक्तासो हरयो वहन्तु ।
कीरिश्चिद्धि त्वा हवते स्वर्वानृधीमहि सधमादस्ते अद्य ॥ १
प्रो द्रोणे हरयः कर्माग्मन्पुनानास ऋज्यन्तो अभूवन् ।
इन्द्रो नो अस्य पूर्व्यः पपीयाद् द्युक्षो मदस्य सोम्यस्य राजा ॥ २
आसस्राणासः शवसानमच्छेन्द्रं सुचक्रे रथ्यासो अश्वाः ।

अभि प्रव ऋज्यन्तो यहेयुर्नू चिन्नु वायोरमृतं वि दस्येत् ॥ ३
वरिष्ठो अस्य दक्षिणामियर्तीन्द्रो मघोनां तुविकूर्मितमः ।
यया वज्रिवः परियास्यंहो मघा च धृष्णो दयसे वि सूरीन् ॥ ४
इन्द्रो वाजस्य स्थविरस्य दातेन्द्रो गीर्भिर्वर्धतां वृद्धमहाः ।
इन्द्रो वृत्रं हनिष्ठो अस्तु सत्वा ता सूरिः पृणति तूतुजानः ॥ ५ । ६

हे इन्द्र! तुम्हारे रथ में योजित अश्व हमारे सामने लावें। भरद्वाज तुम्हें आहूत करते हैं। हम तुम्हारे साथ पुष्ट होते हुए सुबुद्धि को प्राप्त हों ॥१॥ हमारे यज्ञ में सोमरस प्रवाहित होता है। वह कलश में जाता है। हर्षप्रदायक सोम के स्वामी इन्द्र इस सोमरस को पीवें ॥२॥ रथ में योजित अश्व बल-शाली इन्द्र को हमारे सामने लावें। सोम रूप हवि को वायु नष्ट न करें। इसके गुण हीन होने से पूर्व ही इन्द्र ही उसका पान करें ॥३॥ हविवान् यजमान को बलवान इन्द्र धन देते हैं। हे वज्रिन्! तुम पाप को नष्ट करो। तुम्हारे दान से हमें धन और पुत्र प्राप्त हों ॥४॥ इन्द्र श्रेष्ठ धन और बल दें। वे हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध हों। शत्रुहन्ता इन्द्र शत्रुओं को मारें और हमें सभी धन दें ॥५॥ [६]

३८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप)

अपादित उदु नश्चित्रतमो महीं भर्षद्द्युमतीमिन्द्रहूतिम् ।
पन्यसीं धीतिं दैव्यस्य यामञ्जनस्य रातिं वनते सुदानुः ॥ १
दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः ।
एयमेनं देवहूतिर्ववृत्यान्मद्र्यगिन्द्रमियमृच्यमाना ॥ २
तं वो धिया परमया पुराजामजरमिन्द्रमभ्यनूष्यर्कैः ।
ब्रह्मा च गिरो दधिरे समस्मिन्महांश्च स्तोमो अधि वर्धदिन्द्रे ॥ ३
वर्धाद्यं यज्ञ उत सोम इन्द्रं वर्धाद्ब्रह्म गिर उक्था च मन्म ।
वर्धाहैनमुषसो यामन्नक्तोर्वर्धान्मासाः शरदो द्याव इन्द्रम् ॥ ४
एवा जज्ञानं सहसे असामि वावृधानं राधसे च श्रुताय ।

महामुग्रमवसे विप्र नूनमा विवासेम वृत्रतूर्येषु ॥ ५ । १०

अद्भुत इन्द्र सोम पान करें। वे हमारे आह्वान को सुनें। यजमान के यज्ञ में इन्द्र स्तुति और हव्य ग्रहण करें ॥ १ ॥ इन्द्र के दोनों कान स्तोत्र सुनने को दूर से भी आते हैं। उस समय स्तोता उच्च स्वर से स्तुति करते हैं। हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को हमारे सामने लावें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्राचीन और अक्षुण्ण हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। स्तोत्र और हव्य इन्द्र में ही लीन होते हैं। स्तोत्र वृद्धि को प्राप्त होता है ॥ ३ ॥ यज्ञ और सोमरस, जिन इन्द्र को बढ़ाते हैं तथा हव्य, स्तुति और पूजन जिन इन्द्र को प्रवृद्ध करते हैं, जिन्हें दिन और रात की गति बढ़ाती है और जिन्हें मास, दिन और संवत्सर बढ़ाते हैं हे इन्द्र ! ऐसे तुम अत्यन्त बलवान् हो। हम आज धन, यश, रक्षा और शत्रु हनन कर्म के लिए तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ४-५ ॥ [१०]

३९ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

मन्द्रस्य कवेर्दिव्यस्य वह्नेर्विप्रमन्मनो वचनस्य मध्वः।
अपा नस्तस्य सचनस्य देवेषो युवस्व गृणते गोअग्राः ॥ १
अयमुशानः पर्यद्रिमुस्रा ऋतधीतिभिर्ऋतयुग्युजानः।
रुजदरुग्णं वि वलस्य सानुं पणीँर्वचोभिरभि योधदिन्द्रः ॥ २
अयं द्योदयदद्युतो व्यक्तून्दोषा वस्तोः शरद इन्दुरिन्द्र।
इमं केतुमदधुर्नू चिदह्नां शुचिजन्मन उषसश्चकार ॥ ३
अयं रोचयदरुचो रुचानोयं वासयद् व्यृतेन पूर्वीः।
अयमीयत ऋतयुग्भिरश्वैः स्वर्विदा नाभिना चर्षणिप्राः ॥ ४
नू गृणानो गृणते प्रत्न राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वीः।
अप ओषधीरविषा वनानि गा अर्वतो नॄनृचसे रिरीहि ॥ ५ । ११

हे इन्द्र ! हमारे सोम का पान करो। वह सोम फल देने वाले, हर्ष-प्रदायक और दिव्य हैं। हे इन्द्र ! हमें श्रेष्ठ अन्न दो ॥ १ ॥ अङ्गिराओं को साथ ले इन्द्र ने पर्वत में छिपी गौओं के उद्धार के लिए पणियों को पराजित

क्या ॥२॥ हे इन्द्र ! इस सोम ने रात्रि, दिवस और वर्ष सब को तेज दिया । देवताओं ने इसी सोम को दिवस के केतु रूप से स्थापित किया । सोम ने अपने तेज से उषाओं को प्रकाशित किया ॥ ३ ॥ सूर्यात्मक इन्द्र ने अन्धकारयुक्त लोकों को प्रकाशित किया और अपनी दीप्ति से उषाओं को भी तेजोमयी बनाया । यह इन्द्र मनुष्यों को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं । इन्होंने स्तोत्र द्वारा योजित अश्वों वाले धनयुक्त रथ पर चढ़ कर गमन किया ॥ ४॥ हे इंद्र ! तुम स्तोता को अपरिमित धन प्रदान प्रदान करो । जल, औषधि, अन्न, गौ और मनुष्यादि दो ॥ ५ ॥ [११]

४० सूक्त

(ऋषि-भरद्वाज बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इन्द्र पिब तुभ्यं सुतो मदायाव स्य हरी वि मुचा सखाया ।
उत प्र गाय गण आ निषद्याथा यज्ञाय गृणते वयो धाः ॥ १
अस्य पिब यस्य जज्ञान इन्द्र मदाय क्रत्वे अपिबो विरप्शिन् ।
तमु ते गावो नर आपो अद्रिरिन्दुं समह्यन्पीतये समस्मै ॥ २
समिद्धे अग्नौ सुत इन्द्र सोम आ त्वा वहन्तु हरयो वहिष्ठाः ।
त्वायता मनसा जोहवीमीन्द्रा याहि सुविताय महे नः ॥ ३
आ याहि शश्वदुशता ययाथेन्द्र महा मनसा सोमपेयम् ।
उप ब्रह्माणि शृणव इमा नोऽथा ते यज्ञस्तन्वे वयो धात् ॥ ४
यदिन्द्र दिवि पार्ये यदृधग्यद्वा स्वे सदने यत्र वासि ।
अतो नो यज्ञमवसे नियुत्वान्सजोषाः पाहि गिर्वणो मरुद्भिः ॥ ५।१२

हे इन्द्र ! तुम्हारे हर्ष के लिए जो सोम निष्पन्न हुआ है उसे पीओ । अपने अश्वों को रथ में योजित करो और यज्ञ के पास होकर स्तोताओं के मध्य विराजो । हमारी स्तुतियों के साथी होकर स्तोता को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही जैसे सोम-पान किया, वैसे ही अब भी करो । गौएं, ऋत्विज्, अभिषवण प्रस्तर आदि सब तुम्हारे लिए प्रस्तुत हुए हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! अग्नि प्रदीप्त हुए हैं, सोम का अभिषव हुआ है । तुम्हें

यहाँ लावें । हम तुम्हारा मन से आह्वान करते हैं । तुम हमें समृद्ध करने को आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! सोमपान के लिए तुम अनेक बार आए हो । इस समय सोमपान के लिए यज्ञ में आगमन करो और हमारी स्तुति सुनो । यह यजमान इस सोम को तुम्हारी पुष्टि के निमित्त अर्पित करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम जहाँ कहीं हो, वहीं से मरुद्गण के सहित आओ और हमारे यज्ञ का पालन करो ॥ ५ ॥ [१२]

४१ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अहेळमान उप याहि यज्ञं तुभ्यं पवन्त इन्दवः सुतासः ।
गावो न वज्रिन्त्स्वमोको अच्छेन्द्रा गहि प्रथमो यज्ञियानाम् ॥ १
या ते काकुत्सुकृता या वरिष्ठा यया शश्वत्पिबसि मध्व ऊर्मिम् ।
तया पाहि प्र ते अध्वर्युरस्थात्सं ते वज्रो वर्ततामिन्द्र गव्युः ॥ २
एष द्रप्सो वृषभो विश्वरूप इन्द्राय वृष्णे समकारि सोमः ।
एतं पिब हरिवः स्थातरुग्र यस्येशिषे प्रदिवि यस्ते अन्नम् ॥ ३
सुतः सोमो असुतादिन्द्र वस्यानयं श्रेयाञ्चिकितुषे रणाय ।
एतं तितिर्व उप याहि यज्ञं तेन विश्वास्तविषीरा पृणस्व ॥ ४
ह्वयामसि त्वेन्द्र याह्यर्वाङरं ते सोमस्तन्वे भवाति ।
शतक्रतो मादयस्वा सुतेषु प्रास्माँ अव पृतनासु प्र विक्षु ॥ ५ ।१३

हे इन्द्र ! तुम हमारे यज्ञ में आगमन करो । अभिषुत सोम तुम्हारे लिए रखा है । हे वज्रिन् ! गौऐं जैसे गोष्ठ में जाती हैं, वैसे ही सोम कलश में जाता है । यज्ञीय देवताओं में प्रमुख इन्द्र ! तुम यहाँ आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस जिह्वा से सोमरस का सदा पान करते हो, उसी से हमारे सोम-रस को पीओ । सोमवाला ऋत्विज् तुम्हारे सम्मुख उपस्थित है । हे इन्द्र ! तुम्हारा वज्र शत्रुओं को मारे ॥ २ ॥ इन्द्र के लिए यह अभीष्टवर्षक सोम अभिषुत हुआ है । हे इन्द्र ! तुमने जिस सोमरस पर शासन किया, जिसे तुम अन्न रूप मानते हो, उसी सोम-रस का पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र !

निष्पन्न सोम यशोचित सोम से सम्पन्न करते हैं। तुम्हें यह हर्ष प्रदान करता है। यज्ञ के साधन रूप इस सोम के पास आगमन करो और इससे अपने शरीर के सब अवयवों की वृद्धि करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें आहूत करते हैं। तुम हमारे समक्ष आगमन करो, यह सोम तुम्हारे देह के लिए पर्याप्त हो। तुम इसके द्वारा आनन्द प्राप्त करते हुए हम सब की रक्षा करो ॥ ५ ॥ [१३]

४२ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता-इन्द्रः । छन्द- उष्णिक्, अनुष्टुप्)

प्रत्यस्मै पिपीषते विश्वानि विदुषे भर ।
अरङ्गमाय जग्मयेऽपश्चाद् दघ्वने नरे ॥१
एमेनं प्रत्येतन सोमेभिः सोमपातमम् ।
अमत्रेभिर्ऋजीषिणमिन्द्रं सुतेभिरिन्दुभिः ॥ २
यदी सुतेभिरिन्दुभिः सोमेभिः प्रतिभूषथ ।
वेदा विश्वस्य मेधिरो धृषत्तन्तमिदेषते ॥ ३
अस्माअस्मा इदन्धसोऽध्वर्यो प्र भरा सुतम् ।
कुवित्समस्य जेन्यस्य शर्धतोऽभिशस्तेरवस्परत् ॥ ४ । १४

हे ऋत्विजो ! इन्द्र के लिए सोम रस अर्पित करो। वे यज्ञ के स्वामी, सर्वगन्ता और सब के जानने वाले हैं। सर्व प्रथम गमनशील हैं ॥ १ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम सोमरस के सहित सोमपायी इन्द्र के समक्ष उपस्थित होओ। निष्पन्न सोमरस से परिपूर्ण पात्र के सहित आओ ॥ २ ॥ हे ऋत्विजो ! तुम तेजोमय और निष्पन्न सोमरस के सहित इन्द्र की सेवा में पहुँचो। इन्द्र तुम्हारी कामना के ज्ञाता हैं। वे तुम्हारे अभीष्ट को पूर्ण करते हुए, शत्रु को मारते हैं ॥ ३ ॥ हे ऋत्विजो ! इन्द्र को अभिषुत सोम-रस अर्पित करो। वे इन्द्र हमारे सभी दुर्धर्ष शत्रुओं के क्रोध से हमें बचावें ॥ ४ ॥ [१४]

४३ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्)

यस्य त्यच्छम्बरं मदे दिवोदासाय रन्धयः ।

अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ १
यस्य तीव्रसुतं मदं मध्यमन्तं च रक्षसे ।
अयं स सोम इंद्र ते सुतः पिब ॥ २
यस्य गा अन्तरश्मनो मदे दृळ्हा अवासृजः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ३
यस्य मन्दानो अन्धसो माघोनं दधिषे शवः ।
अयं स सोम इन्द्र ते सुतः पिब ॥ ४ । १५

हे इन्द्र ! तुमने जिस सोम-रस के पीने की कामना में दिवोदास के लिए शम्बर को पराभूत किया, वही सोम-रस तुम्हारे लिए निष्पीडित हुआ है, तुम इसी का पान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब सोमरस यज्ञ के तीनों सवनों में अभिषुत होता है, तब तुम इसे ग्रहण करते हो। यह सोम तुम्हारे निमित्त ही संस्कृत हुआ है, इसका पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! यह वही सोम अभिषुत हुआ है, जिसे पीकर तुमने पर्वत में छिपी हुई गौओं को मुक्त किया था। तुम इसका पान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम जिस सोम रूप अन्न के रस को पीकर आनन्दित होते हो और असाधारण शक्ति से युक्त हो जाते हो वही सोम तुम्हारे निमित्त निष्पीडित हुआ है। तुम इसका पान करो ॥ ४ ॥ [१५]

४४ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

यो रयिवो रयिन्तमो यो द्युम्नैर्द्युम्नवत्तमः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ १
यः शग्मस्तुविशग्म ते रायो दामा मतीनाम् ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ २
येन वृद्धो न शवसा तुरो न स्वाभिरूतिभिः ।
सोमः सुतः स इन्द्र तेऽस्ति स्वधापते मदः ॥ ३

तमु वो यमहस्तं गृणीषे नयमस्पतिम् ।
इन्द्रं विश्वासाहं नरं मंहिष्ठं विश्वचर्षणिम् ॥ ४
यं वर्धयन्तीद्गिरः पतिं तुरस्य राधसः ।
तमिन्न्वस्य रोदसी देवी शुष्मं सपर्यतः ॥ ५ । १६

हे इन्द्र ! तुम ऐश्वर्यवान् और सोम के रक्षक हो । जो सोम अत्यन्त ऐश्वर्यवान् और तेज से यशस्वी है, वही इस समय अभिषुत हुआ है । वह तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त बल-वर्द्धक सोम को रक्षा करने वाले हो । जो सोम तुम्हें हर्ष प्रदान करता और स्तोताओं को वैभवशाली बनाता है, वह सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सोम रूप धन की रक्षा करने वाले हो । तुम, जिस सोम को पीकर बलधारण करते और मरुद्गण को साथ लेकर शत्रुओं को मारते हो, वही सोम अभिषुत होकर तुम्हें हर्ष प्रदान करता है ॥ ३ ॥ हे यजमानो ! जो इन्द्र उपासकों पर कृपा करने वाले, बल के अधिपति, संसार के जीतने वाले, यज्ञादि कर्मों के स्वामी, श्रेष्ठ दाता और सबके देखने वाले हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हमारी स्तुतियों से इन्द्र का शत्रु के धन को हर लेने वाला बल बढ़ता है, उस बल की सेवा द्युलोक और पृथिवी करती है ॥ ५ ॥ [१६]

सद्य उचथस्य बृंहणेन्द्रायोपस्तृणीषणि ।
विपो न यस्योतयो वि यद्रोहन्ति सक्षितः ॥ ६
अविदद् दक्षं मित्रो नवीयान्पपानो देवेभ्यो वस्यो अचैत् ।
ससवान्स्तौलाभिर्धौतरीभिरुरुष्या पायुरभवत्सखिभ्यः ॥ ७
ऋतस्य पथि वेधा अपायि श्रिये मनांसि देवासो अक्रन् ।
दधानो नाम महो वचोभिर्वपुर्दृशये वेन्यो व्यावः ॥ ८
द्युमत्तमं दक्षं धेह्यस्मे सेधा जनानां पूर्वीररातीः ।
वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिर्धनस्य सातावस्माँ अविड्ढि ॥ ९
इन्द्र तुभ्यमिन्मघवन्नभूम वयं दात्रे हरिवो मा वि वेनः ।

नकिरापिर्ददृशे मर्त्यत्रा किमङ्ग रध्रचोदनं त्वाहुः ॥ १० । १७

हे स्तोताओ ! इन्द्र के निमित्त अपने स्तोत्र को प्रवृद्ध करो, क्योंकि इन्द्र तुम्हारे रक्षक हैं ॥ ६ ॥ यज्ञादि कर्मों में कुशल यजमानों की बातों को इन्द्र भले प्रकार जानते हैं। सोम के रस पीने वाले इन्द्र स्तोताओं को उत्कृष्ट धन देते हैं। अपने प्रवृद्ध अश्वों के सहित आकर वे स्तोताओं के रक्षक होते हैं ॥ ७ ॥ जो सोम यज्ञ कर्म में पिया जाता है, उसी सोम को ऋत्विग्गण इन्द्र को आकृष्ट करने के लिए प्रस्तुत करते हैं। वही विस्तीर्ण देह वाले, शत्रु पराभवकारी इन्द्र हमारी स्तुति के कारण हमारे अभिमुख हों ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमें तेज और बल दो। अपने शत्रुओं को दूर भगाओ। तुम हमें प्रचुर अन्न प्रदान करो धन का उपभोग करने के लिए हमारे देह की रक्षा करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें हवि प्रदान करते हैं। तुम हमारे विरुद्ध मत होना। हम तुमसे अन्य किसी को अपना मित्र नहीं समझते। यदि तुम्हारी ऐसी महिमा नहीं होती तुम 'धनदाता' क्यों कहे जाते ? ॥ १० ॥ [१७]

मा जस्वने वृषभ नो ररीथा मा ते रेवतः सख्ये रिषाम ।
पूर्वीष्ट इन्द्र निष्षिधो जनेषु जह्यसुष्वीन्प्र वृहापृणतः ॥ ११
उदभ्राणीव स्तनयन्नियर्तीन्द्रो राधांस्यश्व्यानि गव्या ।
त्वमसि प्रदिवः कारुधाया मा त्वादामान आ दभन्मघोनः ॥ १२
अध्वर्यो वीर प्र महे सुतानामिन्द्राय भर स ह्यस्य राजा ।
यः पूर्व्याभिरुत नूतनाभिर्गीर्भिर्वावृधे गृणतामृषीणाम् ॥ १३
अस्य मदे पुरु वर्पांसि विद्वानिन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघान ।
तमु प्र होषि मधुमन्तमस्मै सोमं वीराय शिप्रिणे पिबध्यै ॥ १४
पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमं हन्ता वृत्रं वज्रेण मन्दसानः ।
गन्ता यज्ञं परावतश्चिदच्छा वसुर्धीनामविता कारुधायाः ॥ १५ । १८

हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के वर्षक हो। तुम हमें हिंसक राक्षसों के आधीन मत करना। तुम धनवान हो। हम तुम्हारी मित्रता में रह कर दुःख न पावें। तुम्हारे कर्म में शत्रुगण अनेक विघ्न उपस्थित करते हैं। जो सोमा-

नित्य-कर्म नहीं करते, अथवा जो तुम्हें हवि नहीं, तुम उन्हें नष्ट कर डालो ॥ ११ ॥ जैसे गर्जनशील पर्जन्य मेघ के उत्पत्तिकर्त्ता हैं, वैसे ही इन्द्र स्तोताओं के देने के लिए अन्न और गौऐं उत्पन्न करने वाले हैं। हे इन्द्र! तुम स्तोताओं के रक्षक हो। धनवान् व्यक्ति तुम्हारे हर्षार्थ महान कर्मों में न लग कर कहीं निन्दाचरण न करने लगें ॥ १२ ॥ हे ऋत्विजो! तुम इन्हीं महान् कर्त्ता इन्द्र के लिए सोम सिद्ध करो, क्योंकि यह सोम के अधिपति हैं। यह इन्द्र स्तोताओं के प्राचीन तथा अभिनव स्तोत्रों द्वारा वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ १३ ॥ ज्ञानवान इन्द्र ने सोम-पान द्वारा हर्षित होकर विपरीत आचरण करने वाले अनेक शत्रुओं का वध किया है ॥ १४ ॥ इन्द्र इस निष्पीड़ित सोम को पीकर हर्षित हों और वज्र द्वारा वृत्र को मारें। वे इन्द्र स्तुतियों के रक्षक, यजमान के पालक और गृह-प्रदाता हैं। वे हमारे यज्ञ में दूर देश से भी आगमन करें ॥ १५ ॥ [१८]

इदं त्यत्पात्रमिन्द्रपानमिन्द्रस्य प्रियममृतमपायि ।
मत्सद्यथा सौमनसाय देवं व्यस्मद् द्वेषो युयवद्व्यंहः ॥ १६
एना मन्दानो जहि शूर शत्रूञ्जामिमजामिं मघवन्नमित्रान् ।
अभिषेणाँ अभ्यादेदिशानान्पराच इन्द्र प्र मृणा जही च ॥ १७
आसु ष्मा णो मघवन्निन्द्र पृत्स्वस्मभ्यं महि वरिवः सुगं कः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेष इन्द्र सूरीन्कृणुहि स्मा नो अर्धम् ॥ १८
आ त्वा हरयो वृषणो युजाना वृषरथासो वृषरश्मयोऽत्याः ।
अस्मत्राञ्चो वृषणो वज्रवाहो वृष्णे मदाय सुयुजो वहन्तु ॥१९
आ ते वृषन्वृषणो द्रोणमस्थुर्घृतप्रुषो नोर्मयो मदन्तः ।
इन्द्र प्र तुभ्यं वृषभिः सुतानां वृष्णे भरन्ति वृषभाय सोमम् ॥ २०॥१९

इन्द्र के पान-योग्य और प्रिय सोम को इन्द्र इस प्रकार पीवें कि हर्षित होकर हमारे अनुकूल हों और हमसे पाप को और शत्रु को दूर भगावें ॥१६॥ हे इन्द्र! तुम पराक्रमी हो। सोम-पान द्वारा हर्षित होकर हमसे विरोध करने वाले दुष्टों को नष्ट कर डालो। तुम हमारे मारने आए हुए शत्रुओं को पीछे

लौटाओ ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! इस सम्पूर्ण युद्ध में हमें अपरिमित धन प्राप्त कराओ। तुम हमें विजय प्राप्ति में समर्थ करो। पुत्र-पौत्रादि तथा जल-वृष्टि द्वारा समृद्ध करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे अश्व कामनाओं के पूर्ण करने वाले, रथ के वहन करने वाले, वृष्टिकारक, वेगवान्, नित्य युवा और वज्र के वहन करने वाले हैं। वे तुम्हें सोम पानार्थ हमारे यज्ञ में ले आवें ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे अश्व समुद्र की तरङ्गों के समान उल्लसित होते हुए रथ में योजित हैं। ऋत्विग्गण तुम्हारे लिए अभिषुत सोम-रस अर्पित करते हैं ॥ २० ॥ [१६]

वृषासि दिवो वृषभः पृथिव्या वृषा सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम् ।
वृष्णे त इन्दुर्वृषभ पीपाय स्वादू रसो मधुपेयो वराय ॥ २१
अयं देवः सहसा जायमान इन्द्रेण युजा पणिमस्तभायत् ।
अयं स्वस्य पितुरायुधानीन्दुरमुष्णादशिवस्य मायाः ॥ २२
अयमकृणोदुषसः सुपत्नीरयं सूर्ये अदधाज्ज्योतिरन्तः ।
अयं त्रिधातु दिवि रोचनेषु त्रितेषु विन्ददमृतं निगूळ्हम् ॥ २३
अयं द्यावापृथिवी वि ष्कभायदयं रथमयुनक्सप्तरश्मिम् ।
अयं गोषु शच्या पक्वमन्तः सोमो दाधार दशयन्त्रमुत्सम् ॥ २४ । २०

हे इन्द्र ! तुम नदियों को जल से पूर्ण करने वाले और प्राणियों के अभीष्टों के सिद्ध करने वाले हो। यह मधु के समान मधुर सोमरस तुम्हारे लिए प्रस्तुत है ॥ २१ ॥ इन्द्र के साथ जल लेकर इस तेजस्वी सोम ने पणि का बल पूर्वक स्तोत्र किया था। इसी सोम ने उन गौओं के हरणकर्त्ता असुरों के आयुधों और माया को नष्ट कर दिया था ॥ २२ ॥ सोम ने ही सूर्य को तेजस्वी बनाया। इसी ने सूर्य मण्डल को ज्योतिमान् किया। इसी ने तीनों लोकों में स्थित स्वर्ग से तीन प्रकार के अमृतों को पाया ॥ २३ ॥ सोम ने ही आकाश-पृथिवी को अपने स्थान पर टिकाया और सप्तरश्मि वाले रथ को जोता, इसी ने गौओं में अनेक धारों वाले दुग्ध प्रस्रवण कर्म को स्थापित किया ॥ २४ ॥ २०)

हो और अविनाशियों को हराते हो ॥ १८ ॥ जो इन्द्र धनदाता, मित्र, आह्वान योग्य और स्तोताओं को सम्पत्ति देने वाले हैं, मैं उस इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥ १९ ॥ जो इन्द्र स्तुति द्वारा वन्दना करने योग्य हैं, वे सब पार्थिव धनों के अधीश्वर हैं ॥ २० ॥ [१७]

स नो नियुद्भिरा पृण कामं वाजेभिरश्विभिः ।
गोमद्भिर्गोपते धृषत् ॥ २१
तद्वो गाय सुते सचा पुरुहूताय सत्वने । शं यद्गवे न शाकिने ॥ २२
न घा वसुर्नि यमते दानं वाजस्य गोमतः । यत्सीमुप श्रवद् गिरः ॥२३
कुवित्सस्य प्र हि व्रजं गोमन्तं दस्युहा गमत् । शचीभिरप नो वरत् ॥२४
इमा उ त्वा शतक्रतोऽभि प्र णोनुवुर्गिरः ।
इन्द्र वत्सं न मातरः ॥ २५ । २५

हे गौओं के स्वामी! तुम हमारी कामनाओं को असंख्य गौ, अश्व आदि से पूर्ण करो ॥ २१ ॥ हे स्तोताओ! गौ के लिए घास जैसे सुख देता है, वैसे ही सोम के संस्कृत होने पर इन्द्र की स्तुति भी सुख देने वाली होती है। तुम शत्रु-जेता इन्द्र का यश गाओ ॥ २२ ॥ इन्द्र जब स्तुतियों को सुनते हैं, तब गौओं सहित अन्न देने में नहीं रुकते ॥ २३ ॥ कुशिक के असंख्य गौओं वाले गोष्ठ में जब इन्द्र पहुँचे तब उन्होंने अपनी बुद्धि से ही गौओं को प्रकट कर दिया ॥ २४ ॥ हे इन्द्र! गौएं जैसे अपने बछड़ों की ओर बारम्बार जाती हैं, वैसे ही यह स्तुतियाँ भी बारम्बार तुम्हारी ओर गमन करती हैं ॥ २५ ॥ [१८]

दूणाशं सख्यं तव गौरसि वीर गव्यते । अश्वो अश्वायते भव ॥ २६
स मन्दस्वा ह्यन्धसो राधसे तन्वा महे । न स्तोतारं निदे करः ॥ २७
इमा उ त्वा सुतेसुते नक्षन्ते गिर्वणो गिरः । वत्सं गावो न धेनवः ॥ २८
पुरूतमं पुरूणां स्तोतॄणां विवाचि । वाजेभिर्वाजयताम् ॥ २९
अस्माकमिन्द्र भूतु ते स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
अस्मान्राये महे ।

वायर्से जनान् वृषभेव मन्युना घृषौ मीळ्ह ऋचीषम ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने तनूष्वप्सु सूर्ये ॥ ४
इन्द्र ज्येष्ठं न आ भरँ ओजिष्ठं पपुरि श्रवः ।
येनेमे चित्र वज्रहस्त रोदसी ओभे सुशिप्र प्राः ॥ ५ ॥२७

हम स्तोता तुम्हें रक्षा के निमित्त आहूत करते हैं । तुम साधु जन की रक्षा करने वाले हो । शत्रु को जीतने के लिए तुम्हारा ही आह्वान किया जाता है ॥ १ ॥ हे वज्रिन् ! युद्ध में जीतने वाले को जैसे तुम प्रचुर धन प्राप्त कराते हो, वैसे ही हमारी स्तुति से प्रसन्न होकर हमें भी और रथ वाहक अश्व दो, क्योंकि तुम शत्रुओं को नष्ट करने में समर्थ हो ॥ २ ॥ शत्रु-हन्ता इन्द्र का हम आह्वान करते हैं । हे इन्द्र ! संग्राम भूमि मेंह में समृद्ध करो ॥३॥ हे इन्द्र ! तुम श्रद्धा में कहे अनुसार रूप वाले हो । तुम घोर संग्राम में शत्रुओं पर वृषभ के समान आक्रमण करो और हमारे रक्षक होओ । हम सम्मान सहित बहुत समय तक सूर्य दर्शन करते रहें ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्वर्ग और पृथिवी के पोषक हो । तुम हमारे पास अत्यन्त बल बढ़ाने वाला श्रेष्ठ धन लाओ ॥५॥ [२७]

त्वामुग्रमवसे चर्षणीसहं राजन्देवेषु हूमहे ।
विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसोऽमित्रान्सुषहान्कृधि ॥ ६
यदिन्द्र नाहुषीष्वाँ ओजो नृम्णं च कृष्टिषु ।
यद्वा पञ्च क्षितीनां द्युम्नमा भर सत्रा विश्वानि पौंस्या ॥ ७
यद्वा तृक्षौ मघवन् द्रुह्यावा जने यत्पूरौ कच्च वृष्ण्यम् ।
अस्मभ्यं तद्रिरीहि सं नृषाह्येऽमित्रान्पृत्सु तुर्वणे ॥ ८
इन्द्र त्रिधातु शरणं त्रिवरूथं स्वस्तिमत् ।
छर्दिर्यच्छ मघवद्भ्यश्च मह्यं च यावया दिद्युमेभ्यः ॥
ये गव्यता मनसा शत्रुमादभुरभिप्रघ्नन्ति धृष्णुया ।
अध स्मा नो मघवन्निन्द्र गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव ॥ १० ॥ २८

हे इन्द्र ! शत्रु से रक्षा के लिए तुम्हें आहूत करते हैं । तुम सब से बड़े और शत्रुजेता हो । सब राक्षसों को हमसे दूर कर विजय प्राप्त करा

हे इन्द्र ! जो बल और धन तथा अन्न मनुष्यों में विद्यमान है, वह हमें प्राप्त कराओ ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! युद्ध में हम शत्रुओं पर विजय पावें । तुम वक्षु, द्राह्य और पुरु का समस्त बल हमें दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हविदाता यजमानों को और मुझे शीत, ताप, वर्षा से सुरक्षित रखने वाला घर दो और शत्रुओं के सब हिंसक आयुधों को मुझ से दूर रखो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जिन्होंने गौऐं छीनने के लिए हम पर शत्रु के समान आक्रमण किया, उनसे रक्षा करने को आओ ॥ १० ॥ [२८]

अध स्मा नो वृधे भवेन्द्र नायमवा युधि ।
यदन्तरिक्षे पतयन्ति पर्णिनो दिद्यवस्तिग्ममूर्धानः ॥ ११
यत्र शूरासस्तन्वो वितन्वते प्रिया शर्म पितृणाम् ।
अध स्मा यच्छ तन्वे तने च छर्दिरचित्तं यावय द्वेषः ॥ १२
यदिन्द्र सर्गे अर्वतश्चोदयासे महाधने ।
असमने अध्वनि वृजिने पथि श्येनाँ इव श्रवस्यतः ॥ १३
सिन्धूरिव प्रवण आशुया यतो यदि क्लोशमनु ष्वणि ।
आ ये वयो न वर्वृतत्यामिषि गृभीता बाह्वोर्गवि ॥ १४ ॥ २९

हे इन्द्र ! धन दो । शत्रु के आक्रमण करने पर उनके बाणों को हमारे वीर रोकते हैं, तुम उनकी रण-क्षेत्र में रक्षा करना ॥ ११ ॥ शत्रु के आक्रमण के कारण जब लोग अपने पैतृक स्थानों को छोड़ कर भागते हैं, उस समय हमें और हमारी संतान को रक्षार्थ कवच प्रदान करना और शत्रुओं को भगाना ॥ १२॥ जब महायुद्ध हो तब तुम हमारे अश्वादि को श्येन के समान रणक्षेत्र में ले जाना ॥ १३ ॥ अश्व भय से हिनहिनाते हैं, फिर भी वे नदियों के समान संग्राम भूमि में गौओं की प्राप्ति के लिए बारम्बार दौड़ते हैं ॥ १४ ॥ [२९]

४७ सूक्त

(ऋषि-गर्गः । देवता—सोमः, इन्द्रः, रथः, दानस्तुति,दुन्दुभिः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, बृहती, गायत्री)

स्वादुष्किलायं मधुमाँ उतायं तीव्रः किलायं रसवाँ उतायम् ।

उतो न्वस्य पपिवांसमिन्द्रं न कश्चन सहत आहवेषु ॥ १
अयं स्वादुरिह मदिष्ठ आस यस्येन्द्रो वृत्रहत्ये ममाद ।
पुरूणि यश्च्यौत्ना शम्बरस्य वि नवतिं नव च देह्यो हन् ॥ २
अयं मे पीत उदियर्ति वाचमयं मनीषामुशतीमजीगः ।
अयं षळुर्वीरमिमीत धीरो न याभ्यो भुवनं कच्चनारे ॥ ३
अयं स यो वरिमाणं पृथिव्या वर्ष्माणं दिवो अकृणोदयं सः ।
अयं पीयूषं तिसृषु प्रवत्सु सोमो दाधारोर्वन्तरिक्षम् ॥ ४
अयं विदच्चित्रदृशीकमर्णः शुक्रसद्मनामुषसामनीके ।
अयं महान्महता स्कम्भनेनोद् द्यामस्तभ्नाद् वृषभो मरुत्वान् ॥ ५।१०

यह सोम सुस्वादु और मधुर है। इन्द्र इसे पीते हैं। इनके सामने संग्राम में कोई नहीं टिकता ॥ १ ॥ इस रस के पीने के पश्चात् सोम ने हर्ष प्रदान की और वृत्र-वध के लिये बल दिया। शम्बर के निन्यानवे नगरों को भी नष्ट किया ॥ २ ॥ यह सोमरस मेरे वाक्य को स्फुटित करता है। यह इच्छित बुद्धि देता है। इसी सोम ने स्वर्ग, पृथिवी, दिवस, रात्रि, जल और ओषधि की रचना की है ॥ ३ ॥ इसी सोम ने पृथिवी को विस्तृत और स्वर्ग को दृढ़ किया है। इसी ने ओषधि, जल और गौ में रस उत्पन्न किया। इसी ने अन्तरिक्ष को धारण किया है ॥ ४ ॥ उषा के पूर्व यही सोम सूर्य की ज्योति को प्रकट करता और मरुद्गण के साथ स्वर्ग लोक को धारण करता है ॥ ५ ॥ [१८]

धृषत्पिब कलशे सोममिन्द्र वृत्रहा शूर समरे वसूनाम् ।
माध्यंदिने सवन आ वृषस्व रयिस्थानो रयिमस्मासु धेहि ॥ ६
इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य प्र नो नय प्रतरं वस्यो अच्छ ।
भवा सुपारो अतिपारयो नो भवा सुनीतिरुत वामनीतिः ॥ ७
उरुं नो लोकमनु नेषि विद्वान्त्स्वर्वज्ज्योतिरभयं स्वस्ति ।
ऋष्वा त इन्द्र स्थविरस्य बाहू उप स्थेयाम शरणा बृहन्ता ॥ ८
वरिष्ठे न इन्द्र वन्धुरे धा वहिष्ठयोः शतावन्नश्वयोरा ।

इषमा वक्षीषां वर्षिष्ठां मा नस्तारीन्मघवन्रायो अर्यः ॥ ९
इन्द्र मृळ मह्य जीवातुमिच्छ चोदय धियमयसो न धाराम् ।
यत्किञ्चाहं त्वायुरिदं वदामि तज्जुषस्व कृधि मा देववन्तम् ॥ १०।३१

हे इन्द्र ! धन के लिए आरम्भ किए युद्ध में तुम शत्रुओं को मारो । इस कलश में रखे सोम-रस का पान करो । हे धन के पात्ररूप इन्द्र ! हमें धन प्रदान करो ॥६॥ हे इन्द्र ! तुम मार्ग-रक्षक के समान आगे बढ़ कर हमको देखना और धन लेकर आना । तुम शत्रु से हमारी रक्षा करो और हमें इच्छित धन में प्रतिष्ठित करो ॥७ ॥ हे इन्द्र ! तुम ज्ञानी हो । हमें विस्तीर्ण लोक में बाधाओं से निकाल कर लेजाओ । हम तुम्हारी भुजाओं पर रक्षा के निमित्त आश्रित हुए हैं ॥८॥ हे इन्द्र ! तुम अपने विस्तृत रथ पर हमें चढ़ाओ तुम हमारे लिए श्रेष्ठ अन्न प्राप्त कराओ । अन्य कोई धनी धन में हमसे न बढ़ सके ॥९॥ हे इन्द्र ! मेरा मङ्गल करो । मेरी आयु वृद्धि के लिए प्रसन्न होओ । मेरी बुद्धि को तीव्र करो । मेरी प्रार्थना को ग्रहण करो । सब देवता मेरे रक्षक हों ॥ १० ॥ [३१]

त्रातारमिन्द्रमवितारमिन्द्रं हवेहवे सुहवं शूरमिन्द्रम् ।
ह्वयामि शक्रं पुरुहूतमिन्द्रं स्वस्ति नो मघवा धात्विन्द्रः ॥ ११
इन्द्रः सुत्रामा स्ववाँ अवोभिः सुमृळीको भवतु विश्ववेदाः ।
बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु सुवीर्यस्य पतयः स्याम ॥१२
तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।
स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मे आराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ॥ १३
अव त्वे इन्द्र प्रवतो नोर्मिर्गिरो ब्रह्माणि नियुतो धवन्ते ।
उरू न राधः सवना पुरूण्यपो गा वज्रिन्युवसे समिन्दून् ॥ १४
क ईं स्तवत्कः पृणात्को यजाते यदुग्रमिन्मघवा विश्वहावेत् ।
पादाविव प्रहरन्नन्यमन्यं कृणोति पूर्वमपरं शचीभिः ॥ १५ । ३२

इन्द्र शत्रुओं से रक्षा करने वाले और अभीष्ट पूर्ण करने वाले हैं । सब कर्मों में समर्थ उन्हीं इन्द्र का यज्ञों में आह्वान करता हूँ । वे इन्द्र मेरी

वृद्धि करें ॥११॥ ऐश्वर्यवान् इन्द्र अपने रक्षा-साधनों से हमारा कल्याण करते हैं, वही हमारे शत्रुओं को मार कर हमारा भय दूर करते हैं। उनके प्रसन्न होने पर हम अत्यन्त बलवान बनें ॥१२॥ उन इन्द्र के हम कृपा-पात्र हों। हमारे रक्षक इन्द्र हमारे वैरियों को दूर से जीतें ॥१३॥ हे इन्द्र! नीचे की ओर जाने वाले जल के समान तुम्हारी ओर स्तुतियाँ और सोम गमन करते हैं। तुम जल, दूध और सोम-रस को भले प्रकार मिश्रित करते हो ॥१४॥ कौन मनुष्य इन्द्र की स्तुति करने में समर्थ है? इन्द्र अपनी शक्ति को स्वयं जानते हैं। जैसे मार्ग गामी पुरुष के गमनकाल में पैर आगे पीछे होते हैं, वैसे ही इन्द्र अपने बुद्धि-बल से स्तोता को आगे पीछे रहने वाला करते हैं ॥१५॥ [१२]

शृण्वे वीर उग्रमुग्रं दमायन्नन्यमन्यमतिनेनीयमानः ।
एधमानद्विळुभयस्य राजा चोष्कूयते विश इन्द्रो मनुष्यान् ॥ १६
परा पूर्वेषां सख्या वृणक्ति वितर्तुराणो अपरेभिरेति ।
अनानुभूतीरवधून्वानः पूर्वीरिन्द्रः शरदस्तर्तरीति ॥ १७
रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय ।
इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश ॥ १८
युजानो हरिता रथे भूरि त्वष्टेह राजति ।
को विश्वाहा द्विषतः पक्ष आसत उतासीनेषु सूरिषु ॥ १९
अगव्यूति क्षेत्रमागन्म देवा उर्वी सती भूमिरंहूरणाभूत् ।
बृहस्पते प्र चिकित्सा गविष्टावित्था सते जरित्र इन्द्र पन्थाम् ॥ २०।११

इन्द्र शत्रु का दमन करते और स्तोता के स्थान को परिवर्तित करते हैं। वे अपने पराक्रम के लिए प्रसिद्ध हैं। वे ऐश्वर्यवान् इन्द्र रक्षा के निमित्त अपने उपासकों को बारम्बार आकृष्ट करते हैं ॥१६॥ इन्द्र, अपनी उपासना न करने वालों को त्याग कर अपने उपासकों के पास रहते हैं ॥१७॥ इन्द्र के तीन रूप पृथक्-पृथक् प्रकट होते हैं। वे अनेक रूप धारण कर यजमानों के पास जाते हैं। इन इन्द्र के रथ में सहस्र अश्व योजित होते हैं ॥

रथ में अश्वों को योजित कर इन्द्र तीनों लोकों में प्रकट होते हैं। प्रतिदिन कौन-सा स्तोता अन्य स्तोताओं के मध्य जाकर उनकी रक्षा करता है ? ॥१७॥ हे देवताओ ! हम गौओं से हीन देश में आ पहुँचे हैं। विस्तीर्ण पृथिवी दस्युओं को भी आश्रय प्रदान करती है। हे बृहस्पते ! तुम हमें गौओं की खोज में प्रेरित करो। हे इन्द्र ! अपने मार्ग से हटे हुए उपासक को श्रेष्ठ मार्ग पर लाओ ॥ २० ॥ [३३]

दिवेदिवे सदृशीरन्यमर्द्धं कृष्णा असेधदप सद्मनो जाः ।
अहन्दासा वृषभो वस्नयन्तोदव्रजे वर्चिनं शम्वरं च ॥ २१
प्रस्तोक इन्नु राधसस्त इंद्र दश कोशयीर्दश वाजिनोऽदात् ।
दिवोदासादतिथिग्वस्य राधः शाम्वरं वसु प्रत्यग्रभीष्म ॥ २२
दशाश्वान्दश कोशान्दश वस्त्राधिभोजना ।
दशो हिरण्यपिण्डान्दिवोदासादसानिषम् ॥ २३
दश रथान्प्रष्टिमतः शतं गा अथर्वभ्यः । अश्वथः पायवेऽदात् ॥ २४
महि राधो विश्वजन्यं दधानान् भरद्वाजान्त्साञ्जयो
अभ्ययष्ट ॥ २५ । ३४

सूर्यात्मक इन्द्र दिन में प्रकाश कर, अन्धकार को नष्ट करते हैं। इन्द्र ने शम्बर और वर्ची नामक दस्युओं को मारा था ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं को प्रस्तोक ने दश स्वर्ण कोश और दश अश्व दिए थे। अतिथिग्व ने शम्बर के जिस धन को जीता था, वही धन हमने दिवोदास से प्राप्त किया है ॥२२॥ दिवोदास से मैंने दश स्वर्ण-कोश, दश अश्व, वस्त्र और अभीष्ट अन्न सहित सोने के दस पिण्ड प्राप्त किए हैं ॥२३॥ पायु के लिए मेरे भ्राता अश्वत्थ ने अश्वों सहित दश रथ तथा अथर्वाओं को एक सौ गौऐं दीं ॥२४॥ सब के हित के लिए भरद्वाज के पुत्र ने सब धन ग्रहण किये और सृञ्जय के पुत्र ने उनका पूजन किया ॥२५॥ [३४]

वनस्पते वीड्वङ्गो हि भूया अस्मत्सखा प्रतरणः सुवीरः ।
गोभिः सन्नद्धो असि वीळयस्वास्थाता ये जयतु जेत्वानि ॥ २६

४८ सूक्त

(ऋषि—शंयुर्बार्हस्पत्यः । देवता—अग्निः मरुतः मरुतां लिङ्गोक्ता वा पूषा, पृश्निर्द्यावाभूमी । छन्द-बृहती, जगती, त्रिष्टुप, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

यज्ञायज्ञा वो अग्नये गिरागिरा च दक्षसे ।
प्रप्र वयममृतं जातवेदसं प्रियं मित्रं न शंसिषम् ॥१
ऊर्जो नपातं स हिनायमस्मयुर्दाशेम हव्यदातये ।
भुवद् वाजेष्वविता भुवद्वृध उत त्राता तनूनाम् ॥२
वृषा ह्यग्ने अजरो महान्विभास्यर्चिषा ।
अजस्रेण शोचिषा शोशुचच्छुचे सुदीतिभिः सु दीदिहि ॥३
महो देवान्यजसि यक्ष्यानुषक्तव क्रत्वोत दंसना ।
अर्वाचः सीं कृणुह्यग्नेऽवसे रास्व वाजोत वंस्व ॥४
यमापो अद्रयो वना गर्भमृतस्य पिप्रति ।
सहसा यो मथितो जायते नृभिः पृथिव्या अधि सानवि ॥५ ।१

हे स्तोताओ ! अग्नि की बारम्बार स्तुति करो । वे सर्वद्रष्टा, मित्र के समान अनुकूल और अविनाशी हैं ॥ १ ॥ हम हव्य वाहक अग्नि को हवि देते हैं । वे रणक्षेत्र में हमारी रक्षा करें, हमारे पुत्रों की रक्षा करें और हमारी समृद्धि करें ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम अभीष्ट दायक, महान् एवं तेजस्वी हो । तुम अपने प्रकाश से हमें भी प्रकाशित करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के लिए यज्ञ करने वाले हो । अतः हमारे यज्ञ में भी देवताओं को हवि दो । अपनी बुद्धि और कर्म के द्वारा हमारे रक्षक देवताओं को यहाँ लाओ तुम हमें अन्न दो और हमारे हव्य का भक्षण करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम यज्ञ के गर्भ रूप हो । तुम्हें सोम में मिश्रित करने वाले जल, अभिषवण प्रस्तर और अरणि पुष्ट करते हैं । ऋत्विजों द्वारा तुम्हारा मन्थन होता है तब तुम पृथिवी के अत्यन्त श्रेष्ठ स्थान यज्ञ में उत्पन्न होते हो ॥ ५ ॥ [१]

आ यः पप्रौ भानुना रोदसी उभे धूमेन धावते दिवि ।
तिरस्तमो ददृश ऊर्म्यास्वा श्यावास्वरुषो वृषा श्यावा अरुषो वृषा ॥६

बृहद्भिरग्ने अर्चिभिः शुक्रेण देव शोचिषा ।
भरद्वाजे समिधानो यविष्ठ्य रेवन्नः शुक्र दीदिहि द्युमत्पावक दीदिहि॥७
विश्वासां गृहपतिर्विशामसि त्वमग्ने मानुषीणाम् ।
शतं पूर्भिर्यविष्ठ पाह्यंहसः समेद्धारं शतं हिमाः स्तोतृभ्यो ये च ददति ॥८
त्वं नश्चित्र ऊत्या वसो राधांसि चोदय
अस्य रायस्त्वमग्ने रथीरसि विदा गाधं तुचे तु नः ॥९
पर्षि तोकं तनयं पर्तृभिष्ट्वमदब्धैरप्रयुत्वभिः ।
अग्ने हेळांसि दैव्या युयोधि नोऽदेवानि ह्वरांसि च ॥१० ।२

जो अग्नि अपने तेज से स्वर्ग और पृथिवी को परिपूर्ण करते हैं, जो धुँए के साथ अन्तरिक्ष में उठते हैं, वे अग्नि रात्रि के अन्धकार को दूर करते हैं। यही तेजस्वी अग्नि कामनाओं की वर्षा करने वाले हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम हमारे भ्राता भरद्वाज द्वारा प्रदीप्त होकर हमें धन दो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम गृह स्वामी हो, मैं तुम्हें सौ हेमन्त ऋतुओं तक प्रदीप्त करूँगा। तुम पाप से मेरी रक्षा करो और अपने स्तोता को अन्न देने वाले यजमान की भी रक्षा करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! तुम हमारे प्रति धन प्रेरित करो और हमारे पुत्रादि को यशस्वी बनाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने! हमारे पुत्र-पौत्रादि का पालन करो। हमारे प्रति देवताओं का जो क्रोध हो अथवा मनुष्यों का रोष हो उसे दूर करो ॥ १० ॥   [२]

आ सखायः सबर्दुघां धेनुमजध्वमुप नव्यसा वचः ।
सृजध्वमनपस्फुराम् ॥११
या शर्धाय मारुताय स्वभानवे श्रवोऽमृत्यु धुक्षत ।
या मृळीके मरुतां तुराणां या सुम्नैरेवयावरी ॥१२
भरद्वाजायाव धुक्षत द्विता । धेनुं च विश्वदोहसमिषं च विश्वभोजसम् ॥१३
तं व इन्द्रं न सुक्रतुं वरुणमिव मायिनम् ।
अर्यमणं न मन्द्रं सृप्रभोजसं विष्णुं न स्तुष आदिशे ॥१४

त्वेषं शर्धो न मारुतं तुविष्वण्यनर्वाणं पूषणं सं यथा शता ।
सं सहस्रा कारिषच्चर्षणिभ्य आँ आविर्गूळ्हा वसू करत्सुवेदा नो
वसू करत् ॥१५

आ मा पूषन्नुप द्रव शंसिषं नु ते अपिकर्ण आघृणे ।
अघा अर्यो अरातयः ॥१६।३

हे बन्धुओ ! अपने स्तोत्रों के सहित पयस्विनी गौ के पास आगमन करो । फिर उसे इस प्रकार छुड़ाओ जिससे उसकी उसकी हानि न हो ॥ ११ ॥ जो धेनु मरुद्गण की रक्षा के लिए दुग्ध रूप अन्न देती है, जो स्वाधीन तेज वाली और वृष्टि के जलों के साथ सुख की वर्षा करती हुई अंतरिक्ष में विचरण करती है, उसी गौ के पास जाओ ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! भरद्वाज को पयस्विनी गौ और यथेष्ट अन्न के साथ मङ्गल प्रदान करो ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! इन्द्र के कर्मों का तुम अनुष्ठान करते हो, वरुण के समान स्तुत्य हो । विष्णु के समान धनदाता होने से मैं तुम्हारी धन के लिए स्तुति करता हूँ ॥ १४ ॥ मरुद्गण हमें असंख्य धन प्राप्त करावें ॥ १५ ॥ हे पूषन् ! मेरे पास आगमन करो । शत्रुओं को व्यथित करो । मैं भी तुम्हारा यश-गान करता हूँ ॥ १६ ॥

[३]

मा काकम्बीरमुद्वृहो वनस्पतिमशस्तीर्वि हि नीनशः ।
मोत सूरो अह एवा चन ग्रीवा आदधते वेः ॥१७

दृतेरिव तेऽवृकमस्तु सख्यम् । अच्छिद्रस्य दधन्वतः सुपूर्णस्य दधन्वतः॥१८

परो हि मर्त्यैरसि समो देवैरुत श्रिया ।
अभि ख्यः पूषन् पृतनासु नस्त्वमवा नूनं यथा पुरा ॥१९

वामी वामस्य धूतयः प्रणीतिरस्तु सूनृता ।
देवस्य वा मरुतो मर्त्यस्य वेजानस्य प्रयज्यवः ॥२०

सद्यश्चिद्यस्य चर्कृतिः परि द्यां देवो नैति सूर्यः
त्वेषं शवो दधिरे नाम यज्ञियं मरुतो वृत्रहं शवो ज्येष्ठं वृत्रहं शवः ।२
सकृद्ध द्यौरजायत सकृद्भूमिरजायत ।

पृश्न्या दुग्धं सकृत्पयस्तदन्यो नानु जायते ॥२२ ।४

हे पूषन् ! वनस्पति का नाश मत करना। मेरे निन्दकों को मारो। मेरे शत्रु मुझे व्याध के समान न बाँध सकें ॥ १७ ॥ हे पूषन् ! तुम्हारी मित्रता सदा बनी रहे ॥ १८ ॥ हे पूषन् ! तुम धन-दान में सब देवताओं के समान हो। युद्ध में हम पर अनुग्रह-दृष्टि रखना। पहले जैसे तुमने हमारी रक्षा की थी, वैसे ही अब भी रक्षा करो ॥ १९ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी जो वाणी यजमानों को इच्छित धन प्रदान करती है, वही वाणी हमारा पथ-प्रदर्शन करे ॥ २० ॥ सूर्य के समान ही मरुद्गण के सब कार्य अन्तरिक्ष में व्याप्त होते हैं। वे मरुद्गण पूजनीय और शत्रु हननकारी बल धारण करते हैं ॥ २१ ॥ स्वर्ग और पृथिवी एक बार ही उत्पन्न हुए। मरुद्गण की माता गौ से एक बार ही दूध दुहा गया। उस समय अन्य कुछ उत्पन्न नहीं हुआ ॥ २२ ॥ [४]

४९ सूक्त

(ऋषि—ऋजिश्वा। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः उष्णिक्, जगती)

स्तुषे जनं सुव्रतं नव्यसीभिर्गीर्भिर्मित्रावरुणा सुम्नयन्ता ।
त आ गमन्तु त इह श्रुवन्तु सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निः ॥१
विशोविश ईड्यमध्वरेष्वदृप्तक्रतुमरतिं युवत्योः ।
दिवः शिशुं सहसः सूनुमग्निं यज्ञस्य केतुमरुषं यजध्यै ॥२
अरुषस्य दुहितरा विरूपे स्तृभिरन्या पिपिशे सूरो अन्या ।
मिथस्तुरा विचरन्ती पावके मन्म श्रुतं नक्षत ऋच्यमाने ॥३
प्र वायुमच्छा बृहती मनीषा बृहद्रयिं विश्ववारं रथप्राम् ।
द्युतद्यामा नियुतः पत्यमानः कविः कविमियक्षसि प्रयज्यो ॥४
स मे वपुश्छदयदश्विनोर्यो रथो विरुक्मान्मनसा युजानः ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥५ ।५

मैं अभिनव स्तोत्र द्वारा मित्रावरुण की स्तुति करता हूँ। वे इस यज्ञ में हमारे आह्वान को सुनें ॥ १ ॥ अग्नि प्रत्येक यज्ञ में पूजनीय हैं, वे निर-हंकार, स्वर्ग पृथिवी के स्वामी, यज्ञ के ध्वजा रूप हैं, उन अग्नि का यजन करने की यजमान को प्रेरणा करता हूँ ॥ २ ॥ सूर्य की दो कन्याऐं दिन और रात्रि हैं। इनमें से एक सूर्य के द्वारा प्रकाशित और दूसरी नक्षत्रों द्वारा दम-कती है, यह दोनों हमारी स्तुति को सुनें ॥ ३ ॥ हमारी स्तुतियाँ वायु देवता के समक्ष गमन करें। हे अश्वों के स्वामी मरुतो ! तुम स्तोता को धन द्वारा बढ़ाओ ॥ ४ ॥ मन के द्वारा योजित अश्विद्वय का रथ मेरे देह की रक्षा करे। हे अश्विद्वय ! तुम उस पर चढ़ कर स्तोता का अभीष्ट पूर्ण करने को आओ ॥ ५ ॥

(५)

पर्जन्यवाता वृषभा पृथिव्याः पुरीषाणि जिन्वतमप्यानि ।
सत्यश्रुतः कवयो यस्य गीर्भिर्जगतः स्थातर्जगदा कृणुध्वम् । ६
पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात् ।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥७
पथस्पथः परिपतिं वचस्या कामेन कृतो अभ्यानळ्र्कम् ।
स नो रासच्छुरुधश्चन्द्राग्रा धियंधियं सोषधाति प्र पूषा ॥८
प्रथमभाजं यशसं वयोधां सुपाणिं देवं सुगभस्तिमृभ्वम् ।
होता यक्षद्यजतं पस्त्यानामग्निस्त्वष्टारं सुहवं विभावा ॥९
भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धता रुद्रमक्तौ ।
बृहन्तमृष्वमजरं सुषुम्नमृधग्घुवेम कविनेषितासः ॥१० ।६

हे पर्जन्य और वायो ! तुम अन्तरिक्ष से जल प्रेरित करो। हे मरुद्गण ! जिस पर तुम प्रसन्न होते हो उसके सभी मनुष्य समृद्ध होते हैं ॥ ६ ॥ विचित्र अन्न वाली देवी सरस्वती हमारे यज्ञानुष्ठान का निर्वाह करें। वे प्रसन्न होकर देवांगनाओं सहित स्तोता को श्रेष्ठ घर और कल्याण दें ॥७॥ हे स्तोता ! पूषा के समक्ष जाओ। वे हमें सुवर्ण शृंग वाली गौऐं दें और सब कार्यों को सम्पन्न करें। ॥८॥ जो त्वष्टादेव प्रसिद्ध अन्नदाता, सुन्दर हाथ वाले, महान्

और आह्वानीय हैं, अग्निदेव उन्हीं त्वष्टा का यज्ञ करें ॥९॥ हे स्तोता ! अपने श्रेष्ठ स्तोत्रों से रुद्र को प्रसन्न करो। उन्हें दिन में और रात में भी प्रवृद्ध करो ॥१०॥ (६)

आ युवानः कवयो यज्ञियासो मरुतो गन्त गृणतो वरस्याम् ।
अचित्रं चिद्धि जिन्वथा वृधन्त इत्था नक्षन्तो नरो अङ्गिरस्वत् ॥११

प्र वीराय प्र तवसे तुरायाजा यूथेव पशुरक्षिरस्तम् ।
स पिस्पृशति तन्वि श्रुतस्य स्तृभिर्न नाकं वचनस्य विपः ॥१२

यो रजांसि विममे पार्थिवानि त्रिश्चिद्विष्णुर्मनवे बाधिताय ।
तस्य ते शर्मन्नुपदद्यमाने राया मदेम तन्वा तना च ॥१३

तन्नोऽहिर्बुध्न्यो अद्भिरर्कैस्तत्पर्वतस्तत्सविता चनो धात् ।
तदोषधीभिरभि रातिषाचो भगः पुरंधिर्जिन्वतु प्र राये ॥१४

नू नो रयिं रथ्यं चर्षणिप्रां पुरुवीरं मह ऋतस्य गोपाम् ।
क्षयं दाताजरं येन जनान्स्पृधो अदेवीरभि च क्रमाम विश
आदेवीरभ्यश्नवाम ॥१५॥७

हे मरुद्गण ! जहाँ यजमान यज्ञ करता है, वहाँ आगमन करो। तुम वृष्टि जल से वनों की वृद्धि करो ॥११॥ गौओं के झुण्ड को जैसे ग्वालिया घेर चलाता है वैसे ही मरुद्गण की ओर अपने स्तोत्र को भेजो। जैसे अन्तरिक्ष नक्षत्रों द्वारा शोभित है, वैसे ही मरुद्गण स्तोता की स्तुति से अपने देह को सुशोभित करते हैं ॥ १२ ॥ जिन विष्णु ने त्रिपाद पराक्रम से लोकों को नाप लिया था, वह तुम्हारे द्वारा दिए घर में आकर निवास करें और हम धन आदि से युक्त हों ॥ १३ ॥ हमारे स्तोत्रों से स्तुत अहिर्बुध्न्य, पर्वत और सविता हमें जल और अन्न प्रदान करें। विश्वेदेवा और भग देवता भी हमें अन्न धन दें ॥ १४ ॥ हे विश्वेदेवो ! तुम हमें रथ, मनुष्य, पुत्रादि तथा घर और अन्न दो, जिससे हम शत्रुओं को हरावें और देवोपासकों को आश्रय दें ॥ १५ ॥ (७)

हे देवगण ! हमें पुत्रादि से युक्त धन दो । आदित्य, वसु, रुद्र, मरुद्-गण हमारी कामना पूर्ण कर सुखी करें ॥ ११ ॥ रुद्र, सरस्वती, विष्णु, वायु, ऋभुक्षा, श्येन और विधाता हमारा मङ्गल करें पर्जन्य और वायु हमारे अन्न की वृद्धि करें ॥ १२ ॥ दानशील अग्नि हमारे रक्षक हों । समान रूप से प्रसन्न हुए त्वष्टादेव, स्वर्गलोक और समुद्रों सहित पृथिवी हमारी रक्षा करें ॥ १३ ॥ अज एकपाद, अहिर्बुध्न, पृथिवी और समुद्र हमारी स्तुति सुनें । यज्ञ कर्म को सम्पन्न करने वाले और स्तुत्य विश्वेदेवा हमारी रक्षा करें ॥ १४ ॥ भरद्वाज वंशज ऋषि देवताओं की स्तुति करते हैं । हे देवताओ ! तुम अजेय, गृहदाता हो । तुम देव-पत्नियों सहित पूजे जाते हो ॥१५॥ [१०]

५१ सूक्त

(ऋषि—ऋजिश्वा । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः, उष्णिक्, अनुष्टुप्)

उदु त्यच्चक्षुर्महि मित्रयोरां एति प्रियं वरुणयोरदब्धम् ।
ऋतस्य शुचि दर्शतमनीकं रुक्मो न दिव उदिता व्यद्यौत् ॥१
वेद यस्त्रीणि विदथान्येषां देवानां जन्म सनुतरा च विप्रः ।
ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन्नभि चष्टे सूरो अर्य एवान् ॥२
स्तुष उ वो मह ऋतस्य गोपानदितिं मित्रं वरुणं सुजातान् ।
अर्यमणं भगमदब्धधीतीनच्छा वोचे सधन्यः पावकान् ॥३
रिशादसः सत्पतीँरदब्धान्महो राज्ञः सुवसनस्य दातॄन् ।
यूनः सुक्षत्रान्क्षयतो दिवो नॄनादित्यान्याम्यदितिं दुवोयु ॥४
द्यौष्पितः पृथिवि मातरध्रुगग्ने भ्रातर्वसवो मृळता नः ।
विश्व आदित्या अदिते सजोषा अस्मभ्यं शर्म बहुलं वि यन्त ॥५ ।११

सूर्य की प्रसिद्ध और मित्रावरुण की प्रिय ज्योति अन्तरिक्ष में अलंकार के समान सुशोभित है ॥ १ ॥ जो सूर्य तीनों लोकों के ज्ञाता, ज्ञानी और देवताओं के प्राकट्य के जानने वाले हैं, वे सूर्य मनुष्यों के सत्यासत्य के देखने वाले और उपासकों के अभीष्टों को पूर्ण करने वाले हैं ॥ २ ॥ अदिति,

मित्र, वरुण, अर्यमा और भग की मैं स्तुति करता हूँ । इनके कार्य संसार को पवित्र करने वाले हैं ॥ ३ ॥ हे अदिति पुत्रो ! तुम सज्जनों के पालक और दुर्जनों का दमन करने वाले हो । तुम घर देने वाले और ऐश्वर्यवान् हो । मैं अदिति की भी शरण में जाता हूँ ॥ ४ ॥ हे वसुगण ! स्वर्ग, पृथिवी और अग्नि के सहित तुम हमारा मङ्गल करो । हे अदिति और आदित्यो ! तुम हमारा कल्याण करो ॥ ५ ॥ [११]

मा नो वृकाय वृक्ये समस्मा अघायते रीरधता यजत्राः ।
यूयं हि ष्ठा रथ्यो नस्तनूनां यूयं दक्षस्य वचसो बभूव ॥६
मा व एनो अन्यकृतं भुजेम मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ।
विश्वस्य हि क्षयथ विश्वदेवाः स्वयं रिपुस्तन्वं रीरिषीष्ट ॥७
नम इदुग्रं नम आ विवासे नमो दाधार पृथिवीमुत द्याम् ।
नमो देवेभ्यो नम ईश एषां कृतं चिदेनो नमसा विवासे ॥८
ऋतस्य वो रथ्यः पूतदक्षानृतस्य पस्त्यसदो अदब्धान् ।
ताँ आ नमोभिरुरुचक्षसो नॄन्विश्वान्व आ नमे महो यजत्राः ॥९
ते हि श्रेष्ठवर्चसस्त उ नस्तिरो विश्वानि दुरिता नयन्ति ।
सुक्षत्रासो वरुणो मित्रो अग्निरृतधीतयो वक्मराजसत्याः ॥१०।१२

हे देवगण ! तुम हमें वृक वृकी को मत सौंपना । तुम हमारे देह, बल और वाणी के प्रेरक हो ॥ ६ ॥ हे देवताओ ! हम किसी के पाप से दुःख न भोगें । हे वसुगण ! तुम्हारी असहमति वाले अनुष्ठान को हम न करें । हे विश्वेदेवो ! शत्रु की देह नष्ट हो जाय ॥ ७ ॥ स्वर्ग और पृथिवी को नमस्कार ने धारण कर रखा है । देवगण भी नमस्कार के वश में हैं । अतः मैं अपने पापों का प्रायश्चित्त करने के अभिप्राय से नमस्कार करता हूँ ॥ ८ ॥ हे देवगण ! मैं नमस्कारपूर्वक झुक रहा हूँ । तुम यज्ञ के नेता, बली, यज्ञगृह में वास करने वाले और महिमा से सम्पन्न हो ॥ ९ ॥ वे तेजस्वी हैं, वे हमारे पापों को दूर करें । वरुण, मित्र और अग्नि सत्य कर्म वालों के पक्ष में रहते हैं ॥ १० ॥

सुख दें। अग्नि स्तुत्य और आह्वानीय हों ॥ ६ ॥ हे विश्वेदेवो ! मेरे आह्वान को श्रवण करते हुए इन कुशाओं पर विराजमान होओ ॥ ७ ॥ हे देवगण ! जो घृत युक्त हव्य द्वारा तुम्हें आहुति देता है, उसके पास आओ ॥ ८ ॥ अविनाशी विश्वेदेवा हमारी स्तुति सुनकर हमारा कल्याण करें ॥ ९ ॥ यज्ञ की वृद्धि करने वाले विश्वेदेवा अपने-अपने भाग के अनुसार दुग्ध ग्रहण करें ॥ १० ॥ [१८]

स्तोत्रमिन्द्रो मरुद्गणास्त्वष्ट्रमान् मित्रो अर्यमा ।
इमा हव्या जुषन्त नः ॥११
इमं नो अग्ने अध्वरं होतर्वयुनशो यज । चिकित्वान्दैव्यं जनम् ॥१२
विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं मे ये अन्तरिक्षे य उप द्यवि ष्ठ ।
ये अग्निजिह्वा उत वा यजत्रा आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् ॥१३
विश्वे देवा मम शृण्वन्तु यज्ञिया उभे रोदसी अपां नपाच्च मन्म ।
मा वो वचांसि परिचक्ष्याणि वोचं सुम्नेष्विद्वो अन्तमा मदेम ॥१४
ये के च ज्मा महिनो अहिमाया दिवो जज्ञिरे अपां सधस्थे ।
ते अस्मभ्यमिषये विश्वमायुः क्षप उस्रा वरिवस्यन्तु देवाः ॥१५
अग्नीपर्जन्याववतं धियं मेऽस्मिन्हवे सुहवा सुष्टुतिं नः ।
इळामन्यो जनयद् गर्भमन्यः प्रजावतीरिष आ धत्तमस्मे ॥१६
स्तीर्णे बर्हिषि समिधाने अग्नौ सूक्तेन महा नमसा विवासे ।
अस्मिन्नो अद्य विदथे यजत्रा विश्वे देवा हविषि मादयध्वम् ॥१७।१९

मरुद्गण के साथ इन्द्र, त्वष्टा के साथ मित्र और अर्यमा हमारी हव्य-युक्त स्तुतियों को स्वीकार करें ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! देवताओं में जो प्रमुख हैं, उनके निमित्त यज्ञ करो ॥ १२ ॥ हे विश्वेदेवो ! तुम पृथिवी, स्वर्ग या अन्तरिक्ष में जहाँ भी हो, वहीं से हमारा आह्वान श्रवण करो। तुम सब कुशों पर बैठ कर सोम पीकर प्रसन्न होओ ॥ १३ ॥ हे विश्वेदेवो ! स्वर्ग, पृथिवी और जल के पौत्र अग्नि हमारी स्तुति सुनें। तुम जिस स्तोत्र से सहमत न हो, उसे हम न कहें। हम तुम्हारे आत्मीय होकर सुख पावें ॥ १४ ॥ दोनों

लोकों में प्रकट होने वाले देवगण हमको और हमारे पुत्रादि को अन्न प्रदान करें ॥ १५ ॥ हे अग्नि और पर्जन्य ! हमारे यज्ञ के रक्षक होओ। हमारी स्तुति सुनो ! तुम में से एक अन्नदाता और दूसरे संतानदाता हो, अब हमें अन्न और संतान दो ॥ १६ ॥ हे विश्वेदेवो ! अग्नि के दीप्त होने और कुश पर हमारे हव्य और नमस्कारों से तृप्त होओ ॥ १७ ॥ [१६]

५३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—पूषा। छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

वयमु त्वा पथस्पते रथं न वाजसातये। धिये पूषन्नयुज्महि ॥१
अभि नो नर्यं वसु वीरं प्रयतदक्षिणम्। वामं गृहपतिं नय ॥२
अदित्सन्तं चिदाघृणे पूषन्दानाय चोदय। पणेश्चिद्वि म्रदा मनः ॥३
वि पथो वाजसातये चिनुहि वि मृधो जहि। साधन्तामुग्र नो धियः ॥४
परि तृन्धि पणीनामारया हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥५ ॥१७

हे पूषन् ! हम तुम्हें कर्म के लिए और अन्न के लिए रथ के समान अपने सामने करते हैं ॥१॥ हे पूषन् ! मनुष्यों का हितैषी, दानी एक गृहस्थ हमारे यहाँ भेजो ॥ २ ॥ हे पूषन् ! लोभ को दानशील बना कर उसके हृदय की कठोरता मिटाओ ॥ ३ ॥ हे पूषन् ! अन्न लाभ के लिए मार्गों को सरल करो। श-त्रु आदि को नष्ट करो, यज्ञों को सम्पन्न करो ॥ ४ ॥ हे पूषन् ! पणियों के हृ-दय को चीर कर हमारे वश में कर दो ॥ ५ ॥ (१७

वि पूषन्नारया तुद पणेरिच्छ हृदि प्रियम्। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥
आ रिख किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे। अथेमस्मभ्यं रन्धय ॥७
यां पूषन्ब्रह्मचोदनीमारां बिभर्ष्याघृणे।
तया समस्य हृदयमा रिख किकिरा कृणु ॥८
या ते अष्ट्रा गोओपशाघृणे पशुसाधनी। तस्यास्ते र
उत नो गोषणिं धियमश्वसां वाजसामुत। नृवत् कृणुहि

हे पूषन् ! पणियों के हृदयों को विदीर्ण करो। ७
भाव जाग्रत कर मेरे आधीन कर दो ॥ ६ ॥ हे पूषन् ! ..

कठोरता कम करते हुए उन्हें हमारे आधीन करो ॥ ७ ॥ हे पूषन् ! अन्न-प्रेरक प्रतोद धारण कर उससे कृपणों के हृदयों की कठोरता न्यून करो ॥ ८ ॥ हे पूषन् ! तुम अपने जिस अस्त्र से पशुओं को हाँकते हो, उसी अस्त्र से हम अपने हित की याचना करते हैं ॥ ९ ॥ हे पूषन् ! हमारे यज्ञादि कर्म के लिए गौ, अश्व, भृत्य और अन्न प्राप्त कराओ ॥ १० ॥ (१८)

५४ सूक्त

तुम इन्हें अहिंसित रखते सायंकाल इन्हीं के साथ लौटो ॥ ७ ॥ पूषा हमारी स्तुतियों को सुनकर हमारी दरिद्रता को दूर करते हैं। हम उनसे धन माँगते हैं॥ ८ ॥ हे पूषन्! यज्ञ के अवसर पर हम हिंसित न हों। हम तुम्हारी स्तुति करते हुए पूर्ववत् सुरक्षित रहें ॥ ९ ॥ पूषा हमारे गो-धन को कुमार्ग पर से बचावें। वे हमारे अपहृत गो-धन को लौटा लावें ॥ १० ॥ [२०]

५५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—पूषा। छन्द—गायत्री)

एहि वां विमुचो नपादाघृणे सं सचावहे। रथीर्ऋतस्य नो भव ॥१
रथीतमं कपर्दिनमीशानं राधसो महः। रायः सखायमीमहे ॥२
रायो धारास्याघृणे वसो राशिरजाश्व। धीवतोधीवतः सखा ॥३
पूषणं न्वजाश्वमुप स्तोषाम वाजिनम्। स्वसुर्यो जार उच्यते ॥४
मातुर्दिधिषुमब्रवं स्वसुर्जारः शृणोतु नः। भ्रातेन्द्रस्य सखा मम ॥५
आजासः पूषणं रथे निशृम्भास्ते जनश्रियम्।
देवं वहन्तु बिभ्रतः ॥६ ।२१

हे पूषन्! तुम्हारा स्तोता मेरे पास आवे। हम दोनों मिलकर तुम्हें अपने यज्ञ का नेता बनावें ॥ १ ॥ हम महारथी पूषा से धन की याचना करते हैं ॥ २ ॥ हे छाग वाहन्! तुम धन के प्रवाह रूप हो और स्तोता के मित्र हो ॥ ३ ॥ हम उन्हीं पूषा की स्तुति करते हैं, जिन्हें लोग उषा का स्वामी कहते हैं ॥ ४ ॥ रात्रि माता के स्वामी पूषा की हम स्तुति करते हैं। वे उषा-पति सूर्य इन्द्र के भ्राता और हमारे मित्र हों ॥ ५ ॥ रथ में योजित छाग पूषा के रथ का वहन करते हैं। वे उन्हें यहाँ लावें ॥ ६ ॥ [२१]

५६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—पूषा। छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

य एनमादिदेशति करम्भादिति पूषणम्। न तेन देव आदिशे ॥१
उत घा स रथीतमः सख्या सत्पतिर्युजा। इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥२

उतादः परुषे गवि सूरश्चक्रं हिरण्ययम् । न्यैरयद्रथीतमः ॥३
यदद्य त्वा पुरुष्टुत ब्रवाम दस्र मन्तुमः । तत्सु नो मन्म साधय ॥४
इमं च नो गवेषणं सातये सीषधो गणम् । आरात् पूषन्नसि श्रुतः ॥५
आ ते स्वस्तिमीमह आरे अघामुपावसुम् ।
अद्या च सर्वतातये श्वश्च सर्वतातये ॥६ ।२२

घृत युक्त अन्न के सहित पूषा की जो स्तुति करता है, उसे अन्य देवताओं की स्तुति करने की आवश्यकता नहीं होती ॥ १ ॥ महारथी इन्द्र अपने मित्र पूषा की सहायता से वैरियों को मारते हैं ॥ २ ॥ सूर्य के हिरण्यमय रथ के चक्र को पूषा ठीक प्रकार चलाते हैं ॥ ३ ॥ हे पूषन् ! हम जिस धन के लिए तुम्हारी स्तुति करते हैं, वह हमें दो ॥ ४ ॥ हे पूषन् ! आज और कल के अनुष्ठानों में हम उसी रक्षा की कामना करते हैं, जो पाप से दूर और धन के नितांत समीप है ॥ ६ ॥ [२२]

५७ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः देवता—पूषा । छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

इन्द्रा नु पूषणा वयं सख्याय स्वस्तये । हुवेम वाजसातये ॥१
सोममन्य उपासदत्पातवे चम्वोः सुतम् । करम्भमन्य इच्छति ॥२
अजा अन्यस्य वह्नयो हरी अन्यस्य सम्भृता ।
ताभ्यां वृत्राणि जिघ्नते ॥३
यदिन्द्रो अनयद्रितो महीरपो वृषन्तमः । तत्र पूषाभवत्सचा ॥४
तां पूष्णः सुमतिं वयं वृक्षस्य प्र वयामिव । इन्द्रस्य चा रभामहे ॥५
उत्पूषणं युवामहेऽभीशूँरिव सारथिः । मह्या इन्द्रं स्वस्तये ॥६ ।२३

हे इन्द्र और पूषन् ! हम अपनी मङ्गल-कामना करते हुए तुम्हारी मित्रता चाहते और अन्न-लाभ के लिए आहूत करते हैं ॥ १ ॥ तुममें से इन्द्र सोम पीने के लिए और पूषा सत्तू युक्त अन्न के लिए जाते हैं ॥२॥ इनमें पूषा के वाहन छाग और इन्द्र के वाहन अश्व हैं । इन्द्र अपने उन्हीं अश्वों पर जाकर

वृत्र का हनन करते हैं ॥ ३ ॥ जब इन्द्र महावृष्टि करते हैं, तो पूषा सहायता देते हैं ॥ ४ ॥ पूषा और इन्द्र की कृपापूर्ण रक्षा पर हम उसी प्रकार आश्रित हैं, जैसे सुदृढ़ वृक्ष की शाखा पर रह सकते हैं ॥ ५ ॥ सारथि जैसे लगाम को खींचता है, वैसे ही हम भी अपने मङ्गल के लिए पूषा और इन्द्र को अपनी ओर आकर्षित करते हैं ॥ ६ ॥ [२१]

५८ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–पूषा । छन्द–त्रिष्टुप्, जगती)

शुक्रं ते अन्यद्यजतं ते अन्यद्विषुरूपे अहनी द्यौरिवासि ।
विश्वा हि माया अवसि स्वधावो भद्रा ते पूषन्निह रातिरस्तु ॥१
अजाश्वः पशुपा वाजपस्त्यो धियञ्जिन्वो भुवने विश्वे अर्पितः ।
अष्ट्रां पूषा शिथिरामुद्वरीवृजत् संचक्षाणो भुवना देव ईयते ॥२
यास्ते पूषन्नावो अन्तः समुद्रे हिरण्ययीरन्तरिक्षे चरन्ति ।
ताभिर्यासि दूत्यां सूर्यस्य कामेन कृत श्रव इच्छमानः ॥३
पूषा सुबन्धुर्दिव आ पृथिव्या इळस्पतिर्मघवा दस्मवर्चाः ।
यं देवासो अददुः सूर्यायै कामेन कृतं तवसं स्वञ्चम् ॥४ ।२४

हे पूषन् ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले हो और रात्रि केवल यज्ञ योग्य है । इस प्रकार दिन और रात्रि दोनों ही विपरीत रूप वाले हैं । हे पूषन् ! तुम सूर्य के समान प्रकाशित हो, क्योंकि तुम दाता और ज्ञानी हो । तुम्हारा कल्याण को वहन करने वाला दान प्रकट हो ॥ १ ॥ जिन पूषा का वाहन छाग है, जो पशुओं के पालन करने वाले हैं और जो स्तोताओं को प्रीति प्रदान करते हैं तथा सभी लोकों के ऊपर स्थापित हैं, वही पूषा सूर्य-रूप से सब प्राणियों को प्रकाशित करते हुए अन्तरिक्ष में गमन करते हैं ॥ २ ॥ हे पूषन् ! तुम्हारी सभी नौकाएं अन्तरिक्ष में चलती हैं । उनके द्वारा तुम दूतकार्य करते हुए हवि कामना करते हो । स्तोता तुम्हें हव्य-दान द्वारा प्रसन्न करते हैं ॥ ३ ॥ पृथिवी और स्वर्ग के श्रेष्ठ बन्धु पूषा अन्नों के स्वामी हैं । वे ऐश्वर्यशाली और सुन्दर गमन वाले हैं ॥ ४ ॥

५६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द—बृहती, अनुष्टुप्, उष्णिक्)

प्र नु वोचा सुतेषु वां वीर्या यानि चक्रथुः ।
हतासो वां पितरो देवशत्रव इन्द्राग्नी जीवथो युवम् ॥१
बळित्था महिमा वामिन्द्राग्नी पनिष्ठ आ ।
समानो वां जनिता भ्रातरा युवं यमाविहेहमातरा ॥२
ओकिवांसा सुते सचाँ अश्वा सप्ती इवादने ।
इन्द्रान्वग्नी अवसेह वज्रिणा वयं देवा हवामहे ॥३
य इन्द्राग्नी सुतेषु वां स्तवत्तेष्वृतावृधा ।
जोषवाकं वदतः पज्रहोषिणा न देवा भसथश्चन ॥४
इन्द्राग्नी को अस्य वां देवौ मर्तश्चिकेतति ।
विषूचो अश्वान्युयुजान ईयत एकः समान आ रथे ॥५ ।२५

हे इन्द्राग्ने ! सोमाभिषव होने पर हम तुम्हारे बल का वर्णन करते हैं। देवताओं से द्वेष करने वाले राक्षसों को तुमने मार डाला। तुम अविनाशी हो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम्हारे सभी कर्म यथार्थ और विस्तृत हैं। तुम्हारे एक ही पिता हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! अश्व जैसे तृणों की ओर जाते हैं, वैसे ही तुम सोमाभिषव की ओर गमन करते हो। हम तुम्हें अपनी रक्षा के लिए इस यज्ञ में आहूत करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! जो सोमाभिषव के पश्चात् कुत्सित रूप से तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम उसका सोम नहीं पीते ॥४ हे इन्द्राग्ने ! जब तुम दोनों एक रथ पर आरूढ़ होकर गमन करते हो, तब कौन तुम्हारे इस कार्य को जान सकेगा ? ॥ ५ ॥ [२५]

इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः ।
हित्वी शिरो जिह्वया वावदच्चरत्त्रिंशत्पदा न्यक्रमीत् ॥६
इन्द्राग्नी आ हि तन्वते नरो धन्वानि बाह्वो.

मा नो अस्मिन्महाधने परा वर्क्तं गविष्टिषु ॥७
इन्द्राग्नी तपन्ति माघा अर्यो अरातयः ।
अप द्वेषांस्या कृतं युयुतं सूर्यादधि ॥८
इन्द्राग्नी युवोरपि वसु दिव्यानि पार्थिवा ।
आ न इह प्र यच्छतं रयिं विश्वायुपोषसम् ॥९
इन्द्राग्नी उक्थवाहसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ।
विश्वाभिर्गीर्भिरा गतमस्य सोमस्य पीतये ॥१०।२६

हे इन्द्राग्ने ! बिना पाँव की यह उषा प्राणियों के शीर्ष-स्थान को दर्शित कर उनकी जिह्वा से उच्च वाणी प्रकट कराती हुई चलती है ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्ने ! वीर पुरुष अपने धनुष को फैलाते हैं । तुम गौओं की खोज वाले कार्य में हमें मत त्याग देना ॥७॥ हे इन्द्राग्ने ! जो शत्रु हमें व्यथित करते हैं, उन्हें दूर करो और उन्हें सूर्य-दर्शन भी मत होने दो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम दिव्य और पार्थिव सब धनों के स्वामी हो । अतः हमें समस्त धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हमारे सोम-पान के लिए आओ । क्योंकि तुम स्तुतियुक्त आह्वान के सुनने वाले हो ॥ १० ॥   [२६]

सूक्त ६०

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्राग्नी । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री, पंक्तिः, अनुष्टुप्,)

श्नथद्वृत्रमुत सनोति वाजमिन्द्रा यो अग्नी सहुरी सपर्यात् ।
इरज्यन्ता वसव्यस्य भूरेः सहस्तमा सहसा वाजयन्ता ॥१
ता योधिष्टमभि गा इन्द्र नूनमपः स्वरुषसो अग्न ऊळ्हाः ।
दिशः स्वरुषस इन्द्र चित्रा अपो गा अग्ने युवसे नियुत्वान् ॥२
आ वृत्रहणा वृत्रहभिः शुष्मैरिन्द्र यातं नमोभिरग्ने अर्वाक् ।
युवं राधोभिरकवेभिरिन्द्राग्ने अस्मे भवतमुत्तमेभिः ॥३
ता हुवे ययोरिदं पप्ने विश्वं पुरा कृतम् । इन्द्राग्नी न मर्धतः ॥४

उग्रा विघनिना मृध इन्द्राग्नी हवामहे । ता नो मृळात ईदृशे ॥५ ।२७

अन्न की कामना करते हुए जो पुरुष महान् ऐश्वर्य के स्वामी और शत्रु-हन्ता इन्द्राग्नि की उपासना करते हैं वे अन्न पाते और शत्रुओं को मारते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुमने सूर्य और उषा के लिए युद्ध किया। हे इन्द्र तुमने दिशा, गौ, उषा, सूर्य और जल को जगत के साथ जोड़ा। हे अग्ने ! तुमने भी यही कार्य किये हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! शत्रु का हनन करने वाले बल के सहित आगमन करो। तुम श्रेष्ठ धन सहित प्रकट होओ ॥ ३ ॥ जो इन्द्राग्नि अपने स्तोता को नहीं मारते और जिनके वीर कर्म प्रशंसित हैं, मैं उन्हीं इन्द्राग्नि को आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ हम इन्द्राग्नि को आहूत करते हैं, वे हमें युद्ध में सफल करें ॥ ५ ॥ [२७]

हतो वृत्राण्यार्या हतो दासानि सत्पती । हतो विश्वा अप द्विषः ॥६
इन्द्राग्नी युवामिमेभि स्तोमा अनूषत । पिबतं शम्भुवा सुतम् ॥७
या वां सन्ति पुरुस्पृहो नियुतो दाशुषे नरा । इन्द्राग्नी ताभिरा गतम् ॥८
ताभिरा गच्छतं नरोपेदं सवनं सुतम् । इन्द्राग्नी सोमपीतये । ९
तमीळिष्व यो अर्चिषा वना विश्वा परिष्वजत् ।
कृष्णा कृणोति जिह्वया ॥१० ।२८

वे इन्द्राग्नि सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के उपद्रव को नष्ट करते हैं। उन्होंने सब वैरियों को मारा है ॥ ६ ॥ हे इन्द्राग्नि ! यह स्तोता तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम निष्पन्न सोम का पान करो ॥ ७ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हव्यदाता के लिए उत्पन्न अश्वों पर आरूढ़ होकर आगमन करो ॥ ८ हे इन्द्राग्ने ! तुम सोम-पान के लिए हमारे सवन में आगमन करो ॥ ९ ॥ हे स्तोता ! जो अग्नि अपनी शिखा से जङ्गलों को ढक लेते हैं, तुम उन्हीं अग्नि का स्तव करो ॥ १० ॥ [२८)

य इद्ध आविवासति सुम्नमिन्द्रस्य मर्त्यः । द्युम्नाय सुतरा अपः ॥११
ता नो वाजवतीरिष आशून्पिपृतमर्वतः । इन्द्रमग्निं च वोळ्हवे ॥१२
उभा वामिन्द्राग्नी आहुवध्या उभा राधसः सह मादयध्यै ।

ाभा दातारावियां रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे वाम् ॥१३
आ नो गव्येभिरश्व्यैर्वसव्यै रुप गच्छतम् ।
सखायौ देवौ सख्याय शम्भुवेन्द्राग्नी ता हवामहे ॥१४
इन्द्राग्नी शृणुतं हवं यजमानस्य सुन्वतः ।
वीतं हव्यान्या गतं पिबतं सोम्यं मधु ॥१५ ।२६

जो मनुष्यगण इन्द्र के लिए अग्नि में हवि डालते हैं, इन्द्र उनके लिए जल-वृष्टि करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हमें बलकारी अन्न प्रदान करो तथा वेग वाला अश्व भी दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्राग्ने ! मैं तुम दोनों को यज्ञ द्वारा और हव्य द्वारा आहुत करता हूँ । तुम अन्नदाता हो, अन्न-लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ १३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम गौ, अश्व और अपरिमित सम्पत्ति के सहित हमारे अभिमुख होओ । हम तुम्हें बुलाते हैं ॥ १४ ॥ हे इन्द्राग्ने ! सोम वाले यजमान की स्तुति सुनकर हव्य की इच्छा करते हुए सोम पान करो ॥ १५ ॥　　　　(२६)

६१ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—सरस्वती । छन्द—जगती, गायत्री, पंक्तिः ।)

इयमददाद्रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे ।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति ॥१
इयं शुष्मेभिर्बिसखा इवारुजत्सानु गिरीणां तविषेभिरूर्मिभिः ।
पारावतघ्नीमवसे सुवृक्तिभिः सरस्वतीमा विवासेम धीतिभिः ॥२
सरस्वति देवनिदो नि बर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः ।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति ॥३
प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती । धीनामवित्र्य ....

यस्त्वा देवि सरस्वत्युपब्रूते धने हिते । इन्द्रं न वृत्रतूर्ये ॥५ ।३०

सरस्वती ने हविदाता वध्र्यस्व को दिवोदास नामक पुत्र प्रदान किया। उन्होंने अदानशील पणि का शोधन किया। हे सरस्वती, तुम्हारे दान विस्तृत हैं ॥ १ ॥ यह सरस्वती पर्वत के तटों को अपनी लहरों से तोड़ती हैं। हम उन्हीं की सेवा करते हैं ॥ २ ॥ हे सरस्वती! तुमने देव-निन्दकों और त्वष्टा के पुत्र को मारा और मनुष्यों को भूमि देकर जल-वृष्टि की ॥ ३ ॥ अन्नवती सरस्वती, रक्षा करने वाली हैं, वे हमें भले प्रकार तृप्त करें ॥ ४ ॥ इन्द्र के समान तुम्हारी भी जो स्तुति करता है, वही पुरुष धन प्राप्ति वाले संग्राम में जाता है। तुम उसकी रक्षक होओ ॥ ५ ॥ [३०)

त्वं देवि सरस्वत्यवा वाजेषु वाजिनि । रदा पूषेव नः सनिम् ॥६

उत स्या नः सरस्वती घोरा हिरण्यवर्तनिः । वृत्रघ्नी वष्टि सुष्टुतिम् ॥७

यस्या अनन्तो अह्रुतस्त्वेषश्चरिष्णुरर्णवः । अमश्चरति रोरुवत् ॥८

सा नो विश्वा अतिद्विषःस्वसृरन्या ऋतावरी । अतन्नहेव सूर्यः ॥९

उत नः प्रिया प्रियासु सप्तस्वसा सुजुष्टा ।

सरस्वती स्तोम्या भूत् ॥१० ।३१

हे सरस्वती! तुम युद्ध में रक्षा करो। पूषा के समान हमें उपभोग्य धन दो ॥ ६ । शत्रु का नाश करने वाली, रथारूढ़ा सरस्वती हमारे श्रेष्ठ स्तोत्र की रक्षा करें ॥ ७ ॥ इन सरस्वती का वेगवान् जल शब्द करता हुआ जाता है ॥ ८ ॥ सूर्य जैसे दिन को लाते हैं, वैसे ही सरस्वती विजय लेकर अपनी अन्य भगिनियों सहित आती हैं ॥ ९ ॥ सरस्वती की प्राचीन ऋषियों ने सेवा की थी, वह हमारी स्तुति के योग्य हों ॥ १० ॥ [३१]

आपप्रुषी पार्थिवान्युरु रजो अन्तरिक्षम् । सरस्वती निदस्पातु ॥११

त्रिषधस्था सप्तधातुः पञ्च जाता वर्धयन्ती । वाजेवाजे हव्या भूत् ॥१२

प्र या महिम्ना महिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा ।

रथइव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती ॥ ३

सरस्वत्यभि नो नेषि वस्यो माप स्फरीः पयसा मा न आ धक् ।
जुषस्व नः सख्या वेश्या च मा त्वत्क्षेत्राण्यरणानि गन्म ॥१४।३२

जिन सरस्वती ने स्वर्ग-पृथिवी को तेज से पूर्ण किया है, वे हमें निन्दकों से बचावें ॥ ११ ॥ सप्त नदियों वाली सरस्वती संग्राम में आह्वान करने योग्य होती हैं ॥ १२ ॥ यशवती, नदियों में श्रेष्ठ, गुणवती सरस्वती विद्वान् स्तोता की स्तुति के योग्य हैं ॥ १३ ॥ हे सरस्वती ! हमें महान् धन दो । हमें हीन या पीड़ित मत करो । हमारा बन्धुत्व स्वीकार करो । हम निकृष्ट स्थान को प्राप्त न हों ॥ १४ ॥ [३२]

॥ चतुर्थं अष्टक समाप्तम् ॥

पंचम अष्टक

प्रथम अध्याय

६२ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता–अश्विनौ । छन्द– पंक्तिः,त्रिष्टुप्)

स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि ॥१
ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानापो धन्वान्यति याथो अज्रान् ॥२
ता ह त्यद्वर्तिर्यदरध्रमुग्रे त्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य ॥३
ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग् युवाना ॥४
ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५ ।१

शत्रुओं के हराने वाले अश्विद्वय रात्रि का अन्धकार मिटाते हैं । मैं उन्हें स्तुत करता हुआ, बलवान् हूँ ॥ १ ॥ यज्ञ में गमन करने वाले अश्विद्वय अपने तेजों को निर्मित करते हुए अपने अश्वों को मरुभूमि से पार ले जाते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम मन के समान वेग वाले अश्वों के द्वारा स्तोताओं को स्वर्ग की प्राप्ति कराओ । हविदाता यजमान की हिंसा करने वाले को घोर निद्रा में निमग्न करो ॥ ३ ॥ वे अश्विद्वय स्तोता की सुन्दर स्तुतियों के पास आगमन करें । द्वेष शून्य प्राचीन अग्नि उनका यजन करें ॥४ जो स्तुति करने वाले को सुख देते हुए विविध प्रकार का धन देते हैं, उन्हीं अश्विनीकुमारों की मैं स्तुति करता हूँ ॥ ५ ॥ [१]

ता भुज्युं विभिरद्भ्यः समुद्रात्तुग्रस्य सूनुमूहथू रजोभिः ।
अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६
वि जयुषा रथ्या यातमद्रिं श्रुतं हवं वृषणा वध्रिमत्याः ।
दशस्यन्ता शयवे पिप्यथुर्गामिति च्यवाना सुमतिं भुरण्यू ॥७
यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८
य ईं राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद्वचस आनवाय ॥९
अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०
आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते चित्रराती ॥११।२

हे अश्विद्वय ! तुमने ही भुज्यु को रथयुक्त अश्वों द्वारा समुद्र से निकाला ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! रथ के मार्ग में खड़े हुए पर्वत को तोड़ो तुम पुत्र की कामना वाली का आह्वान सुनो । स्तोता की वंध्या गौ को पयस्विनी बनाओ ॥ ७ ॥ द्यावापृथिवी, आदित्यगण, वसुगण, मरुद्गण और अश्विनीकुमारों के उपासकों के प्रति देवताओं का जो भीषण क्रोध हो, उस क्रोध को राक्षस-हनन के कार्य में प्रयुक्त करो ॥ ८ ॥ जो यजमान भुवनपति अश्विनीकुमारों की उपासना करता है, उसे मित्रावरुण जानते हैं। वह यजमान वीर राक्षसों पर आयुध चलाने में समर्थ होता है ॥ ९ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम सारथियुक्त रथ पर आरूढ़ होकर अपत्य-प्रदान के लिए आओ और अपने क्रोध से मनुष्यों के लिए विघ्न उपस्थित करने वालों का सिर काटो ॥ १० हे अश्विनीकुमारो ! तुम हमारे अभिमुख होओ। गौओं के सम्पन्न गोष्ठ का का उद्घाटन करो । मुझे दिव्य धन दो । मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥ ११ ॥

६३ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो वार्हस्पत्यः। देवता-इन्द्रः। अश्विनौ-बृहती, पंक्तिः)
त्रिष्टुप्)

क्त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान् ।
आ यो अर्वाङ् नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥१
अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिवाथो अन्धः ।
परि ह त्यद्वर्तिर्याथो रिषो न यत्परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२
अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३
ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४
अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन्यज्ञियानाम् ॥५ ।३

जहाँ अश्विद्वय निवास करें, वहाँ हवियुक्त पन्द्रहवाँ स्तोत्र उन्हें दूत की तरह प्राप्त करे । इसी स्तोम ने अश्विद्वय को मेरी ओर किया है अश्विनीकुमारो ! तुम स्तुति से प्रसन्न होते हो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! हमारे आह्वान के प्रति आओ । सोम पान कर हमारे घर की शत्रु से रक्षा करो। शत्रु हमारे घर को दूर या पास से भी नष्ट न कर सकें ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! यह अभिषुत सोम तुम्हारे लिए है। कुश बिछाये गये हैं, मैं स्तोता स्तुति कर रहा हूँ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे यज्ञ के निमित्त अग्नि ऊँचे उठते हैं। जो स्तोता तुम्हारा स्तोत्र करता है वह अनेक कर्म करने में समर्थ होता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! सूर्य-पुत्री ने तुम्हारे रथ को सुशोभित किया था। तुम देवताओं की प्रजा के नेतृत्व करने वाले होओ। ॥५॥ [३]

युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥६
आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।

प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७
पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन् ॥८
उत म ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा ।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९
सं वां शता नासत्या सहस्राश्वानां पुरुपन्था गिरे दात् ।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०
आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११ ।४

हे अश्विद्वय ! तुम सूर्या की शोभा के लिए पुष्ट होओ । तुम्हारे अश्व भी शोभा के लिए अनुगमन करते हैं । तुम्हें स्तुतियाँ व्याप्त करें ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! वहनशील तुम्हारे अश्व तुम्हें अन्न की ओर लावें, तुम्हारा रथ अन्न के निमित्त प्रेरित हुआ है ॥ ७ ॥ हे अश्वि-द्वय ! तुम अपरिमित धन वाले हो । हमें स्थिरमना गौ और अन्न दो । तुम्हारे निमित्त स्तोता, स्तोत्र और तुम्हारे लिए सोम रस भी उपस्थित है ॥ ८ ॥ मेरे पास शीघ्रगामिनी दो वडवाएं, सुमीढ की सौ गौएं, पेरुक के पके हुए अन्न हैं । शाण्ड राजा ने अश्विद्वय के स्तोताओं को सुन्दर दश रथ प्रदान किए और शत्रु का नाश करने वाले वीर पुरुष भी दिये ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारे स्तोता को पुरुपन्था राजा ने शत संख्यक और सहस्र संख्यक अश्व दिये । हे अश्विद्वय ! भरद्वाज को भी शीघ्र दो और राक्षसों को नष्ट करो ॥१० हे अश्विनीकुमारो ! मैं विद्वानों सहित श्रेष्ठ मङ्गलमय धन से सुशोभित होऊँ ॥ ११ ॥ [४]

६४ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

उदु श्रिय उषसो रोचमाना अस्थुरपां नोर्मयो रुशन्तः ।
कृणोति विश्वा सुपथा सुगान्यभूदु वस्वी दक्षिणा मघोनी १
भद्रा ददृक्ष उर्विया वि भास्युते शोचिर्भानवो द्यामपप्तन् ।

आविर्वक्षः कृणुषे शुम्भमानोषो देवि रोचमाना महोभिः ॥२
वहन्ति सीमरुणासो रुशन्तो गावः सुभगामुर्विया प्रथानाम् ।
अपेजते शूरो अस्तेव शत्रून् बाधते तमो अजिरो न वोळ्हा । ३
सुगोत ते सुपथा पर्वतेष्ववाते अपस्तरसि स्वभानो ।
सा न आ वह पृथुयामन्नृष्वे रयिं दिवो दुहितरिषयध्यै ॥४
सा वह योक्षभिरवातोषो वरं वहसि जोषमनु ।
त्वं दिवो दुहितर्या ह देवी पूर्वहूतौ मंहना दर्शता भूः ॥५
उत्ते वयश्चिद्वसतेरपप्तन्नरश्च ये पितुभाजो व्युष्टौ ।
अमा सते वहसि भूरि वाममुषो देवि दाशुषे मर्त्याय ॥६ ।५

उज्ज्वल वर्ण वाली उषाऐं जल-तरङ्गों के समान उठती है । यह उषा सब स्थानों को सरलता से जाने योग्य बनाती है । यह उषा धन ऐश्वर्य वाली है ॥ १ ॥ हे उषे ! तुम मङ्गलमयी दिखाई देती हो तुम्हारी रश्मियाँ सुशोभित होरही हैं । तुम सुन्दर शोभामयी होकर प्रकाश प्रदान कर रही हो ॥२॥ रश्मियाँ उषा को वहन करती हैं । शत्रुओं को दूर करती हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! तुम स्वयं प्रकाशित हो । पर्वत और वायु-शून्य प्रदेश भी तुम्हारे लिए सुगम मार्ग हैं । तुम हमें काम्य धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे उषे ! तुम अश्वों पर धन वहन करती हो । तुम पूजनीया हो । मुझे धन प्रदान करो ॥ ५ ॥ हे उषे ! चिड़ियाऐं तुम्हारे प्रकट होने हर घोंसला छोड़ती हैं, उसी समय अन्नोपार्जन करने वाले उठते हैं । तुम हविदाता को धन प्रदान करती हो ॥ ६ ॥ [५]

६५ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—उषा । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

एषा स्या नो दुहिता दिवोजाः क्षितीरुच्छन्ती मानुषीरजीगः ।
या भानुना रुशता राम्यास्वज्ञायि तिरस्तमसश्चिदक्तून् ॥ १
वि तद्ययुररुणयुग्भिरश्वैश्चित्रं भान्त्युषसश्चन्द्ररथाः ।

प्रग्रं यज्ञस्य बृहतो नयन्तीवि ता बाधन्ते तम ऊर्म्यायाः ॥२
श्रवो वाजमिषमूर्जं वहन्तीर्नि दाशुष उषसो मर्त्याय ।
मघोनीर्वीरवत्पत्यमाना अवो धात विधते रत्नमद्य ॥३
इदा हि वो विधते रत्नमस्तीदा वीराय दाशुष उषासः ।
इदा विप्राय जरते यदुक्था नि ष्म मावते वहथा पुरा चित् ॥४
इदा हि त उषो अद्रिसानो गोत्रा गवामङ्गिरसो गृणन्ति ।
व्यर्केण बिभिदुर्ब्रह्मणा च सत्या नृणामभवद्देवहूतिः ॥५
उच्छा दिवो दुहितः प्रत्नवन्नो भरद्वाजवद्विधते मघोनि ।
सुवीरं रयिं गृणते रिरीह्युरुगायमधि धेहि श्रवो नः ॥६ ।६

दीप्तिमयी रश्मियों से युक्त हुई उषा अन्धकार को मिटाती और प्राणियों को प्रकाश देती है ॥ १ ॥ महान् यज्ञ की सम्पादिका उषा अपने लाल अश्वों से गमन करती हुई शोभा पाती है। यह रात्रि के अन्धकार को मिटा देती है ॥ २ ॥ हे उषाओ ! तुम हविदाता को यश, यश, अन्न और रस प्रदान करती हो। तुम धनवती और श्रेष्ठ गमन वाली हो। तुम हम सेवकों को पुत्रादि से युक्त अन्न-धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे उषाओ ! अङ्गिराओं ने तुम्हारी कृपा से गौओं को खोला और स्तुति द्वारा अन्धकार मिटाया। उनकी स्तुति सत्य फल वाली हुई ॥ ४ ॥ हे उषे ! अन्धकार नष्ट करो। भरद्वाज के समान मुझ स्तोता को भी धन और अन्न दो ॥ ६ ॥ [६]

६६ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—मरुतः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

वपुर्नु तच्चिकितुषे चिदस्तु समानं नाम धेनु पत्यमानम् ।
मर्तेष्वन्यद्दोहसे पीपाय सकृच्छुक्रं दुदुहे पृश्निरूधः ॥१
ये अग्नयो न शोशुचन्निधाना द्विर्यत्त्रिर्मरुतो वावृधन्त ।
अरेणवो हिरण्ययास एषां साकं नृम्णैः पौंस्येभिश्च भूवन् ॥२
रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रा यांश्चो नु दा[illegible]

विदे हि माता महो मही षा सेत्पृश्निः सुभ्वे गर्भमाधात् ॥३
न य ईषन्ते जनुषोऽया न्वतः सन्तोऽवद्यानि पुनानाः ।
निर्यद् दुह्रे शुचयोऽनु जोषमनु श्रिया तन्वमुक्षमाणाः ॥४
मक्षू न येषु दोहसे चिदया आ नाम धृष्णु मारुतं दधानाः ।
न ये स्तौना अयासो मह्ना नू चित्सुदानुरव यासदुग्रान् ॥५ ।७

मरुद्गण के समान स्थिर प्रीति करने वाला, विद्वान् स्तोता के समीप आविर्भूत हो। वह अन्तरिक्ष में जल क्षरित करता हुआ पृथिवी में दोहन के लिए प्रवृद्ध होता है ॥ १ ॥ जो अग्नि के समान तेजस्वी, इच्छानुसार वृद्धि को प्राप्त और सुवर्णालंकारों से युक्त हैं, वे मरुद्गण धन-बल सहित आविर्भूत होते हैं ॥ २ ॥ जिन रुद्र पुत्र मरुतों को धारण करने में अन्तरिक्ष समर्थ है, उनकी माता महिमामयी है। वे मनुष्यों की उत्पत्ति के लिए जल धारण करती हैं ॥ ३ ॥ जो यान पर न जाकर स्तोताओं के अन्तःकरण में निवास करते हुए पापों को नाश करते हैं, जो जल दोहन करते और अपने तेज से भूमि को आकर्षित करते हैं, जिनके निमित्त स्तोता मरुमात्मक स्तोत्र करके इच्छित फल पाते हैं, जो महिमामय और गमनशील हैं, उन मरुद्गण को दानी यजमान क्रोध-रहित करता है ॥ ४-५ ॥ [७]

त इदुग्राः शवसा धृष्णुषेणा उभे युजन्त रोदसी सुमेके ।
अध स्मैषु रोदसी स्वशोचिरामवत्सु तस्थौ न रोकः ॥६
अनेनो वो मरुतो यामो अस्त्वनश्वश्चिद्यमजत्यरथीः ।
अनवसो अनभीशू रजस्तूर्वि रोदसी पथ्या याति साधन् ॥७
नास्य वर्ता न तरुता न्वस्ति मरुतो यमवथ वाजसातौ ।
तोके वा गोषु तनये यमप्सु स व्रजं दर्ता पार्ये अध द्योः ॥८
प्र चित्रमर्कं गृणते तुराय मारुताय स्वतवसे भरध्वम् ।
ये सहांसि सहसा सहन्ते रेजते अग्ने पृथिवी मखेभ्यः ॥९
त्विषीमन्तो अध्वरस्येव दिद्युत्तृषुच्यवसो जुह्वो नाग्नेः ।
अर्चत्रयो धुनयो न वीरा भ्राजज्जन्मानो मरुतो अधृष्टाः ॥१०

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्य सूनुं हवसा विवासे ।
दिवः शर्धाय शुचयो मनीषा गिरयो नाप उग्रा अस्पृध्रन् ॥११ ।८

ये मरुद्गण पराक्रमी हैं । द्यावा पृथिवी के रथ के साथ धर्षक सेनाओं को योजित करते हैं । यह अन्य किसी की दीप्ति से तेजस्वी नहीं हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा रथ पाप-शून्य है । उसे स्तोता चलाता है । यह अश्व-रहित, सारथि-रहित, पाश-रहित और भोजन-रहित होता हुआ भी जल-प्रेरक और इच्छित देने वाला होकर स्वर्ग, पृथिवी और अन्तरिक्ष में जाता है ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! रणक्षेत्र में तुम जिसे बचाते हो, उसकी कोई हिंसा नहीं कर सकता । तुम जिसके पुत्रादि सहित रक्षक हो वह शत्रुओं की गौओं को बाँट लेता है ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! शत्रुओं के बल का तिरस्कार करने वाले जिन मरुद्गण से पृथिवी भी काँपती है, उन्हीं मरुतों के लिए हविरस प्रसन्न करो ॥ ९ ॥ यज्ञ के समान तेजस्वी मरुद्गण अग्नि शिखा के समान दीप्ति वाले, शत्रुओं को कँपाने वाले और तेजस्वी हैं ॥ १० ॥ मैं उन्हीं रुद्रपुत्र मरुतों की स्तुति करता हूँ । यही स्तुतियाँ उग्र होकर मरुद्गण के बल से समानता करने वाली होती हैं ॥ ११ ॥ [८]

६७ सूक्त

(ऋषि-भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—मित्रावरुणौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

विश्वेषां वः सतां ज्येष्ठतमा गीर्भिर्मित्रावरुणा वावृधध्यै ।
सं या रश्मेव यमतुर्यमिष्ठा द्वा जनाँ असमा बाहुभिः स्वैः ॥१
इयं मद्वां प्र स्तृणीते मनीषोप प्रिया नमसा बर्हिरच्छ ।
यन्तं नो मित्रावरुणावधृष्टं छर्दिर्यद्वां वरूथ्यं सुदानू ॥२
आ यातं मित्रावरुणा सुशस्त्युप प्रिया नमसा हूयमाना ।
सं यावप्नःस्थो अपसेव जनाञ्छ्रुधीयतश्चिद्यतथो महित्वा ॥३
अश्वा न या वाजिना पूतबन्धू ऋता यद् गर्भमदितिर्भरध्यै ।
प्र या महि महान्ता जयमाना घोरा मर्ताय रिपवे नि —

विश्वे यद्वां मंहना मन्दमानाः क्षत्रं देवासो अदधुः सजोषाः ।
रि यद्भूथो रोदसी चिदुर्वी सन्ति स्पशो अदब्धासो अमूराः ॥५ ।९

हे मित्रावरुण ! तुम सर्वश्रेष्ठ को मैं स्तुतियों से बढ़ाता हूँ । तुम अपनी भुजाओं से मनुष्यों को संयत करते हो ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! हमारी यही स्तुति तुम्हें बढ़ाती है । तुम हमें शीत आदि से बचाने वाला घर दो ॥ २ हे मित्रावरुण ! हमारे आह्वान के प्रति आओ । जैसे कर्म में लगा व्यक्ति अन्न चाहने वालों को तुष्ट करता हैं, वैसे ही तुम भी करो ॥ ३ ॥ अश्व के समान बली मित्रावरुण को अदिति ने धारण किया । वे हिंसकों की हिंसा करने वाले और जन्म से ही महान् हुए ॥ ४ ॥ सभी देवताओं ने तुम्हारा यश-कीर्तन कर बल धारण किया । तुम आकाश-पृथिवी को परिभूत करने वाले और अहिंसित हो ॥ ५ ॥ [९]

ता हि क्षत्रं धारयेथे अनु द्यून् दृंहेथे सानुमुपमादिव द्योः ।
दृळ्हो नक्षत्र उत विश्वदेवो भूमिमातान्द्यां धासिनायोः ॥६
ता विग्रं धैथे जठरं पृणध्या आ यत्सद्म सभृतयः पृणन्ति ।
न मृष्यन्ते युवतयोऽवाता वि यत्पयो विश्वजिन्वा भरन्ते ॥७
ता जिह्वया सदमेदं सुमेधा आ यद्वां सत्यो अरतिर्ऋते भूत् ।
तद्वां महित्वं घृतान्नावस्तु युवं दाशुषे वि चयिष्टमंहः ॥८
प्र यद्वां मित्रावरुणा स्पूर्धन्प्रिया धाम युवधिता मिनन्ति ।
न ये देवास ओहसा न मर्ता अयज्ञसाचो अप्यो न पुत्राः ॥९
वि यद्वाचं कीस्तासो भरन्ते शंसन्ति के चिन्निविदो मनानाः ।
आद्वां ब्रवाम सत्यान्युक्था नकिर्देवेभिर्यतथो महित्वा ॥१०
अवोरित्था वां छर्दिषो अभिष्टौ युवोर्मित्रावरुणावस्कृधोयु ।
अनु यद् गावः स्फुरानृजिप्यं धृष्णुं यद्रणे वृषणं युनजन् ॥११ ।१०

तुम अन्तरिक्षस्थ प्रदेश को दृढ़ता से धारण करते हो । तुम्हारे द्वारा ही मेघ, अन्तरिक्ष और विश्वेदेवा हवि से तृप्त होकर पृथिवी और स्वर्ग में व्याप्त होते हैं ॥ ६ ॥ तुम प्राज्ञ व्यक्ति सोम को उदर-पूर्ति के लिए धारण करते

हो। जब ऋत्विज यज्ञ-गृह को सम्पन्न करते हैं और तुम जल भेजते हो तब नदियों में धूल नहीं भरती ॥ ७ ॥ मेधावीजन वाणी द्वारा तुमसे जल की याचना करते हैं। जैसे तुम्हारा उपासक यज्ञ में माया से विरक्त होता है, वैसी ही तुम्हारी महिमा है। तुम हविदाता के पाप को मिटाओ ॥ ८ ॥ हे मित्रावरुण! जो द्वेषी व्यक्ति तुम्हारे कर्म से बाधक होते हैं, जो व्यक्ति स्तोत्र-शून्य और यज्ञशून्य हैं, उन्हें नष्ट कर डालो ॥ ९ ॥ जब विद्वान् पुरुष स्तुति करते हैं, तब तुम महिमा वाले होकर अन्य देवताओं के साथ मत जाना ॥ १० हे मित्रावरुण! जब स्तुतियाँ की जाती हैं और सोम को यज्ञ में उपस्थित किया जाता है, तब गृह-दान के लिए तुम आते हो और घर प्राप्त होता है ॥ ११ ॥ [१०]

६८ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः, जगती)

श्रुष्टी वां यज्ञ उद्यतः सजोषा मनुष्वद् वृक्तबर्हिषो यजध्यै ।
आ य इन्द्रावरुणाविषे अद्य महे सुम्नाय मह आववर्तत् ॥१
ता हि श्रेष्ठा देवताता तुजा शूराणां शविष्ठा ता हि भूतम् ।
ोनां मंहिष्ठा तुविशुष्म ऋतेन वृत्रतुरा सर्वसेना ॥२
गृणीहि नमस्येभिः शूषैः सुम्नेभिरिन्द्रावरुणा चकाना ।
्रेणान्यः शवसा हन्ति वृत्रं सिषक्त्यन्यो वृजनेषु विप्रः ॥३
ाश्च यन्नरश्च वावृधन्त विश्वे देवासो नरां स्वगूर्ताः ।
य इन्द्रावरुणा महित्वा द्यौश्च पृथिवि भूतमुर्वी ॥४
इत्सुदानुः स्ववाँ ऋतावेन्द्रा यो वां वरुण दाशति त्मन् ।
ा स द्विषस्तरेद्दास्वान्वंसद् रयिं रयिवतश्च जनान् ॥५ ॥११

हे इन्द्र और वरुण! यजमान के सुख के निमित्त जो अनुष्ठान किया ता है, वही अनुष्ठान आज तुम्हारे लिए किया जा रहा है ॥ १ ॥ हे इन्द्र र वरुण! तुम यज्ञ में धनदाता और श्रेष्ठ हो। वीरों में अधिक बलशाली,

दाताओं में श्रेष्ठ, शत्रु-हिंसक और सब सेनाओं और ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो ॥ २
हे स्तोता ! इन्द्र और वरुण की स्तुति करो। उनमें से इन्द्र वृत्र-हन्ता हैं और
वरुण प्रजा की रक्षा के लिए बलवान होते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण !
जब स्तोता तुम्हें बढ़ाते हैं, तब तुम अत्यन्त महिमा वाले होकर उनके स्वामी
बनते हो। हे विस्तीर्ण स्वर्ग और पृथिवी ! तुम भी इनके स्वामी होओ ॥ ४
हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हें हवि देने वाला यजमान दानी, धनी और यज्ञ-कर्म
वाला होता है। वह शत्रु से रक्षित रहता हुआ धन और सम्पत्तियुक्त पुत्र
पाता है ॥ ५ ॥ [११]

यं युवं दाश्वध्वराय देवा रयिं धत्थो वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।
अस्मे स इन्द्रावरुणावपि ष्यात्प्र यो भनक्ति वनुषामशस्तीः ॥६
उत नः सुत्रात्रो देवगोपाः सूरिभ्य इन्द्रावरुणा रयिः ष्यात् ।
येषां शुष्मः पृतनासु साह्वान्प्र सद्यो द्युम्ना तिरते ततुरिः ॥७
नू न इन्द्रावरुणा गृणाना पृङ्क्तं रयिं सौश्रवसाय देवा ।
इत्था गृणन्तो महिनस्य शर्धोऽपो न नावा दुरिता तरेम ॥८
प्र सम्राजे बृहते मन्म नु प्रियमर्च देवाय वरुणाय सप्रथः ।
अयं य उर्वी महिना महिव्रतः क्रत्वा विभात्यजरो न शोचिषा ॥९
इन्द्रावरुणा सुतपाविमं सुतं सोमं पिबतं मद्यं धृतव्रता ।
युवो रथो अध्वरं देववीतये प्रति स्वसरमुप याति पीतये ॥१०
इन्द्रावरुणा मधुमत्तमस्य वृष्णः सोमस्य वृषणा वृषेथाम् ।
इदं वामन्धः परिषिक्तमस्मे आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयेथाम् ॥११ ।१२

हे इन्द्र और वरुण ! तुम हविदाता को जो धन देते हो वही शत्रु
द्वारा फैलाये गये अपयश को दूर करने वाला धन हमें दो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र
और वरुण ! हम तुम्हारे स्तोता हैं। तुम्हारा जो धन देवताओं द्वारा रक्षित
है, वही हमें मिले। हमारा बल शत्रुओं को पराभूत करने वाला और उनका
तिरस्कार करने वाला हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमें श्रेष्ठ अन्न के
लिए धन दो। तुम महान् हो। हम तुम्हारे बल की प्रशंसा करते हैं। हम

नौका द्वारा तरने के समान ही पापों से तरें ॥ ८ ॥ जो वरुण महान् कर्म वाले महिमामय, तेजस्वी और जरा रहित हैं तथा जो द्यावापृथिवी को व्याप्त करते हैं, उन्हीं वरुण के लिए विस्तृत स्तुति करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम सोमपायी हो अतः इस हर्षकारी सोम का पान करो। हे व्रतधारी, मित्रा-वरुण देवताओं के पीने के निमित्त तुम्हारा रथ यज्ञ की ओर गमनशील है ॥ १० ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम इस श्रेष्ठ सोम का पान करो। तुम्हारे लिए यह सोम रूप पात्र में उँडेला गया है। अतः तुम यज्ञ में बैठकर सोम-पान द्वारा हर्षित होओ ॥ ११ ॥ [१२]

६९ सूक्त

(ऋषि–भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता–इन्द्राविष्णू। छन्द–त्रिष्टुप्, उष्णिक्,)

सं वां कर्मणा समिषा हिनोमीन्द्राविष्णू अपसस्पारे अस्य ।
जुषेथां यज्ञं द्रविणं च धत्तमरिष्टैर्नः पथिभिः पारयन्ता ॥ १
या विश्वासां जनितारा मतीनामिन्द्राविष्णू कलशा सोमधाना ।
प्र वां गिरः शस्यमाना अवन्तु प्र स्तोमासो गीयमानासो अर्कैः ॥ २
इन्द्राविष्णू मदपती मदानामा सोमं यातं द्रविणो दधाना ।
सं वामञ्जन्त्वक्तुभिर्मतीनां सं स्तोमासः शस्यमानास उक्थैः ॥ ३
आ वामश्वासो अभिमातिषाह इन्द्राविष्णू सधमादो वहन्तु ।
जुषेथां विश्वा हवना मतीनामुप ब्रह्माणि शृणुतं गिरो मे ॥ ४
इन्द्राविष्णू तत्पनयाय्यं वां सोमस्य मद उरु चक्रमाथे ।
अकृणुतमन्तरिक्षं वरीयोऽप्रथतं जीवसे नो रजांसि ॥ ५
इन्द्राविष्णू हविषा वावृधानाग्राद्वाना नमसा रातहव्या ।
घृतासुती द्रविणं धत्तमस्मे समुद्रः स्थः कलशः सोमधानः ॥ ६
इन्द्राविष्णू पिबतं मध्वो अस्य सोमस्य दस्रा जठरं पृणेथाम् ।
आ वामन्धांसि मदिराण्यग्मन्नुप ब्रह्माणि शृणुतं हवं मे ॥ ७
उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न परा जिग्ये कतर ।

इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ॥८॥१३

हे इन्द्र और विष्णु ! मैं यह स्तोत्र और हवि तुम्हारी ओर प्रेरित करता हूँ। इसके पश्चात् तुम यज्ञ का सेवन करो। तुम हमें उपद्रव रहित मार्ग से ले जाते हो, अतः धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम स्तुतियों के कारण रूप हो। तुम्हें स्तुतियाँ प्राप्त हों। स्तोताओं से गाने-योग्य स्तोत्र भी तुम्हें प्राप्त हों ॥ २ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोमों के स्वामी हो। तुम धन-दान करते हुए सोमों के सामने आओ। स्तोत्र, उक्थों के सहित तुम्हें बढ़ावें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! हिंसकों के हराने वाले अश्व तुम्हें वहन करें। तुम स्तुतियों का सेवन करते हुए मेरे निवेदन पर ध्यान दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! सोम का हर्ष उत्पन्न होने पर तुम प्रदक्षिणा करते हो। तुमने अन्तरिक्ष का विस्तार किया है। हमारे जीवन के लिए लोकों को प्रसिद्ध किया है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम से प्रवृद्ध होते हो। यजमान तुम्हें नमस्कार युक्त हव्य देते हैं अतः तुम हमें धन प्रदान करो। तुम कलश के और समुद्र के समान पूर्ण हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम सोम-पान से अपना उदर भरो। तुम्हारे पास हर्षकारी सोम गमन करें। तुम मेरी स्तुति सुनो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुम अजेय हो। तुम में से कभी कोई पराजित नहीं हुआ। तुमने जिस पदार्थ के लिए राक्षसों से स्पर्द्धा की, वह अपरिमित होते हुए भी तुम्हें प्राप्त हो गया ॥ ८ ॥ [१३]

७० सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—द्यावापृथिव्यौः। छन्द—जगती)

घृतवती भुवनानामभिश्रियोर्वी पृथ्वी मधुदुघे सुपेशसा ।
द्यावापृथिवी वरुणस्य धर्मणा विष्कभिते अजरे भूरिरेतसा ॥१
असश्चन्ती भूरिधारे पयस्वती घृतं दुहाते सुकृते शुचिव्रते ।
राजन्ती अस्य भुवनस्य रोदसी अस्मे रेतः सिञ्चतं यन्मनुर्हितम् ॥२
यो वामृजवे क्रमणाय रोदसी मर्तो ददाश धिषणे स साधति ।
प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि युवोः सिक्ता विषुरूपाणि सव्रता ॥३

घृतेन द्यावापृथिवी अभीवृते घृतश्रिया घृतपृचा घृतावृधा ।
उर्वी पृथ्वी होतृवूर्ये पुरोहिते ते इद्विप्रा ईळते सुम्नमिष्टये ॥४
मधु नो द्यावापृथिवी मिमिक्षतां मधुश्चुता मधुदुघे मधुव्रते ।
दधाने यज्ञं द्रविणं च देवता महि श्रवो वाजमस्मे सुवीर्यम् ॥५
ऊर्जं नो द्यौश्च पृथिवी च पिन्वतां पिता माता विश्वविदा सुदंससा ।
संरराणे रोदसी विश्वशम्भुवा सनिं वाजं रयिमस्मे
समिन्वताम् ॥६ ।१४

हे द्यावापृथिवी ! तुम जल वाली हो । सुन्दर रूप वाली, वरुण द्वारा धारण की हुई, नित्य और अनेक कर्म वाली हो ॥ १ ॥ हे द्यावापृथिवी ! श्रेष्ठ कर्म वाले पुरुषों को तुम जल प्रदान करती हो । तुम भुवन की अधीश्वरी हो । हमें हितकारी बल प्रदान करो ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारा उपासक पुरुष सिद्ध-काम होता है । वह सन्तानों के सहित बढ़ता है ॥ ३ ॥ द्यावापृथिवी जल द्वारा आच्छादित हैं और जल का ही आश्रय करती हैं । वे विस्तीर्ण, जल से ओतप्रोत और जल वृष्टि का विधान करने वाली हैं । यज्ञ वाले यजमान उनसे सुख माँगते हैं ॥ ४ ॥ अन्न का दोहन करने वाली, यज्ञ, धन, यश, अन्न, बल प्रदात्री द्यावापृथिवी हमें मधु से अभिषिक्त करें ॥ ५ ॥ हे पिता स्वर्ग और माता पृथिवी ! हमें अन्न प्रदान करो । तुम जगत के जानने वाली, सुखदात्री हो, हमें बल, धन और अपत्य दो ॥ ६ ॥ [१४]

७१ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाज बार्हस्पत्यः । देवता—सविता । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्)

उदु ष्य देवः सविता हिरण्यया बाहू अयंस्त सवनाय सुक्रतुः ।
घृतेन पाणी अभि प्रुष्णुते मखो युवदक्षो रजसो विधर्मणि ॥१
देवस्य वयं सवितुः सवीमनि श्रेष्ठे स्याम वसुनश्च दावने ।
यो विश्वस्य द्विपदो यश्चतुष्पदो निवेशने प्रसवे चासि भूमनः ॥२
अदब्धेभिः सवितः पायुभिष्ट्वं शिवेभिरद्य परि पाहि नो गयम् ।
हिरण्यजिह्वः सुविताय नव्यसे रक्षा माकिर्नो अ

उदु ष्य देवः सविता दमूना हिरण्यपाणिः प्रतिदोषमस्थात् ।
अयोहनुर्यजतो मन्द्रजिह्व आ दाशुषे सुवति भूरि वामम् ॥४
उदू अयाँ उपवक्तेव बाहू हिरण्यया सविता सुप्रतीका ।
दिवो रोहांस्यरुहत्पृथिव्या अरीरमत्पतयत् कच्चिदभ्वम् ॥५
वाममद्य सवितर्वाममु श्वो दिवेदिवे वाममस्मभ्यं सावीः ।
वामस्य हि क्षयस्य देव भूरेरया धिया वामभाजः स्याम ॥६ ।१५

श्रेष्ठ कर्मा सवितादेव अपनी भुजाओं को ऊपर उठाकर संसार की रक्षा करते हैं ॥ १ ॥ उन सवितादेव के धन-दान के लिए हम सामर्थ्य पावें । हे सवितादेव ! तुम सब पशुओं और मनुष्यों की रचना करने वाले हो ॥ २ ॥ हे सवितादेव ! अहिंसित तेज से हमारे घरों की रक्षा करो और हमारा मंगल करो । हमारा अनिष्ट चाहने वाला शत्रु हमारा शासक न हो ॥ ३ ॥ शान्तमन वाले, सुवर्ण हस्त, यश के योग्य सवितादेव रात्रि का अन्त होने पर सचेष्ट होकर हविदाता के लिए अभीष्ट अन्न प्रेरित करें ॥ ४ ॥ वे सवितादेव दोनों भुजाओं को उठाते हुए पृथिवी से स्वर्ग के उन्नत प्रदेश पर आरूढ़ होते हैं । वे सभी महान् वस्तुओं को पुष्ट करते हैं ॥ ५ ॥ हे सवितादेव ! हमें आज धन दो । कल भी हमें धन देना, इस प्रकार नित्य ही देते रहना । तुम अपरिमित धन देने वाले हो, अतः हम स्तुति द्वारा धन पावेंगे ॥ ६ ॥ [१५]

७२ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः । देवता—इन्द्रासोमौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रासोमा महि तद्वां महित्वं युवं महानि प्रथमानि चक्रथुः ।
युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्व विश्वा तमांस्यहतं निदश्च ॥१
इन्द्रासोमा वासयथ उषासमुत्सूर्यं नयथो ज्योतिषा सह ।
उप द्यां स्कम्भथुः स्कम्भनेनाप्रथतं पृथिवी मातरं वि ।।२
इन्द्रासोमावहिमपः परिष्ठां हथो वृत्रमनु वां द्यौरमन्यत ।
प्रार्णांस्यैरयतं नदीनामा समुद्राणि पप्रथुः पुरूणि ॥३
इन्द्रासोमा पक्वमामास्वन्तर्नि गवामिद्दधथुर्वक्षणासु ।

जगृभथुरनपिनद्धमासु रुशच्चित्रासु जगतीष्वन्तः ॥४
इन्द्रासोमा युवमङ्ग तरुत्रमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथे ।
युवं शुष्मं नर्यं चर्षणिभ्यः सं विव्यथुः पृतनाषाहमुग्रा ॥५ ।१६

हे इन्द्र और सोम ! तुम अत्यन्त महिमा वाले हो। तुमने प्रमु भूतों की सृष्टि की है और सूर्य तथा जल को भी पाया है। तुम्हीं ने निन्द करने वालों को और अंधकार को नष्ट किया है ॥ १ ॥ हे इन्द्र और सोम तुम उषा को उदित करो और सूर्य की दीप्ति को ऊपर उठाओ। अन्तरिक्ष के द्वारा स्वर्ग को स्तंभित करो और माता पृथिवी को पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम जल को रोकने वाले वृत्र को मारो। स्वर्ग ने तुम्हें प्रवृद्ध किया अतः नदी के जल को प्रवाहित कर समुद्र को भर दो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुमने गौओं में परिपक्व दूध रखा है और विविध वर्ण वाली गौओं के मध्य श्वेत वर्ण वाले दूध को ही धारण कराया है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम हमें उद्धार करने वाला अपत्य युक्त धन दो। तुम शत्रु-सेना के अभिभूत करने वाले अपने बल को बढ़ाओ ॥ ५ ॥ [१६]

७३ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्य। देवता—बृहस्पतिः। छन्द—त्रिष्टुप्)

यो अद्रिभित्प्रथमजा ऋतावा बृहस्पतिराङ्गिरसो हविष्मान् ।
द्विबर्हज्मा प्राघर्मसत्पिता न आ रोदसी वृषभो रोरवीति ॥१
जनाय चिद्य ईवत उ लोकं बृहस्पतिर्देवहूतौ चकार ।
घ्नन्वृत्राणि वि पुरो दर्दरीति जयञ्छत्रूँरमित्रान्पृत्सु साहन् ॥२
बृहस्पतिः समजयद्वसूनि महो व्रजान् गोमतो देव एषः ।
अपः सिषासन्त्स्व१रप्रतीतो बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः ॥३ ।१७

जो बृहस्पति सर्व प्रथम उत्पन्न हुए और जिन्होंने पर्वत को तोड़ा था, जो अंगिरा और यज्ञ-योग्य, दोनों लोकों में भले प्रकार गमनशील हैं, वही बृहस्पति स्वर्ग और पृथिवी में घोर शब्द करते हैं ॥ १ ॥ जो बृहस्पति यज्ञ में स्तोता को स्थान देने वाले हैं, वही बृहस्पति वृत्र-हन्ता और

हैं। वे अपने वैरियों को हराते और राक्षसों के नगरों को तोड़ते हैं ॥ २ ॥ इन्हीं बृहस्पति ने राक्षसों का गोधन जीता। वही बृहस्पति स्वर्ग के शत्रुओं को मन्त्र द्वारा मारते हैं ॥ ३ ॥ [१८]

७४ सूक्त

(ऋषि—भरद्वाजो बार्हस्पत्यः। देवता—सोमारुद्रौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

सोमारुद्रा धारयेथामसुर्यं प्र वामिष्टयोऽरमश्नुवन्तु।
दमेदमे सप्त रत्ना दधाना शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
सोमारुद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
आरे बाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रा सौश्रवसानि सन्तु ॥२
सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम्।
अव स्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्ति तनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥३
तिग्मायुधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्राविह सु मृळतं नः।
प्र नो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद् गोपायतं नः सुमनस्यमाना ॥४ ।१८

हे सोम और रुद्र! हमें महान् बल दो। सब यज्ञ तुम्हें व्याप्त करें। तुम सात रत्नों के धारक हो। हमारे लिये मङ्गलकारी होओ और हमारे पुत्रों और पशुओं को सुखी करो ॥ १ ॥ हे सोम और रुद्र! हमारे घर में घुसने वाले रोग को दूर करो। दरिद्रता हमारे पास से भागे और हम अन्न प्राप्ति द्वारा सुख पावें ॥ २ ॥ हे सोम और रुद्र! हमारी देह-रक्षा के लिए औषधि धारण करो। हमारे पापों को दूर कर दो ॥ ३ ॥ हे सोम और रुद्र! तुम्हारे पास श्रेष्ठ धनुष और तीक्ष्ण बाण हैं। तुम सुन्दर स्तुति की इच्छा करते हुए हमें सुख दो। हमको वरुण पाश से भी मुक्त करो ॥ ४ ॥ (१९)

७५ सूक्त

(ऋषि—पायुर्भारद्वाजः। देवता—वर्म, धनुः, सारथिः, अश्वाः, रथः प्रभृति, छन्द— त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, उष्णिक्, पंक्तिः)

जीमूतस्येव भवति प्रतीकं यद्वर्मी याति समदामुपस्थे।
अनाविद्धया तन्वा जय त्वं स त्वा वर्मणो महिमा पिपर्तु ॥१

धन्वना गा धन्वनाजिं जयेम धन्वना तीव्राः समदो जयेम ।
धनुः शत्रोरपकामं कृणोति धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम ॥२
वक्ष्यन्तीवेदा गनीगन्ति कर्णं प्रियं सखायं परिषस्वजाना ।
योषेव शिङ्क्ते वितताधि धन्वञ्ज्या इयं समने पारयन्ती ॥३
ते आचरन्ती समनेव योषा मातेव पुत्रं बिभृतामुपस्थे ।
अप शत्रून् विध्यतां संविदाने आर्त्नी इमे विष्फुरन्ती अमित्रान् ॥४
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिश्चा कृणोति समनावगत्य ।
इषुधिः सङ्काः पृतनाश्च सर्वाः पृष्ठे निनद्धो जयति प्रसूतः ॥५ ।१९

संग्राम उपस्थित होने पर यह राजा जब लौह कवच धारण करता है, तब वह मेघ के समान लगता है । हे राजन् ! तुम अहिंसित रहते हुए जीतो । महिमामय कवच तुम्हारा रक्षक हो ॥ १ ॥ हम धनुष के प्रभाव से युद्ध को जीतकर गौओं को प्राप्त करेंगे । शत्रु की इच्छा नष्ट हो । हम इस धनुष से सब दिशाओं में स्थित शत्रुओं को हरा देंगे ॥ २ ॥ धनुष की प्रत्यञ्चा संग्राम से पार लगाने के लिए प्रिय वचन कहती हुई कान के पास पहुँचती है । यह प्रत्यञ्चा बाण से मिलकर शब्द करती है ॥ ३ ॥ धनुष्कोटियाँ आक्रमण के समय माता द्वारा पुत्र की रक्षा करने के समान इस राजा की रक्षा करें और शत्रुओं को विदीर्ण कर डालें ॥ ४ ॥ यह तूणीर बाणों के पिता के समान है, अनेकों बाण इसके पुत्र हैं । बाण के निकालने के समय जब यह शब्द करता है तब समस्त सेनाओं पर विजय पाता है ॥ ५ ॥ [१९]

रथे तिष्ठन्नयति वाजिनः [illegible] सुषारथिः ।
अभीशूनां महिमानं [illegible] ॥६
तीव्रान् घोषान् कृण्वते [illegible]
अवक्रामन्तः [illegible] ॥७
रथवाहनं हविरस्य [illegible]
तत्रा रथमुप [illegible]
स्वादुषंसदः [illegible]

॥ अथ सप्तमं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः देवता–अग्निः । छन्द–गायत्री त्रिष्टुप्)

ग्निं नरो दीधितिभिररण्योर्हस्तच्युती जनयन्त प्रशस्तम् ।
दूरेदृशं गृहपतिमथर्युम् ॥१

तमग्निमस्ते वसवो न्यृण्वन्त्सुप्रतिचक्षमवसे कुतश्चित् ।
दक्षाय्यो यो दम आस नित्यः ॥२

प्रे द्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।
त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः ॥३

प्र ते अग्नयोऽग्निभ्यो वरं निः सुवीरासः शोशुचन्त द्युमन्तः ।
यत्रा नरः समासते सुजाताः ॥४

दा नो अग्ने धिया रयिं सुवीरं स्वपत्यं सहस्य प्रशस्तम् ।
न यं यावा तरति यातुमावान् ॥५ ।२३

ऋत्विग्गण महान्, विस्तारपूर्ण, दूर रहने वाले अग्नि को अरणियों से प्रकट करते हैं ॥ १ ॥ जो अग्नि घर में नित्य पूजे जाते थे, उन्हीं अग्नि को वसिष्ठों ने भय से रक्षा करने को घरों में स्थापित किया था ॥ २ ॥ हे युवातम अग्ने ! तुम भले प्रकार प्रदीप्त होकर अपनी ज्वालाओं सहित तेज को प्राप्त होओ । तुम्हारे पास प्रचुर धन पहुँचता है ॥ ३ ॥ जिस अग्नि के पास सुन्दर जन्म वाले ऋत्विज् बैठते हैं । वह सांसारिक अग्नि से अधिक तेजस्वी, मंगलमय, पुत्र-पौत्र-दाता और प्रकाशमान होते हैं ॥ ४ ॥ शत्रुओं को पराजय देने वाले हे अग्ने ! जिस प्रकार हिंसाकारी राक्षस हमारे कर्म में बाधक न हों, इस प्रकार की रक्षाऐं और पुत्र-पौत्र देने वाले श्रेष्ठ धन को हमें प्रदान करो ॥ ५ ॥ [२३

उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मती घृताची ।
उप स्वैनमरमतिर्वसूयुः ॥

विश्वा अग्नेऽप दहारातीर्येभिस्तपोभिरदहो जरूथम् ।
प्र निस्वरं चातयस्वामीवाम् ॥७
आ यस्ते अग्न इधते अनीकं वसिष्ठ शुक्र दीदिवः पावक।
उतो न एभिः स्तवथैरिह स्याः ॥८
वि ये ते अग्ने भेजिरे अनीकं मर्ता नरः पित्र्यासः पुरुत्रा ।
उतो न एभिः सुमना इह स्याः ॥९
इमे नरो वृत्रहत्येषु शूरा विश्वा अदेवीरभि सन्तु मायाः ।
ये मे धियं पनयन्त प्रशस्ताम् ॥१०।२४

हव्य से सम्पन्न नारी जुहू को जानने वाली है। वह अग्नि के समीप गमन करती है। स्वयं उत्पन्न दीप्ति धन की कामना करने वाली होकर उसके पास पहुँचती है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! जिस तेज से तुम कठोर वाणी उच्चारण करने वाले राक्षस को दग्ध करते हो, अपने उसी तेज से सब शत्रुओं को भस्म करो। सभी उत्पातादि को नष्ट करते हुए हमारी रोग व्याधि को भी मिटाओ ॥ ७ ॥ हे पावक ! तुम उज्ज्वल ज्योति से प्रदीप्त होते हो। तुम अपने समृद्ध करने वाले के पास जैसे ठहरते हो, वैसे ही इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर हमारे यज्ञ में भी निवास करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! पितरों का हित करने वाले जिन कर्मवीरों ने तुम्हारे तेज को विभिन्न कर्मों में विभाजित किया है, इस स्तोत्र से प्रसन्न होकर तुम उसी प्रकार हमारे यज्ञ में वास करो ॥ ९ ॥ जो पुरुष मेरे उत्तम कर्म की प्रशंसा करें, वे रणभूमि में उपस्थित होकर राक्षसों की माया को नष्ट करें ॥ १० ॥ [२४]

मा शूने अग्ने नि षदाम नृणां माशेषसोऽवीरता परि त्वा ।
प्रजावतीषु दुर्यासु दुर्य ॥११
यमश्वी नित्यमुपयाति यज्ञं प्रजावन्तं स्वपत्यं क्षयं नः ।
स्वजन्मना शेषसा वावृधानम् ॥१२
पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् पाहि धूर्तेररुषो अघायोः ।
त्वा युजा पृतनायूँरभि ष्याम् ॥१३

सेदग्निरग्नीँ रत्यस्त्वन्यान्यत्र वाजी तनयो वीळुपाणिः ।
सहस्रपाथा अक्षरा समेति ॥१४
सेदेग्निर्यो वनुष्यतो निपाति समेद्धारमंहस उरुष्यात् ।
सुजातासः परि चरन्ति वीराः ॥१५ ।२५

हे अग्ने ! हम अन्य के गृह में नहीं रहेंगे । शून्य गृह में भी वास नहीं करेंगे । हम पुत्र-रहित और वीरों से शून्य न रहते हुए तुम्हारे अनुग्रह से सुपुत्रवान् होकर समृद्ध घर में निवास करें ॥ ११ ॥ अश्ववान् अग्नि जिस यज्ञगृह में प्रतिदिन गमन करते हैं, वैसा ही अपत्ययुक्त, भृत्य और सम्पत्ति युक्त गृह हम प्राप्त करें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! दुर्धर्ष राक्षस से हमारी रक्षा करो । अदानशील पापियों और हिंसा-वृत्ति वालों से भी रक्षित करो । तुम्हारी अनुकूलता को प्राप्त हुए हम सेना एकत्र करने वाले शत्रु को हरावेंगे ॥ १३ ॥ हमारा दृढ़ भुजावाला बलवान् पुत्र जिन अग्नि की परिचर्या करता है, वही अग्नि अन्य के अग्नि को प्रकट करें ॥ १४ ॥ जो अनुष्ठाता प्रबोध करने वाले की रक्षा करते हैं, और श्रेष्ठजन्मा वीर जिनकी सेवा करते हैं, वही अग्नि हैं ॥ १५ ॥ [२५]

अयं सो अग्निराहुतः पुरुत्रा यमीशानः समिदिन्धे हविष्मान् ।
परि यमेत्यध्वरेषु होता ॥१६
त्वे अग्न आहवनानि भूरीशानास आ जुहुयाम नित्या ।
उभा कृण्वन्तो वहतू मियेधे ॥१७
इमो अग्ने वीततमानि हव्याजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ ।
प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु ॥१८
मा नो अग्नेऽवीरते परा दा दुर्वाससेऽमतये मा नो अस्यै ।
मा नः क्षुधे मा रक्षस ऋतावो मा नो दमे मा वन आ जुहूर्थाः ॥१९
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२० ।२६

जिन्हें हवि-सम्पन्न यजमान भले प्रकार प्रदीप्त करता है और यज्ञ में जिनकी परिक्रमा की जाती है, उन अग्नि को अनेक देशों में आहूत किया जाता है ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! धन के अधीश्वर होकर हम प्रतिदिन ही तुम्हारी स्तुति करते हुए हव्यादि देंगे ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के पास इन रमणीय हवियों को पहुँचाओ, क्योंकि सभी देवता हमारे इस श्रेष्ठ यज्ञ में भाग प्राप्त करना चाहते हैं ॥ १८ ॥ हे अग्ने ! हम संतविहीन न हों, निकृष्ट वस्त्र न पहनें। हमारी बुद्धि का नाश न हो। हम क्षुधार्त न हों। राक्षस के हाथ में न पड़ें। हे अग्ने ! हम घर, जङ्गल या मार्ग में कहीं भी मृत्यु को प्राप्त न हों ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! हमारा अन्न परिष्कृत हो। तुम इन यज्ञ करने वालों को अन्न दो। हम स्तोता और यजमान, दोनों ही तुम्हारे दान को पावें। तुम सदा हमारी रक्षा करते रहो ॥ २० ॥　　　　(२६)

त्वमग्ने सुहवो रण्वसन्दृक् सुदीती सूनो सहसो दिदीहि ।
मा त्वे सचा तनये नित्य आ धङ्मा वीरो अस्मन्नर्यो वि दासीत् ॥२१
मा नो अग्ने दुर्भृतये सचैषु देवेद्धेष्वग्निषु प्र वोचः ।
मा ते अस्मान्दुर्मतयो भृमाच्चिद्देवस्य सूनो सहसो नशन्त ॥२२
स मर्तो अग्ने स्वनीक रेवानमर्त्ये य आजुहोति हव्यम् ।
स देवता वसुवनिं दधाति यं सूरिरर्थी पृच्छमान एति ॥२३
महो नो अग्ने सुवितस्य विद्वान् रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् ।
येन वयं सहसावन्मदेमाविक्षितास आयुषा सुवीराः ॥२४
नू मे ब्रह्माण्यग्न उच्छशाधि त्वं देव मघवद्भ्यः सुषूदः ।
रातौ स्यामोभयास आ ते यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५ ।२७

हे अग्ने ! तुम भले प्रकार आहूत किये जाते हो। तुम अपनी दर्शनीय ज्वालाओं सहित प्रकट होओ। तुम हमारे पुत्र को दग्ध मत करो। हमारा पुत्र [ओ]जोयी हो। तुम हमारे हर प्रकार सहायक होओ ॥ २१ ॥ हे अग्ने ! तुम [ह]मारी सहायता करो। ऋत्विजों द्वारा प्रदीप्त अग्नियों से हमारा सुख-पूर्वक [पोष]ण करने को कहो। तुम बलोत्पन्न हो, हमारी बुद्धि भ्रमि[त न हो]...

जाय ॥ २२ ॥ हे अग्ने ! जो याज्ञिक तुम्हें हव्य-दान करता है, वह धन से सम्पन्न हो जाता है। धन की कामना वाला स्तोत्र जिसके आश्रय में गमन करता है, वह अग्नि यजमान की सदा रक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ हे अग्ने ! हमारे कल्याणकारी कार्यों के तुम ज्ञाता हो। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हमें ऐसा कल्याणकारी धन प्रदान करो, जिससे हम पूर्ण आयुष्य पुत्र-पौत्रादि से युक्त होकर प्रसन्न रहें ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! हमारे अन्न को भले प्रकार संस्कारित करो। तुम यज्ञकर्त्ताओं को अन्न प्रदान करो। हम स्तोता और यजमान, दोनों ही तुम्हारे दान को प्राप्त करें। तुम अपनी मङ्गलमयी रक्षाओं से सदा हमारी रक्षा करते रहो ॥ २५ ॥

(२७)

२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-आप्रम् । छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

जुषस्व नः समिधमग्ने अद्य शोचा बृहद्यजतं धूममृण्वन् ।
उप स्पृश दिव्यं सानु स्तूपैः सं रश्मिभिस्ततनः सूर्यस्य ॥१
नराशंसस्य महिमानमेषामुप स्तोषाम यजतस्य यज्ञैः ।
ये सुक्रतवः शुचयो धियं धाः स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ॥२
ईळेन्यं वो असुरं सुदक्षमन्तर्दूतं रोदसी सत्यवाचम् ।
मनुष्वदग्निं मनुना समिद्धं समध्वराय सदमिन्महेम ॥३
सपर्यवो भरमाणा अभिज्ञु प्र वृञ्जते नमसा बर्हिरग्नौ ।
आजुह्वाना घृतपृष्ठं पृषद्वदध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् ॥४
स्वाध्यो वि दुरो देवयन्तोऽशिश्रयू रथयुर्देवताता ।
पूर्वी शिशुं न मातरा रिहाणे समग्रुवो न समनेष्वञ्जन् ॥५ ॥१

हे अग्ने ! हमारी हवियों को स्वीकार करो। यज्ञ योग्य धूम्र से सम्पन्न होकर प्रकाशवान् होओ। तुम अपनी ज्वालाओं के द्वारा अन्तरिक्ष तक पहुँचो और सूर्य-रश्मियों से जा मिलो ॥ १ ॥ जो सुन्दर कर्म वाले, श्रेष्ठ कर्मों में रत देवता सौमिक और हविः संस्थादि का सेवन करते हैं, हम उनके

द्वारा अग्नि की महिमा का गान करते हैं ॥ २ ॥ हे यजमानो ! तुम स्तुति योग्य, बलवान, आकाश पृथिवी में दूत रूप से विचरने वाले अग्नि का सदा पूजन करो ॥ ३ ॥ सेवा की इच्छा करते हुए याज्ञिक पात्र पूर्ण करते और हवि देते हैं। हे अध्वर्युओ ! तुम हवन करते हुए घृतपृष्ठ बर्हि प्रदान करो ॥ ४ ॥ देवताओं की कामना वाले, सुन्दरकर्मा तथा रथ की अभिलाषा वाले पुरुषों ने यज्ञ द्वार की शरण ली है। गौएं जैसे बछड़ों को चाटती हैं, वैसे ही चाटने वाले अग्नि को अध्वर्यु नदी के समान सींचते हैं ॥५॥ [१]

उत योषणे दिव्ये मही न उषासानक्ता सुदुघेव धेनुः ।
बर्हिषदा पुरुहूते मघोनी आ यज्ञिये सुविताय श्रयेताम् ॥६
विप्रा यज्ञेषु मानुषेषु कारू मन्ये वां जातवेदसा यजध्यै ।
ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु ता देवेषु वनथो वार्याणि ॥७
आ भारती भारतीभिः सजोषा इळा देवैर्मनुष्येभिरग्निः ।
सरस्वती सारस्वतेभिरर्वाक् तिस्रो देवीर्बर्हिरेदं सदन्तु ॥८
तन्नस्तुरीपमध पोषयित्नु देव त्वष्टर्वि रराणः स्यस्व ।
यतो वीरः कर्मण्यः सुदक्षो युक्तग्रावा जायते देवकामः ॥९
वनस्पतेऽव सृजोप देवानग्निर्हविः शमिता सूदयाति ।
सेदु होता सत्यतरो यजाति यथा देवानां जनिमानि वेद ॥१०
आ याह्यग्ने समिधानो अर्वाङ् इन्द्रेण देवैः सरथं तुरेभिः ।
बर्हिर्न आस्तामदितिः सुपुत्रा स्वाहा देवा अमृता मादयन्ताम् ॥११ ।२

दिव्य रूप वाली, महिती, कुशास्थिता, बहुस्तुता एवं धन वाली अहोरात्रि, कामधेनु के समान कल्याण प्रदात्री होती हुई हमें आश्रय दें ॥ ६ हे यज्ञ कर्म करने वाले पुरुष ! मैं तुमसे यज्ञ करने की प्रार्थना करता हूँ। स्तुति के पश्चात् तुम हमारे सरल यज्ञ को देवताओं के सम्मुख करो। देवताओं के पास जो धन है, उसे हमको बाँट दो ॥ ७ ॥ सूर्यात्मक वाणियों के साथ भारती आगमन करें। देवताओं और मनुष्यों के साथ इळा भी आगमन करें। सरस्वती भी यहाँ पधारें। यह तीनों देवियाँ कुशाओं पर [illegible]

मान हों ॥ ८ ॥ हे त्वष्टादेव ! तुम अग्नि के समान तेजस्वी हो। जिस प्रकार सोमाभिषवकारी, बलवान् और देवभक्त पुत्र की प्राप्ति हो, वैसा ही पुष्टिकर बल हमें दो ॥ ९ ॥ हे वनस्पते ! तुम अग्नि रूप होकर देवताओं को यहाँ लाओ। अग्नि देवताओं को हव्य प्रदान करें। वही देवताओं का आह्वान करने वाला यज्ञ करें। वे अग्नि ही देवताओं की उत्पत्ति के जानने वाले हैं ॥ १० ॥ हे अग्ने ! तुम इन्द्रादि देवताओं के साथ एक रथ पर बैठ कर तेजस्विता युक्त होकर हमारे यहाँ आओ। पुत्रवती अदिति हमारे यज्ञ में कुश पर विराजमान हों। हमारी हवियों को प्राप्त करने वाले देवता तृप्त हों ॥ ११ ॥ [२]

३ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अग्नि वो देवमग्निभिः सजोषा यजिष्ठं दूतमध्वरे कृणुध्वम् ।
यो मर्त्येषु निध्रुविर्ऋतावा तपुर्मूर्धा घृतान्नः पावकः ॥१
प्रोथदश्वो न यवसेऽविष्यन्यदा महः संवरणाद्व्यस्थात् ।
आदस्य वातो अनु वाति शोचिरध स्म ते व्रजनं कृष्णमस्ति ॥२
उद्यस्य ते नवजातस्य वृष्णोऽग्ने चरन्त्यजरा इधानाः ।
अच्छा द्यामरुषो धूम एति सं दूतो अग्न ईयसे हि देवान् ॥३
वि यस्य ते पृथिव्यां पाजो अश्रेत्तृषु यदन्ना समवृक्त जम्भैः ।
सेनेव सृष्टा प्रसितिष्ट एति यवं न दस्म जुह्वा विवेक्षि ॥४
तमिद्दोषा तमुषसि यविष्ठमग्निमत्यं न मर्जयन्त नरः ।
निशिशाना अतिथिमस्य योनौ दीदाय शोचिराहुतस्य वृष्णः ॥५ ।३

हे देवगण ! जो अग्नि यज्ञवान्, सुकर्मा, तापक, मनुष्यों के साथ रहने वाले, तेजस्वीऔर अन्नादि के शोधक हैं, वे यज्ञ करने वालों के प्रमुख होते हुए अन्य अग्नियों से मिलते हैं। तुम उन्हीं अग्नि को अपना दूत नियुक्त करो॥१ जैसे अश्व तृण का भक्षण करता है, वैसे ही अग्नि तृण का भक्षण करते और वृक्षों में दारु रूप से अवस्थान करते हैं। उस समय उनका तेज प्रवाह

मान होता है। फिर हे अग्ने! तुम्हारा मार्ग कृष्ण वर्ण का होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम्हारी जो अभिनव ज्वाला समृद्ध और उन्नत होती है, उसका धूम्र आकाश तक व्याप्त होता है और तुम दूत रूप से देवताओं के पास पहुँचते हो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! जब तुम अपनी ज्वाला रूप दाँतों से काष्ठादि का भक्षण करते हो, तब तुम्हारा तेज पृथिवी को व्याप्त करता है। तुम्हारी ज्वाला वियुक्त सेना के समान जाती है और तुम, जैसे मनुष्य जौ खाते हैं, वैसे ही काष्ठ को खाते हो ॥ ४ ॥ पूज्य अग्नि को अतिथि के समान पूजा की जाती है। उपासकगण सदा चलने वाले अश्व की तरह अग्नि की अभ्यर्थना करते हैं। कामनाओं की वर्षा करने वाले अग्नि की ज्वालाएं दीप्तिमती होती हैं ॥ ५ ॥ [१]

सुसन्दृक्ते स्वनीक प्रतीकं वि यद्रुक्मो न रोचस उपाके ।
दिवो न ते तन्यतुरेति शुष्मश्चित्रो न सूरः प्रति चक्षि भानुम् ॥६
यथा वः स्वाहाग्नये दाशेम परीळाभिर्घृतवद्भिश्च हव्यैः ।
तेभिर्नो अग्ने अमितैर्महोभिः शतं पूर्भिरायसीभिर्नि पाहि ॥७
या वा ते सन्ति दाशुषे अधृष्टा गिरो वा याभिर्नृवतीरुरुष्याः ।
ताभिर्नः सूनो सहसो नि पाहि स्मत्सूरीञ्जरितॄञ्जातवेदः ॥८
निर्यत्पूतेव स्वधितिः शुचिर्गात् स्वया कृपा तन्वा रोचमानः ।
आ यो मात्रोरुशेन्यो जनिष्ट देवयज्याय सुक्रतुः पावकः ॥९
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०।४

हे अग्ने! तुम महान् तेजस्वी हो। जब तुम सूर्य के समान प्रकाशित होते हो, तब तुम्हारा रूप शोभन दर्शन वाला होता है। विद्युत रूप में तुम्हारा तेज अन्तरिक्ष में प्रकट होता है। तुम सूर्य के समान ही प्रकाश करने वाले हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! जैसे हम गव्यादि से युक्त हवियों द्वारा तुम्हें पुष्ट करते हैं, तुम भी वैसे ही अपने अपरिमित तेज के बल से हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ हे अग्ने! तुम बल से उत्पन्न एवं दानशील हो। तु

जिन तेजस्वी ज्वालाओं और वाक्यों द्वारा पुत्रवान यजमान की रक्षा करते हो, उनके द्वारा हमारी भी रक्षा करो। तुम हविर्दान करने वाले यजमान का पालन करने वाले होओ ॥ ८ ॥ अपने शरीर द्वारा तीक्ष्ण होकर जब अग्नि काष्ठ से आविर्भूत होते हैं, तब वे यज्ञ-कर्म में समर्थ होते हैं। यह कर्म करने में समर्थ अग्नि मातृ-रूप अरणियों द्वारा उत्पन्न हुए हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने! हमें श्रेष्ठ धन प्रदान करो। हम यज्ञ करने वाला सुहृद पुत्र पावें। उद्गाताओं और स्तोताओं को समस्त धन मिलें। तुम हमारे लिए सदा मंगलकारी होओ ॥ १० ॥ [४]

४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता- अग्निः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

प्र वः शुक्राय भानवे भरध्वं हव्यं मतिं चाग्नये सुपूतम् ।
यो दैव्यानि मानुषा जनूंष्यन्तर्विश्वानि विद्मना जिगाति ॥१
स गृत्सो अग्निस्तरुणश्चिदस्तु यतो यविष्ठो अजनिष्ट मातुः ।
सं यो वना युवते शुचिदन् भूरि चिदन्ना समिदत्ति सद्यः ॥२
अस्य देवस्य संसद्यनीके यं मर्तासः श्येतं जगृभ्रे ।
नि यो गृभं पौरुषेयीमुवोच दुरोकमग्निरायवे शुशोच ॥३
अयं कविरकविषु प्रचेता मर्तेष्वग्निरमृतो नि धायि ।
स मा नो अत्र जुहुरः सहस्वः सदा त्वे सुमनसः स्याम ॥४
आ यो योनिं देवकृतं ससाद क्रत्वा ह्यग्निरमृताँ अतारीत् ।
तमोषधीश्च वनिनश्च गर्भं भूमिश्च विश्वधायसं बिभर्ति ॥५ ।५

हे हविर्वान् यजमानो! तुम श्रेष्ठ प्रदीप्ति वाले अग्नि को विशुद्ध ह— दो। यह अग्नि अपनी बुद्धि के द्वारा देवताओं और मनुष्यों के सब पदार्थों में घूमते हैं ॥ १ ॥ तरुणतम अग्नि दो अरणियों से प्रकट हुए हैं। वे इसीलिए मेधावी और दीप्तियुक्त शिखा से सम्पन्न हैं। वे जङ्गलों में व्याप्त होकर यथेष्ट काष्ठादि अन्न का भक्षण करते हैं ॥ २ ॥ पवित्र स्थानों में मनुष्यों द्वारा जिन अग्नि की स्थापना की जाती है और

जो अग्नि मनुष्यों द्वारा ग्रहण की गई वस्तु का सेवन करते हैं, वही अग्नि मनुष्यों के लिए, शत्रुओं द्वारा न प्राप्त करने योग्य तेज को धारण करते हैं ॥ ३ ॥ अज्ञानी मनुष्यों के मध्य ज्ञानी; अविनाशी और तेजस्वी अग्नि निवास करते हैं । हे अग्ने ! तुम्हारे निमित्त हम अपनी बुद्धि को सदा सावधान रखेंगे। तुम हमें हिंसित मत करना ॥ ४ ॥ अग्नि ने देवताओं को अपनी बुद्धि से ही पार लगाया । इसीलिए वे देवताओं के स्थान को प्राप्त हो गए । वृक्ष, औषधियाँ अग्नि को ही धारण करते हैं और यह पृथिवी भी अग्नि की सेवा करती है ॥ ५ ॥ [२]

ईशे ह्यग्निरमृतस्य भूरेरीशे रायः सुवीर्यस्य दातोः ।
मा त्वा वयं सहसावन्नवीरा माप्सवः परि षदाम मादुवः ॥६
परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णो नित्यस्य रायः पतयः स्याम ।
न शेषो अग्ने अन्यजातमस्त्यचेतानस्य मा पथो वि दुक्षः ॥७
नहि ग्रभायारणः सुशेवोऽन्योदर्यो मनसा मन्तवा उ ।
अधा चिदोकः पुनरित्स एत्या नो वाज्यभीषाळेतु नव्यः ॥८
त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि त्वमु नः सहसावन्नवद्यात् ।
सं त्वा ध्वस्मन्वदभ्येतु पाथः सं रयिः स्पृहयाय्यः सहस्री ॥९
एता नो अग्ने सौभगा दिदीह्यपि क्रतुं सुचेतसं वतेम ।
विश्वा स्तोतृभ्यो गृणते च सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१०।६

अमृत-दान में अग्नि समर्थ हैं । यह श्रेष्ठ अमृतत्व के प्रदान करने वाले हैं । हे अग्ने ! हम पुत्रादि से हीन न हों, हम कुरूप न हों और तुम्हारी सेवा से भी कभी विरत न हों ॥ ६ ॥ जिसके पास प्रचुर धन होता है वह पुरुष ऋण से मुक्त रहता है । हम भी ऋण से हीन रहने के लिए धन के स्वामी बनेंगे । हे अग्ने ! हम अन्यजात (दत्तक) सन्तान वाले न हों । तुम मूर्ख व्यक्ति के मार्ग पर मत जाना ॥ ७ ॥ अन्यजात पुत्र को हृदय अपना पुत्र स्वीकार नहीं करता क्योंकि उसका मन अपने स्थान पर ही रहता है। हे अग्ने ! हमें शत्रु का नाश करने वाला, अन्न से सम्पन्न

प्राप्त कराओ ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हिंसाकारी से हमारी रक्षा करो। पाप से हमारी रक्षा करो। पवित्र हव्य तुम्हारी ओर गमन करे। हम भी सहस्रों प्रकार के धन पावें ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! श्रेष्ठ धन दो। हम यज्ञकर्त्ता पुत्र पावें। स्तोताओं और उद्गाताओं को समस्त धन मिले। तुम अपने कल्याण द्वारा हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥ [६]

५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता-वैश्वानरः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्राग्नये तवसे भरध्वं गिरं दिवो अरतये पृथिव्याः।
यो विश्वेषाममृतानामुपस्थे वैश्वानरो वावृधे जागृवद्भिः ॥१
पृष्टो दिवि धाय्यग्निः पृथिव्यां नेता सिन्धूनां वृषभः स्तियानाम्।
स मानुषीरभि विशो वि भाति वैश्वानरो वावृधानो वरेण ॥२
त्वद्भिया विश आयन्नसिक्नीरसमना जहतीर्भोजनानि।
वैश्वानर पूरवे शोशुचानः पुरो यदग्ने दरयन्नदीदेः ॥३
तव त्रिधातु पृथिवी उत द्यौर्वैश्वानर व्रतमग्ने सचन्त।
भासा रोदसी आ ततन्थाजस्रेण शोचिषा शोशुचानः ॥४
मग्ने हरितो वावशाना गिरःसचन्ते धुनयो घृताचीः।
पतिं कृष्टीनां रथ्यं रयीणां वैश्वानरमुषसां केतुमह्लाम् ॥५ ।७

यज्ञ में चैतन्य हुए देवताओं के साथ जो अग्नि वृद्धि को पाते हैं, हे स्तोता ! तुम उन्हीं पार्थिव और दिव्य अग्नि की स्तुति करो ॥ १ ॥ जो वैश्वानर अग्नि नदियों के नेता, जल वृष्टिकारक और पूज्य होकर अन्तरिक्ष में और पृथिवी पर आविर्भूत होते हैं, वे हवियों से प्रवृद्ध होकर, शोभायमान होते हैं ॥ २ ॥- हे अग्ने ! जब तुमने पुरु के शत्रु की नगरी को ध्वस्त किया और अपने तेज से प्रदीप्त हुए तब तुम्हारे भय से अशुभ कर्म वाले व्यक्ति भाग गए ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष तुम्हारे हित के लिए कर्म करते हैं। तुम अपने तेज द्वारा प्रकाशमान होकर आकाश-पृथिवी को समृद्ध करते हो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के स्वामी और दिवस के

ध्वजा रूप हो। तुम्हारी कामना वाले अश्व तुम्हारी सेवा करते हैं। स्निग्ध और पाप-रहित वाणी तुम्हारी स्तुति करती है ॥ ५ ॥ [७]

त्वे असुर्यं वसवो न्यृण्वन्क्रतुं हि ते मित्रमहो जुषन्त ।
त्वं दस्यूँरोकसो अग्न आज उरु ज्योतिर्जनयन्नार्याय ॥६
स जायमानः परमे व्योमन्वायुर्न पाथः परि पासि सद्यः ।
त्वं भुवना जनयन्नभि क्रन्नपत्याय जातवेदो दशस्यन् ॥७
तामग्ने अस्मे इषमेरयस्व वैश्वानर द्युमतीं जातवेदः ।
यया राधः पिन्वसि विश्ववार पृथु श्रवो दाशुषे मर्त्याय ॥८
तं नो अग्ने मघवद्भ्यः पुरुक्षुं रयिं नि वाजं श्रुत्यं युवस्व ।
वैश्वानर महि नः शर्म यच्छ रुद्रेभिरग्ने वसुभिः सजोषाः ॥९ ।८

हे अग्ने ! तुम मित्रों को सम्मानित करने वाले हो। वसुगण ने तुम्हें बलवान बनाया है। तुमने कर्मवान् पुरुषों की रक्षा के लिए अपने तेज से राक्षसों को उनके स्थानों से भगा दिया है ॥ ६ ॥ हे अग्ने तुम सूर्य रूप से प्रकट होकर वायु के समान सर्व प्रथम सोम-पान करते हो। जल को उत्पन्न करते हुए अन्न कामना वाले को आश्रय देते हुए विद्युत के रूप में गर्जनशील होते हो ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम सबके द्वारा वरण करने योग्य हो। तुम जिस अन्न के द्वारा धन को पुष्ट करते हो और हव्यदाता के यश को क्षीण नहीं होने देते, वही श्रेष्ठ अन्न हमें प्रदान करो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! हविदाता यजमानों को अन्न, धन और प्रशंसनीय बल प्रदान करो। रुद्रगण और वसुगण के सहित तुम हमारा मंगल करने वाले होओ ॥ ९ ॥ [८]

६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ। देवता—वैश्वानरः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र सम्राजो असुरस्य प्रशस्ति पुंसः कृष्टीनामनुमाद्यस्य ।
इन्द्रस्येव प्र तवसस्कृतानि वन्दे दारुं वन्दमानो विवक्मि ॥१
कविं केतुं धासिं भानुमद्रेर्हिन्वन्ति शं राज्यं रोदस्योः

पुरन्दरस्य गीर्भि रा विवासेऽग्नेर्व्रतानि पूर्व्या महानि ॥२

न्यक्रतून् ग्रथिनो मृध्रवाचः पणींरश्रद्धाँ अवृधाँ अयज्ञान् ।
प्रप्र तान्दस्यूँरग्निर्विवाय पूर्वश्चकारापराँ अयज्यून् ॥३

यो अपाचीने तमसि मदन्तीः प्राचीश्चकार नृतमः शचीभिः ।
तमीशानं वस्वो अग्निं गृणीषेऽनानतं दमयन्तं पृतन्यून् ॥४

यो देह्यो अनमयद्वधस्नैर्यो अर्यपत्नीरुषसश्चकार ।
स निरुध्या नहुषो यह्वो अग्निर्विशश्चक्रे बलिहृतः सहोभिः ॥५

यस्य शर्मन्नुप विश्वे जनास एवैस्तस्थुः सुमतिं भिक्षमाणाः ।
वैश्वानरो वरमा रोदस्योराग्निः ससाद पित्रोरुपस्थम् ॥६

आ देवो ददे बुध्न्या वसूनि वैश्वानर उदिता सूर्यस्य ।
आ समुद्रादवरादा परस्मादाग्निर्ददे दिव आ पृथिव्याः ॥७ ।६

पुरियों को ध्वस्त करने वाले अग्नि की मैं स्तुति करता हूँ । वे अग्नि स्तुत्य, बली सम्राट् इन्द्र के समान ही हैं । मैं उनके यश का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ अग्नि तेजस्वी, पर्वतों के धारणकर्त्ता, प्रज्ञापक, कल्याणप्रद और आकाश-पृथिवी के अधिपति हैं । उन अग्नि को देवता प्रसन्न करते हैं । मैं उनके प्राचीन श्रेष्ठ कर्मों का कीर्त्तन करता हूँ ॥ २ ॥ यज्ञ-विमुख, कटु-भाषी, दुर्बुद्धि वाले 'पणियों' को अग्नि दूर भगावें और उनका पतन करें ॥३॥ अन्धकार में रहने वाले प्राणियों को अग्नि ने श्रेष्ठ मार्ग दिखाया । वे अग्नि धनों के स्वामी और दुष्टों का पराभव करने वाले हैं । मैं उनकी स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन्होंने अपने आयुध से आसुरी माया को नष्ट कर डाला और जिन्होंने उषा की रचना की, उन अग्नि ने प्रजा को अपने बल से रोका और राजा नहुष को कर देने वाला बनाया ॥ ५ ॥ सुख के लिए सब मनुष्य हव्य के सहित आकर जिन अग्नि की कृपा-कामना करते हैं, वे वैश्वानर अग्नि माता-पिता के समान आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित अन्तरिक्ष में प्रकट हुए हैं ॥ ६ सूर्य के उदित होने पर वैश्वानर अग्नि अन्धकार को दूर करते हैं । समुद्र, आकाश, पृथिवी आदि सभी स्थानों का अन्धकार उनमें समा जाता है ॥ ७ ॥ [६]

७ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र वो देवं चित् सहसानमग्निमश्वं न वाजिनं हिषे नमोभिः ।
भवा नो दूतो अध्वरस्य विद्वान्त्मना देवेषु विविदे मितद्रुः ॥१
आ याह्यग्ने पथ्या अनु स्वा मन्द्रो देवानां सख्यं जुषाणः ।
आ सानु शुष्मैर्नदयन्पृथिव्या जम्भेभिर्विश्वमुशधग्वनानि ॥२
प्राचीनो यज्ञः सुधितं हि बर्हिः प्रीणीते अग्निरीळितो न होता ।
आ मातरा विश्ववारे हुवानो यतो यविष्ठ जज्ञिषे सुशेवः ॥३
सद्यो अध्वरे-रथिरं जनन्त मानुषासो विचेतसो य एषाम् ।
विशामधायि विश्पतिर्दुरोणेऽग्निर्मन्द्रो मधुवचा ऋतावा ॥४
असादि वृतो वह्निराजगन्वानग्निर्ब्रह्मा नृषदने विधर्ता ।
द्यौश्च यं पृथिवी वावृधाते आ यं होता यजति विश्ववारम् ॥५
एते द्युम्नेभिर्विश्वमातिरन्त मन्त्रं ये वारं नर्या अतक्षन् ।
प्र ये विशस्तिरन्त श्रोषमाणा आ ये मे अस्य दीधयन्नृतस्य ॥६
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७।१०

हे अग्ने ! तुमने राक्षस आदि को भगाया । तुम अश्व के समान वेगवान् हो । तुम मेधावी हो । तुम देवताओं में दूतकर्म नाम से प्रसिद्ध हो । हमारे यज्ञ में दौत्य कर्म करने वाले होओ ॥ १ ॥ हे स्तुत्य अग्ने ! तुम देवताओं के मित्र हो । अपने तेज से पृथिवी के तट को शब्द से गुंजाते हुए सब वनों को भस्म करते हुए अपने मार्ग से आगमन करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम युवा हो । जब तुम शोभन रूप में प्रकट होते हो तभी यज्ञ किया जाता है । तुम होता रूप से बैठकर तृप्ति को प्राप्त होते हो । उस समय सबके लिए प्रदीप्त मातृभूत आकाश-पृथिवी के आह्वानकारी यज्ञ-नेता अग्नि को मेधावी जन प्रकट करते हैं । जो अग्नि हविवाहक हैं, वही मनुष्यों के गृहों में निवास करते हैं ॥ ४ ॥ आकाश और पृथिवी जिन अग्नि की वृद्धि करती हैं और जिन

अग्नि के लिए होता यज्ञ करता है, वह अग्नि हवियों के वहन करने वाले तथा ब्रह्मादि देवताओं के धारणकर्त्ता हैं। वे मनुष्यों के घरों में निवास करते हैं ॥ ५ ॥ जिन मनुष्यों ने मन्त्रों से संस्कृत कर उन्हें बढ़ाया और जिन्होंने अग्नि को यज्ञ-कामना से प्रज्वलित किया है, वे अग्नि अन्न के द्वारा सभी पोषक बलों को प्रवृद्ध हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने! तुम वसुओं के स्वामी हो। वसिष्ठ वंशज ऋषि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम हविदाता यजमान और स्तोता को अन्न से शीघ्र ही परिपूर्ण करो और हमारी सदा रक्षा करते रहो ॥ ७ ॥ [१०]

८ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-अग्निः । छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

इन्धे राजा समर्यो नमोभिर्यस्य प्रतीकमाहुतं घृतेन ।
नरो हव्येभिरीळते सबाध आग्निरग्र उषसामशोचि ॥१
अयमु ष्य सुमहाँ अवेदि होता मन्द्रो मनुषो यह्वो अग्निः ।
। भा अकः ससृजानः पृथिव्यां कृष्णपविरोषधीभिर्ववक्षे ॥२
कया नो अग्ने वि वसः सुवृक्ति कामु स्वधामृणवः शस्यमानः ।
कदा भवेम पतयः सुदत्र रायो वन्तारो दुष्टरस्य साधोः ॥३
प्रप्रायमग्निर्भरतस्य शृण्वे वि यत्सूर्यो न रोचते बृहद्भाः ।
अभि यः पूरुं पृतनासु तस्थौ द्युतानो दैव्यो अतिथिः शुशोच ॥४
असन्नित्त्वे आहवनानि भूरि भुवो विश्वेभिः सुमना अनीकैः ।
स्तुतश्चिदग्ने शृण्विषे गृणानः स्वयं वर्धस्व तन्वं सुजात ॥५
इदं वचः शतसाः संसहस्रमुदग्नये जनिषीष्ट द्विबर्हाः ।
शं यत्स्तोतृभ्य आपये भवाति द्युमदमीवचातनं रक्षोहा ॥६
नू त्वामग्न ईमहे वसिष्ठा ईशानं सूनो सहसो वसूनाम् ।
इषं स्तोतृभ्यो मघवद्भ्य आनड्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

जिन अग्नि के रूप को घृत से आहूत करते हैं
विद्वज्जन जिनकी स्तुति करते हैं, वे अग्नि स्तुतियों के

वे अग्नि उषा से पूर्व प्रदीप्त हो जाते हैं ॥ १ ॥ यह अग्नि होता हैं । यह महान् कहे जाते हैं । इनकी दीप्ति सब ओर फैलती है । इनका मार्ग काला होता है । यह औषधियों द्वारा प्रवृद्ध होते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम किस हवि को प्राप्त कर हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होगे ? तुम किस स्वधा की कामना करोगे ? तुम सुन्दर दान वाले हो । हम तुम्हारा दान पाकर कब धनाधिकारी होंगे ? ॥ ३ ॥ जब अग्नि सूर्य के समान तेजस्वी होकर प्रकाश फैलाते हैं, तब वे यजमान द्वारा प्रशंसित होते हैं । जिन अग्नि ने पुरु को हराया, वही अग्नि देवताओं के लिए प्रदीप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम्हें प्रचुर हव्य दिया गया है । तुम तेजों के सहित प्रसन्न होओ और स्तुति सुनो । तुम स्तुतियों से प्रसन्न होकर अपने शरीर को बढ़ाओ ॥ ५ ॥ सौ गौओं का विभाग करने वाले और सहस्र गौओं से युक्त कर्मवान् तथा मेधावी वशिष्ठ ने इस स्तोत्र को अग्नि की प्रसन्नता के लिए रचा है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम वसुगण के स्वामी हो, बल से उत्पन्न हुए हो । वशिष्ठ तुम्हारी स्तुति में प्रवृत्त हुए हैं । तुम हविर्युक्त यजमान और स्तोता को अन्न से शीघ्र ही सम्पन्न करो और श्रेष्ठ रक्षणों से हमारी रक्षा करो ॥ ७ ॥ [११]

९ सूक्त

(ऋषि – वशिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अबोधि जार उषसामुपस्थाद्धोता मन्द्रः कवितमः पावकः ।
दधाति केतुमुभयस्य जन्तोर्हव्या देवेषु द्रविणं सुकृत्सु ॥१
सुक्रतुर्यो वि दुरः पणीनां पुनानो अर्कं पुरुभोजसं नः ।
होता मन्द्रो विशां दमूनास्तिरस्तमो ददृशे राम्याणाम् ॥२
अमूरः कविरदितिर्विवस्वान्सुसंसन्मित्रो अतिथिः शिवो नः ।
चित्रभानुरुषसां भात्यग्रेऽपां गर्भः प्रस्व आ विवेश ॥३
ईळेन्यो वो मनुषो युगेषु समनगा अशुचज्जातवेदाः ।
सुसंदृशा भानुना यो विभाति प्रति गावः समिधानं बुधन्त ॥४
अग्ने याहि दूत्यं मा रिषण्यो देवाँ अच्छा ब्रह्मकृता गणेन ।

वतीं मरुतो अश्विनापो यक्षि देवान्रत्नधेयाय विश्वान् ॥५
मग्ने समिधानो वसिष्ठो जरूथं हन्यक्षि राये पुरन्धिम् ।
रणीथा जातवेदो जरस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१२

अग्नि सब प्राणियों को पवित्र करने वाले, होता, हर्षदायक और उषा मध्य चैतन्य होने वाले हैं। वह देवताओं और मनुष्यों में बुद्धि को धारण रने वाले और पुण्यकर्मा यजमानों में धन धारणकर्त्ता हैं ॥ १ ॥ पणियों मार्ग का उद्घाटन करने वाले अग्नि श्रेष्ठ कर्म करते हैं। उन्होंने पयस्विनी ौओं को हमें प्राप्त कराया है। शान्तमन वाले अग्नि अपने विशिष्ट तेज से सम्पन्न होकर उषा के मध्य जागृत होवे और अन्न के रूप में औषधियों में प्रविष्ट होते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के यज्ञानुष्ठान में स्तुतियों के पात्र होते हो। तुम संग्राम भूमि में अत्यन्त तेजस्वी होते हो। स्तुतियाँ अग्नि को प्रबुद्ध करती हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! दूत-कर्म के लिए देवताओं के पास गमन करो। तुम स्तुति करने वालों की हिंसा मत करना। तुम हमें धन देने के लिए मरुद्गण, अश्विद्वय, जल, सरस्वती आदि सब देवताओं का यज्ञ हो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! वसिष्ठ तुम्हारी परिचर्या करते हैं। तुम कटुभाषी का हनन करो। अनेक स्तुतियों से देवताओं को प्रसन्न करो और हमारी रक्षा करो ॥ ६ ॥ [१२]

१० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्)

उषो न जारः पृथु पाजो अश्रेद्दविद्युतद्दीद्यच्छोशुचानः ।
वृषा हरिः शुचिरा भाति भासा धियो हिन्वान उशतीरजीगः ॥१
स्वर्ण वस्तोरुषसामरोचि यज्ञं तन्वाना उशिजो न मन्म ।
अग्निर्जन्मानि देव आ वि विद्वान्द्रवद् दूतो देवयावा वनिष्ठः ॥२
अच्छा गिरो मतयो देवयन्तीरग्निं यन्ति द्रविणं भिक्षमाणाः ।
सुसन्दृशं सुप्रतीकं स्वञ्चं हव्यवाहमरतिं मानुषाणाम् ॥३
इन्द्रं नो अग्ने वसुभिः सजोषा रुद्रं रुद्रेभिरा वहा बृहन्तम् ।

आदित्येभिरदितिं विश्वजन्यां बृहस्पतिमृक्वभिर्विश्ववारम् ॥४
मन्द्रं होतारमुशिजो यविष्ठमग्निं विश ईळते अध्वरेषु ।
स हि क्षपावाँ अभवद्रयीणामतन्द्रो दूतो यजथाय देवान् ॥५ ।१३

सूर्य के समान ही अग्नि अत्यन्त तेजस्वी होते हैं। वे कामनाओं की वर्षा करने वाले, हवियों के प्रेरक, प्रदीप्त अग्नि कर्मों को प्रेरित कर यश पाते हैं। वे अग्नि कामना वाले उपासकों को जाग्रत करते हैं ॥ १ ॥ उषाकाल में अग्नि सूर्य के समान दमकते हैं। वे यज्ञ को विस्तृत कर श्रेष्ठ स्तुतियों का उच्चारण करते हैं। अग्नि देवता सब प्राणियों को झुकाते हैं ॥ २ ॥ धन की याचना करने वाली देव-काम्या स्तुतियाँ अग्नि के अभिमुख होती हैं। वे अग्नि सुन्दर दर्शन, श्रेष्ठ गमन, मनुष्यों के पति और हव्य-वहनकर्त्ता हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने! वसुगण से मिलकर इन्द्र को बुलाओ। रुद्रों से मिलकर रुद्र को आहूत करो। आदित्यों से सुसंगत होकर अदिति का आह्वान करो। अंगिराओं से सुसंगत होकर वरणीय बृहस्पति का आह्वान करो ॥ ४ ॥ कामना वाले पुरुष स्तुति योग्य अग्नि की स्तुति करते हैं। अग्नि रात्रि में शोभा सम्पन्न होते हैं। देव-याग में वे हवि देने वाले के दूत होते हैं ॥ ५ ॥ [१३]

११ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-अग्निः । छन्द-पंक्तिः त्रिष्टुप्)

महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते ।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्ने होता प्रथमः सदेह ॥१
त्वामीळते अजिरं दूत्याय हविष्मन्तः सदमिन्मानुषासः ।
यस्य देवैरासदो बर्हिरग्नेऽहान्यस्मै सुदिना भवन्ति ॥२
त्रिश्चिदक्तोः प्र चिकितुर्वसूनि त्वे अन्तर्दाशुषे मर्त्याय ।
मनुष्वदग्न इह यक्षि देवान्भवा नो दूतो अभिशस्तिपावा ॥३
अग्निरीशे बृहतो अध्वरस्याग्निर्विश्वस्य हविषः कृतस्य ।
क्रतुं ह्यस्य वसवो जुषन्ताथा देवा दधिरे हव्यवाहम् ॥४
अग्ने वह हविरद्याय देवानिन्द्रज्येष्ठास इह मादयन्ताम् ।

इमं यज्ञं दिवि देवेषु धेहि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।५ ।१४

हे अग्ने ! तुम महान् हो । यज्ञ का सम्पादन करने वाले और देवताओं को प्रसन्न करने वाले हो । तुम सब देवताओं के साथ रथारूढ़ होकर आगमन करो और मुख्य होता होकर कुश पर विराजमान होओ ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम गतिमान हो । हवि देने वाले पुरुष तुम्हें सदा ही दूत बनाते हैं । तुम जिस यजमान के कुशाओं पर देवताओं सहित विराजमान होते हो, वह यजमान शुभ दिन वाला होता है ॥ २ ॥ हे अग्ने ! ऋत्विग्गण तीनों सवनों में तुम्हारे निमित्त हवि देते हैं । तुम हमारे इस यज्ञ में दूत होकर हव्य वहन करो और शत्रुओं से हमारी रक्षा करो ॥ ३ ॥ महायज्ञ के अधीश्वर अग्नि हवियों के भी स्वामी हैं । वसुगण इनके कर्मों की प्रशंसा करते हैं । इन अग्नि को देवताओं ने हव्य वाहक बनाया है ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हव्य सेवनार्थ देवताओं का आह्वान करो । इस यज्ञ में इन्द्रादि को हर्षयुक्त करो यज्ञ-द्रव्य को आकाश में ले जाते हुए हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [१४]

१२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता—अग्निः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अगन्म महा नमसा यविष्ठं यो दीदाय समिद्धः स्वे दुरोणे ।
चित्रभानुं रोदसी अन्तरुर्वी स्वाहुतं विश्वतः प्रत्यञ्चम् ।।१
स मह्ना विश्वा दुरितानि साह्वानग्निः ष्टवे दम आ जातवेदाः ।
स नो रक्षिषद् दुरितादवद्यादस्मान्गृणत उत नो मघोनः ।।२
त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने त्वां वर्धन्ति मतिभिर्वसिष्ठाः ।
त्वे वसु सुषणनानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिःसदा नः ।।३ ।१५

जो अग्नि अपने स्थान में बढ़ते हुए तेज-सम्पन्न होते हैं, जो अद्भुत ज्वाला वाले, महान्, आकाश-पृथिवी के मध्य स्थित, शोभन आह्वान वाले हैं, हम ऐसे अग्नि के पास नमस्कार सहित गमन करते हैं ॥ १ ॥ अपनी महिमा द्वारा वे अग्नि सब पापों को नष्ट करते हैं । यज्ञ में उनकी स्तुति की जाती है, हम यज्ञकर्त्ता उनकी स्तुति करते हैं, वे पापों हमारी रक्षा करें ॥ २ ॥ हे

अग्ने ! मित्रावरुण भी तुम्हीं हो। वसिष्ठों ने तुम्हारा स्तोत्र किया है। तुम्हारे धन हमारे लिए सरलता से प्राप्त हों। तुम हमारे पालक रहो॥ ३॥ [१४]

१३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—वैश्वानरः। छन्द—पंक्तिः)

प्राग्नये विश्वशुचे धियन्धेऽसुरघ्ने मन्म धीतिं भरध्वम्।
भरे हविर्न बर्हिषि प्रीणानो वैश्वानराय यतये मतीनाम् ॥१
त्वमग्ने शोचिषा शोशुचान आ रोदसी अपृणा जायमानः।
त्वं देवाँ अभिशस्तेरमुञ्चो वैश्वानर जातवेदो महित्वा ॥२
जातो यदग्ने भुवना व्यख्यः पशून्न गोपा इर्यः परिज्मा।
वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ॥१६

राक्षसों का हनन करने वाले कर्मवान् अग्नि के लिए यज्ञानुष्ठान करते हुए, हे स्तोताओ! उन्हीं की स्तुति करो। मैं प्रसन्न हृदय से, अभीष्टों की सिद्धि करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ॥ १॥ हे अग्ने! तुमने दीप्ति से तेजोमयी हुई आकाश पृथिवी को परिपूर्ण किया है। तुमने अपनी महिमा से ही देवताओं को शत्रु के हाथ से छुड़ाया था॥ २॥ हे अग्ने! सूर्य रूप से तुम ही उत्पन्न होते हो। तुम सर्वत्रगन्ता हो, अब तुम प्राणियों का सन्दर्शन करो, उस समय स्तुतियाँ तुम्हें प्राप्त हों। तुम हमारी सदा रक्षा करो॥ ३॥ [१६]

१४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—अग्निः। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्)

समिधा जातवेदसे देवाय देवहूतिभिः।
हविर्भिः शुक्रशोचिषे नमस्विनो वयं दाशेमाग्नये ॥१
वयं ते अग्ने समिधा विधेम वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र।
वयं घृतेनाध्वरस्य होतर्वयं देव हविषा भद्रशोचे ॥२

आ नो देवेभिरुप देवहूतिमग्ने याहि वषट्कृतिं जुषाणः ।
तुभ्यं देवाय दाशतः स्याम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।१७

हम हविर्वान् यजमान जातवेदा अग्नि की परिचर्या करते हैं। हम देवताओं की स्तुति करते हुए अग्नि को प्रसन्न करेंगे। हे मंगलमयी ज्वालाओं से सम्पन्न अग्ने ! हव्य-प्रदान द्वारा हम तुम्हारी सेवा में तत्पर होंगे ॥ १ ॥ हे अग्ने ! हम समिधा और स्तुति द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे। हे मंगलमय ज्वालायुक्त अग्निदेव ! हम हविःप्रदान द्वारा तुम्हें प्रसन्न करेंगे ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो। हम तुम्हारे तेज के उपासक हों और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥ [१७]

१५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अग्निः । छन्द—गायत्री, उष्णिक्)

उपसद्याय मीळ्हुष आस्ये जुहुता हविः । यो नो नेदिष्ठमाप्यम् ॥१
यः पञ्च चर्षणीरभि निषसाद दमेदमे । कविर्गृहपतिर्युवा ॥२
स नो वेदो अमात्यमग्नी रक्षतु विश्वतः । उतास्मान्पात्वंहसः ॥३
नवं नु स्तोममग्नये दिवः श्येनाय जीजनम् । वस्वः कुविद्वनाति नः ॥४
स्पार्हा यस्य श्रियो दृशे रयिर्वीरवतो यथा ।
अग्रे यज्ञस्य शोचतः ॥५ ।१८

हे ऋत्विजो ! जो अग्नि हमारे निकटस्थ वन्धु हैं, उनके साथी काम्य-साधक अग्नि के मुख में हवि डालो ॥ १ ॥ घरों का पालन करने वाले युवकतम अग्नि पंचजनों के सम्मुख प्रत्येक गृह में निवास करते हैं ॥ २ ॥ जो अग्नि हमें मन्त्र देते हैं, वही हमें सब विघ्नों से बचावें। वही हमारे धन की रक्षा करें और हमें पापों से मुक्त करें ॥ ३ ॥ हम गरुड़ के समान द्रुतगामी अग्नि के लिए अभिनव स्तोत्र रचते हैं। वे हमें महान् धन प्रदान करें ॥ ४ ॥ यज्ञ के अग्रभाग में दमकती हुई अग्नि की ज्वालाऐं पुत्र वाले यजमान के धन के समान शोभाजनक होती हैं ॥ ५ ॥ (१८)

सेमां वेतु वषट्कृतिमग्निर्जुषत नो गिरः । यजिष्ठो हव्यवाहनः ॥६
नि त्वा नक्ष्य विश्पते द्युमन्तं देव धीमहि । सुवीरमग्न आहुत ॥७
क्षप उस्रश्च दीदिहि स्वग्नयस्त्वया वयम् । सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥८
उप त्वा सातये नरो विप्रासो यन्ति धीतिभिः । उपाक्षरा सहस्रिणी ॥९
अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिः पावक ईड्यः ॥१०॥१९

यज्ञकर्ताओं के श्रेष्ठ हव्य का वहन करने वाले अग्नि हमारी हवियों की इच्छा करते हुए हमारे स्तोत्र से प्रसन्न हों ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम यजमानों द्वारा आहूत किये जाते हो । तुम वीरकर्मा और तेजस्वी हो । हे संसार के स्वामी ! तुम्हें हमने प्रतिष्ठित किया है ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! तुम दिन-रात प्रज्ज्वलित रहो । तुम हम पर प्रसन्न होकर श्रेष्ठ कर्म वाले बनो ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! धन की अभिलाषा वाले यजमान अनुष्ठान द्वारा तुम्हें प्रसन्न करते हैं ॥ ९ ॥ हे स्तुत्य अग्ने ! तुम श्रेष्ठ ज्वाला वाले, पवित्र और शोधक हो । राक्षसों के हिंसाकारी यत्नों को रोको ॥ १० ॥ [१९]

स नो राधांस्या भरेशानः सहसो यहो । भगश्च दातु वार्यम् ॥११
त्वमग्ने वीरवद्यशो देवश्च सविता भगः । दितिश्च दाति वार्यम् ॥१२
अग्ने रक्षा णो अंहसः प्रति ष्म देव रीषतः । तपिष्ठैरजरो दह ॥१३
अधा मही न आयस्यनाधृष्टो नृपीतये । पूर्भवा शतभुजिः ॥१४
त्वं नः पाह्यंहसो दोषावस्तरघायतः । दिवा नक्तमदाभ्य ॥१५ ।२०

हे अग्ने ! तुम संसार के पालक होकर हमें धन प्रदान करो । भग देवता भी हमें धन प्रदान करें ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न धन हमें प्रदान करो । सविता, भग और अदिति भी हमें धन प्रदान करें ॥ १२ ॥ हे अग्ने ! तुम जरा-रहित हो । हिंसाकारियों को अपने संतापदायक तेज से भस्म करो और पाप से हमारी रक्षा करो ॥ १३ ॥ हे दुर्धर्ष अग्ने ! तुम हमारे मनुष्यों की रक्षा के लिए लौह-नगरी का निर्माण करो ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! अन्धकार को दूर करो । तुम हमें पाप से और पाप कर्मा दुष्ट से रक्षित करो ॥ १५ ॥ [२०]

१६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–अग्निः । छन्द–अनुष्टुप्, बृहती, पंक्तिः)

एना वो अग्निं नमसोर्जो नपातमा हुवे ।
प्रियं चेतिष्ठमरतिं स्वध्वरं विश्वस्य दूतममृतम् ॥१
स योजते अरुषा विश्वभोजसा स दुद्रवत्स्वाहुतः ।
सुब्रह्मा यज्ञः सुशमी वसूनां देवं राधो जनानाम् । २
उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीळ्हुषः ।
उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः ॥३
तं त्वा दूतं कृण्महे यशस्तमं देवाँ आ वीतये वह ।
विश्वा सूनो सहसो मर्तभोजना रास्व तद्यत्त्वेमहे ॥४
त्वमग्ने गृहपतिस्त्वं होता नो अध्वरे ।
त्वं पोता विश्ववार प्रचेता यक्षि वेषि च वार्यम् ॥५
कृधि रत्नं यजमानाय सुक्रतो त्वं हि रत्नधा असि ।
आ न ऋते शिशीहि विश्वमृत्विजं सुशंसो यश्च दक्षते ॥६ ।२१

हे यजमान ! मैं तुम्हारे निमित्त नवोत्पन्न, गतिवान्, यज्ञवान्, देव-दूत अग्नि का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ वे अग्नि सब के पालनकर्त्ता हैं । वे दोनों अश्वों को रथ में योजित करते हैं और देवताओं की ओर शीघ्रता से जाते हैं । वे श्रेष्ठ आहुति वाले, यज्ञ-योग्य एवं सुन्दर कर्म वाले हैं । उन अग्नि का धन वसिष्ठ के वंशज ऋषियों को प्राप्त हो ॥ २ ॥ इन आह्वानीय अग्नि का कामनाकारी तेज उन्नत हो रहा है । इनका धूम्र अन्तरिक्ष को स्पर्श करने वाला है । सभी मनुष्य अग्नि को प्रदीप्त कर रहे हैं ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! तुम यशस्वी हो । हम तुम्हें दूत रूप रूप से वरण करते हैं । तुम हविर्वहन करते हुए देवाह्वाक होओ । जब हम याचना करें, तभी हमें उपभोग्य धन प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! सभी प्राणी तुम्हें पूजते हैं । तुम हमारे यज्ञ में गृह-स्वामी बनो । तुम होता और पोता भी हो । यज्ञ में हव्य का भक्षण

करो ॥ ५ ॥ हे अग्ने ! तुम श्रेष्ठ कर्म वाले हो यजमान को रत्न धन प्रदान करो । हमारे यज्ञ में सबको तेज दो, होता की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ [२१]

त्वे अग्ने स्वाहुत प्रियासः सन्तु सूरयः ।
यन्तारो ये मघवानो जनानामूर्वान्दयन्त गोनाम् ॥७
येषामिळा घृतहस्ता दुरोण आँ अपि प्राता निषीदति ।
ताँस्त्रायस्व सहस्य द्रुहो निदो यच्छा नः शर्म दीर्घश्रुत् ॥८
स मन्द्रया च जिह्वया वह्निरासा विदुष्टरः ।
अग्ने रयिं मघवद्भ्यो न आ वह हव्यदातिं च सूदय ॥९
ये राधांसि ददत्यश्व्या मघा कामेन श्रवसो महः ।
ताँ अंहसः पिपृहि पर्तृभिष्ट्वं शतं पूर्भिर्यविष्ठ्य ॥१०
देवो वो द्रविणोदाः पूर्णां विवष्ट्यासिचम् ।
उद्वा सिञ्चध्वमुप वा पृणध्वमादिद्वो देव ओहते ॥११
तं होतारमध्वरस्य प्रचेतसं वह्निं देवा अकृण्वत ।
दधाति रत्नं विधते सुवीर्यमग्निर्जनाय दाशुषे ॥१२ ।२२

हे अग्ने ! भले प्रकार तुम्हारा आह्वान किया जाता है । जो धनिक दाता गवादि धन दान करते हैं वे भी देवताओं के प्रीति-भाजन हों ॥ ७ ॥ जिन घरों में हवि रूप वाली देवी पूर्ण होकर निवास करती है, हे बलवान अग्ने ! उन घरों की दुष्ट निन्दकों से रक्षा करो । हमें सुख प्रदान करो, जिससे हम तुम्हारी स्तुति करते रहें ॥ ८ ॥ हे अग्ने ! तुम मेधावी एवं हव्य वाहक हो । तुम हमें मुख में स्थित मधुर वाणी के द्वारा धन प्राप्त कराओ । हम हविर्दान पुरुषों को कर्म में लगाओ ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! तुम्हारे यजमान यश की कामना से हविर्दान में लगते हैं, उन्हें पाप से रक्षित करो ॥ १० ॥ हे स्तोता ! अग्नि तुम्हारे स्रुक की कामना करते हैं, तुम अपने पात्र को सोम से भर कर प्रस्तुत करो, तब अग्नि तुम्हारे यज्ञ को वहन करेंगे ॥ ११ ॥ हे देवगण तुमने बुद्धिमान अग्नि को होता नियुक्त किया है । यह अग्नि यजमान को सुन्दर धन प्रदान करने वाले हों ॥ १२ ॥

१७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता–अग्निः । छन्द–उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बर्हिरुर्विया वि स्तृणीताम् ॥१
उत द्वार उशतीर्वि श्रयन्तामुत देवाँ उशत आ वहेह ॥२
अग्ने वीहि हविषा यक्षि देवान्त्स्वध्वरा कृणुहि जातवेदः ॥३
स्वध्वरा करति जातवेदा यक्षद्देवाँ अमृतान्पिप्रयच्च ॥४
वंस्व विश्वा वार्याणि प्रचेतः सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य ॥५
त्वामु ये दधिरे हव्यवाहं देवासो अग्न ऊर्ज आ नपातम् ॥६
ते ते देवाय दाशतः स्याम महो नो रत्ना वि दध इयानः ॥७ ।२३

हे अग्ने ! समिधा द्वारा समृद्धि को प्राप्त होओ । इस यज्ञ में अध्वर्यु गण कुश बिछाते हैं ॥ १ ॥ हे अग्ने ! देवताओं की इच्छा करने वाले द्वारों के लिए आश्रय रूप होकर यज्ञ अभिलाषा वाले देवताओं का आह्वान करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! देवताओं के अभिमुख गमन करो । हवि से यज्ञ करो और हमारे यज्ञ को देवताओं की प्रसन्नता का कारण बनाओ ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! अविनाशी देवताओं को यज्ञ से युक्त करो । उनके लिए हवि दो और स्तुतियों से प्रसन्न करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! हमें समस्त धन प्रदान करो । हमें दिए गए आशीर्वचन सत्य हों ॥ ५ ॥ हे बलोत्पन्न अग्ने ! उन सब देवताओं ने तुम्हें हविवहन करने वाला नियुक्त किया है ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! तुम तेजस्वी हो । हम तुम्हें हव्य प्रदान करेंगे । तुम महान् हो, हमें रत्न-धन प्रदान करो ॥ ७ ॥ [२३]

१८ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

त्वे ह यत्पितराश्चिन्न इन्द्र विश्वा वामा जरितारो असन्वन् ।
त्वे गावः सुदुघास्त्वे ह्यश्वास्त्वं वसु देवयते वनिष्ठः ॥ १ ॥
राजेव हि जनिभिः क्षेष्येवाव द्युभिरभि विदुष्कविः सन् ।

पिशा गिरो मघवन् गोभिरश्वैस्त्वायतः शिशीहि राये अस्मान् ॥२
इमा उ त्वा पस्पृधानासो अत्र मन्द्रा गिरो देवयन्तीरुप स्थुः ।
अर्वाची ते पथ्या राय एतु स्याम ते सुमताविन्द्र शर्मन् ॥३
धेनुं न त्वा सूयवसे दुदुक्षन्नुप ब्रह्माणि ससृजे वसिष्ठः ।
त्वामिन्मे गोपतिं विश्व आहा ग इन्द्रः सुमतिं गन्त्वच्छ ॥४
अर्णांसि चित्पप्रथाना सुदास इन्द्रो गाधान्यकृणोत्सुपारा ।
शर्धन्तं शिम्युमुचथस्य नव्यः शापं सिन्धूनामकृणोदशस्तीः ॥५ ।२४

हे इन्द्र ! हमारे पूर्वजों ने तुम्हारी स्तुति द्वारा ही समस्त धनों को प्राप्त किया है । तुम्हारे कर्म से ही गौएं दोहन कर्म द्वारा दुग्ध देने वाली होती हैं । देवताओं के उपासकों को तुम श्रेष्ठ धन प्रदान करते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त तेजस्वी बने रहते हो । तुम मेधावी और कवि हो, स्तोताओं को गौ, अश्व और रूप दो । हम तुम्हारी उपासना करते हैं, तुम हमें धन के योग्य बनाओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे पास हमारी रमणीय स्तुतियाँ गमन करती हैं । तुम्हारा धन हमारी ओर आगमन करे । हम तुम्हारे अनुग्रह से सुख पावें ॥ ३ ॥ ज्ञानी वसिष्ठ श्रेष्ठ तृण वाली गोष्ठ में वास करने वाली गौ के समान स्तोत्र रूप बछड़े को उत्पन्न करते हैं । सभी प्राणी तुम्हें गौओं का स्वामी मानते हैं । हे इन्द्र ! हमारी स्तुति का सामीप्य प्राप्त करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! विकट धारा वाली परुष्णी नदी से तुमने सुदास राजा को पार करने योग्य बनाया । नदियों की तरङ्ग से स्तोता के यातायात को रोकने वाले शाप को तुमने ही नष्ट किया ॥ ५ ॥   [२४]

पुरोळा इत्तुर्वशो यक्षुरासीद्राये मत्स्यासो निशिता अपीव ।
श्रुष्टिं चक्रुर्भृगवो द्रुह्यवश्च सखा सखायमतरद्विषूचोः ॥६
आ पक्थासो भलानसो भनन्तालिनासो विषाणिनः शिवासः ।
आ योऽनयत्सधमा आर्यस्य गव्या तृत्सुभ्यो अजगन्युधा नॄन् ॥७
दुराध्यो अदितिं स्रेवयन्तोऽचेतसो वि जगृभ्रे परुष्णीम् ।
मह्नाविव्यक् पृथिवीं पत्यमानः पशुष्कविरशयच्चायमानः ।

ईयुरर्थं न न्यर्थं परुष्णीमाशुश्चनेदभिपित्वं जगाम ।
सुदास इन्द्रः सुतुकाँ अमित्रानरन्धयन्मानुषे वध्रिवाचः ॥९
ईयुर्गावो न यवसादगोपा यथाकृतमभि मित्रं चितासः ।
पृश्निगावः पृश्निनिप्रेषितासः श्रुष्टिं चक्रुर्नियुतो रन्तयश्च ॥१०।२५

तुर्वश नामक एक यज्ञकर्ता राजा थे । भृगुओं और द्रुह्युओं ने मत्स्य के समान जल में बँधे रहने पर भी सुदास और तुर्वश से धन के निमित्त भेट की । इन दोनों में एक को इन्द्र ने मार डाला और सुदास को पार लगा दिया ॥ ६ ॥ हव्यों का पाक करने वाले, मङ्गल सुख वाले दीक्षित पुरुष इन्द्र का स्तोत्र करते हैं । सोम पान से मदयुक्त हुए इन्द्र गौओं को छुड़ा लाये । तब उन्होंने गौओं के छिपाने वाले राक्षसों का वध कर डाला ॥ ७ ॥ दुष्ट हृदय वाले शत्रुओं ने परुष्णी नदी को खोद कर उसके कगारों को ढा दिया । सुदास ने इन्द्र की कृपा प्राप्त की थी । चयमान के पुत्र कवि को सुदास ने पालतू पशु के समान धाराशायी किया था ॥ ८ ॥ इन्द्र ने परुष्णी के किनारे को ठीक किया, तब उसका जल गन्तव्य दिशा में जाने लगा । अश्व भी अपने गन्तव्य स्थान में गया । तब इन्द्र ने सुदास के शत्रुओं को अपने वश में कर लिया ॥ ६ ॥ जैसे चराने वाले के बिना गौएं जौ के खेत में जाती हैं, वैसे ही माता द्वारा प्रेरित मरुद्गण अपनी इच्छानुसार इन्द्र के पास गए । तब मरुद्गण के अश्व भी प्रसन्नता को प्राप्त हुए ॥ १० ॥ [२५]

एकं च यो विंशतिं च श्रवस्या वैकर्णयोर्जनान्राजा न्यस्तः ।
दस्मो न सद्मन्नि शिशाति बर्हिः शूरः सर्गमकृणोदिन्द्र एषाम् ॥११
अध श्रुतं कवषं वृद्धमप्स्वनु द्रुह्युं नि वृणग्वज्रबाहुः ।
वृणाना अत्र सख्याय सख्यं त्वायन्तो ये अमदन्ननु त्वा ॥१२
वि सद्यो विश्वा दृंहितान्येषामिन्द्रः पुरः सहसा सप्त दर्दः ।
व्यानवस्य तृत्सवे गयं भाग्जेष्म पूरुं विदथे मृध्रवाचम् ॥१३
नि गव्यवोऽनवो द्रुह्यवश्च षष्टिः शता सुषुपुः षट् सहस्रा ।
षष्टिर्वीरासो अधि षड् दुवोयु विश्वेदिन्द्रस्य वीर्या कृतानि । १४

इन्द्रेणैते तृत्सवो वेविषाणा आपो न सृष्टा अधवन्त नीचीः।
दुर्मित्रासः प्रकलविन् मिमाना जहुर्विश्वानि भोजना सुदासे ॥१५॥२६

राजा सुदास ने दो प्रदेशों के इक्कीस पुरुषों को मार कर यश-संचित किया। अध्वर्यु जैसे कुश को काटता है वैसे ही उस राजा ने शत्रुओं को काट डाला। इन्द्र ने सुदास की सहायता के लिए मरुद्गण को प्रकट किया ॥ ११ फिर उन वज्रहस्त इन्द्र ने द्रुह्यु, कवष, श्रुत और वृद्ध नामक शत्रुओं को जल-मग्न किया। उस समय जिन पुरुषों ने उनकी स्तुति की वे उनके सखा हो गए ॥ १२ ॥ इन्द्र ने अपनी शक्ति से उक्त शत्रुओं के नगरों को भी तोड़ डाला और अनु-पुत्र का घर मृत्यु को दे दिया। हे इन्द्र! हम पर ऐसी कृपा करो जिससे हम कठोरवक्ता शत्रुओं पर विजय पा सकें ॥ १३ ॥ अनु और द्रुह्यु की गौओं की कामना करने वाले छियासठ सहस्र छियासठ संबंधियों का सुदास के लिए वध किया। यह सब कर्म इन्द्र की वीरता प्रदर्शित करते हैं ॥ १४ ॥ तब यह तृत्सुवंशज संग्राम भूमि से भागने लगे, परन्तु बाधा उपस्थित होने पर अपना समस्त धन उन्होंने सुदास को दे दिया ॥ १५ ॥ [२६]

अर्धं वीरस्य शृतपामनिन्द्रं परा शर्धन्तं नुनुदे अभि क्षाम्।
इन्द्रो मन्युं मन्युम्यो मिमाय भेजे पथो वर्तनिं पत्यमानः ॥१६
आध्रेण चित्तद्वेकं चकार सिंह्यं चित्पेत्वेना जघान।
अव स्रक्तीर्वेश्यावृश्चदिन्द्रः प्रायच्छद्विश्वा भोजना सुदासे ॥१७
शश्वन्तो हि शत्रवो रारधुष्टे भेदस्य चिच्छर्धतो विन्द रन्धिम्।
मर्ताँ एनः स्तुवतो यः कृणोति तिग्मं तस्मिन्नि जहि वज्रमिन्द्र ॥१८
आवदिन्द्रं यमुना तृत्सवश्च प्रात्र भेदं सर्वताता मुषायत्।
अजासश्च शिग्रवो यक्षवश्च बलिं शीर्षाणि जभ्रुरश्व्यानि ॥१९
न त इन्द्र सुमतयो न रायः संचक्षे पूर्वा उषसो न नूत्नाः।
देवकं चिन्मान्यमानं जघन्थाव त्मना बृहतः शम्बरं भेत् ॥२०॥२७

हिंसाकारी, यज्ञ शून्य, इन्द्र विरोधी पुरुषों को सुदास के निमित्त इन्द्र ने पृथिवी पर गिराया। इन्होंने क्रोधित शत्रुओं के क्रोध को व्यर्थ कर दिया

तब सुदास के शत्रु ने संग्राम से मुख मोड़ लिया ॥ १६ ॥ सुदास के लिए इन्द्र ने छाग-द्वारा सिंह को मरवा दिया, सुई द्वारा ही यूप का कोना काटा और समस्त धन सुदास को दे दिया ॥ १७ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने शत्रुओं को वशीभूत कर लेते हो । इस नास्तिक को वशीभूत करो । यह तुम्हारे स्तोता का अहित करता है । इसके विरुद्ध तीक्ष्ण वीर को प्रेरित कर इसे नष्ट कर डालो ॥ १८ ॥ इस युद्ध में इन्द्र ने नास्तिक को मार डाला । यमुना ने इन्द्र की संतुष्टि की । तृत्सुओं ने भी उन्हें प्रसन्न किया । शिग्रु, यक्षु और अज ने भी उपहार प्रस्तुत किए ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे प्राचीन कर्म उषा के समान वर्णनातीत हैं । तुम्हारे नवीन कर्मों का वर्णन करना भी कठिन है । तुमने देवक को मारा और शिला से शम्बर का भी संहार किया ॥२०॥ (२७)

प्र ये गृहादममदुस्त्वाया पराशरः शतयातुर्वसिष्ठः ।
न ते भोजस्य सख्यं मृषन्ताधा सूरिभ्यः सुदिना व्युच्छान् ॥२१
द्वे नप्तुर्देववतः शते गोर्द्वा रथा वधूमन्ता सुदासः ।
अर्हन्नग्ने पैजवनस्य दानं होतेव सद्म पर्येमि रेभन् ॥२२
चत्वारो मा पैजवनस्य दानाः स्मद्दिष्टयः कृशनिनो निरेके ।
ऋज्रासो मा पृथिविष्ठाः सुदासस्तोकं तोकाय श्रवसे वहन्ति ॥२३
यस्य श्रवो रोदसी अन्तरुर्वी शीर्ष्णेशीर्ष्णे विबभाजा विभक्ता ।
सप्तेदिन्द्रं न स्रवतो गृणन्ति नि युध्यामधिमशिशादभीके ॥२३
इमं नरो मरुतः सश्चतानु दिवोदासं न पितरं सुदासः ।
अविष्टना पैजवनस्य केतं दूणाशं क्षत्रमजरं दुवोयु ॥२५ ।२८

हे इन्द्र ! जिनके मारे जाने की कामना राक्षसगण करते हैं, उन वसिष्ठ पाराशर आदि ऋषियों ने तुम्हारी स्तुति की थी । वे तुम्हारी मित्रता को नहीं भूले, क्योंकि तुमने उनकी सदा रक्षा की है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! तुम देवताओं में श्रेष्ठ हो । मैंने तुम्हारी स्तुति करके सुदास से सौ गौ और दो रथ प्राप्त किये हैं । होता के समान मैं भी यज्ञ स्थान में जाता हूँ ॥ २२ ॥ राजा सुदास के श्रद्धा और दानादि कर्मों वाले, स्वर्णालंकारों से विभूषित, सरल-

गामी घोर प्रश्व, पाजन योग्य वसिष्ठ को, पुत्र के समान दे डाले हैं ॥ २३ ॥ आकाश-पृथिवी में विस्तृत यश वाले राजा सुदास उत्तम कर्म वाले सत्कर्मी को धन-दान करते हैं। इन्द्र के समान उनके स्तोत्र किए जाते हैं। संग्राम उपस्थित होने पर युध्यामधि नामक शत्रु को नदियों ने विनष्ट किया था ॥ २४ ॥ हे मरुद्गण! यह राजा सुदास के पिता हैं। तुम इन्हीं के समान सुदास की भी रक्षा करो। इनका बल क्षीण न हो। तुम इनके गृह को भी रक्षित करो ॥ २५ ॥ (२८)

१९ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः। देवता–इन्द्रः। छन्द–त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यस्तिग्मशृङ्गो वृषभो न भीम एकः कृष्टीश्च्यावयति प्र विश्वाः।
यः शश्वतो अदाशुषो गयस्य प्रयन्तासि सुष्वितराय वेदः ॥१
त्वं ह त्यदिन्द्र कुत्समावः शुश्रूषमाणस्तन्वा समर्ये।
दासं यच्छुष्णं कुयवं न्यस्मा अरन्धय आर्जुनेयाय शिक्षन् ॥२
त्वं धृष्णो धृषता वीतहव्यं प्रावो विश्वाभिरूतिभिः सुदासम्।
प्र पौरुकुत्सिं त्रसदस्युमावः क्षेत्रसाता वृत्रहत्येषु पूरुम् ॥३
त्वं नृभिर्नृमणो देववीतौ भूरीणि वृत्रा हर्यश्व हंसि।
त्वं नि दस्युं चुमुरिं धुनिं चास्वापयो दभीतये सुहन्तु ॥४
तव च्यौत्नानि वज्रहस्त तानि नव यत्पुरो नवतिं च सद्यः।
निवेशने शततमाविवेषीरहञ्च वृत्रं नमुचिमुताहन् ॥५ ।२९

तीक्ष्ण सींग वाले वृषभ के समान विकराल होकर इन्द्र अपने शत्रुओं को अकेले ही गिराते हैं और उनके घरों को छीन लेते हैं, वे इन्द्र सोमाभिषवकारी यजमान को धन प्रदान करें ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तब तुमने कुत्स को धन दिया और दस्यु शुष्ण और कुयव को [illegible] कुत्स की रक्षा की थी ॥ २ ॥ हे इन्द्र! हविदाता सुदास की [illegible] कुत्स-पुत्र त्रसदस्यु और पुरु के रक्षक [illegible] ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! [illegible] तुमने मरुद्गण के सहयोग से अनेक दुष्टों का वध किया है। [illegible]

के लिए तुमने दस्यु, चुमुरि और धुनि को मार डाला ॥ ४ ॥ हे वज्रिन् ! तुमने शम्बर के निन्यानवे पुरों का ध्वंस किया और सौवें पुर को अपने निवास के लिए रखा और वृत्र तथा नमुचि को मार दिया ॥ ५ ॥ [२६]

सना ता त इन्द्र भोजनानि रातहव्याय दाशुषे सुदासे ।
वृष्णे ते हरी वृषणा युनज्मि व्यन्तु ब्रह्माणि पुरुशाक वाजम् ॥६
मा ते अस्यां सहसाव परिष्टावघाय भूम हरिवः परादै ।
त्रायस्व नोऽवृकेभिर्वरूथैस्तव प्रियासः सूरिषु स्याम ॥७
प्रियास इत्ते मघवन्नभिष्टौ नरो मदेम शरणे सखायः ।
नि तुर्वशं नि याद्वं शिशीह्यतिथिग्वाय शंस्यं करिष्यन् ॥८
सद्यश्चिन्नु ते मघवन्नभिष्टौ नरः शंसन्त्युक्थशास उक्था ।
ये ते हवेभिर्वि पर्णीरदाशन्नस्मान्वृणीष्व युज्याय तस्मै ॥९
एते स्तोमा नरां नृतम तुभ्यमस्मद्र्यञ्चो ददतो मघानि ।
तेषामिन्द्र वृत्रहत्ये शिवो भूः सखा च शूरोऽविता च नृणाम् ॥१०
नू इन्द्र शूर स्तवमान ऊती ब्रह्मजूतस्तन्वा वावृधस्व ।
उप नो वाजान्मिमीह्युप स्तीन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥११ ।३०

हे इन्द्र ! सुदास को तुम्हारा ऐश्वर्य प्राप्त हुआ । तुम अभीष्टों की वर्षा करने वाले हो । मैं तुम्हारे निमित्त दो अश्वों को योजित करता हूँ, तुम अत्यन्त बल वाले हो । यह स्तुति तुम्हारी ओर गमन करती है ॥ ६ ॥ हे शक्तिवन्त ! तुम्हारे इस यज्ञ में हम पाप भागी न हों । तुम हमारी हर प्रकार रक्षा करो । हम स्तोताओं में सर्व प्रिय हों ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे इस यज्ञ में तुम्हारे प्रीति भाजन होते हुए हम सुखी रहें । तुम अतिथि की सेवा करने वाले सुदास को सुखी करो और तुर्वश तथा याद्व को अपने आधीन कर लो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे यज्ञ में हमने उक्थ का उच्चारण किया है । तुम्हारे हव्य द्वारा प्राप्त धन से हम "पणियों" की भी सहायता कर देते हैं । तुम हमें अपना मित्र मानो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ हविर्दान द्वारा स्तुतियों ने तुम्हें हमारे प्रति प्रसन्न कर दिया है । तुम स्तोताओं की रण भूमि में रक्षा

थो और सदा इनके मित्र रहो ॥ १० ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तूयमान और स्तोत्र मान होकर वृद्धि को प्राप्त होओ। हमें अन्न और गृह प्रदान करो। हमारे सदा रक्षक रहो ॥ ११ ॥ [२१]

२० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्,)

उग्रो जज्ञे वीर्याय स्वधावाञ्चक्रिरपो नर्यो यत्करिष्यन् ।
जग्मिर्युवा नृषदनमवोभिस्त्राता न इन्द्र एनसो महश्चित् ॥१
हन्ता वृत्रमिन्द्रः शूशुवानः प्रावीन्नु वीरो जरितारमूती ।
कर्ता सुदासे अह वा उ लोकं दाता वसु मुहुरा दाशुषे भूत् ॥२
युध्मो अनर्वा खजकृत्समद्वा शूरः सत्राषाड् जनुषेमषाळ्हः ।
व्यास इन्द्रः पृतनाः स्वोजा अधा विश्वं शत्रूयन्तं जघान ॥३
उभे चिदिन्द्र रोदसी महित्वा पप्राथ तविषीभिस्तुविष्म ।
नि वज्रमिन्द्रो हरिवान्मिमिक्षन्त्समन्धसा मदेषु वा उवोच ॥४
वृषा जजान वृषणं रणाय तमु चिन्नारी नर्यं ससूव ।
प्र यः सेनानीरध नृभ्यो अस्तीनः सत्वा गवेषणः स धृष्णुः ॥५ ॥१

बल के निमित्त इन्द्र की उत्पत्ति हुई है। वे मनुष्य के जिस कार्य को करना चाहते हैं, उसे कोई रोक नहीं सकता। वे इन्द्र यज्ञ स्थान को गमन करने वाले हैं। वे हमें पापों से मुक्त करें ॥ १ ॥ वृत्र-हनन के लिए इन्द्र को प्राप्त होते हैं। वीर इन्द्र स्तोता का आश्रय प्रदान कर उसकी रक्षा करते हैं। उन्होंने सुदास के लिए नव निर्मित प्रदेश दिया। वह यजमान को बारंबार धन प्रदान करते हैं ॥ २ ॥ संग्राम में दुर्धर्ष इन्द्र महान वीर हैं। वे असंख्य शत्रुओं को अकेले ही हराते हैं। उन्होंने ही शत्रु-सेना में विघ्न उपस्थित किया। शत्रुओं को वे मार डालते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने अपने बल से द्यावापृथिवी को परिपूर्ण किया। जब तुम शत्रुओं पर वज्र फेंकते हो तब सोम-रस द्वारा तुम्हारी सेवा की जाती है ॥ ४ ॥ कश्यप ने इन्द्र को संग्राम के निमित्त प्रकट किया। वे इन्द्र मनुष्यों के स्वामी और सेनानायक होते हैं।

यही शत्रुओं के संहारक, गौओं के खोजने वाले और वृत्र का नाश करने वाले हैं ॥ ५ ॥ [१]

नू चित्स भ्रेषते जनो न रेषन्मनो यो अस्य घोरमाविवासात् ।
यज्ञैर्य इन्द्रे दधते दुवांसि क्षयत्स राय ऋतपा ऋतेजाः ॥६
यदिन्द्र पूर्वो अपराय शिक्षन्नयज्ज्यायान् कनीयसो देष्णम् ।
अमृत इत्पर्यासीत दूरमा चित्र चित्र्यं भरा रयिं नः ॥७
यस्त इन्द्र प्रियो जनो ददाशदसन्निरेके अद्रिवः सखा ते ।
वयं ते अस्यां सुमतौ चनिष्ठाः स्याम वरूथे अघ्नतो नृपीतौ ॥८
एष स्तोमो अचिक्रदद्वृषा त उत स्तामुर्मघवन्नक्रपिष्ट ।
रायस्कामो जरितारं त आगन्त्वमङ्ग शक्र वस्व आ शको नः ॥९
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ।२

इन्द्र का मन शत्रु-हनन कर्म में रहता है, जो पुरुष उनके उस मन का ध्यान करता है, वह अपने स्थान से कभी गिरता नहीं । इन्द्र अपने स्तोता को धन प्रदान करें ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! पूर्वज अपने से लघु को जो धन देता है, छोटे से जो धन बड़ा पाता है और जो धन पिता से पुत्र पाता है, इन तीनों प्रकार के धनों को यहाँ लाओ ॥ ७ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हें जो मित्रभूत व्यक्ति हवि देता है, वह सदा तुम्हारे अनुग्रह को प्राप्त करते हुए अन्नवान् हों और रक्षा-साधनों से सम्पन्न घर में निवास करें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! यह क्षरित सोम तुम्हारी कामना कर रहा है । स्तोता तुम्हारी स्तुति में लगा है । मैं तुम्हारा स्तोता धन की कामना कर रहा हूँ । तुम शीघ्र ही हमें बसाने वाला धन प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! अपने दिये धन का उपभोग करने की सामर्थ्य हमें दो । हविदाता का पालन करो । हम स्तुति के कार्य में मन से लगें । तुम मेरी सदा रक्षा करते रहो ॥ १० ॥ [२]

२१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

असावि देवं गोऋजीकमन्धो न्यस्मिन्निन्द्रो जनुषेमुवोच ।

बोधामसि त्वा हर्यश्व यज्ञैर्बोधा नः स्तोममन्धसो मदेषु ॥१
प्र यन्ति यज्ञं विपयन्ति बर्हिः सोममादो विदथे दुध्रवाचः ।
न्यु भ्रियन्ते यशसो गृभादा दूरउपब्दो वृषणो नृषाचः ॥२
त्वमिन्द्र स्रवितवा अपस्कः परिष्ठिता अहिना शूर पूर्वीः ।
त्वद्वावक्रे रथ्यो न धेना रेजन्ते विश्वः कृत्रिमाणि भीषा ॥३
भीमो विवेषायुधेभिरेषामपांसि विश्वा नर्याणि विद्वान् ।
इन्द्रः पुरो जर्हृषाणो वि दूधोद्वि वज्रहस्तो महिना जघान ॥४
न यातव इन्द्र जूजुवुर्नो न वन्दना शविष्ठ वेद्याभिः ।
स शर्धदर्यो विषुणस्य जन्तोर्मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः ॥५ ।३

यह गव्य युक्त सोम निष्पन्न होकर तेजोमय हुआ है । इन्द्र इस पर रुचि रखते हैं । हे इन्द्र ! हम तुम्हें यज्ञ द्वारा जगावेंगे । तुम हमारी स्तुति पर ध्यान दो ॥ १ ॥ यज्ञ में पहुँच कर यजमान कुश-विस्तृत करते हैं । वहाँ सोमाभिषवकारी पाषाण घोर शब्द करते हैं । मन्त्र से युक्त ऋत्विजों द्वारा यह पाषाण घर से लाए जाते हैं ॥ २ ॥ हे वीर इन्द्र ! वृत्र द्वारा रोके गए जल को तुमने प्रेरित किया था । तुमने ही नदियों को रथारूढ़ वीरों के समान प्रवाहित किया, तुम्हारे भय से भीत संसार कम्पायमान होता ॥३॥ मनुष्यों का हित जानने वाले इन्द्र ने असुरों के कर्म में विघ्न डाला और उनके सब स्थानों को कम्पित किया । फिर उन्होंने अपने वज्र द्वारा राक्षसों का नाश किया ॥४॥ हे इन्द्र ! दैत्यगण हमें हिंसित न करें । वे हमको हमारी प्रजा से पृथक् न करें । हमारे यज्ञ में ब्रह्मचर्य-विमुख व्यक्ति बाधक न हों ॥ ५ ॥ (१)

अभि क्रत्वेन्द्र भूरध ज्मन्न ते विव्यङ्महिमानं रजांसि ।
स्वेना हि वृत्रं शवसा जघन्थ न शत्रुरन्तं विविदद्युधा ते ॥६
देवाश्चित्ते असुर्याय पूर्वेऽनु क्षत्राय ममिरे सहांसि ।
इन्द्रो मघानि दयते विषह्येन्द्रं वाजस्य जोहुवन्त सातौ ॥७
कीरिश्चिद्धि त्वामवसे जुहावेशानमिन्द्र सौभगस्य भूरेः ।
अवो बभूथ शतमूते अस्मे अभिक्षत्तुस्त्वावतो वरूता ॥८

सखायस्त इन्द्र विश्वह स्याम नमोवृधासो महिना तरुत्र ।
वन्वन्तु स्मा तेऽवसा समीके भीतिमर्यो वनुषां शवांसि ॥९
स न इन्द्र त्वयताया इषे धास्त्मना च ये मघवानो जुनन्ति ।
वस्वी षु ते जरित्रे अस्तु शक्तिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ।४

हे इन्द्र ! तुम अपने कर्म से सब प्राणियों को वश में रखते हो। तुम्हारी महिमा को संसार व्यर्थ नहीं कर सकता । तुमने अपने बल से वृत्र को मारा है । वह तुम्हारे बल का पार नहीं पा सका ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! प्राचीन देवता भी तुमसे अपने को निर्बल मानते थे । तुम शत्रुओं को हरा कर उपासकों को धन प्रदान करते हो । स्तोतागण अन्न के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! तुम ईश्वर हो, स्तोतागण रक्षा के लिए तुम्हें आहूत करते हैं । तुम अनेकों को दुःख से बचाते हो । तुम दुर्धर्ष हिंसक को नष्ट करो ॥८॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हें स्तुतियों से बढ़ाने वाले सदा तुम्हारे रहें । तुम अपनी महिमा से सबको पार लगाते हो । तुम्हारे द्वारा रक्षित स्तोता आक्रमणकारियों को जीते ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अन्न का उपभोग करें ऐसी शक्ति दो । तुम हविदाता का पालन करो । हम स्तुति-कार्य में मन से लगें । तुम सदा हमारे रक्षक रहो ॥ १० ॥　　　　[४]

२२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—उष्णिक्, पंक्तिः, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

पिबा सोममिन्द्र मन्दतु त्वा यं ते सुषाव हर्यश्वाद्रिः ।
　　सोतुर्बाहुभ्यां सुयतो नार्वा ॥१
यस्ते मदो युज्यश्चारुरस्ति येन वृत्राणि हर्यश्व हंसि ।
　　स त्वामिन्द्र प्रभूवसो ममत्तु ॥२
बोधा सु मे मघवन्वाचमेमां यां ते वसिष्ठो अर्चति प्रशस्तिम् ।
　　इमा ब्रह्म सधमादे जुषस्व ॥३
श्रुधी हवं विपिपानस्याद्रेर्बोधा विप्रस्यार्चतो मनीषाम् ।
　　कृष्वा दुवांस्यन्तमा सचेमा ॥४

न ते गिरो अपि मृष्ये तुरस्य न सुष्टुतिमसुर्यस्य विद्वान् ।
सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि ॥५ ।५

हे इन्द्र ! इस हर्षकारी सोम-रस का पान करो । दोनों हाथों में पकड़े गए सोमाभिषव प्रस्तर ने इसे निष्पन्न किया है ॥ १ ॥ हे हर्यश्व ! तुम्हारे प्रिय सोमरस ने शक्ति देकर वृत्रादि शत्रुओं का मारा किया है, यही सोम तुम्हें प्रसन्नता दे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मैं वसिष्ठ तुम्हारी जिस स्तुति को करता हूँ, उसे तुम जानो और स्वीकार करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! इस सोमाभिषव प्रस्तर के शब्द को और स्तोता के स्तोत्र पर ध्यान दो । मेरी सेवा से प्रसन्न होकर मुझे श्रेष्ठ बुद्धि में स्थित करो ॥ ४ ॥ हे शत्रुजेता इन्द्र ! तुम्हारे बल को मैं जानता हूँ । मैं तुम्हारे स्तोत्र से विमुख नहीं हो सकता । मैं तुम्हारे नाम का सदा कीर्त्तन करूँगा ॥ ५ ॥ [५]

भूरि हि ते सवना मानुषेषु भूरि मनीषी हवते त्वामित् ।
मारे अस्मन्मघवञ्ज्योक्कः ॥६

तुभ्येदिमा सवना शूर विश्वा तुभ्यं ब्रह्माणि वर्धना कृणोमि ।
त्वं नृभिर्हव्यो विश्वधासि ॥७

नू चिन्नु ते मन्यमानस्य दस्मोदश्नुवन्ति महिमानमुग्र ।
न वीर्यमिन्द्र ते न राधः ॥८

ये च पूर्व ऋषयो ये च नूत्ना इन्द्र ब्रह्माणि जनयन्त विप्राः ।
अस्मे ते सन्तु सख्या शिवानि यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९ ।६

हे इन्द्र ! तुम अनेक सवन वाले हो । तुम अपने को हमसे दूर मत करो । मैं स्तोता तुम्हें आहूत करता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! सभी सवन तुम्हारे हैं । यह स्तुति तुम्हें बढ़ाने वाली हो । तुम आह्वान के पात्र हो ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! कौन-सा स्तोता तुम्हारी कृपा को नहीं पायेगा ? कौन सा उपासक तुम्हारा धन प्राप्त न करेगा ? ॥८॥ सभी प्राचीन और नवीन ऋषियों ने तुम्हारे लिए स्तोत्र प्रकट किये हैं । तुम्हारी मैत्री हमारा कल्याण करने वाली हो । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ९ ॥ [६]

२३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—पंक्ति, त्रिष्टुप्)

उदु ब्रह्माण्यैरत श्रवस्येन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ ।
आ यो विश्वानि शवसा ततानोपश्रोता म ईवतो वचांसि ॥१
अयामि घोष इन्द्र देवजामिरिरज्यन्त यच्छुरुधो विवाचि ।
नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु तानीदंहांस्यति पर्ष्यस्मान् ॥२
युजे रथं गवेषणं हरिभ्यामुप ब्रह्माणि जुजुषाणमस्थुः ।
वि बाधिष्ट स्य रोदसी महित्वेन्द्रो वृत्राण्यप्रती जघन्वान् ॥३
आपश्चित्पिप्युः स्तर्यो न गावो नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र ।
याहि वायुर्न नियुतो नो अच्छा त्वं हि धीभिर्दयसे वि वाजान् ॥४
ते त्वा मदा इन्द्र मादयन्तु शुष्मिणं तुविराधसं जरित्रे ।
एको देवत्रा दयसे हि मर्तानस्मिञ्छूर सवने मादयस्व ॥५
एवेदिन्द्रं वृषणं वज्रबाहुं वसिष्ठासो अभ्यर्चन्त्यर्कैः ।
स नः स्तुतो वीरवद्धातु गोमद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।७

अन्न-काम्य स्तोता ने यह सब स्तोत्र उच्चारित किये हैं। हे वसिष्ठ ! इस यज्ञ में इन्द्र का स्तव करो। उन्होंने अपनी महिमा से सब लोकों को व्याप्त कर रखा है। मैं उनकी सेवा में उपस्थित होना चाहता हूँ। वे मेरे आह्वान को सुनें ॥ १ ॥ औषधियों के वृद्धि-काल में देवताओं की स्तुति की जाती है। हे इन्द्र ! तुम्हारी आयु का ज्ञाता इन मनुष्यों में कोई भी नहीं है । तुम हमें सब पापों से पार करो ॥ २ ॥ इन्द्र के रथ में इन्द्र के दोनों हर्यश्वों को योजित करता हूँ। इन्द्र हमारी स्तुतियाँ ग्रहण करते हैं। उनकी महिमा से आकाश-पृथिवी व्याप्त हुई हैं। इन्द्र ने शत्रुओं को नष्ट कर कर डाला है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जल की वृद्धि हो। वायु जैसे नियुत की ओर गमन करते हैं, वैसे ही तुम मेरी ओर आओ और कर्म के द्वारा श्रेष्ठ अन्न मुझे दो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! सोम तुम्हारे लिए हर्षकारी हो। तुम स्तोता को पुत्रवान् करो, तुम मनुष्यों पर दया करने वाले हो। इस यज्ञ में हम पर प्रसन्न होओ ॥ ५ ॥ वसिष्ठों ने इस

स्तोत्र द्वारा इन्द्र की पूजा की है। वे स्तुत होकर हमें श्रेष्ठ गवादि धन दें और हमारा सदा पालन करते रहें॥ ६ ॥ [७]

२४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि तमा नृभिः पुरुहूत प्र याहि।
असो यथा नोऽविता वृधे च ददो वसूनि ममदश्च सोमैः ॥१
गृभीतं ते मन इन्द्र द्विबर्हाः सुतः सोमः परिषिक्ता मधूनि।
विसृष्टधेना भरते सुवृक्तिरियमिन्द्रं जोहुवती मनीषा ॥२
आ नो दिव आ पृथिव्या ऋजीषिन्निदं बर्हिः सोमपेयाय याहि।
वहन्तु त्वा हरयो मद्र्यञ्चमाङ्गूषमच्छा तवसं मदाय ॥३
आ नो विश्वाभिरूतिभिः सजोषा ब्रह्म जुषाणो हर्यश्व याहि।
वरीवृजत् स्थविरेभिः सुशिप्रास्मे दधद् वृषणं शुष्ममिन्द्र ॥४
एष स्तोमो मह उग्राय वाहे धुरीवात्यो न वाजयन्नधायि।
इन्द्र त्वायमर्क ईट्टे वसूनां दिवीव द्यामधि नः श्रोमतं धाः ॥५
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।८

तुम्हारे यज्ञ के लिए स्थान बनाया गया है। हे इन्द्र! मरुद्गण सहित आओ। जैसे तुम हमारे रक्षक हुए हो, वैसे ही हमें धन प्रदान करो। तुम हमारे सोम का आनन्द प्राप्त करो॥ १ ॥ हे पूजनीय इन्द्र! हमने तुम्हारे मन को आकर्षित किया और सोमाभिषव किया। हमने मधुररस को पात्र में सींचा है। यह स्तुति तुम्हें आहूत करती है ॥ २ ॥ हे इन्द्र! इस यज्ञ में सोम पीने के लिए आओ। तुम्हारे हर्यश्व हमारे स्तोत्र की ओर तुम्हें लावें॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम मरुद्गण के साथ शत्रुओं का वध करो और हमें अभीष्ट-वर्षक पुत्र दो। तुम हम स्तोताओं की ओर आगमन करो ॥ ४ ॥ यह बलकारक स्तोत्र इन्द्र के निमित्त उच्चारित हुआ है। हे इ-

धन की याचना करता हैं। तुम हमें श्री सम्पन्न पुत्र भी दो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमें धन से सम्पन्न करो। हम तुम्हारी कृपा को प्राप्त करें। हम हविदाता पुत्र से सम्पन्न ऐश्वर्य पावें। तुम हमारा सदा पालन करो ॥६॥ [८]

२५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—इन्द्रः। छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ ते मह इन्द्रोत्युग्र समन्यवो यत्समरन्त सेनाः।
पताति दिद्युन्नर्यस्य वाह्वोर्मा ते मनो विष्वद्र्यग्वि चारीत् ॥१
नि दुर्ग इन्द्र श्नथिह्यमित्रानभि ये नो मर्तासो अमन्ति।
आरे तं शंसं कृणुहि निनित्सोरा नो भर सम्भरणं वसूनाम् ॥२
शतं ते शिप्रिन्नूतयः सुदासे सहस्रं शंसा उत रातिरस्तु।
जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्यास्मे द्युम्नमधि रत्नं च धेहि ॥३
त्वावतो हीन्द्र क्रत्वे अस्मि त्वावतोऽवितुः शूर रातौ।
विश्वेदहानि तविषीव उग्रँ ओकः कृणुष्व हरिवो न मर्धीः ॥४
कुत्सा एते हर्यश्वाय शूषमिन्द्रे सहो देवजूतमियानाः।
ना। कृधि सुहना शूर वृत्रा वयं तरुत्राः सनुयाम वाजम् ॥५
एवा न इन्द्र वार्यस्य पूर्धि प्र ते महीं सुमतिं वेविदाम।
इषं पिन्व मघवद्भ्यः सुवीरां यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।९

हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों का हित करने वाले हो। युद्ध के अवसर पर तुम्हारा वज्र हमारी रक्षा के लिए गिरे ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जो मनुष्य हमें जीतना चाहते हैं और जो हमारे निन्दक हैं, तुम उनके यश को समाप्त करो और हमें धनवान बना दो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! मैं सुदास तुम्हारी सैकड़ों रक्षाएं प्राप्त करूँ। तुम्हारे सैकड़ों दान मेरे हों। हिंसक शत्रुओं के आयुधों को नष्ट करो। तुम हमें यश और धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी उपासना में रत हूँ। मैं तुम्हारे दान में अवस्थित हूँ। तुम हमें कर्म लगाओ। हम पर कभी क्रोध मत करना ॥ ४ ॥ हम इन्द्र का स्तोत्र करते हुए उनसे

[illegible] धन माँगते हैं। हे इन्द्र! हम हवि-सम्पन्न यजमानों को पुत्र-युक्त ऐश्वर्य दो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [६]

२६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

न सोम इन्द्रमसुतो ममाद नाब्रह्माणो मघवानं सुतासः ।
तस्मा उक्थं जनये यज्जुजोषन्नृवन्नवीयः शृणवद्यथा नः ॥१
उक्थउक्थे सोम इन्द्रं ममाद नीथेनीथे मघवानं सुतासः ।
यदीं सबाधः पितरं न पुत्राः समानदक्षा अवसे हवन्ते ॥२
चकार ता कृणवन्नूनमन्या यानि ब्रुवन्ति वेधसः सुतेषु ।
जनीरिव पतिरेकः समानो नि मामृजे पुर इन्द्रः सु सर्वाः ॥३
एवा तमाहुरुत शृण्व इन्द्र एको विभक्ता तरणिर्मघानाम् ।
मिथस्तुर ऊतयो यस्य पूर्वीरस्मे भद्राणि सश्चत प्रियाणि ॥४
एवा वसिष्ठ इन्द्रमूतये नॄन्कृष्टीनां वृषभं सुते गृणाति ।
सहस्रिण उप नो माहि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१०

जो सोम-रस इन्द्र के लिए प्रस्तुत नहीं होते, उनमें तृप्ति नहीं होती। स्तोत्र-हीन सोम से भी तृप्ति नहीं होती। हमारा उक्थ इन्द्र का उपासक है, हम उसे इन्द्र के लिए ही उच्चारित करते हैं ॥ १ ॥ स्तुति के समय प्रस्तुत सोम इन्द्र को तृप्त करता है। जैसे पिता पुत्र को बुलाता है, वैसे ही ऋत्विग्गण रक्षा के निमित्त इन्द्र को आहूत करते हैं ॥ २ ॥ सोमाभिषव के पश्चात् स्तोतागण इन्द्र के जिन कर्मों का वर्णन करते हैं, इन्द्र ने वे कर्म प्राचीन काल में किये थे। इन्द्र ने अकेले शत्रुओं के पुरों को परिमार्जित किया (शत्रुओं से विहीन किया।) ॥ ३ ॥ इन्द्र अनेक रक्षा साधनों से सम्पन्न हैं, इस समय महनीय धनों के दाता हैं। वे संकट से मुक्त करते हैं। हम उनसे श्रेष्ठ धन को पावें ॥ ४ ॥ सोमाभिषवकारी वसिष्ठ इन्द्र का स्तोत्र करते हैं। हे इन्द्र! हमें विभिन्न प्रकार के अन्न दो। [illegible]
रहो ॥ ५ ॥

२७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्)

इन्द्रं नरो नेमधिता हवन्ते यत्पार्या युनजते धियस्ताः ।
शूरो नृषाता शवसश्चकान आ गोमति व्रजे भजा त्वं नः ॥१
य इन्द्र शुष्मो मघवन्ते अस्ति शिक्षा सखिभ्यः पुरुहूत नृभ्यः ।
त्वं हि दृळ्हा मघवन्विचेता अपा वृधि परिवृतं न राधः ॥२
इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद्राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ॥३
नू चिन्न इन्द्रो मघवा सहूती दानो वाजं नि यमते न ऊती ।
अनूया यस्य दक्षिणा पीपाय वामं नृभ्यो अभिवीता सखिभ्यः ॥४
नू इन्द्र राये वरिवस्कृधी न आ ते मनो ववृत्याम मघाय ।
गोमदश्वावद्रथवद्व्यन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।११

जब संग्राम-सज्जा सजी जाती है तब सहायता के लिए इन्द्र का आह्वान किया जाता है । हे इन्द्र ! तुम मनुष्यों को धन देने वाले होकर हमें सम्पन्न गोष्ठ में प्रतिष्ठित करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! अपने बल से स्तोता को बली करो । तुमने शत्रुओं के दृढ़ नगरों को तोड़ा है; अतः बुद्धि-दान द्वारा छिपे धन का प्रकाश करो ॥ २ ॥ इन्द्र सभी प्राणियों के ईश्वर हैं । सभी पार्थिव धनों के राजा इन्द्र ही हैं । वे हवि वाले यजमान को धन प्रदान करते हैं । वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमें सब धनप्राप्त करावें ॥ ३ ॥ हमने उन ज्ञानवान् इन्द्र को मरुद्गण के सहित आहूत किया है । वे हमारी शरीर रक्षा के लिए अन्न दें । इन्द्र जिस मित्र को धन देना चाहते हैं, वही श्रेष्ठ धन पाता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! हमें शीघ्र धनवान बनाओ । हम तुम्हारे मन अपनी स्तुति द्वारा आकर्षित करेंगे । तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ ५ ॥ [११]

२८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्ति)

ब्रह्मा ण इन्द्रोप याहि विद्वानर्वाञ्चस्ते हरयः सन्तु युक्ताः ।

विश्वे चिद्धि त्वा विहवन्त मर्ता- अस्माकमिच्छृणुहि विश्वमिन्व ॥१
हवं त इन्द्र महिमा व्यानड् ब्रह्म यत्पासि शवसिन्नृषीणाम् ।
आ यद्वज्रं दधिषे हस्त उग्र घोरः सन्क्रत्वा जनिष्ठा अषाळ्हः ॥२
तव प्रणीतीन्द्र जोहुवानान्त्सं यन्नॄन्न रोदसी निनेथ ।
महे क्षत्राय शवसे हि जज्ञेऽतूतुजिं चित्तूतुजिरशिश्नत् ॥३
एभिर्न इंद्राहभिर्दशस्य दुर्मित्रासो हि क्षितयः पवन्ते ।
प्रति यच्चष्टे अनृतमनेना अव द्विता वरुणो मायी नः सात् ॥४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ॥१२

हे इन्द्र ! हमारी स्तुति की ओर आओ । तुम्हारे अश्व हमारे समक्ष योजित हों, सब मनुष्य पृथक-पृथक तुम्हें आहूत करते हैं, तुम हमारे आह्वान को सुनते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम स्तोत्रों की रक्षा करते हो, तब तुम्हारी महिमा उसका पालन करती है । जब वज्र ग्रहण करते हो, तब अपने कर्म में विकराल होते हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारी बारम्बार स्तुति करते हैं, तुम उन्हें पृथिवी पर और स्वर्ग में भी प्रतिष्ठावान् करते हो । जो तुम्हारे निमित्त यज्ञ करता है, वह अयाज्ञिकों का वध करने शक्ति पाता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! दुष्टों के धन को छीन कर हमें दो । पाप का नाश करने वाले वरुण हमारा जो पाप देखें, उसीसे हमें मुक्त करें ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र ने हमें अभीष्ट धन प्रदान किया है, जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, हम उन्हीं इन्द्र का स्तव करते हैं । हे इन्द्र ! हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [१२]

२९ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप)

अयं सोम इन्द्र तुभ्यं सुन्व आ तु प्र याहि हरिवस्तदोकाः ।
पिबा त्वस्य सुषुतस्य चारोर्ददो मघानि मघवन्नियानः ॥१
ब्रह्मन्वीर ब्रह्मकृतिं जुषाणोऽर्वाचीनो हरिभिर्याहि तूयम् ।
अस्मिन्नू षु सवने मादयस्वोप ब्रह्माणि शृणव इमा नः ॥२

का ते अस्त्यरङ्कृतिः सूक्तैः कदा नूनं ते मघवन दाशेम ।
विश्वा मतीरा ततने त्वायाधा म इन्द्र शृणवो हवेमा ॥३
उतो घा ते पुरुष्या इदासन्येषां पूर्व पामशृणोऋर्षीणाम् ।
अधाहं त्वा मघवञ्जोहवीमि त्वं न इन्द्रासि प्रमतिः पितेव ॥४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१३

हे इन्द्र ! यह सोम तुम्हारे लिए निष्पीडित हुआ है, तुम उसके सेवनार्थ शीघ्र पधारो। हे इन्द्र ! इस सोम को पीकर हमारी धन की याचना पूर्ण करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र तुम अपने अश्वों द्वारा शीघ्र आओ। हमारे स्तोत्र सुन कर प्रसन्न होओ ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे स्तोताओं की स्तुतियाँ सुशोभित होती हैं। हम तुम्हें प्रसन्न करने का यत्न कब करें ? यह स्तुतियाँ तुम्हारे लिए ही कर रहा हूँ, इन्हें सुनो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने मनुष्यों का हित करने वाले पूर्वज ऋषियों के स्तोत्र सुने हैं। तुम पिता के समान ही हमारा हित करने वाले हो, अतः मैं तुम्हें वारम्वार आहूत करता हूँ ॥ ४ ॥ जिन इन्द्र ने हमें महान् धन प्रदान किया है और जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं। वे हमारी सदा रक्षा करें ॥ ५ ॥ [१३]

३० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता–इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप, पंक्तिः)

आ नो देव शवसा याहि शुष्मिन्भवा वृध इन्द्र रायो अस्य ।
महे नृम्णाय नृपते सुवज्र महि क्षत्राय पौंस्याय शूर ॥१
हवन्त उ त्वा हव्यं विवाचि तनूषु शूराः सूर्यस्य सातौ ।
त्वं विश्वेषु सेन्यो जनेषु त्वं वृत्राणि रन्धया सुहन्तु ॥२
अहा यदिन्द्र सुदिना व्युच्छान्दधो यत्केतुमुपमं समत्सु ।
न्यग्निः सीददसुरो न होता हुवानो अत्र सुभगाय देवान् ॥३
वयं ते त इन्द्र ये च देव स्तवन्त शूर ददतो मघानि ।

यच्छा सूरिभ्य उपमं वरूथं स्वाभुवो जरणामश्नवन्त ॥४
वोचेमेदिन्द्रं मघवानमेनं महो रायो राधसो यद्ददन्नः ।
यो अर्चतो ब्रह्मकृतिमविष्ठो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१४

हे इन्द्र ! तुम बल सहित आगमन करो । हमारे धन को बढ़ाओ । तुम शत्रु-नाश के लिए अपने बल की वृद्धि करो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! शरीर की रक्षा के लिए हम तुम्हें आहूत करते हैं । तुम्हीं सब में श्रेष्ठ सेनानायक हो । तुम अपने वज्र के द्वारा सब शत्रुओं को जीतो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! शुभ दिनों में होता रूप अग्नि श्रेष्ठ धन-दान के लिए इस यज्ञ में विराजमान होकर देवताओं का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे ही हैं । हविदाता यजमान भी तुम्हारे ही हैं । उन्हें श्रेष्ठ घर दो । वे जरा-रहित और स्वस्थ रहें ।४। जिन इन्द्र ने हमें इच्छित धन दिया है और जो स्तुतियों की रक्षा करते हैं, उन्हीं इन्द्र की हम स्तुति करते हैं । हे इन्द्र ! तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ (१४)

३१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

प्र व इन्द्राय मादनं हर्यश्वाय गायत । सखायः सोमपाव्ने ॥१
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः । चकृमा सत्यराधसे ॥२
त्वं न इन्द्र वाजयुस्त्वं गव्युः शतक्रतो । त्वं हिरण्ययुर्वसो ॥३
वयमिन्द्र त्वायवोऽभि प्र णोनुमो वृषन् । विद्धी त्वस्य नो वसो ॥४
मा नो निदे च वक्तवेऽर्यो रन्धीरराव्णे । त्वे अपि क्रतुर्मम ॥५
त्वं वर्मासि सप्रथः पुरोयोधश्च वृत्रहन् । त्वया प्रति ब्रुवे युजा ॥६।१५

हे मित्रो ! सोम-पान करने वाले इन्द्र को स्तुति से प्रसन्न करो ॥ १ ॥ जैसे श्रेष्ठ धन वाले इन्द्र की स्तुति की जाती है, हम तुम भी उसी स्तुति का आश्रय लें ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारे अन्न दाता होओ । तुम हमें गौ और सुवर्ण देने की इच्छा करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारी विशिष्ट स्तुतियाँ करते हैं, तुम हम पर अनुग्रह करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! कटुभाषी, निन्दक, अदानी व्यक्ति के हाथों में हमें मत सौंपना । हमारी स्तुति तुम्हें प्राप्त हो...

रायस्कामो वज्रहस्तं सुदक्षिणं पुत्रो न पितरं हुवे ॥३
इम इन्द्राय सुन्विरे सोमासो दध्याशिरः ।
ताँ आ मदाय वज्रहस्त पीतये हरिभ्यां याह्योक आ ॥४
श्रवच्छ्रुत्कर्ण ईयते वसूनां नू चिन्नो मर्धिषद् गिरः ।
सद्यश्चिद्यः सहस्राणि शता ददन्नकिर्दित्सन्तमा मिनत् ॥५ ।१७

हे इन्द्र ! अन्य यजमान भी तुम्हें न रोकें। तुम दूर से भी हमारे यज्ञ में आकर स्तोत्र सुनो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! सोमाभिषव के पश्चात् स्तोतागण यज्ञ में बैठते हैं और धन की कामना से स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ पुत्र द्वारा पिता को बुलाए जाने के समान मैं स्तोता श्रेष्ठ दान वाले इन्द्र को आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ दधिमिश्रित सोमरस इन्द्र के लिए रखा है। हे वज्रिन् ! इस सोम का पान करने को हमारे यज्ञ में आओ ॥ ४ ॥ याचना सुनने वाले इन्द्र से हम धन माँगते हैं। वे हमारी स्तुति को सुनें। हमारी आशा निष्फल न हो। जो इन्द्र सहस्रों दान करने वाले हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता ॥ ५ ॥ (१७)

स वीरो अप्रतिष्कुत इन्द्रेण शूशुवे नृभिः ।
यस्ते गभीरा सवनानि वृत्रहन्त्सुनोत्या च धावति ॥६
भवा वरूथं मघवन्मघोनां यत्समजासि शर्धतः ।
वि त्वाहतस्य वेदनं भजेमह्या दूणाशो भरा गयम् ॥७
सुनोता सोमपाव्ने सोममिन्द्राय वज्रिणे ।
पचता पक्तीरवसे कृणुध्वमित्पृणन्नित्पृणते मयः ॥८
मा स्रेधत सोमिनो दक्षता महे कृणुध्वं राय आतुजे ।
तरणिरिज्जयति क्षेति पुष्यति न देवासः कवत्नवे ॥९
नकिः सुदासो रथं पर्यास न रीरमत् ।
इन्द्रो यस्याविता यस्य मरुतो गमत्स गोमति व्रजे ॥१० ।१८

हे इन्द्र ! जो सोमाभिषवकारी तुम्हारा अनुचर होता है, उस वीर का विरोध करने का साहस किसी में नहीं होता ॥ ६ ॥ हे इ

अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥२३
अभी षतस्तदा भरेन्द्र ज्यायः कनीयसः ।
पुरूवसुर्हि मघवन्त्सनादसि भरेभरे च हव्यः ॥२४
परा णुदस्व मघवन्नमित्रान्त्सुवेदा नो वसू कृधि ।
अस्माकं बोध्यविता महाधने भवा वृधः सखीनाम् ॥२५
इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन्पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ॥२६
मा नो अज्ञाता वृजना दुराध्यो माशिवासो अव क्रमुः ।
त्वया वयं प्रवतः शश्वतीरपोऽति शूर तरामसि ॥२७ ।२१

निन्दा से धन लाभ नहीं होता । हिंसक धनी नहीं होता । हे इन्द्र ! तुम्हारे पास जो कुछ देने योग्य है, उसे उत्तमकर्मा पुरुष ही प्राप्त करता है ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! पृथिवी पर कोई भी तुम्हारे समान उत्पन्न नहीं हुआ और न होगा । हम गौ, अश्व, अन्न की कामना से तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! तुम बड़े हो । मैं तुच्छ मनुष्य हूँ । तुम मेरे निमित्त धन लाओ । हम सभी संग्रामों में धन-लाभ करें ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओं को भगाओ । हमें धन प्राप्त कराओ । तुम हमारे मित्र होकर युद्ध में रक्षा करो ॥ २५ ॥ हे इन्द्र ! हमें बुद्धि दो । पिता द्वारा पुत्र को देने के समान हमें धन दो । हम नित्य प्रति सूर्य के दर्शन करें ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु हम पर आक्रमण न करें । हम तुम्हें नमस्कार करते हुए अनेक कर्मों को सिद्ध करेंगे ॥ २७ ॥ [२१]

३३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः, वसिष्ठपुत्राः । देवता—त एवः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

श्वित्यञ्चो मा दक्षिणतस्कपर्दा धियंजिन्वासो अभि हि प्रमन्दुः ।
उत्तिष्ठन्वोचे परि बर्हिषो नृन्न मे दूरादवितवे वसिष्ठाः ॥१
दूरादिन्द्रमनयन्ना सुतेन तिरो वैशन्तमति पान्तमुग्रम् ।

पाशद्युम्नस्य वायतस्य सोमात्सुतादिन्द्रो अवृणीता वसिष्ठान् ॥२
एवेन्नु कं सिन्धुमेभिस्ततारेवेन्नु कं भेदमेभिर्जघान ।
एवेन्नु कं दाशराज्ञे सुदासं प्रावदिन्द्रो ब्रह्मणा वो वसिष्ठाः ॥३
जुष्टी नरो ब्रह्मणा वः पितृणामक्षमव्ययं न किला रिषाथ ।
यच्छक्वरीषु बृहता रवेणेन्द्रे शुष्ममदधाता वसिष्ठाः ॥४
उद् द्यामिवेत्तृष्णजो नाथितासोऽदीधयुर्दाशराज्ञे वृतासः ।
वसिष्ठस्य स्तुवत इन्द्रो अश्रोदुरुं तृत्सुभ्यो अकृणोदु लोकम् ॥५ ।२२

वसिष्ठ वंशज ऋषि अपने शिर के दक्षिण भाग में चूडामणि धारण करते हैं। वे हम पर कृपा रखते हैं। मैं सबके समक्ष उनसे निवेदन करता हूँ कि वे हमसे अन्यत्र कहीं न जावें ॥ १ ॥ पाशद्युम्न को तिरस्कृत कर सोमपान करते हुए इन्द्र को वसिष्ठ गोत्री ऋषि ले आए। इन्द्र ने भी उन ऋषियों का ही वरण किया ॥ २ ॥ वसिष्ठों ने नदी को पार किया और शत्रु को मारा। हे वसिष्ठो ! दाशराज्ञ नामक युद्ध में तुम्हारे स्तोत्र की शक्ति से ही इन्द्र ने सुदास को रक्षित किया था ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! तुम्हारे स्तोत्र पितरों को को तृप्त करने वाले हैं। तुम क्षीणता को प्राप्त न होओ। हे वसिष्ठो ! तुम ने श्रेष्ठ ऋचाओं के द्वारा इन्द्र से बल प्राप्त किया ॥ ४ ॥ वर्षा की कामना करते हुए वसिष्ठों ने राजाओं से युद्ध करते हुए इन्द्र को सूर्य समान ऊपर उठाया। वसिष्ठों की स्तुति इन्द्र ने सुनी और तृत्सु वंशी राजाओं को श्रेष्ठ स्थान दिया ॥ ५ ॥   [२२]

दण्डाइवेद्गो अजनास आसन्परिच्छिन्ना भरता अर्भकासः ।
अभवच्च पुरएता वसिष्ठ आदित्तृत्सूनां विशो अप्रथन्त ॥६
त्रयः कृण्वन्ति भुवनेषु रेतस्तिस्रः प्रजा आर्या ज्योतिरग्राः ।
त्रयो घर्मास उषसं सचन्ते सर्वां इत्ताँ अनु विदुर्वसिष्ठाः ॥७
सूर्यस्येव वक्षथो ज्योतिरेषां समुद्रस्येव महिमा गभीरः ।
वातस्येव प्रजवो नान्येन स्तोमो वसिष्ठा अन्वेतवे वः

त इन्निण्यं हृदयस्य प्रकेतैः सहस्रवल्शमभि सं चरन्ति ।
यमेन ततं परिधिं वयन्तोऽप्सरस उप सेदुर्वसिष्ठाः ॥९
विद्युतो ज्योतिः परि सञ्जिहानं मित्रावरुणा यदपश्यतां त्वा ।
तत्ते जन्मोतैकं वसिष्ठागस्त्यो यत्त्वा विश आजभार ॥१० ।२३

भरतगण (तत्सु) शत्रुओं से घिरे हुए और अल्प संख्यक थे। जब वसिष्ठ उनके पुरोहित हुए तब उनकी संतति वृद्धि को प्राप्त हुई ॥ ६ ॥ सूर्य, अग्नि वायु जगत को जल प्रदान करते हैं। उन्हें आदित्य आदि श्रेष्ठ प्रजाऐं हैं, वे तीनों उषाओं को प्रकट करते हैं। उन सब के ज्ञाता वसिष्ठगण हैं ॥७॥ हे वसिष्ठो ! तुम्हारा तेज सूर्य के समान प्रकाशित है। वह समुद्र के समान गंभीर भी है। तुम्हारे स्तोत्र का अनुगामी अन्य कोई नहीं हो सकता ॥ ८ ॥ उन वसिष्ठों ने सहस्रों स्थान वाले जगत में भ्रमण किया। उन्होंने यम द्वारा चौड़े वस्त्र को बुनते हुए, मातृ-रूप अप्सरा के पास गमन किया ॥ ९ ॥ हे वसिष्ठ ! जब तुम देह धारणार्थ अपनी ज्योति को छोड़ रहे थे, तब तुम्हें मित्रावरुण ने देखा। उस समय तुम एक जन्म वाले हुए। अगस्त्य भी तुम्हें यहाँ ले आए ॥ १० ॥ [२३]

उतासि मैत्रावरुणो वसिष्ठोर्वश्या ब्रह्मन्मनसोऽधि जातः ।
द्रप्सं स्कन्नं ब्रह्मणा दैव्येन विश्वे देवाः पुष्करे त्वाददन्त ॥११
स प्रकेत उभयस्य प्रविद्वान्त्सहस्रदान उत वा सदानः ।
यमेन ततं परिधिं वयिष्यन्नप्सरसः परि जज्ञे वसिष्ठः ॥१२
सत्रे ह जाताविषिता नमोभिः कुम्भे रेतः सिषिचतु समानम् ।
ततो ह मान उदियाय मध्यात्ततो जातमृषिमाहुर्वसिष्ठम् ॥१३
उक्थभृतं सामभृतं बिभर्ति ग्रावाणं बिभ्रत्प्र वदात्यग्रे ।
उपैनमाध्वं सुमनस्यमाना आ वो गच्छाति प्रतृदो वसिष्ठः ॥१४ ।२४

हे वसिष्ठ ! तुम उर्वशी के मानस-पुत्र एवं मित्रावरुण की संतान हो। विश्वेदेवाओं ने तुम्हें पुष्कर में स्तोत्र द्वारा धारण किया था ॥ ११ ॥ ज्ञानी वसिष्ठ दोनों लोकों के ज्ञाता सर्वज्ञानी हुए। यम द्वारा विस्तृत वस्त्र बुनने के

लिए वे उर्वशी द्वारा उत्पन्न हुए ॥ १२ ॥ यज्ञ में स्तुत्य मित्रावरुण ने कुम्भ में बीज डाला। उसी से वसिष्ठ की उत्पत्ति कही जाती है ॥ १३ ॥ हे तृत्सुओ ! वसिष्ठ तुम्हारे समीप आते हैं। तुम इनका पूजन करो। यह वसिष्ठ सब कर्मों का उपदेश करने वाले हैं ॥ १४ ॥ [२४]

३४ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः देवता—विश्वेदेवाः, अहिः अहिर्बुध्न्यः । छन्द—गायत्री, त्रिष्टुप्)

प्र शुक्रैतु देवी मनीषा अस्मत्सुतष्टो रथो न वाजी ॥१
विदुः पृथिव्या दिवो जनित्रं शृण्वन्त्यापो अध क्षरन्तीः ॥२
आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः ॥३
आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः ॥४
अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत ॥५
त्मना समत्सु हिनोत यज्ञं दधात केतुं जनाय वीरम् ॥६
उदस्य शुष्माद्भानुर्नार्त बिभर्ति भारं पृथिवी न भूम ॥७
ह्वयामि देवाँ अयातुरग्ने साधन्नृतेन धियं दधामि ॥ ८
अभि वो देवीं धियं दधिध्वं प्र वो देवत्रा वाचं कृणुध्वम् ॥९
आ चष्ट आसां पाथो नदीनां वरुण उग्रः सहस्रचक्षाः ॥१० ।२५

हमारी श्रेष्ठ स्तुति वेगवान् रथ के समान देवताओं की ओर गमन करे ॥ १ ॥ वृष्टि-जल स्वर्ग और पृथिवी के प्राकट्य का ज्ञाता है। जल स्तुतियों को श्रवण करता है ॥ २ ॥ जल इन्द्र को तृप्त करता है। विघ्न उपस्थित होने पर मनुष्य इन्द्र की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे स्तोताओ ! इन्द्र के आने के लिए अश्वों को योजित करो। वे इन्द्र स्वर्णहस्त और वज्रधारी हैं ॥ ४ ॥ हे मनुष्यो ! यज्ञ के अभिमुख जाओ। श्रेष्ठ यज्ञ-मार्ग पर पथिक के समान चलो ॥ ५ ॥ हे मनुष्यो ! रणभूमि में जाओ। फिर पापों का नाश करने के लिए यज्ञानुष्ठान करो ॥ ६ ॥ सूर्य इस यज्ञ के बल से उत्पन्न होते हैं। पृथिवी जैसे प्राणियों को धारण करती है, वैसे ही यज्ञ

है ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! अहिंसा वाले इस यज्ञ में अभीष्ट पूर्वक देवताओं का मैं आह्वान करता हूँ ॥ ८ ॥ हे स्तोताओ ! देवताओं के लिए इस श्रेष्ठ कर्म वाली स्तुति को करो ॥ ९ ॥ अनेक नेत्रों वाले वरुण नदियों के जल का निरीक्षण करते हैं ॥ १० ॥ [२५]

राजा राष्ट्रानां पेशो नदीनामनुत्तमस्मै क्षत्रं विश्वायु ॥११
अविष्टो अस्मान्विश्वासु विक्ष्वद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः ॥१२
व्येतु दिद्युद् द्विषामशेवा युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् ॥१३
अवीन्नो अग्निर्हव्यान्नमोभिः प्रेष्ठो अस्मा अधायि स्तोमः ॥१४
सजूर्देवेभिरपां नपातं सखायं कृध्वं शिवो नो अस्तु ॥१५
अब्जामुक्थैरहिं गृणीषे बुध्ने नदीनां रजःसु षीदन् ॥१६
मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धान्मा यज्ञो अस्य स्रिधदृतायोः ॥१७
उत न एषु नृषु श्रवो धुः प्र राये यन्तु शर्धन्तो अर्यः ॥१८
तपन्ति शत्रुं स्वर्ण भूमा महासेनासो अमेभिरेषाम् ॥१९
आ यन्नः पत्नीर्गमन्त्यच्छा त्वष्टा सुपाणिर्दधातु वीरान् ॥२० ।२६

वे वरुण, प्रदेशों के स्वामी और नदियों के रूप वाले हैं। वे अपने बल से सर्वगन्ता हैं ॥ ११॥ हे देवगण ! हमारे रक्षक होओ। निन्दकों को तेजहीन करो ॥ १२ ॥ शत्रुओं के विघ्नकारी आयुध दूर रहें। हे देवगण ! हमें पाप से मुक्त करो ॥ १३ ॥ नमस्कारों से प्रसन्न अग्नि हमारे रक्षक हों। हम उनकी स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ हे स्तोताओं ! देवताओं के साथी अग्नि से मित्रता स्थापित करो। वे हमारा कल्याण करेंगे ॥ १५ ॥ मेघों को तोड़ने वाले, जल में स्थित अग्नि की हम स्तुति करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने ! हमें हिंसक को मत सौंपना। यज्ञकर्त्ता का यज्ञ व्यर्थ न हो ॥ १७ ॥ देवगण हमारे लिए अन्न धारण करते हैं। हमारे शत्रु नाश को प्राप्त हों ॥ १८ ॥ जैसे सूर्य सब लोकों को तपाते हैं, वैसे ही देवताओं के कृपापात्र राजा सेनाओं से शत्रु को तपाते हैं ॥ १९ ॥ जब देव-नारियाँ हमारे समक्ष पधारें, तब त्वष्टादेव हमें अपत्यवान् करें ॥ २० ॥ [२६]

प्रति नः स्तोमं त्वष्टा जुषेत स्यादस्मे अरमतिर्वसूयुः ॥२१
ता नो रासन्रातिषाचो वसून्या रोदसी वरुणानी शृणोतु ।
वरूत्रीभिः सुशरणो नो अस्तु त्वष्टा सुदत्रो वि दधातु रायः ॥२२
तन्नो रायः पर्वतास्तन्न आपस्तद्रातिषाच ओषधीरुत द्यौः ।
वनस्पतिभिः पृथिवी सजोषा उभे रोदसी परि पासतो नः ॥२३
अनु तदुर्वी रोदसी जिहातामनु द्युक्षो वरुण इन्द्रसखा । ।
अनु विश्वे मरुतो ये सहासो रायः स्याम धरुणं धियध्यै ॥२४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त ।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५।२७

त्वष्टादेव हमारे स्तोत्र को सुनते हैं, वे हमारे लिए धन देने की कृपा करें ॥ २१ ॥ देवनारियाँ हमारा अभीष्ट पूर्ण करें। आकाश-पृथिवी और वरुण भी हमारा निवेदन सुनें। त्वष्टादेव हमें अपना आश्रय दें ॥ २ ॥ पर्वत हमारे धन की रक्षा करें। जल हमारे धन का पालन करें। देव-पत्नियाँ, आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष, वनस्पति आदि भी हमारी रक्षा करें ॥ २३ ॥ हम धारण करने योग्य धन के धारक हों। आकाश-पृथिवी हमारी सहायता करें। इन्द्र, वरुण और मरुद्गण हमारे धन के समर्थक हों ॥ २४ ॥ मित्रा-वरुण, इन्द्र, अग्नि, जल, औषधि, वृक्ष आदि हमारी स्तुति सुनें। हम मरुद्गण के आश्रय में सुख पूर्वक रहें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥२५॥[२७]

३५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

शं न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रावरुणा रातहव्या ।
शमिन्द्रासोमा सुविताय शं योः शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ ॥१
शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरन्धिः शमु सन्तु रायः ।
शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ॥२
शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ॥३
शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम् ।
शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः ॥४
शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु ।
शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः ॥५ ।२८

हे इन्द्राग्ने ! हमारी रक्षा के लिए शान्ति देने वाले बनो । हे इन्द्रा-वरुण ! यजमान ने हवि दी है, तुम मङ्गलकारी होओ । इन्द्र और सोम कल्याण प्रद हों । इन्द्र और पूषा हमें सुखी करें ॥ १ ॥ भग देवता, सुखी करें । सत्य वचन द्वारा भी हम सुख पावें । अर्यमा हमारा मङ्गल करें ॥ २ ॥ धाता, वरुण, पृथिवी, आकाश, पर्वत और देवाह्वान हमें सुख देने वाले हों ॥ ३ ॥ ज्वालामुखी हमारे लिए शीतल हों । मित्रावरुण, अश्विद्वय वायु और पुण्यकर्म सभी हमारे लिए शांतिप्रद हों ॥ ४ ॥ द्यावापृथिवी, अन्तरिक्ष, औषधियाँ, वृक्ष और लोक-स्वामी इन्द्र हमें शान्ति प्रदान करें ॥ ५ ॥ (२८)

शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः ।
शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु ॥६
शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः ।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥७
शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।
शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः ॥८
शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।
शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥९
शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः ।
शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ।१०।२९

वसुओं सहित प्रधान रुद्र, देव नारियों के सहित त्वष्टा हमें शांति देने वाले हों ॥ ६ ॥ सोम, सोमाभिषवण प्रस्तर, यज्ञ, स्तोत्र, यूप, औषधियाँ,

येद्री आदि हमें शांति दें ॥ ७ ॥ महान् तेज वाले, सूर्य, दिशाएं, पर्वत, नदियाँ और जल भी हमें शांतिप्रद हों ॥ ८ ॥ अदिति, मरुद्गण, विष्णु, पूषा, अन्तरिक्ष और वायु हमारे लिए शांतिप्रद हों ॥ ९ ॥ सविता, उषा, पर्जन्य और क्षेत्रपति हमें शान्ति प्रदान करें ॥ १० ॥　　　　　　　　　　　　(२९)

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।
शमभिपाचः शमु रातिपाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः शं नो अप्या ।११
शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः ।
शं न ऋभवः सुकृता सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु ।।१२
शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः शं समुद्रः ।
शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपाः ।।१३
आदित्या रुद्रा वसवो जुषन्तेदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः ।
शृण्वन्तु नो दिव्याः पार्थिवासो गोजाता उत ये यज्ञियासः ।१४
ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ।।१५।३६

विश्वेदेवा, सरस्वती, यज्ञानुष्ठान, दान, पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष, देवता, अश्वगण, गौएं, ऋभुगण हमें शान्ति देने वाले, हों। हमारे पितर भी हमें शांति दें ॥ १२ ॥ अज-एकपाद, अहिर्बुध्न्यदेव, समुद्र, अपान्नपात् और पृश्नि हमें शांति प्रदान करें ॥ १३ ॥ इस नवीन स्तोत्र को हमने रचा है। आदित्यगण, मरुद्गण और वसुगण इसे सुनें। आकाश-पृथिवी तथा समस्त यज्ञीय देवता हमारे आह्वान पर ध्यान दें ॥ १४ ॥ हे देवताओ! मनु प्रजापति, अविनाशी और सत्यज्ञ देवता हमें पुत्र दें और तुम हमारी सुन्दर कल्याण से रक्षा करो ॥ १५ ॥　　　　　　　　　　　　(३०)

३६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप)

प्र ब्रह्मैतु सदनादृतस्य वि रश्मिभिः ससृजे सूर्यो गाः।

वि सानुना पृथिवी सस्र उर्वी पृथु प्रतीकमध्येधे अग्निः ॥१
इमां वां मित्रावरुणा सुवृक्तिमिषं न कृण्वे असुरा नवीयः ।
इनो वामन्यः पदवीरदब्धो जनं च मित्रो यतति ब्रुवाणः ॥२
आ वातस्य ध्रजतो रन्त इत्या अपीपयन्त धेनवो न सूदाः ।
महो दिवः सदने जायमानोऽचिक्रदद् वृषभः सस्मिन्नूधन् ॥३
गिरा य एता युनजद्धरी त इन्द्र प्रिया सुरथा शूर धायू ।
प्र यो मन्युं रिरिक्षतो मिनात्या सुक्रतुमर्यमणं ववृत्याम् ॥४
यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ।
वि पृक्षो बाबधे नृभिः स्तवान इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥५ ।१

यज्ञ में उच्चारित स्तोत्र सूर्य की ओर गमन करे। रश्मियों के द्वारा सूर्य ने वृष्टिजल की उत्पत्ति की है। विस्तारमयी पृथिवी के ऊपर अग्नि प्रदीप्त होते हैं ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारे निमित्त अभिनव स्तुति का उच्चारण करता हूँ। तुममें से वरुण एक स्थान को प्रकट करने वाले हैं और मित्र, स्तोता को कर्म में लगाते हैं ॥ २ ॥ वायु की गति सब ओर शोभित है। पयस्विनी गौ वृद्धि को प्राप्त होती है। सूर्य के स्थान में उत्पन्न मेघ अन्तरिक्ष में घोर शब्द करता है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारे इन अश्वों को योजित करता है, उसके यज्ञ में आगमन करो। हिंसक पापियों के क्रोध को अर्यमा व्यर्थ कर देते हैं। उन श्रेष्ठकर्मा अर्यमा की स्तुति करता हूँ ॥ ४ ॥ अन्नवान यजमान रुद्र की मित्रता की कामना करते हैं। स्तुतियों से प्रसन्न रुद्र अन्न प्रदान करते हैं। मैं उन्हीं रुद्र को प्रणाम करता हूँ ॥ ५ ॥ (१)

आ यत्साकं यशसो वावशानाः सरस्वती सप्तथी सिन्धुमाता ।
याः सुष्वयन्त सुदुघाः सुधारा अभि स्वेन पयसा पीप्यानाः ॥६
उत त्ये नो मरुतो मन्दसाना धियं तोकं च वाजिनोऽवन्तु ।
मा नः परि ख्यदक्षरा चरन्त्यवीवृधन्युज्यं ते रयिं नः ॥७
प्र वो महीमरमतिं कृणुध्वं प्र पूषणं विदथ्यं न वीरम् ।

भगं धियोऽवितारं नो अस्याः सातौ वाजं रातिषाचं पुरन्धिम् ॥८
अच्छायं वो मरुतः श्लोक एत्वच्छा विष्णुं निषिक्तपामवोभिः।
उत प्रजायै गृणते वयो धुर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।२

सिन्धु नदियों की माता है, सरस्वती सप्तमा है, वे सुन्दर धारा वाली नदियाँ अभीष्ट सिद्ध करने वाली हैं। वे अपने जल द्वारा वृद्धि को प्राप्त हुई नदियाँ एक साथ ही अन्न देने वाली हों ॥ ६ ॥ वेगवान् मरुद्गण हमारे अनुष्ठान और अपत्य के रक्षक हों। वाणी देवता हमें त्याग कर अन्य पर कृपा दृष्टि न करें। वह हमारे धनों की वृद्धि करें ॥ ७ ॥ हे स्तोता! विस्तीर्ण पृथिवी, यज्ञीय पूषा, भग, वाजदेव का इस यज्ञ में आह्वान करो ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण! यह स्तोत्र तुम्हारे अभिमुख हो। विष्णु के समक्ष भी उपस्थित हो। वे स्तोता को पुत्र युक्त अन्न प्रदान करें। तुम अपनी रक्षाओं से हमें रक्षित करो ॥ ६ ॥   (२)

३७ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आ वो वाहिष्ठो वहतु स्तवध्यै रथो वाजा ऋभुक्षणो अमृक्तः।
अभि त्रिपृष्ठैः सवनेषु सोमैर्मदे सुशिप्रा महभिः पृणध्वम् ॥१
यूयं ह रत्नं मघवत्सु धत्थ स्वर्दृश ऋभुक्षणो अमृक्तम्।
सं यज्ञेषु स्वधावन्तः पिबध्वं वि नो राधांसि मतिभिर्दयध्वम् ॥२
उवोचिथ हि मघवन्देष्णं महो अर्भस्य वसुनो विभागे।
उभा ते पूर्णा वसुना गभस्ती न सूनृता नि यमते वसव्या ॥३
त्वमिन्द्र स्वयशा ऋभुक्षा वाजो न साधुरस्तमेष्यृक्वा।
वयं नु ते दाश्वांसः स्याम ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वसिष्ठाः ॥४
सनितासि प्रवतो दाशुषे चिद्याभिर्विवेषो हर्यश्व धीभिः।
ववन्मा नु ते युज्याभिरूती कदा न इन्द्र राय आ दशस्येः ॥५ ।३

हे ऋभुगण! तुम तेजस्वी हो। तुम यत्नशील रथ करो। तुम मिश्रित सोमरस से अपना पेट भरो ॥ १ ॥ हे

हविदाताओं के लिए धन धारण करो। फिर बली होकर सोम-पान करो और हमें धन दो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम धन-दान के समय अन्न सेवन करते हो। तुम्हारे दोनों हाथों में धन है। तुम्हारे दान को कोई रोक नहीं सकता ॥ ३ ॥ हे इन्द्र तुम ऋभुओं के स्वामी हो। तुम स्तुति करने वाले के घर पर आगमन करो। आज हम हवि देकर तुम्हारी स्तुति करेंगे ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यजमान को धन देते हो। तुम हमें कब धन प्रदान करोगे ? हम तुम्हारी स्तुतियों से रक्षित होंगे ॥ ५ (३)

वासयसीव वेधसस्त्वं नः कदा न इन्द्र वचसो बुबोधः ।
अस्तं तात्या धिया रयिं सुवीरं पृक्षो नो अर्वा न्युहीत वाजी ॥६
अभि यं देवी निर्ऋतिश्चिदीशे नक्षन्त इंद्रं शरदः सुपृक्षः ।
उप त्रिबन्धुर्जरदष्टिमेत्यस्ववेशं यं कृणवन्त मर्ताः ॥७
आ नो राधांसि सवितः स्तवध्या आ रायो यन्तु पर्वतस्य रातौ ।
सदा नो दिव्यः पायः सिषक्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।४

हे इन्द्र ! हमारी स्तुति पर कब ध्यान दोगे ? तुमने हमें निवास प्रदान किया है। तुम्हारे अश्व हमारे घर में अत्यन्त युक्त धन लेकर आवें ॥ ६ ॥ पृथिवी जिन इन्द्र को ईश्वर बनाने का यत्न करती हैं, अन्नमय वर्ष जिन्हें स्वामी रूप से स्वीकार करते हैं, और स्तोता जिन्हें अपने घर में आहूत करते हैं, वे इन्द्र अन्न-भक्षण वाला बल पाते हैं ॥ ७ ॥ हे सवितादेव ! तुम्हारा प्रशंसनीय धन हमें मिले। पर्वत प्रदत्त धन हमें प्राप्त हो। इन्द्र हमारी सेवा को स्वीकार करें। हे देवगण ! तुम सदा हमारी रक्षा करो ॥ ८ ॥ (४)

३८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—सविताः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

उदु ष्य देवः सविता ययाम हिरण्ययीममतिं यामशिश्रेत् ।
नूनं भगो हव्यो मानुषेभिर्वि यो रत्ना पुरूवसुर्दधाति ॥१
उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यस्य हिरण्यपाणे प्रभृतावृतस्य ।
व्युर्वी पृथ्वीममतिं सृजान आ नृभ्यो मर्त भोजनं सुवानः ॥२

अपि ष्टुतः सविता देवो अस्तु यमा चिद्विश्वे वसवो गृणन्ति ।
स ना स्तोमान्नमस्य श्चनो धाद्विश्वेभिः पातु: पायुभिर्नि सूरीन् ॥३
अभि यं देव्यदितिर्गृणाति सवं देवस्य सवितुर्जुपाणा ।
अभि सम्राजो वरुणो गृणन्त्यभि मित्रासो अर्यमा सजोपा: ॥४
अभि ये मिथो वनुषः सपन्ते रातिं दिवो रातिषाचः पृथिव्याः ।
अहिर्बुध्न्य उत नः शृणोतु वरूत्र्येकधेनुभिर्नि पातु ॥५
अनु तन्नो जास्पतिर्मंसीष्ट रत्नं देवस्य सवितुरियानः ।
भगमुग्रोऽवसे जोहवीति भगमनुग्रो अध याति रत्नम् ॥६
शं नो भवन्तु वाजिनो हवेषु देवताता मितद्रवः स्वर्का: ।
जम्भयन्तोऽहिं वृकं रक्षांसि सनेम्यस्मद्युयवन्नमीवा: ॥७
वाजेवाजेऽवत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञाः ।
अस्य मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैः ॥८ ।५

अपनी प्रभा से दमकते हुए सूर्य उदय को प्राप्त होते हैं। वे मनुष्यों द्वारा स्तुतियों के योग्य हैं। वे स्तोता को श्रेष्ठ धन प्रदान करते हैं ॥ १ ॥ हे सविता! उदय को प्राप्त होओ। नेताओं के उपभोग्य धन देते हुए इस यज्ञानुष्ठान का आरम्भ हुआ है। तुम हमारी स्तुति को सुनो ॥ २ ॥ सविता हमारे द्वारा पूजित हों। जिनकी सभी स्तुति करते हैं, वे पूज्य सविता हमारी स्तुति को बढ़ायें और स्तोता की सब प्रकार रक्षा करें ॥ ३ ॥ सविता की स्तुति अदिति, वरुण, मित्र, अर्यमा आदि देवता करते हैं ॥ ४ ॥ दानशील यजमान सविता की उपासना करते हैं। अहिर्बुध्न्य हमारी स्तुति सुनें। और वाणी देवी हमारी सब प्रकार रक्षा करें ॥ ५ ॥ वाजी नामक देवगण हमें सुख दें। वे अदानशील और राक्षसों नष्ट करें और सब रोगों को हमसे दूर कर कर दें ॥ ७ ॥ हे देवगण! तुम मन्त्र के जानने वाले होकर सब संग्रामों में रक्षा करो। तुम इस सोम से हर्ष प्राप्त करो, फिर देवयान मार्ग से गमन करो ॥ ८ ॥

३९ सूक्त

(ऋषि - वसिष्ठः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द–त्रिष्टुप्)

ऊर्ध्वो अग्निः सुमतिं वस्वो अश्रेत्प्रतीची जूर्णिर्देवतातिमेति ।
भेजाते अद्री रथ्येव पन्थामृतं होता न इषितो यजाति ॥१
प्र वावृजे सुप्रया बर्हिरेषामा विश्पतीव बीरिट इयाते ।
विशामक्तोरुषसः पूर्वहूतौ वायुः पूषा स्वस्तये नियुत्वान् ॥२
ज्मया अत्र वसवो रन्त देवा उरावन्तरिक्षे मर्जयन्त शुभ्राः ।
अर्वाक् पथ उरुज्रयः कृणुध्वं श्रोता दूतस्य जग्मुषो नो अस्य ॥३
ते हि यज्ञेषु यज्ञियास ऊमाः सधस्थं विश्वे अभि सन्ति देवाः ।
ताँ अध्वर उशतो यक्ष्यग्ने श्रुष्टी भगं नासत्या पुरन्धिम् ॥४
आग्ने गिरो दिव आ पृथिव्या मित्रं वह वरुणमिन्द्रमग्निम् ।
आर्यमणमदितिं विष्णुमेषां सरस्वती मरुतो मादयन्ताम् ॥५
ररे हव्यं मतिभिर्यज्ञियानां नक्षत्कामं मर्त्यानामसिन्वन् ।
धाता रयिमविदस्यं सदासां सक्षीमहि युज्येभिर्नु देवैः ॥६
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।६

अग्निदेव स्तोता की स्तुति से ऊँचे उठें । उषा देवी यज्ञ में आवें । पत्नीयुक्त यजमान यज्ञ मार्ग पर चलता है और होता यज्ञ करता है ॥ १ ॥ यह यजमान कुश को हव्य से पूर्ण करते हैं । वायु और पूषा सबका कल्याण करने के लिए उषा से पूर्व ही आगमन करें ॥ २ ॥ वसुगण इस यज्ञ में विहार करें । अन्तरिक्षस्थ मरुद्गण की भी यहाँ सेवा होती है । हे वसुओ और मरुतो ! अपने मार्ग को हमारी ओर करो । जो हमारा दूत तुम्हारी सेवा में पहुँचा है उसके निवेदन पर ध्यान दो ॥ ३ ॥ विश्वेदेवा हमारे यज्ञ में आते हैं । हे अग्ने ! उनके निमित्त यज्ञ करो । भग, अश्विद्वय और इन्द्र का पूजन करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा, अग्नि, अदिति

और विष्णु का हमारे यज्ञ में आह्वान करो। सरस्वती और मरुद्गण की भी कृपा-याचना करो ॥ ५ ॥ यज्ञ योग्य देवताओं को हम हवि देते हैं। अग्नि हमारी कामनाओं में बाधक नहीं होते। हे देवगण! तुम हमें ग्रहणीय धन प्रदान करो। हम अपने सहायक देवताओं के आज दर्शन करेंगे ॥ ६ ॥ आज आकाश पृथिवी की भले प्रकार स्तुति की गई। इन्द्र, वरुण और अग्नि की भी स्तुति की गई है। कल्याणप्रद देवता हमें श्रेष्ठ अन्न दें और सदा हमारा पालन करें ॥ ७ ॥ [७]

४० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता-वैश्वानरः। छन्द-पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

ओ श्रुष्टिर्विदथ्या समेतु प्रति स्तोमं दधीमहि तुराणाम्।
यदद्य देवः सविता सुवाति स्यामास्य रत्निनो विभागे ॥१
मित्रस्तन्नो वरुणो रोदसी च द्युभक्तमिन्द्रो अर्यमा ददातु।
दिदेष्टु देव्यदिती रेक्णो वायुश्च यन्नियुवैते भगश्च ॥२
सेदुग्रो अस्तु मरुतः स शुष्मी यं मर्त्यं पृषदश्वा अवाथ।
उतेमग्निः सरस्वती जुनन्ति न तस्य रायः पर्येतास्ति। ३
अयं हि नेता वरुण ऋतस्य मित्रो राजानो अर्यमापो धुः।
सुहवा देव्यदितिरनर्वा ते नो अंहो अति पर्षन्नरिष्टान् ॥४
अस्य देवस्य मीळ्हुषो वया विष्णोरेषस्य प्रभृथे हविर्भिः।
विदे हि रुद्रो रुद्रियं महित्वं यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ॥५
मात्र पूषन्नाघृण इरस्यो वरूत्री यद्रातिषाचश्च रासन्।
मयोभुवो नो अर्वन्तो नि पान्तु वृष्टिं परिज्मा वातो ददातु ॥६
नू रोदसी अभिष्टुते वसिष्ठैर्ऋतावानो वरुणो मित्रो अग्निः।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।७

हे देवगण! तुम्हारा श्रेष्ठ सुख हमें प्राप्त हो। हम देवताओं की स्तुति करते हैं। जो धन सवितादेव हमारे लिए प्रेषित करेंगे उसी धन से हम

संतुष्ट होंगे ॥ १ ॥ मित्रावरुण और द्यावापृथिवी उसी प्रशंसनीय धन को हमें दें । इन्द्र और अर्यमा भी हमें धन प्रदान करें । वायु और भग हमें जिस धन को देना चाहें, अदिति उस धन को हमें दे डालें ॥ २ ॥ वृषत् अश्व वाले मरुद्गण ! तुम जिसके रक्षक होते हो, वह उपासक बल और तेज प्राप्त करे । अग्नि और सरस्वती आदि देवता यजमान को कर्म में लगावें । इसके पास जो धन है, उसे कोई नष्ट न कर सके ॥ ३ ॥ मित्र, वरुण, अर्यमा सर्वशक्ति सम्पन्न हैं, वे हमारे यज्ञानुष्ठान के धारक हैं । प्रकाशमयी अदिति सुन्दर आह्वान से सम्पन्न हैं । यह सब देवता हमें पापों से मुक्त करें ॥ ४ ॥ अन्य सब देवता विष्णु के अंश रूप हैं । रुद्र अपनी कृपा हमें दें । हे अश्विद्वय ! तुम हमारे हव्य-सम्पन्न घर में आगमन करो ॥ ५ ॥ हे पूषन् ! सरस्वती और देव नारियाँ हमें जो धन दें, उसमें तुम बाधक नहीं होना । कल्याणदाता देवगण हमारी रक्षा करें । वायु हमें जल-वृष्टि दें ॥ ६ ॥ आज देवताओं ने द्यावा पृथिवी की भले प्रकार स्तुति की । वरुण, इन्द्र और अग्नि की भी स्तुति की गई । देवगण हमें ग्रहणीय धन दें और हमारा सदा पालन करें ॥७॥ [७]

४१ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठ । देवता-लिङ्गोक्ताः भगः उषाः । छन्द-त्रिष्टुप्, जगती, पंक्तिः)

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ।
प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम ॥१
प्रातर्जितं भगमुग्रं हुवेम वयं पुत्रमदितेर्यो विधर्ता ।
आध्रश्चिद्यं मन्यमानस्तुरश्चिद्राजा चिद्यं भगं भक्षीत्याह ।.२
भग प्रणेतर्भग सत्यराधो भगेमां धियमुदवा ददन्नः ।
भग प्र णो जनय गोभिरश्वैर्भग नृभिर्नृवन्तः स्याम ॥३
उतेदानीं भगवन्तः स्यामोत प्रपित्व उत मध्ये अह्नाम् ।
उतोदिता मघवन्त्सूर्यस्य वयं देवानां सुमतौ स्याम ॥४
भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम ।

तं त्वा भग सर्व इज्जोहवीति स नो भग पुरएता भवेह् ॥५
समध्वरायोपसो नमन्त दधिक्रावेव शुचये पदाय ।
अर्वाचीनं वसुविदं भगं नो रथमिवाश्वा वाजिन आ वहन्तु ॥६
अश्वावतीर्गोमतीर्न उपासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।८

हम अपने प्रातः सवन में इन्द्र, मित्र, और वरुण का आह्वान करते हैं। अश्विद्वय, भग, पूषा, मरुणस्पति, सोम और रुद्र की भी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ अदिति के विजयशील पुत्र भग का हम अपने प्रातः सवन में आह्वान करते हैं। दरिद्र और धनवान राजा दोनों ही उनसे उपभोग्य धन माँगते हैं ॥ २ ॥ हे भग! तुम श्रेष्ठ नेता और सत्य धन वाले हो। तुम हमें इच्छित वस्तु दो। हमारे गवादि पशुओं की वृद्धि करो। हम पुत्रादि से सम्पन्न सौभाग्यशाली हों ॥ ३ ॥ हम तुम्हारे कृपा पात्र हों। दिन के प्रारम्भ में और मध्य में भी तुम्हारी कृपा को पाते रहें। हे भग! हम सूर्योदय काल में इन्द्रादि देवताओं की कृपा पावे रहें ॥ ४ ॥ हे देवगण! हम भग की कृपा से सम्पन्न हों। हे भग! हमारे इस यज्ञ में सर्व प्रथम आओ। हम बारम्बार आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ उषा हमारे यज्ञ में आगमन करें। वेगवान अश्वों से युक्त रथ के समान उषा, भग देवता को हमारे अभिमुख करें ॥ ६ ॥ सर्वगुण सम्पन्ना उषा अश्व, गौ, अपत्यादि से युक्त होकर रात्रि के अन्धेरे को दूर करें और सदा हमारा पालन करें ॥ ७ ॥ [८]

४२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता-विश्वेदेवाः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र ब्रह्माणो अङ्गिरसो नक्षन्त प्र क्रन्दनुर्नभन्यस्य वेतु ।
प्र धेनव उदप्रुतो नवन्त युज्यातामद्री अध्वरस्य पेशः ॥१
सुगस्ते अग्ने सनवित्तो अध्वा युङ्क्ष्व सुते हरितो रोहितश्च ।
ये वा सद्मन्नरुषा वीरवाहो हुवे देवानां जनिमानि सत्तः ॥२
समु वो यज्ञं महयन्नमोभिः प्र होता मन्द्रो रिरिच उपाके ।

यजस्व सु पुर्वणीक देवाना यज्ञियामरमतिं ववृत्याः ॥३
यदा वीरस्य रेवतो दुरोणे स्योनशीरतिथिराचिकेतत् ।
सुप्रीतो अग्निः सुधितो दम आ स विशे दाति वार्यमियत्यै ।४
इमं नो अग्ने अध्वरं जुषस्व मरुत्स्विन्द्रे यशसं कृधी नः ।
आ नक्ता बर्हिः सदतामुषासोशन्ता मित्रावरुणा यजेह ॥५
एवाग्निं सहस्यं वसिष्ठो रायस्कामो विश्वप्स्न्यस्य स्तौत् ।
इषं रयिं पप्रथद्वाजमस्मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।९

अंगिरागण सर्वत्र व्याप्त हों। पर्जन्य हमारी स्तुति को चाहें। नदियाँ जल सींचती हुई बहें। यजमान दम्पति यज्ञ का आयोजन करें ॥ १ ॥ हे अग्ने तुम्हारा सनातन मार्ग सुगम हो। कृष्ण वर्ण के और लाल रङ्ग के जो अश्व तुम्हारे समान महान् देवता को यज्ञ गृह में पहुँचाते हैं, उन्हें रथ में जोड़ो। मैं यज्ञ मंडप में अवस्थित होकर देवताओं का आह्वान करता हूँ ॥२॥ हे देवगण ! यज्ञ में स्तोतागण तुम्हारी पूजा करते हैं। हमारा निकटस्थ होता सर्वोत्तम है। हे यजमान ! देवताओं का भले प्रकार यज्ञ करो। तुम तेज को धारण करो, भूमि को प्राप्त करो ॥ ३ ॥ अतिथि रूप अग्नि जिस धनवान के में शयन करते हैं, तथा जिस समय चैतन्य और प्रसन्न होते हैं, उस समय ग्रहणीय धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ हे अग्ने हमारे यज्ञ का सेवन करो। इन्द्र और मरुद्गण के मध्य हमारे यश को विस्तृत करो। तुम रात्रि में और उषा-काल में भी यज्ञीय कुशों पर विराजमान होओ। यज्ञ की कामना वाले मित्रा-वरुण का पूजन करो ॥ ५ ॥ धन की कामना से वसिष्ठ ने अग्नि की स्तुति की। अग्नि हमें बल, अन्न और धन प्रदान करें। हमारा सदा पालन करते रहें ॥ ६ ॥ [९]

४३ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता—विश्वेदेवाः। छन्द-त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

प्र वो यज्ञेषु देवयन्तो अर्चन्द्यावा नमोभिः पृथिवी इषध्यै ।
येषां ब्रह्माण्यसमानि विप्रा विष्वग्वियन्ति वनिनो न शाखाः ॥१

प्र यज्ञ एतु हेत्वो न सप्तिरुद्यच्छध्वं समनसो घृताचीः ।
स्तृणीत बर्हिरध्वराय साधूर्ध्वा शोचींषि देवयून्यस्थुः ॥२
आ पुत्रासो न मातरं विभृत्राः सानौ देवासो बर्हिषः सदन्तु ।
आ विश्वाची विदथ्यामनक्त्वग्ने मा नो देवताता मृधस्कः ॥३
ते सीषपन्त जोषमा यजत्रा ऋतस्य धाराः सुदुघा दुहानाः ।
ज्येष्ठं वो अद्य मह आ वसूनामा गन्तन समनसो यति ष्ठ ॥३
एवा नो अग्ने विक्ष्वा दशस्य त्वया वयं सहसावन्नास्क्राः ।
राया युजा सधमादो अरिष्टा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।१०

जिन विद्वानों की स्तुतियाँ सब ओर फैलती हैं, वे विद्वान् तुम्हारी प्राप्ति के लिए स्तुति करते हैं और आकाश-पृथिवी की भी स्तुति करते हैं ॥ १ ॥ ऋत्विजो ! द्रुतगामी अश्व के समान आगमन करो। एक मन वाले होकर स्रुक को ग्रहण करने वाली तुम्हारी रश्मियाँ ऊपर को मुख करें ॥ २ ॥ पुत्र जैसे माता-पिता की गोद में जा बैठते हैं, उसी प्रकार देवतागण यज्ञ के श्रेष्ठ स्थानों में विराजमान हों। हे अग्ने ! तुम्हारी यज्ञ-योग्य ज्वालाओं का जुहू भले प्रकार सिंचन करे, तुम हमारे शत्रुओं के सहायक मत होना ॥ ३ ॥ जल की दोहनशील धारा को सींचते हुए देवगण हमारे पूजन को स्वीकार करें। हे देवगण सर्व श्रेष्ठ धन हमें मिले। तुम समान मन से आगमन करो ॥ ४ ॥ हे अग्ने ! तुम हमें धन प्रदान करो। तुम हमारा त्याग न करो। हम सदा सुखी रहें। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [१०]

४४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—लिङ्गोक्ताः। छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

दधिक्रां वः प्रथममश्विनोषसमग्निं समिद्धं भगमूतये हुवे ।
इन्द्रं विष्णुं पूषणं ब्रह्मणस्पतिमादित्यान्द्यावापृथिवी अपः स्वः ।
दधिक्रामु नमसा बोधयन्त उदीराणा यज्ञमुपप्रयन्तः ।
इळां देवीं बर्हिषि सादयन्तोऽश्विना विप्रा सुहवा हुवेम ॥२
दधिक्रावाणं बुबुधानो अग्निमुप ब्रुव उषसं सूर्यं गाम् ।

व्रध्नं मंश्चतोर्वरुणस्य बभ्रुं ते विश्वास्मद् दुरिता यावयन्तु ॥३
दधिक्रावा प्रथमो वाज्यर्वाग्रे रथानां भवति प्रजानन् ।
संविदान उषसा सूर्येणादित्येभिर्वसुभिरङ्गिरोभिः ॥४
आ नो दधिक्राः पथ्यामनक्त्वृतस्य पन्थामन्वेतवा उ ।
शृणोतु नो दैव्यं शर्धो अग्निः शृण्वन्तु विश्वे महिषा अमूराः ॥५ ।११

रक्षार्थ मैं दधिक्रा का आह्वान करता हूँ। फिर अश्विद्वय, उषा, अग्नि, भग, इन्द्र, विष्णु, पूषा, ब्रह्मणस्पति आदित्यगण, आकाशपृथिवी, जल और सूर्य का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ यज्ञारम्भ में हम दधिक्रा की स्तुति करते हैं और इला की स्थापना कर, शोभामय अश्विनीकुमारों का आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ दधिक्रा का आह्वान कर अग्नि, उषा, सूर्य और वाणी की स्तुति करता हूँ। वरुण के अश्व का भी स्तव करता हूँ। सभी देवता मुझे पापों से छुड़ावें ॥ ३ ॥ अश्वों में प्रमुख दधिक्रा जानने योग्य बातों को जानकर उषा सूर्य, आदित्यगण, वसुगण और अंगिराओं को साथ लाते हुए रथ के अग्र भाग में चलते हैं ॥ ४ ॥ दधिक्रा सत्य और न्याय पर चलते हुए हमको धर्म और लोक हितकारी मार्ग पर अग्रसर करें। वे अग्नि के समान प्रकाशक होकर हमको भी शक्ति प्रदान करें ॥ ५ ॥ [११]

४५ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–सविताः । छन्द–त्रिष्टुप्)

आ देवो यातु सविता सुरत्नोऽन्तरिक्षप्रा वहमानो अश्वैः ।
हस्ते दधानो नर्या पुरूणि निवेशयञ्च प्रसुवञ्च भूम ॥१
उदस्य बाहू शिथिरा बृहन्ता हिरण्यया दिवो अन्ताँ अनष्टाम् ।
नूनं सो अस्य महिमा पनिष्ट सूरश्चिदस्मा अनु दादपस्याम् ॥२
स घा नो देव सविता सहावा साविषद्वसुपतिर्वसूनि ।
विश्रयमाणो अमतिमुरूचीं मर्तभोजनमध रासते नः ॥३
इमा गिरः सवितारं सुजिह्वं पूर्णगभस्तिमीळते सुपाणिम् ।

चित्रं वयो बृहदस्मे दधातु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१२

सविता देवता मनुष्यों के लिए कल्याणकारी धन धारण करते हुए सब जीवों को कर्म की प्रेरणा करते हुए उदित हों ॥ १॥ सवितादेव अन्तरिक्ष की सीमा को व्याप्त करें । हम उनकी महिमा को आज कहेंगे। सूर्य हमें कर्म करने की ओर झुकावें ॥ २ ॥ सविता देवता धन-प्रेरण करें । वे विशाल रूप वाले होकर उपभोग्य धन हमें प्रदान करें ॥ ३ ॥ वह श्रेष्ठ अन्न दें और हमारा पालन करें ॥ ४ ॥ [१२]

४६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—रुद्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

इमा रुद्राय स्थिरधन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ।
अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतु नः ॥१
स हि क्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ।
अवन्नवन्तीरुप नो दुरश्चरानमीवो रुद्र जासु नो भव ॥२
या ते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परि सा वृणक्तु नः ।
सहस्रं ते स्वपिवात भेषजा मा नस्तोकेषु तनयेषु रीरिषः ॥३
मा नो वधी रुद्र मा परा दा मा ते भूम प्रसितौ हीळितस्य ।
आ नो भज बर्हिषि जीवशंसे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४।१३

हे स्तोता ! धनुर्धारी, अजेय, सर्वज्ञाता रुद्र का स्तव करो । वे हमारी प्रार्थना सुनें ॥ १ ॥ पार्थिव और दिव्य ऐश्वर्य से उनकी अनुभूति होती है । हे रुद्र ! तुम्हारे स्तोत्र करने वाले हमारे पुरुषों की रक्षा करते हुए आगमन करो । तुम हमें रोग-व्याधि में ग्रस्त मत करना ॥ २ ॥ हे रुद्र ! अन्तरिक्षस्थ विद्युत पृथिवी पर घूमती है, वह हमें नष्ट न करे । तुम सहस्रों औषधियों वाले हो । हमारे पुत्र पौत्रादि को नष्ट मत करना ॥ ३ ॥ हे रुद्र ! हमारी हिंसा मत करना । हम तुम्हारे क्रोध के पाश में न पड़ें । तुम हमें यज्ञ-भागी बनाओ और सदा हमारा पालन करो ॥ ४ ॥

४७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—आपः । छन्द—त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

आपो यं वः प्रथमं देवयन्त इन्द्रपानमूर्मिकृण्वतेळः ।
तं वो वयं शुचिमरिप्रमद्य घृतप्रुषं मधुमन्तं वनेम ॥१
तमूर्मिमापो मधुमत्तमं वोऽपां नपादवत्वाशुहेमा ।
यस्मिन्निन्द्रो वसुभिर्मादयाते तमश्याम देवयन्तो वो अद्य ॥२
शतपवित्राः स्वधया मदन्तीर्देवीर्देवानामपि यन्ति पाथः ।
ता इन्द्रस्य न मिनन्ति व्रतानि सिन्धुभ्यो हव्यं घृतवज्जुहोत ॥३
याः सूर्यो रश्मिभिराततान याभ्य इन्द्रो अरदद् गातुमूर्मिम् ।
ते सिन्धवो वरिवो धातना नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१४

हे जलदेवता! अध्वर्युओं द्वारा इन्द्र के पान-योग्य जो सोमरस निष्पन्न किया गया है, उसका हम भी सेवन करेंगे ॥ १ ॥ अपानपात् देव तुम्हारे रस युक्त सोम को बढ़ावें। वसुगण सहित इन्द्र जिससे हर्ष प्राप्त करते हैं, उस सोम रस को देवताओं की कामना करते हुए हम पावेंगे ॥ २ ॥ जल देवता देव-स्थानों में जाते हैं। वे इन्द्र के यज्ञानुष्ठान में बाधक नहीं होते। हे अध्वर्युओ! तुम सिन्धु आदि के निमित्त हविर्दान करो ॥ ३ ॥ अपनी रश्मियों से सूर्य जिन जलों को बढ़ाते हैं, जिनके बहने को इन्द्र ने मार्ग बनाया है, हे सिन्धुगण! ऐसे तुम हमारे लिए धन धारण करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ४ ॥ [१४]

४८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः दे०—ऋभवः, ऋभवो विश्वेदेवा वा । छन्द—पंक्तिः त्रिष्टुप्)

ऋभुक्षणो वाजा मादयध्वमस्मे नरो मघवानः सुतस्य ।
आ वोऽर्वाचः क्रतवो न यातां विभ्वो रथं नर्यं वर्तयन्तु ॥१
ऋभुर्ऋभुभिरभि वः स्याम विभ्वो विभुभिः शवसा शवांसि ।
वाजो अस्माँ अवतु वाजसाताविन्द्रेण युजा तरुषेम वृत्रम् ॥२

ते चिद्धि पूर्वीरभि सन्ति शासा विश्वाँ अर्य उपरताति वन्वन् ।
इन्द्रो विभ्वाँ ऋभुक्षा वाजो अर्यः शत्रोर्मिथत्या कृणवन्वि नृम्णम् ॥३
नू देवासो वरिवः कर्तना नो भूत नो विश्वेऽवसे सजोषाः ।
समस्मे इषं वसवो ददीरन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥४ ।१५

हे ऋभुगण ! हमारे सोम को पीकर प्रसन्न होओ । तुम्हारे कर्मवान् अश्व हमारे सामने आकर मनुष्यों का हित करें ॥ १ ॥ हम तुम्हारे द्वारा ही सम्पन्न हुए हैं । तुम सामर्थ्यवान् हो । हम तुम्हारी सहायता पाकर ही शत्रुओं को हरावेंगे । वे ऋभुगण हमारे रक्षक हों । इन्द्र की कृपा से हम वृत्र द्वारा हिंसित न हों ॥ २ ॥ हमारे शत्रुओं की सेनाओं को इन्द्र और ऋभुगण हराते हैं । वे रणक्षेत्र में सब शत्रुओं का वध करते हैं । विभ्वा, ऋभुक्षा और वाज नामक ऋभु-त्रय और इन्द्र शत्रुओं का नाश करेंगे ॥ ३ ॥ हे ऋभुओ ! धनदाता होओ । हमारी रक्षा करो । हमें अन्न दो और हमारा कल्याण करो ॥ ४ ॥ [१५]

४९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—आपः । छन्द—त्रिष्टुप्)

समुद्रज्येष्ठाः सलिलस्य मध्यात्पुनाना यन्त्यनिविशमानाः ।
इन्द्रो या वज्री वृषभो रराद ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥१
या आपो दिव्या उत वा स्रवन्ति खनित्रिमा उत वा याः स्वयञ्जाः ।
समुद्रार्था याः शुचयः पावकास्ता आपो देवरिह मामवन्तु ॥२
यासां राजा वरुणो याति मध्ये सत्यानृते अवपश्यञ्जनानाम् ।
मधुश्चुतः शुचयो याः पावकास्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥३
यासु राजा वरुणो यासु सोमो विश्वे देवा यासूर्जं मदन्ति ।
वैश्वानरो यास्वग्निः प्रविष्टस्ता आपो देवीरिह मामवन्तु ॥४ ।१६

जिन जलों में समुद्र बड़ा है, वे जल प्रवाह युक्त हैं । जल अन्तरिक्ष से आते हैं । इन्द्र ने जिन्हें मुक्त किया, वे जल

रक्षक हों ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले जल, नदी में प्रवाहित या कूप रूप में खोद कर निकाले गए जल और समुद्र की ओर जाते हुए जल, यह सब हमारे रक्षक हों ॥ २ ॥ जिन जलों के स्वामी वरुण मध्य लोक में गमन करते हैं, वे प्रकाशयुक्त, रस- सम्पन्न जल हमारे रक्षक हों ॥ ३ ॥ जिन जलों में वरुण और सोम निवास करते हैं, जिनके अन्न से विश्वेदेवा प्रसन्न होते हैं और जिनमें वैश्वानर अग्नि का निवास है, वे जल देवता हमारे रक्षक हों ॥ ४ ॥ [१६]

५० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—मित्रावरुणौ, अग्निः, विश्वेदेवाः, नद्यः ।
छन्द—त्रिष्टुप्, जगती)

आ मां मित्रावरुणेह रक्षतं कुलाययद्विश्वयन्मा न आ गन् ।
अजकावं दुर्दृशीकं तिरो दधे मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥१
यद्विजामन्परुषि वन्दनं भुवदष्ठीवन्तौ परि कुल्फौ च देहत् ।
अग्निष्टच्छोचन्नप बाधतामितो मा मां पद्येन रपसा विदत्त्सरुः ॥२
यच्छल्मलौ भवति यन्नदीषु यदोषधीभ्यः परि जायते विषम् ।
विश्वे देवा निरितस्तत्सुवन्तु मा मां पद्येन पपसा विदत्त्सरुः ॥३
याः प्रवतो निवत उद्वत उदन्वतीरनुदकाश्च याः ।
ता अस्मभ्यं पयसा पिन्वमानाः शिवा देवीरशिपदा भवन्तु
सर्वा नद्यो अशिमिदा भवन्तु ॥४ ।१७

हे मित्र और वरुण ! तुम हमारे रक्षक बन कर घातक विषों से हमारी रक्षा करो। छिप कर चलने वाले सर्प भी हम पर आक्रमण न कर सकें ॥ १ ॥ हे अग्निदेव ! वृक्षादि की ग्रन्थियों में जो विष उत्पन्न होता है और जो पैरों के संधिस्थानों में सूजन उत्पन्न कर देता है, उस विष के प्रभाव को इस व्यक्ति पर से दूर करदो। छिपकर चलने वाले सर्प हमको जानने न पावें ॥२ ॥ जो विष शाल्मली के वृक्ष में होता है और जो नदियों में उत्पन्न होने वाली गुल्म, लता आदि में पैदा होता है उससे विश्वेदेवगण हमारी रक्षा करें। छिपकर

चलने वाले सर्प हमको हानि न पहुँचा सकें ॥ ३ ॥ प्रधरा देश, निम्न देश तथा उन्नत देश में जो नदियाँ बहती हैं, और जिनके जल के द्वारा लोगों की आवश्यकताएं पूरी होती हैं, वे संसार की उपकारी नदियाँ इसके शिपद रोग को दूर करने की कृपा करें। ये नदियाँ हमें हानि न पहुँचायें ॥ ४ ॥ [१७]

५१ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–आदित्याः । छन्द–त्रिष्टुप्)

आदित्यानामवसा नूतनेन सक्षीमहि शर्मणा शन्तमेन ।
अनागास्त्वे अदितित्वे तुरास इमं यज्ञं दधतु श्रोषमाणाः ॥१
आदित्यासो अदितिर्मादयन्तां मित्रो अर्यमा वरुणो रजिष्ठाः ।
अस्माकं सन्तु भुवनस्य गोपाः पिबन्तु सोममवसे नो अद्य ॥२
आदित्या विश्वे मरुतश्च विश्वे देवाश्च विश्व ऋभवश्च विश्वे ।
इन्द्रो अग्निरश्विना तुष्टुवाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।१८

आदित्यों की कृपा से हम सुखकारी घर पावें। वे हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर यज्ञकर्त्ता यजमान को निर्दोष और दारिद्र्य-रहित करें ॥ १ ॥ आदित्य, अदिति, मित्र, वरुण और अर्यमा हर्षयुक्त हों। देवगण हमारी रक्षा करें और सोम पान करें ॥ २ ॥ द्वादश आदित्य, उनचास मरुद्गण, तैंतीस सौ तैंतीस देवता, तीनों ऋभु, दोनों अश्विनीकुमार, इन्द्र और अग्नि की हमने स्तुति की है। ये हमारा पालन करें ॥ ३ ॥ [१८]

५२ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–आदित्याः । छन्द–पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

आदित्यासो अदितयः स्याम पूर्देवत्रा वसवो मर्त्यत्रा ।
सनेम मित्रावरुणा सनन्तो भवेम द्यावापृथिवी भवन्तः ॥१
मित्रस्तन्नो वरुणो मामहन्त शर्म तोकाय तनयाय गोपाः ।
मा वो भुजेमान्यजातमेनो मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे ॥२
तुरण्यवोऽङ्गिरसो नक्षन्त रत्नं देवस्य सवितुरियानाः ।

पिता च तन्नो महान्यजत्रो विश्वेदेवाः समनसो जुषन्त ॥३ ।१९

आदित्यों के हम प्रिय हैं, हम अहिंसित रहें। हे वसुगण ! तुम रक्षक होओ। हे मित्रावरुण ! हम उपासना द्वारा धन पावेंगे। हे द्यावा-पृथिवी ! हम शक्तिशाली बनें ॥ १ ॥ मित्रावरुण आदि आदित्य हमारे पुत्र पौत्रादि को सुखजनक हों। अन्य कृत पाप का फल हमें न मिले हे वसुगण ! जिस कर्म से तुम हमें नष्ट करते हो, हम वह कर्म न करें ॥ २ ॥ सविता की प्रार्थना कर अङ्गिराओं ने जिस धन को प्राप्त किया था, उस धन को प्रजापति और समस्त देवगण हमें प्रदान करें ॥ ३ ॥ [१९]

५३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता–द्यावापृथिव्यौ । छन्द–त्रिष्टुप्)

प्र द्यावा यज्ञैः पृथिवी नमोभिः सबाध ईळे बृहती यजत्रे ।
ते चिद्धि पूर्वे कवयो गृणन्तः पुरो मही दधिरे देवपुत्रे ॥१
प्र पूर्वजे पितरा नव्यसीभिर्गीर्भिः कृणुध्वं सदने ऋतस्य ।
आ नो द्यावापृथिवी दैव्येन जनेन यातं महि वां वरूथम् ॥२
उतो हि वां रत्नधेयानि सन्ति पुरूणि द्यावापृथिवी सुदासे ।
अस्मे धत्त यदसदस्कृधोयु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।२०

जिन विस्तीर्ण आकाश पृथिवी की स्तुति करते हुए स्तोताओं ने आगे प्रतिष्ठित किया, उन्हीं की मैं स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ हे स्तोताओ ! मातृपितृ भूता आकाश पृथिवी की यज्ञ के अग्रभाग में स्थापना करो। हे द्यावापृथिवी ! देवताओं के साथ धन-दान के निमित्त आगमन करो ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम्हारे पास हविदाता को देने के लिए प्रचुर धन है। अतः हमको भी अक्षय धन प्रदान करो और सदा हमारा पालन करते रहो ॥ ३ ॥ [२०]

५४ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–वास्तोष्पति । छन्द–त्रिष्टुप्)

वास्तोष्पते प्रति जानीह्यस्मान्त्स्वावेशो अनमीवो भवा नः ।

यत्त्वेमहे प्रति तन्नो जुषस्व शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
वास्तोष्पते प्रतरणो व एधि गयस्फानो गोभिरश्वेभिरिन्दो ।
अजरासस्ते सख्ये स्याम पितेव पुत्रान्प्रति नो जुषस्व ॥२
वास्तोष्पते शग्मया संसदा ते सक्षीमहि रण्वया गातुमत्या ।
पाहि क्षेम उत योगे वरं नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।२१

हे वास्तोष्पति ! हमें जागृत करो । हमारे घर में रोग न रहे । याचित धन हमें दो । हमारे पशु और मनुष्यों को सुख प्रदान करो ॥ १ ॥ हे वास्तोष्पति ! हमारे धन के बढ़ाने वाले होओ । तुम्हारी मित्रता को पाकर हम अजर होंगे और गवादि पशुओं से सम्पन्न होंगे । पिता द्वारा पुत्र का पालन करने के समान ही तुम हमारा पालन करो ॥ २ ॥ हे वास्तोष्पति ! हम तुम्हें सुखकारी एवं ऐश्वर्य-सम्पन्न स्थान पावें । तुम हमारे धन की रक्षा करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ३ ॥ [२१]

५५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वास्तोष्पतिः, इन्द्रः । छन्द—त्रिष्टुप्, गायत्री बृहती, अनुष्टुप्)

अमीवहा वास्तोष्पते विश्वा रूपाण्याविशन् । सखा सुशेव एधि नः ॥१
यदर्जुन सारमेय दतः पिशङ्ग यच्छसे ।
वीव भ्राजन्त ऋष्टय उप स्रक्वेषु बप्सतो नि षु स्वप ॥२
स्तेनं राय सारमेय तस्करं वा पुनःसर ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥३
त्वं सूकरस्य दर्दृहि तव दर्दर्तु सूकरः ।
स्तोतॄनिन्द्रस्य रायसि किमस्मान्दुच्छुनायसे नि षु स्वप ॥४
सस्तु माता सस्तु पिता सस्तु श्वा सस्तु विश्पतिः ।
ससन्तु सर्वे ज्ञातयः सस्त्वयमभितो जनः ॥५
य आस्ते यश्च चरति यश्च पश्यति नो जनः ।

तेषां सं हन्मो अक्षाणि यथेदं हर्म्यं तथा ॥६
सहस्रशृङ्गो वृषभो यः समुद्रादुदाचरत् ।
तेना सहस्येना वयं नि जनान्त्स्वापयामसि ॥७
प्रोष्ठेशया वह्येशया नारीर्यास्तल्पशीवरीः ।
स्त्रियो याः पुण्यगन्धास्ताः सर्वाः स्वापयामसि ॥८-२२

हे वास्तोष्पते ! तुम रोगों के नष्ट करने वाले हो । तुम हमारे हितैषी मित्र होओ ॥ १ ॥ हे वास्तोष्पते ! जब दाँत निकालते हो, तब तुम्हारे दाँत आयुध के समान सुशोभित होते हैं । इस समय तुम सुख पूर्वक शयन करो ॥ २ ॥ हे सारमेय ! तुम जहाँ जाते हो वहाँ फिर पहुँचते हो । तुम चोर और दस्यु के पास गमन करो । इन्द्र की स्तुति करने वाले के पास क्यों जाते हो ? उसके कर्म में बाधक क्यों होते हो ? तुम सुख से शयन करो ॥ ३ ॥ तुम शूकर आदि को विदीर्ण करो । इन्द्र के उपासक के पास जाकर बाधक क्यों बनते हो ? तुम सुख से शयन करो ॥ ४ ॥ तुम्हारे माता पिता शयन करें । तुम भी शयन करो । गृह स्वामी, बांधव और सब ओर के मनुष्य भी शयन करें ॥ ५ ॥ जो यहाँ है, जो घूमता है, जो हमें देखता है, हम उनकी आँखों को फोड़ेंगे । वे इस कोष्ठ के समान निश्चल हो जायेंगे ॥ ६ ॥ सहस्रांशु सूर्य समुद्र से ऊपर उठे हैं, उनकी सहायता से हम सब मनुष्यों को निद्रा-ग्रस्त करेंगे ॥ ७ ॥ आंगन में शयन करने वाली, वाहन पर शयन करने वाली, बिछौने पर शयन करने वाली और पुष्पगन्ध वाली, ऐसी जो स्त्रियाँ हैं, उन सबको शयन करावेंगे ॥ ८ ॥ [२२]

५६ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि—वसिष्ठः देवता—मरुतः छन्द—गायत्री, बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

क ईं व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधा स्वश्वाः ॥१
नकिर्ह्येषां जनूंषि वेद ते अङ्ग विद्रे मिथो जनित्रम् ॥२
अभि स्वपूभिर्मिथो वपन्त वातस्वनसः श्येना अस्पृध्रन् ॥३

एतानि धीरो निण्या चिकेत पृश्निर्यदूधो मही जभार ॥४
सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥५
यामं येष्ठाः शुभा शोभिष्ठाः श्रिया संमिश्ला ओजोभिरुग्राः ॥६
उग्रं व ओजः स्थिरा शवांस्यधा मरुद्भिर्गणस्तुविष्मान् ॥७
शुभ्रो वः शुष्मः क्रुध्मी मनांसि धुनिर्मुनिरिव शर्धस्य धृष्णोः ॥८
सनेम्यस्मद्युयोत दिद्युं मा वो दुर्मतिरिह प्रणङ्नः ॥९
प्रिया वो नाम हुवे तुराणामा यत्तृपन्मरुतो वावशानाः ॥१० [२१]

यह समान गृहवासी, अश्व वाले और रुद्र के यह पुत्र कौन हैं ? ॥१॥ इनके जन्म को यह स्वयं जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता ॥ २ ॥ यह स्वयं विचरण करते हैं और श्येन के समान परस्पर स्पर्द्धी होते हैं ॥ ३ ॥ शास्त्रों के ज्ञाता विद्व इन्हें जानते हैं । पृश्नि ने इन्हें अन्तरिक्ष में धारण किया है ॥४॥ यह मरुद्गण की सहायता से शत्रुओं की पराभवकारिणी, धनदात्री और पुत्र-वती है ॥ ५ ॥ यह मरुद्गण गमन योग्य स्थानों में अधिक जाते हैं । वे अलंकृत, तेजस्वी और ओजस्वी हैं ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम स्थिर बल वाले, श्रेष्ठ बुद्धि वाले और उग्र तेज वाले हो ॥ ७ ॥ हे मरुतो ! तुम बल से सुशोभित हो । तुम क्रोधयुक्त मन वाले हो । तुम्हारा वेग स्तोता के समान शब्द करने वाला है ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! अपने जीर्ण आयुधों को हमारे पास से दूर करो । हम तुम्हारी क्रूरता के लक्ष्य न बनें ॥ ९ ॥ हे प्रियकर्मा मरुतो ! हम तुम्हारा नामोच्चार करते हैं । तुम इससे संतुष्ट होते हो ॥ १० ॥ [२२]

स्वायुधास इष्मिणः सुनिष्का उत स्वयं तन्वः शुम्भमानाः ॥११
शुची वो हव्या मरुतः शुचीनां शुचिं हिनोम्यध्वरं शुचिभ्यः ।
ऋतेन सत्यमृतसाप आयञ्छुचिजन्मानः शुचयः पावकाः
अंसेष्वा मरुतः खादयो वो वक्षःसु रुक्मा उपशिश्रियाणाः ।
वि विद्युतो न वृष्टिभी रुचाना अनु स्वधामायुधैर्यच्छमानाः ॥१३
प्र बुध्न्या व ईरते महांसि प्र नामानि प्रयज्यवस्तिरध्वम् ।

सहस्त्रियं दम्यं भागमेतं गृहमेधीयं मरुतो जुषध्वम् ॥१४
यदि स्तुतस्य मरुतो अधीथेत्था विप्रस्य वाजिनो हवीमन् ।
मक्षू रायः सुवीर्यस्य दात नू चिद्यमन्य आदभदरावा ॥१५ ।२४

श्रेष्ठ आयुध वाले मरुद्गण सुशोभित हैं। वे हमें अलङ्कारों से सजाते हैं ॥ ११ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे लिए यह हव्य है। तुम पवित्र हो, हम भी यह पवित्र यज्ञ कर रहे हैं। तुम सत्य से सत्य को प्राप्त हुए हो। तुम शुद्ध जन्म वाले हो तथा अन्यों को भी शुद्ध करते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारे स्कन्धों पर खादि नामक अलंकार और हृदय पर श्रेष्ठ रुक्म (हार) स्थित है। वर्षा से विद्युत की जैसे शोभा होती है, वैसे ही तुम जल-प्रदान करते हुए शोभा पाते हो ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारा उग्र तेज गमनशील है। तुम यज्ञ के योग्य हो। जल की वृद्धि करो। तुम इस यज्ञ में दिये गए भाग को ग्रहण करो ॥१४॥ हे मरुद्गण ! तुम हवि सम्पन्न स्तुतियों के ज्ञाता हो। हमें पुत्र युक्त धन प्रदान करो। तुम्हारे उस धन को शत्रु नष्ट नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ [२४]

अत्यासो न ये मरुतः स्वञ्चो यक्षदृशो न शुभयन्त मर्याः ।
ते हर्म्येष्ठाः शिशवो न शुभ्रा वत्सासो न प्रक्रीळिनः पयोधाः ॥१६
दशस्यन्तो नो मरुतो मृळन्तु वरिवस्यन्तो रोदसी सुमेके ।
आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु सुम्नेभिरस्मे वसवो नमध्वम् ॥१७
आ वो होता जोहवीति सत्तः सत्राचीं रातिं मरुतो गृणानः ।
य ईवतो वृषणो अस्ति गोपाः सो अद्वयावी हवते व उक्थैः । १८
इमे तुरं मरुतो रामयन्तीमे सहः सहस आ नमन्ति ।
इमे शंसं वनुष्यतो नि पान्ति गुरु द्वेषो अररुषे दधन्ति ॥१९
इमे रध्रं चिन्मरुतो जुनन्ति भृमिं चिद्यथा वसवो जुषन्त ।
अप बाधध्वं वृषणस्तमांसि धत्त विश्वं तनयं तोकमस्मे ॥२० ।२५

मरुद्गण अश्व के समान सदा गमनशील हैं वे मनुष्यों और शिशुओं के समान सुन्दर हैं। वे खेलने वाले बालक के समान जल को धारण करते

॥ १६ ॥ मरुद्गण अपनी महिमा से [illegible] करें। वे [illegible] के लिए मङ्गलकारक हों। हे मरुद्गण! शत्रुओं को नष्ट करने वाले तुम्हारे आयुध हम से दूर रहें। तुम [illegible] सुखकर [illegible] ॥ १७ ॥ हे मरुतो! होता तुम्हें [illegible] है। [illegible] विरक्त होकर तुम्हारी स्तुति [illegible] है। [illegible] अनुसार सुखी करते हैं। [illegible] करते और [illegible] की रक्षा करते हैं, जो [illegible] उनका अनिष्ट करने वाले हैं ॥ १८ ॥ धनिक और निर्धन दोनों [illegible] हैं। हे मरुतो! [illegible] का हमें पुत्र पौत्रादि दो ॥ २० ॥ [२४]

मा वो दात्रान्मरुतो निरराम मा पश्चाद्दघ्म रथ्यो विभागे।
आ नः स्पार्हे भजतना वसव्ये यदीं सुजातं वृषणो वो अस्ति ॥२१
सं यद्धनन्त मन्युभिर्जनासः शूरा यह्वीष्वोषधीषु विक्षु।
अध स्मा नो मरुतो रुद्रियासस्त्रातारो भूत पृतनास्वर्यः ॥२२
भूरि चक्र मरुतः पित्र्याण्युक्थानि या वः शस्यन्ते पुरा चित्।
मरुद्भिरुग्रः पृतनासु साळ्हा मरुद्भिरित्सनिता वाजमर्वा ॥२३
अस्मे वीरो मरुतः शुष्म्यस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता।
अपो येन सुक्षितये तरेमाध स्वमोको अभि वः स्याम ॥२४
तन्न इन्द्रो वरुणो मित्रो अग्निराप ओषधीर्वनिनो जुषन्त।
शर्मन्त्स्याम मरुतामुपस्थे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥२५ ॥२६

हम तुम्हारे दान-दृष्टि से न बचें। हमें धन-दान से विमुख मत करना। तुम अपने धन का श्रेष्ठ भाग हमें दो ॥ २१ ॥ हे मरुद्गण! जब [illegible] पुरुष क्रोध करके संग्राम के लिए तत्पर होते हैं। तब तुम शत्रु से [illegible] ॥ २२ ॥ हे मरुद्गण! हमारे पूर्व पुरुषों के हित के [illegible] किये थे। पूर्व प्रशंसित सभी कर्म तुम्हारे द्वारा हुए हैं। तुम्हारी [illegible] से ही संग्राम में शत्रुओं को हराया जाता है और तुम्हारी [illegible] अन्न का उपभोग करता है ॥ २३ ॥ हे [illegible]

वह शत्रुओं को हराने वाला हो। उसकी रक्षा के लिए हम शत्रुओं का वध करेंगे और तुम्हारे आश्रय में रहेंगे ॥ २४ ॥ मित्रावरुण, इन्द्र, अग्नि, जल, औषधि, वृक्ष यह सब हमारे स्तोत्र को पावें। मरुद्गण के आश्रय में हम सुख से रहें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ २५ ॥ [२६]

५७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठ । देवता-मरुतः । छन्द-त्रिष्टुप्)

मध्वो वो नाम मारुतं यजत्राः प्र यज्ञेषु शवसा मदन्ति ।
ये रेजयन्ति रोदसी चिदुर्वी पिन्वन्त्युत्सं यदयासुरुग्राः ॥१
निचेतारो हि मरुतो गृणन्तं प्रणेतारो यजमानस्य मन्म ।
अस्माकमद्य विदथेषु बर्हिरा वीतये सदत पिप्रियाणाः ॥२
नैतावदन्ये मरुतो यथेमे भ्राजन्ते रुक्मैरायुधैस्तनूभिः ।
आ रोदसी विश्वपिशः पिशानाः समानमञ्ज्यञ्जते शुभे कम् ॥३
ऋधक्सा वो मरुतो दिद्युदस्तु यद्व आगः पुरुषता कराम ।
मा वस्तस्यामपि भूमा यजत्रा अस्मे वो अस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥४
कृते चिदत्र मरुतो रणन्तानवद्यासः शुचयः पावकाः ।
प्र णोऽवत सुमतिभिर्यजत्राः प्र वाजेभिस्तरत पुष्यसे नः ॥५
उत स्तुतासो मरुतो व्यन्तु विश्वेभिर्नामभिर्नरो हवींषि ।
ददात नो अमृतस्य प्रजायै जिगृत रायः सूनृता मघानि ॥६
आ स्तुतासो मरुतो विश्व ऊती अच्छा सूरीन्त्सर्वताता जिगात ।
ये नस्त्मना शतिनो वर्धयन्ति यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२७

हे मरुद्गण ! स्तोतागण तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। तुम आकाश-पृथिवी को कम्पित करते हो और मेघों से वृष्टि करते हुए सर्वत्र गमन करते हो ॥ १॥ मरुद्गण स्तोता की कामना करते हैं। वे यजमान की अभीष्ट सिद्धि करते हैं। हे मरुतो ! हमारे यज्ञ में बिछे हुए कुश पर प्रसन्नता पूर्वक बैठकर सोम-पान करो ॥ २ ॥ मरुद्गण के समान दानी अन्य कोई नहीं है। यह अलंकार आयुध तथा अपने तेज से सुशोभित हैं। यह आकाश-पृथिवी को तेज से पूर्ण

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥२९

हे देवताओ ! स्तोता को भय मुक्त करो । हे अग्नि, वरुण, मित्र, अर्यमा और मरुद्गण ! तुम जिस यजमान को श्रेष्ठ मार्ग पर चलाओ उसे सुखी करो ॥ १ ॥ हे देवगण ! तुम्हारी कृपा से जो यज्ञ करता है, शत्रु को मारता है, तुम्हें हव्य देता है, वह मनुष्य अपने आवास की वृद्धि करता है ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! सोम की अभिलाषा करके तुम हमारे यज्ञ में आओ और सोम पान करो ॥ ३ ॥ हे मरुतो ! तुम इच्छित फल देते हो । तुम्हारे रक्षा साधन हमारी रक्षा करते हैं । तुम्हारी अभिनव कृपा हमें प्राप्त हो । तुम शीघ्र यहाँ आओ ॥४ मरुद्गण ! तुम्हारा धन सुसंगत है । तुम हव्य सेवनार्थ आगमन करो । मैं हव्य देता हूँ, तुम और कहीं मत जाओ ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण ! हमारे कुश । तुम धन-दान के लिए यहाँ आओ और हर्षकारी सोम का पान ॥ (२९)

तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्त ॥ ७
दुर्हणायुस्तिररचित्तानि वसवो जिघांसति ।
स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८
त्रिर्मरुतजजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९
मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १०
: कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११
सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥३०

उदित कर आगमन करो । मरुद्गण मरुद्गण ! जो हमारे मन को नष्ट में बाँधने का यत्न करे ऐसे पापियों को ॥ हे शत्रु को संताप देने वाली ! यह

हे स्तोताओ ! मरुद्गण का पूजन करो । यह सब में मेधावी हैं । यह अपनी महिमा से आकाश पृथिवी को व्याप्त करते हैं ॥ १ ॥ हे मरुद्गण ! तुम रुद्र द्वारा उत्पन्न हुए हो । यह मरुद्गण प्रभावशाली हैं । हे मरुतो ! सूर्य दर्शक सब जगत तुम्हारे गमन वेग से भीत होता है ॥२॥ तुम हविदाता को अन्न प्रदान करो । हमारी स्तुतियों से प्रवृद्ध होओ । मरुद्गण के मार्ग का अवरोध कोई नहीं करता । वे हमें इच्छित ऐश्वर्य दें ॥ ३ ॥ हे मरुद्गण ! तुम्हारी कृपा से स्तोता सहस्रों धन से युक्त होता है । वह शत्रुओं को वश करने वाला और ऐश्वर्यवान् होता है । तुम्हारे द्वारा प्रदत्त धन वृद्धि को प्राप्त हो ॥४॥ मैं मरुद्गण का उपासक हूँ । वे हमारे सामने आवें । जिस अपराध पर से वे क्रोध करते हैं, उसे हम स्तुति द्वारा दूर करेंगे ॥ ५ ॥ इस सूक्त में वैभवयुक्त मरुतों की सुन्दर स्तुति की गई है । वे इस सूक्त को ग्रहण करें । हे मरुद्गण ! शत्रुओं को दूर ही पृथक् करो । तुम हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [२८]

५९ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–मरुतः, रुद्रः । छन्द–बृहती, पंक्तिः, अनुष्टुप् त्रिष्टुप्, गायत्री)

यं त्रायध्व इममिदं देवासो यं च नयथ ।
तस्मा अग्ने वरुण मित्रार्यमन्मरुतः शर्म यच्छत ॥ १
युष्माकं देवा अवसाहनि प्रिय ईजानस्तरति द्विषः ।
प्र स क्षयं तिरते वि महीरिषो यो वो वराय दशति ॥२
नहि वश्चरमं चन वसिष्ठः परिमंसते ।
अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिवत कामिनः ॥३
नहि व ऊतिः पृतनासु मर्धति यस्मा अराध्वं नरः ।
अभि व आवर्त्सुमतिर्नवीयसी तूयं यात पिपीषव. ॥ ४
ओ षु घृष्विराधसो यातनान्धांसि पीतये ।
इमा वो हव्या मरुतो ररे हि कं मोष्वन्यत्र गन्तन ॥ ५

आ च नो बर्हिः सदताविता च नः स्पार्हाणि दातवे वसु ।
अस्रेधन्तो मरुतः सोम्ये मधौ स्वाहेह मादयाध्वै ॥ ६ ॥२९

हे देवताओ ! स्तोता को भय मुक्त करो । हे अग्नि, वरुण, मित्र, अर्यमा और मरुद्गण ! तुम जिस यजमान को श्रेष्ठ मार्ग पर चलाओ उसे सुखी करो ॥ १ ॥ हे देवगण ! तुम्हारी कृपा से जो यज्ञ करता है, शत्रु को मारता है, तुम्हें हव्य देता है, वह मनुष्य अपने आवास की वृद्धि करता है ॥ २ ॥ हे मरुद्गण ! सोम की अभिलाषा करके तुम हमारे यज्ञ में आओ और सोम पान करो ॥ ३ ॥ हे मरुतो ! तुम इच्छित फल देते हो । तुम्हारे रक्षा साधन हमारी रक्षा करते हैं । तुम्हारी अभिनव कृपा हमें प्राप्त हो । तुम शीघ्र यहाँ आओ ॥४ हे मरुद्गण ! तुम्हारा धन सुसंगत है । तुम हव्य सेवनार्थ आगमन करो । मैं तुम्हें हव्य देता हूँ, तुम और कहीं मत जाओ ॥ ५ ॥ हे मरुद्गण ! हमारे कुश पर बैठो । तुम धन-दान के लिए यहाँ आओ और हर्षकारी सोम का पान करो ॥ ६ ॥ (२९)

सस्वश्चिद्धि तन्वः शुम्भमाना आ हंसासो नीलपृष्ठा अपप्तन् ।
विश्वं शर्धो अभितो मा नि षेद नरो न रण्वाः सवने मदन्त ॥ ७
यो नो मरुतो अभि दुर्हृणायुस्तिरश्चित्तानि वसवो जिघांसति ।
द्रुहः पाशान्प्रति स मुचीष्ट तपिष्ठेन हन्मना हन्तना तम् ॥ ८
सान्तपना इदं हविर्मरुतस्तज्जुजुष्टन । युष्माकोती रिशादसः ॥९
गृहमेधास आ गत मरुतो माप भूतन । युष्माकोती सुदानवः ॥ १०
इहेह वः स्वतवसः कवयः सूर्यत्वचः । यज्ञं मरुत आ वृणे ॥ ११
त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् ।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ॥ १२ ॥३०

हे मरुद्गण ! अपने शरीर को अलंकृत कर आगमन करो । मरुद्गण इस यज्ञ में विराजमान हों ॥ ७ ॥ हे मरुद्गण ! जो हमारे मन को नष्ट करना चाहे अथवा जो हमें वरुण-पाश में बाँधने का यत्न करे ऐसे पापियों को तुम अपने शस्त्र से मार डालो ॥ ८ ॥ हे शत्रु को संताप देने वाले ! —

तुम्हारा हव्य है। तुम शत्रुओं का भक्षण करने वाले हो। तुम हमारे हव्य को ग्रहण करो ॥ ६ ॥ हे मरुद्गण ! तुम सुन्दर दान वाले हो। तुम अपने रक्षा साधनों सहित आओ ॥ १० ॥ हे मरुद्गण ! तुम अपनी महिमा से बढ़ने वाले हो। मैं यज्ञ का आयोजन करता हूँ ॥ ११ ॥ हम सुरभित, पुष्टिवर्द्धक त्र्यम्बक का पूजन करते हैं। हे रुद्र ! हमें मृत्यु के पाश से छुड़ाओ और अमृत से दूर मत रखो ॥ १२ ॥ [३०]

६० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—सूर्यः, मित्रावरुणौ । छन्द—पंक्तिः, त्रिष्टुप्)

यदद्य सूर्य ब्रवोऽनागा उद्यन्मित्राय वरुणाय सत्यम् ।
वयं देवत्रादिते स्याम तव प्रियासो अर्यमन् गृणन्तः ॥ १
एष स्य मित्रावरुणा नृचक्षा उभे उदेति सूर्यो अभि ज्मन् ।
विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च गोपा ऋजु मर्तेषु वृजिना च पश्यन् ॥ ०
आयुक्त सप्त हरितः सधस्थाद्या ईं वहन्ति सूर्यं घृताचीः ।
धामानि मित्रावरुणा युवाकुः सं यो यूथेव जनिमानि चष्टे ॥ ३
उद्वां पृक्षासो मधुमन्तो अस्थुरा सूर्यो अरुहच्छुक्रमर्णः ।
यस्मा आदित्या अध्वनो रदन्ति मित्रो अर्यमा वरुणः सजोषाः ॥ ४
इमे चेतारो अनृतस्य भूरोर्मित्रो अर्यमा वरुणो हि सन्ति ।
इम ऋतस्य वावृधुर्दुरोणे शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः ॥ ५
इमे मित्रो वरुणो दूळभासोऽचेतसं चिच्चितयन्ति दक्षैः ।
अपि क्रतुं सुचेतसं वतन्तस्तिरश्चिदंहः सुपथा नयन्ति ॥ ६ ॥१

हे सूर्य ! अनुष्ठान के अवसर पर उदित होकर पाप से हमें छुड़ाओ। हे अदिति ! देवताओं में मित्रावरुण के हम प्रिय हों। हे अर्यमा, हम तुम्हारी स्तुति द्वारा तुम्हें प्रसन्न करें ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! आकाश पृथिवी को देखते हुए सूर्य उदय को प्राप्त होकर सब प्राणियों का पोषण करते हैं। वे मनुष्यों के पाप-पुन्य को भी देखते हैं ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! सूर्य ने अपने सात अश्वों को योजित किया। वे सूर्य को वहन करते हुए-जलप्रदान करते हैं।

सूर्य संसार के सब प्राणियों को देखते हुए तुम दोनों को भजते हैं ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण ! अन्न और पुराडाश आदि तुम्हारे निमित्त हैं। सूर्य अन्तरिक्ष पर चढ़ते हैं। मित्र, अर्यमा, वरुण आदि देवता सूर्य के लिए मार्ग देते हैं ॥ ४ ॥ मित्रावरुण और अर्यमा पाप-नाशक हैं। यह अदिति के पुत्र मङ्गल करने वाले हैं। यज्ञ स्थान में ये वृद्धि को प्राप्त होते हैं ॥ ५ ॥ मित्र, वरुण और आदित्य किसी के वश में नहीं पड़ते। यह अज्ञानी को ज्ञान देते हैं। यह दुष्कर्मों को नष्ट कर कर्मवान् पुरुष को सन्मार्ग पर चलाते हैं ॥ ६ ॥ [१]

इमे दिवो अनिमिषा पृथिव्याश्चिकित्वांसो अचेतसं नयन्ति ।
प्रव्राजे चिन्नद्यो गाधमस्ति पारं नो अस्य विष्पितस्य पर्षन् ॥७
यद् गोपावददितिः शर्म भद्रं मित्रो यच्छन्ति वरुणः सुदासे ।
तस्मिन्ना तोकं तनयं दधाना मा कर्म देवहेळनं तुरासः ॥८
अव वेदिं होत्राभिर्यजेत रिपः काश्चिद्वरुणध्रुतः सः ।
परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तूरुं सुदासे वृषणा उ लोकम् ॥९
सस्वश्चिद्धि समृतिस्त्वेष्येषामपीच्येन सहसा सहन्ते ।
युष्मद्भिया वृषणो रेजमाना दक्षस्य चिन्महिना मृळता नः ॥१०
यो ब्रह्मणे सुमतिमायजाते वाजस्य सातौ परमस्य रायः ।
सीक्षन्त मन्युं मघवानो अर्य उरु क्षयाय चक्रिरे सुधातु ॥११
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१२ ।२

यह आकाश और पृथिवी के सब ज्ञान-रहितों को कर्म में लगाते हैं। इनके बल से नदी के नीचे के भाग में भी भूतल होता है। वह हमें कर्मों पर लगावें ॥ ७ ॥ अर्यमा, मित्र और वरुण जो सुख हविदाता को प्रदान करते हैं, वही सुख प्राप्त करते हुए हम ऐसा कार्य न करें जिससे देवगण क्रोध करें ॥ ८ ॥ हमारा जो वैरी देवताओं की स्तुति नहीं करता, उसे वरुण नष्ट कर दें। अर्यमा हमें राक्षसों से बचावें। मित्रावरुण हमें श्रेष्ठ स्थान दें ॥ ९ ॥ यह मित्रादि देवता श्रेष्ठ संगति वाले हैं। यह वैरियों को डरा-

मित्रादि देवताओ ! हमारे विरोधी तुम्हारे भय से कम्पित होते हैं। तुम हमें अपनी कृपा से सुखी करो ॥ १० ॥ जो यजमान श्रेष्ठ धन-दान के लिए तुम्हारी स्तुति करता है, उसके स्तोत्र से प्रसन्न हुए देवता उसे सुन्दर घर देते हैं ॥ ११ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी स्तुति की गई, तुम हमारे दुःख दूर करो। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ १२ ॥ [२]

६१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता–मित्रावरुणौः छन्द—पंक्ति,ः त्रिष्टुप्)

उद्वां चक्षुर्वरुण सुप्रतीकं देवयोरेति सूर्यस्ततन्वान् ।
अभि यो विश्वा भुवनानि चष्टे स मन्युं मर्त्येष्वा चिकेत ॥१
प्र वां स मित्रावरुणावृतावा विप्रो मन्मानि दीर्घश्रुदियर्ति ।
यस्य ब्रह्माणि सुक्रतू अवाथ आ यत्क्रत्वा न शरदः पृणैथे ॥२
प्रोरोर्मित्रावरुणा पृथिव्याः प्र दिव ऋष्वाद् बृहतः सुदानू ।
स्पशो दधाथे ओषधीषु विक्ष्वृधग्यतो अ निमिषं रक्षमाणा ॥३
शंसा मित्रस्य वरुणस्य धाम शुष्मो रोदसी बद्बधे महित्वा ।
अयन्मासा अयज्वनामवीराः प्र यज्ञमन्मा वृजनं तिराते ॥४
अमूरा विश्वा वृषणाविमा वां न यासु चित्रं दद्दशे न यक्षम् ।
द्रुहः सचन्ते अनृता जनानां न वां निण्यान्यचिते अभूवन् ॥५
समु वां यज्ञं महयं नमोभिर्हुवे वां मित्रावरुणा सबाधः ।
प्र वां मन्मान्यृचसे नवानि कृतानि ब्रह्म जुजुषन्निमानि ॥६
इयं देव पुरोहितिर्युवभ्यां यज्ञेषु मित्रावरुणावकारि ।
विश्वानि दुर्गा पिपृतं तिरो नो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।३

हे मित्रावरुण ! तुम तेजस्वी हो। तुम्हारे नेत्र-रूप सूर्य तेज की वृद्धि करते हुए अन्तरिक्ष में चढ़ते और सब प्राणियों को देखते हैं। वे मनुष्यों में प्रवृत्त स्तोत्र के ज्ञाता हैं ॥ १ ॥ हे मित्रावरुण ! यज्ञकर्त्ता और वसिष्ठ तुम्हारे स्तोत्र को करते हैं। तुम श्रेष्ठ कर्मा हो, तुमने सदा वसिष्ठ के कर्मों को सुफल

किया है ॥ २ ॥ हे मित्रावरुण ! तुमने पृथिवी और आकाश की प्रदक्षिणा की है। तुम औषधियों और प्राणियों के लिए रूप धारण करते हो। श्रेष्ठ मार्ग पर चलने वालों के तुम रक्षक हो ॥ ३ ॥ हे ऋषि ! मित्रावरुण के तेज की स्तुति करो। इन्होंने आकाश पृथिवी को अपनी महिमा से पृथक-पृथक किया है। अयाज्ञिक पुत्र-हीन हों और यज्ञ वाले व्यक्ति पुत्रादि से सम्पन्न हों ॥४॥ हे मित्रावरुण ! तुम्हारी स्तुति में विशेषता कुछ भी नहीं है। विरोधी व्यक्ति व्यर्थ स्तुतियाँ ग्रहण करते हैं। तुम्हारी स्तुति अज्ञान प्राप्त कराने वाली न हो ॥ ५ ॥ हे मित्रावरुण ! मैं इस यज्ञ में नमस्कार सहित तुम्हारी पूजा करता हूँ। मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम्हारे लिए नवीन स्तोत्र रचे जाते जाते हैं। मेरे द्वारा एकत्रित स्तोत्र तुम्हें आनंदित करें ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! इस यज्ञ में तुम्हारी स्तुति की गई है। तुम हमें विपत्तियों से पार करो और सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [३]

६२ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-सूर्य, मित्रावरुणौ । छन्द-त्रिष्टुप्,)

उत्सूर्यो बृहदर्चीष्यश्रेत्पुरु विश्वा जनिम मानुषाणाम् ।
समो दिवा ददृशे रोचमानः क्रत्वा कृतः सुकृतः कर्तृभिर्भूत् ॥१
स सूर्य प्रति पुरो न उद्गा एभिः स्तोमेभिरेतशेभिरेवैः ।
प्र नो मित्राय वरुणाय वोचोऽनागसो अर्यम्णे अग्नये च ॥२
वि नः सहस्रं शुरुधो रदन्त्वृतावानो वरुणो मित्रो अग्निः ।
यच्छन्तु चन्द्रा उपमं नो अर्कमा नः कामं पूपुरन्तु स्तवानाः ॥३
द्यावाभूमी अदिते त्रासीथां नो ये वां जज्ञुः सुजनिमान ऋष्वे ।
मा हेळे भूम वरुणस्य वायोर्मा मित्रस्य प्रियतमस्य नृणाम् ॥४
प्र बाहवा सिसृतं जीवसे न आ नो गव्यूतिमुक्षतं घृतेन ।
आ नो जने श्रवयतं युवाना श्रुतं मे मित्रावरुणा हवेमा ॥५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।४

सूर्य अत्यन्त तेजस्वी हों । वे मनुष्यों के प्रिय हों । वे दिन में अत्यन्त प्रकाश वाले होते हैं । वे सब के उत्पत्तिकर्त्ता और प्रजापति के तेज से तेजस्वी हैं ॥१॥ हे सूर्य तुम गमनशील अश्वों द्वारा स्तोताओं के सम्मुख होओ । मित्र, वरुण, अर्यमा, अग्नि के समक्ष तुम हमारे निर्दोष होने की बात कहना ॥ २ ॥ वरुण, मित्र और अग्नि हमें सहस्रों धन प्रदान करें । वे प्रसन्नता देने वाले हों । वे हमें वरणीय धन दें । हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर वे हमारी कामना सिद्ध करें ॥ ३ ॥ हे आकाश पृथिवी और अदिति ! तुम हमारी रक्षा करो । हम श्रेष्ठ जन्म वाले हैं । हम वरुण, वायु और मित्र के कोपभाजन न हों ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण ! अपनी भुजाऐं फैलाओ । हमारे भूभाग को जल से सींचो । तुम हमें यशस्वी करो । हमारे आह्वान को सुनो ॥ ५ ॥ हे मित्र, वरुण और अर्यमा ! तुम हमारे पुत्र को धनवान करो । हमारे सब मार्ग सरल हों । तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ६ ॥ (४)

६३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—सूर्यः, मित्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

उद्वेति सुभगो विश्वचक्षाः साधारणः सूर्यो मानुषाणाम् ।
चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्य देवश्चर्मेव यः समविव्यक्तमांसि ॥१
उद्वेति प्रसवीता जनानां महान् केतुरर्णवः सूर्यस्य ।
समानं चक्रं पर्याविवृत्सन्यदेतशो वहति धूर्षु युक्तः ॥२
विभ्राजमान उषसामुपस्थाद्रेभैरुदेत्यनुमद्यमानः ।
एषः मे देवः सविता चच्छन्द यः समानं न प्रमिनाति धाम ॥३
दिवो रुक्म उरुचक्षा उदेति दूरेअर्थस्तरणिर्भ्राजमानः ।
नूनं जनाः सूर्येण प्रसूता अयन्नर्थानि कृणवन्नपांसि ॥४
यत्रा चक्रुरमृता गातुमस्मै श्येनो न दीयन्नन्वेति पाथः ।
प्रीत वां सूर उदिते विधेम नमोभिर्मित्रावरुणोत हव्यैः ॥५
नू मित्रो वरुणो अर्यमा नस्त्मने तोकाय वरिवो दधन्तु ।
सुगा नो विश्वा सुपथानि सन्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥५

मित्रावरुण के नेत्र-रूप सूर्य उदित हो रहे हैं। यह अन्धकार को ढक देते हैं॥ १॥ यह सूर्य मनुष्यों के उत्पन्नकर्त्ता, सब के प्रेरक और बलदाता हैं। हरे रङ्ग के अश्व इनका वहन करते हैं॥ २॥ स्तोताओं की स्तुतियों को सुनते हुए यह सूर्य उषाओं के मध्य उदित होते हैं। यह इच्छित पदार्थ के देने वाले हैं। यह अपने तेज को न्यून नहीं करते॥ ३॥ यह तेजस्वी सूर्य अंतरिक्ष में उदय को प्राप्त होते हैं। प्राणी इन्हीं सूर्य से प्रकट होकर कर्म में लगते हैं॥ ४॥ देवताओं ने सूर्य का गमन-मार्ग बनाया। वह मार्ग अन्तरिक्ष के साथ जाता है। हे मित्रावरुण! सूर्योदय काल में, नमस्कार युक्त हवि देकर हम तुम्हारा यज्ञ करेंगे॥ ५॥ मित्रावरुण और अर्यमा हमारे पुत्र को धन प्रदान करें। हमारे मार्ग सरल हों। तुम सदा हमारा पालन करते रहो॥ ६॥ (५)

६४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—मित्रावरुणौः । छन्द—त्रिष्टुप्)

दिवि क्षयन्ता रजसः पृथिव्यां प्र वां घृतस्य निर्णिजो ददीरन् ।
हव्यं नो मित्रो अर्यमा सुजातो राजा सुक्षत्रो वरुणो जुषन्त ॥१
आ राजाना मह ऋतस्य गोपा सिन्धुपती क्षत्रिया यातमर्वाक् ।
इळां नो मित्रावरुणोत वृष्टिमव दिव इन्वतं जीरदानू ॥२
मित्रस्तन्नो वरुणो देवो अर्यः प्र साधिष्ठेभिः पथिभिर्नयन्तु ।
ब्रवद्यथा न आदरिः सुदास इषा मदेम सह देवगोपाः ॥३
यो वां गर्तं मनसा तक्षदेतमूर्ध्वां धीतिं कृणवद्धारयच्च ।
उक्षेथां मित्रावरुणा घृतेन ता राजाना सुक्षितीस्तर्पयेथाम् ॥४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।६

हे मित्रावरुण! तुम पार्थिव और दिव्य जलों के स्वामी हो। मेघ तुम्हारी प्रेरणा से ही जल को रचता है। मित्र, अर्यमा और वरुण हमारे हव्य को ग्रहण करें॥ १॥ तुम यज्ञ की रक्षा करने वाले, नदी के स्वामी, वीरकर्मा

हो। हे वेगवान् मित्रावरुण! तुम अन्तरिक्ष से अन्न रूप वृष्टि का प्रेषण करो ॥ २ ॥ मित्र, वरुण, अर्यमा हमें श्रेष्ठ मार्ग पर गमन करावें। अर्यमा, दाता को उपदेश दें। तुम्हारी रक्षा में रह कर हम पुत्रादि के साथ आनन्द उपभोग करें ॥ ३ ॥ हे मित्रावरुण! जिसने मानसिक रथ की तुम्हारे लिए रचना की, जो श्रेष्ठ कर्म वाला तुम्हारे यज्ञ का धारक है, तुम उसे जल से सींचो और श्रेष्ठ आवास देकर संतुष्ट करो ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण! तुम्हारे और वायु के लिए यह सोम अभिषुत हुआ है। तुम हमारे कर्म में आकर हमारे स्तोत्र को सुनो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [६]

६५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—मित्रावरुणौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रति वां सूर उदिते सूक्तैर्मित्रं हुवे वरुणं पूतदक्षम्।
ययोरसुर्यं मक्षितं ज्येष्ठं विश्वस्य यामन्नाचिता जिगत्नु ॥१
ता हि देवानामसुरा तावर्या ता नः क्षितीः करतमूर्जयन्तीः।
अश्याम मित्रावरुणा वयं वां द्यावा च यत्र पीपयन्नहा च ॥२
ता भूरिपाशावनृतस्य सेतू दुरत्येतू रिपवे मर्त्याय।
ऋतस्य मित्रावरुणा पथा वामपो न नावा दुरिता तरेम ॥३
आ नो मित्रावरुणा हव्यजुष्टिं घृतैर्गव्यूतिमुक्षतमिळाभिः।
प्रति वामत्र वरमा जनाय पृणीतमुद्नो दिव्यस्य चारोः ॥४
एष स्तोमो वरुण मित्र तुभ्यं सोमः शुक्रो न वायवेऽयामि।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ॥७

हे मित्रावरुण! सूर्योदय काल में मैं तुम्हें आहूत करता हूँ। तुम महान् यत्न वाले रणभूमि में सदा जीतते हो ॥ १ ॥ वे दोनों अत्यन्त बली हैं। वे हमारी प्रजा-वृद्धि करें। हे मित्रावरुण! हम तुम दोनों की सेवा करेंगे। आकाश-पृथिवी तुम्हारी महिमा से हमें पूर्ण करेंगी ॥ २ ॥ मित्रावरुण के पास सुदृढ़ पाश हैं। वे यज्ञ रहित मनुष्य को बंधन में डालते हैं। शत्रुओं के लिए वे विकराल कर्म वाले हैं। हे मित्रावरुण। जैसे नौका जल से पार करती है वैसे ही हम तुम्हारे यज्ञ रूप नौका द्वारा पार होंगे ॥ ३ ॥

मित्रावरुण हमारे हव्य-भक्षणार्थ आगमन करें। वे हमारी गोचर भूमि को जल से सींचें। मित्रावरुण! हमारे सिवाय अन्य कौन तुम्हें श्रेष्ठ हव्य प्रदान करेगा? तुम श्रेष्ठ जल की वृष्टि करो ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण तुम्हारे और वायु के लिए सोमाभिषव किया है। तुम हमारे यज्ञ में आकर स्तोत्र सुनो और सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [७]

६६ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः। देवता–मित्रावरुण, आदित्यः, सूर्यः। छन्द–गायत्री, बृहती, उष्णिक्)

प्र मित्रयोर्वरुणयोः स्तोमो न एतु शूष्यः। नमस्वान्तुविजातयोः ॥१
या धारयन्त देवाः सुदक्षा दक्षपितरा। असुर्याय प्रमहसा ॥२
ता नः स्तिपा तनूपा वरुण जरितृणाम्। मित्र साधयतं धियः ॥३
यदद्य सूर उदितेऽनागा मित्रो अर्यमा। सुवाति सविता भगः ॥४
सुप्रावीरस्तु स क्षयः प्र नु यामन्त्सुदानवः।
ये नो अंहोऽतिपिप्रति ॥५ ॥८

मित्रावरुण बारम्बार प्रकट होते हैं। उनकी स्तुति उन्हें प्राप्त हो ॥१॥ मित्रावरुण श्रेष्ठ बल से और तेज से युक्त हैं। इन्हें देवताओं ने बल के निमित्त धारण किया ॥ २ ॥ मित्रावरुण घर और शरीर के रक्षक हैं। तुम दोनों, स्तोता के कर्म को बलयुक्त करो ॥ ३ ॥ सूर्योदय काल में मित्र, भग, अर्यमा, सविता देव हमारे लिए धन भेजें ॥ ४ ॥ हे मित्रावरुण! तुम दानी हो, हमारे पाप नष्ट करो। तुम आओ तो हमारे घर की रक्षा हो ॥ ५ ॥ [८]

उत स्वराजो अदितिरदब्धस्य व्रतस्य ये। महो राजान ईशते ॥६
प्रति वां सूर उदिते मित्रं गृणीषे वरुणम्। अर्यमणं रिशादसम् ॥७
राया हिरण्यया मतिरियमवृकाय शवसे। इयं विप्रा मेधसातये ॥८
ते स्याम देव वरुण ते मित्र सूरिभिः सह। इषं स्वश्च धीमहि ॥९
बहवः सूरचक्षसोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
त्रीणि ये येमुर्विदथानि धीतिभिर्विश्वानि परिभूतिभिः ॥१०॥९

मित्रादि देवता कर्मों के पालक हैं। वे श्रेष्ठ धनों के स्वामी हैं॥ ६ ॥ सूर्योदयकाल में, मैं मित्रावरुण और अर्यमा की स्तुति करूँगा ॥७॥ यह स्तुति हमें हिंसित होने से बचाने वाला बल प्राप्त करावे ॥ ८ ॥ हे मित्रावरुण ! हम ऋत्विजों के साथ तुम्हारी स्तुति करेंगे और अन्न जल पावेंगे ॥ ९ ॥ यह देवता सूर्य के समान तेजस्वी और यज्ञ के बढ़ाने वाले हैं, वे कर्मों के द्वारा व्याप्त करने वाले और स्थानों के दाता हैं ॥ १० ॥ [९]

वि ये दधुः शरदं मासमादहर्यज्ञमक्तुं चादृचम् ।
अनाप्यं वरुणो मित्रो अर्यमा क्षत्रं राजान आशत ॥११

तद्वो अद्य मनामहे सूक्तैःसूर उदिते ।
यदोहते वरुणो मित्रो अर्यमा यूयमृतस्य रथ्यः ॥१२
ऋतावान ऋतजाया ऋतावृधो घोरासो अनृतद्विषः ।
तेषां वः सुम्ने सुच्छर्दिष्टमे नरः स्याम ये च सूरयः ॥१३
उदु त्यद्दर्शतं वपुर्दिव एति प्रतिह्वरे ।
यदीमाशुर्वहति देव एतशो विश्वस्मै चक्षसे अरम् ॥१४
[illegible]ः शीर्ष्णो जगतस्तस्थुषस्पतिं समया विश्वमा रजः ।
[illegible] स्वसारः सुविताय सूर्यं वहन्ति हरितो रथे ॥१५ ।१०

वर्ष, मास, दिवस, रात्रि, यज्ञ और मन्त्र को जिन्होंने बनाया, वे मित्र, वरुण और अर्यमा श्रेष्ठ बल प्राप्त कर चुके हैं ॥ ११ ॥ आज सूर्योदय काल में हम तुमसे धन माँगेंगे। उस धन को मित्र, वरुण, अर्यमा धारण करते हैं ॥ १२ ॥ तुम यज्ञादि श्रेष्ठ कर्मों के लिए उत्पन्न हुए हो और यज्ञ-विमुख मनुष्यों से वैर करते हो। तुम्हारे कल्याणकारी धन को अन्य ऋत्विज् और हम भी प्राप्त करेंगे ॥ १३ ॥ अन्तरिक्ष के निकट यह मङ्गलकारी मण्डल प्रकट होता है। सबके दर्शन के लिए हरित अश्व उसे धारण करते हैं ॥ १४ ॥ सब के शीर्ष रूप, सबके स्वामी, रथी सूर्य को उनके सात घोड़े विश्व कल्याण के लिए वहन करते हैं ॥ १५ ॥ [१०]

तच्चक्षुर्देवहितं शुक्रमुच्चरत् ।

पश्येम शरदः शत जीवेम शरदः शतम् ॥१६
काव्येभिरदाभ्या यातं वरुण द्युमत् । मित्रश्च सोमपीतये ॥१७
दिवो धामभिर्वरुण मित्रश्चा यातमद्रुहा । पिबतं सोममातुजी ॥१८
आ यातं मित्रावरुणा जुषाणावाहुतिं नरा ।
पातं सोममृतावृधा ॥१९ ।११

यह प्रकाशयुक्त श्रेष्ठ सूर्य मण्डल प्रकट होता है । हम उसके सौ वर्ष तक दर्शन करते रहें ॥ १६ ॥ हे वरुण ! तुम और मित्र तेजस्वी हो । तुम हमारे स्तोता के पास आकर सोम-पान करो ॥१७॥ हे मित्रावरुण ! तुम द्वेष-हीन हो । तुम आकाश से आकर शत्रुओं का वध करने के लिए सोम-पान करो ॥ १८ ॥ मित्रावरुण यज्ञ का नेतृत्व करने वाले हैं । तुम आहुतियों की ओर आओ और सोम-पान करो ॥ १९ ॥ (११)

६७ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-अश्विनौ । छन्द-त्रिष्टुप्)

प्रति वां रथं नृपती जरध्यै हविष्मता मनसा यज्ञियेन ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा सूनुर्न पितरा विवक्मि ॥१
अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदृश्रन्तमसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुषसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥२
अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या विवक्वान् ।
पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता रथेन ॥३
अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद्वां सुते माध्वी वसूयुः ।
आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो अस्मे सुषुता मधूनि ॥४
प्राचीमु देवाश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरन्धीस्ता नः शक्तं शचीपती
शचीभिः ॥५ ।१२

हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारे रथ की स्तुति करते हैं। पुत्र जैसे पिता को जगाता है, वैसे ही यह रथ सबको चैतन्य करता है। मैं उसी रथ का आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ अग्नि हमारे लिए दीप्ति को धारण करते हैं। तब अँधेरे के सब भूभाग दिखाई देते हैं। सूर्य उषा की पूर्व दिशा में उत्पन्न होकर उठते हैं ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारी सेवा करते हैं। तुम पूर्व से रथारूढ़ होकर हमारे अभिमुख होओ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! मैं धन की कामना वाला स्तोता सोमाभिषव होने पर तुम्हारी स्तुति करता हूँ। तुम्हारे अश्व तुम्हें यहाँ लावें। तुम हमारे सोम का पान करो ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! धन की अभिलाषा करने वाली हमारी बुद्धि को तुम तीक्ष्ण करो। रणभूमि में भी हमारी बुद्धि की रक्षा करो। तुम कर्म द्वारा हमें धन दो ॥ ५ ॥ (१२)

अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥६
एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु ॥७
एकस्मिन्योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् ।
न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥८
असश्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
प्र ये बन्धुं सूनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या मघानि ॥९
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० ॥१३

हे अश्विद्वय ! हमारे रक्षक होओ। हम पुत्रोत्पत्ति में समर्थ हों। हम श्रेष्ठ धन वाले, पुत्र-पौत्रादि को धन देकर देवताओं के यज्ञ में उपस्थित हों ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे द्वारा अभिषुत यह सोम निधि रूप में प्रस्तुत है, तुम क्रोध-रहित भाव से हमारे अभिमुख होओ और हव्य भक्षण करो ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा रथ सातों नदियों को पार करता हुआ आता है। तुम्हारे श्रेष्ठ जन्म वाले अश्व तुम्हारा वहन करने में कभी थकते

नहीं ॥८॥ हे अश्विद्वय ! तुम निर्लेप हो। जो हविर्दान करता है, जो सत्यों की यथार्थ वचन द्वारा वृद्धि करता है और गवादि युक्त धन देता है, ऐसे श्रेष्ठ कर्म वालों के तुम हितैषी हो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय! तुम हमारा आह्वान सुनकर आगे आओ और रत्नादि धन दो। स्तोता की वृद्धि करो और सदा हमारा पालन करो ॥ १० ॥ (१३)

६८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता-अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः।
हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१

प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे।
तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२

प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३

अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद्युवभ्याम्।
आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४

चित्रं ह यद्वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं युयोतम्।
यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५ ।१४

हे अश्विद्वय ! तुम शत्रु का वध करने वाले हो। तुम आकर स्तुति सुनो। हमारे हव्य का सेवन करो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! यह सोम प्रस्तुत है। हव्य-सेवनार्थ आओ। तुम हमारे शत्रु के आह्वान पर न जाकर हमारे आह्वान को सुनो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सूर्या के रथ पर आरूढ होते हो। हमारी प्रार्थना पर तुम्हारा रथ सब लोकों को छोड़ कर यज्ञ में आता है ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! जब मैं यज्ञ में तुम्हें देवता मानता हुआ सोमाभिषव करता हूँ, तब यह प्रस्तर घोर शब्द करता है और मेधावी स्तोता तुम्हारे लिए हव्य देता है ॥ ४ ॥ तुम अपने धन को हमें दो। जो अत्रि सुख से सुखी हैं, उनसे महिष्वद् को पृथक करो ॥ ५ ॥

उत त्यद्वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं हविर्दे ।
अधि यद्वर्प इतऊति धत्थः ॥६
उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दु रेवासः समुद्रे ।
निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७
वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावध्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥८
एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६।१५

हे अश्विद्वय ! हवि देने वाले वृद्ध च्यवन ऋषि को रूप तुमने लाकर दिया, उससे ये युवा हो गए ॥ ६ ॥ दुष्टों ने भुज्यु को समुद्र में छोड़ दिया, तब तुम्हींने उन्हें पार लगाया । भुज्यु ने कभी कोई निन्द्यकर्म नहीं किया, वह सदा तुम्हारी सेवा करता रहा ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वयं ! क्षीण होते वृक ऋषि को तुमने धन दिया । शयु ऋषि को पुकार तुमने सुनी । जैसे नदी खेतों को जल से भरती है, वैसे ही वृद्धा गौ को तुमने जल से परिपूर्ण किया ॥ ८ ॥ सुन्दर मति वाला स्तोता (वसिष्ठ) उषा से पूर्व जाग्रत होकर स्तुति करता है । उसे अन्न, दुग्ध आदि द्वारा प्रवृद्ध करो । उसकी गौ को पुष्ट करो । तुम सदा हमारा पालन करते रहो ॥ ६ ॥ (१५)

६९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः ।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥१
स पप्रथानो अभि पञ्च भूमा त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चिद्याममश्विना दधाना ॥२
स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दस्रा निधिं मधुमन्तं पिबाथः ।
वि वां रथो वध्वा यादमानोऽन्तान्दिवो बाधते वर्तनिभ्याम् ॥३
युवोः श्रियं परि योषावृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम् ।

यद्देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो गात् ॥४
यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः ।
तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५
नरा गौरेव विद्युतं तृषाणास्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥६
युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्निधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥७
नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरीन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।१६

तुम्हारा अश्वयुक्त रथ आगमन करे । वह सुवर्णिम रथ आकाश पृथिवी, को व्याप्त करता है । उसका चक्र जलमय है । वह चक्र, डंडों द्वारा तेजस्वी अन्नवहन करने वाला और यजमानों का अधीश्वर है ॥ १ ॥ वह रथ सब जीवों को प्रकट करने वाला तीन बन्धुरों और स्तोत्रों वाला है । हे अश्विद्वय ! तुम इच्छा होने पर इसके द्वारा सर्वत्र गमन करते हो । इस देव-काम्य यज्ञ में भी आगमन करो ॥ २ ॥ तुम अपने अश्व और अन्न के सहित आओ । तुम यहाँ सोमपान करो । सूर्या सहित गमन करता हुआ तुम्हारा रथ आकाश तक गमन करता हुआ सब स्थानों को व्याप्त करता है ॥ ३ ॥ सूर्य पुत्री तुम्हारे रथ को प्रेरती है । जब तुम यजमान की रक्षा करते हो, तब तेजस्वी अन्न तुम्हारी ओर गमन करता है ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! अश्वयुक्त तुम्हारा रथ सब तेजों को ढकता है । उषाकाल में उस रथ द्वारा हमारे यज्ञ में कल्याण के लिए आगमन करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! आज हमारे सवनों में सोमपानार्थ आगमन करो । यजमान तुम्हारा आह्वान करते हैं । देवताओं की कामना करने वाले अन्य व्यक्ति तुम्हें हवि न देने पावें ॥ ६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने जल निमग्न भुज्यु को अपने शीघ्रगामी अश्वों की सहायता से निकालकर पार किया ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे स्तोत्र को सुनो । हमारे घर में आकर रत्न आदि धन दो । स्तोता की वृद्धि करो । हमारा सदा पालन करो ॥८॥

७० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—अश्विनौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

आ विश्ववाराश्विना गतं नः प्र तत्स्थानमवाचि वां पृथिव्याम् ।
अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्सेदथुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१
सिषक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठातापि घर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्त्सरितः पिपर्त्येतग्वा चिन्न सुयुजा युजानः ॥२
यानि स्थानान्यश्विना दधाथे दिवो यह्वीष्वोषधीषु विक्षु ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषं जनाय दाशुषे वहन्ता ॥३
चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ॥ ४
शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा ॥५
यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान् कृतब्रह्मा समर्यो भवाति ।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम् ॥६
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१७

हे अश्विद्वय ! हमारे यज्ञ में आओ । पृथिवी पर तुम्हारा यही आश्रय स्थान है । तुम जिस अश्व पर चढ़ो वह तुम्हारे पास ही रहे ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तुति तुम्हारी प्रशंसा करती है । मनुष्यों के यज्ञ मण्डप में घर्म तप रहा है, वह घर्म नदियों और समुद्रों को वृष्टि जल से पूर्ण करता है । जैसे अश्वों को रथ में योजित किया जाता हैं, वैसे ही तुम यज्ञ में योजित किये जाते हो ॥२॥ हे अश्विद्वय ! तुम स्वर्ग से आकर औषधियों और प्राणियों में में जिस स्थान पर बैठते हो, वही स्थान अन्न देने वाले यजमान को प्राप्त कराओ ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम ऋषि प्रदत्त औषधि और जल को वश में करते हो । हमारी औषधि और जल की भी इच्छा करो । तुमने पूर्वकालीन यजमानों को भी रत्नादि देकर अपनाया था ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने अनेक

ऋषि-कर्मों को प्रकट किया है। तुम यजमान के यज्ञ में आगमन करो। तुम हम पर अन्न वाली अनुग्रह दृष्टि करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! कृतस्तोत्र, हव्य युक्त और वरणीय वसिष्ठ को ओर गमन करो। यह स्तुति तुम्हारी ही है ॥६॥ हे अश्विद्वय ! यह स्तोत्र तुम्हारे लिए हुआ है। तुम इस स्तुति से प्रसन्न होओ। यह सभी कर्म तुम से मिलें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥७॥ (१७)

७१ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

अप स्वसुरुषसो नग्जिहीते रिणक्ति कृष्णीररुषाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वां हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्युयोतम् ॥१
उपायातं दाशुषे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवा नक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥२
आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥३
यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा ।
आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४
युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५
इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१८

रात्रि अपनी बहिन उषा के आगमन के साथ ही चली जाती है। काली रात्रि सूर्य को मार्ग देती है। हे अश्विद्वय ! हम तुम्हारा आह्वान करते हैं, तुम दिन में और रात्रि में भी हिंसक शत्रुओं को दूर रखो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम हवि देने वाले के लिए श्रेष्ठ पदार्थ लेकर आओ। हमसे रोग और दारिद्र्य को दूर करो। तुम हमारी दिन-रात्रि रक्षा करो ॥ २ ॥ तुम्हारे रथ में योजित अश्व तुम्हें यहाँ लावें। तुम अपने धन से लदे रथ को अश्वों द्वारा वहन कराओ ॥३॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हें वहन करने वाला।

वाला है। वह व्यापक रूप से दिवस की ओर बढ़ता है। तुम उसी रथ द्वारा आगमन करो ॥ ४ ॥ तुमने च्यवन ऋषि की वृद्धावस्था दूर की, रणक्षेत्र में पेदु राजा के लिए द्रुतगामी अश्व प्रेषित किया, अत्रि को अँधेरे से निकाला और पदच्युत जाहुष को उसका राज्य दिलाया ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय! यह स्तुति तुम्हारी ही है। तुम इससे प्रसन्न होओ। यह सब कर्म तुम में मिलें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [१८]

७२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्)

आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना ॥१
आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसः नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य वित्तम् ॥२
उदु स्तोमासो अश्विनोरबुध्रञ्जामि ब्रह्माण्युषसश्च देवीः ।
आविवासन्रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नासत्या विवक्ति ॥३
वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते ।
ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५। १९

हे अश्विनीकुमारो! तुम गवादि धन से भरे रथ पर आगमन करो। अनेक स्तुतियाँ तुम्हारी कामना कर रही हैं। तुम श्रेष्ठ तेज से सुशोभित होओ ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय! तुम समान प्रीति वाले होकर रथारूढ़ हो हमारे पास आगमन करो। हमारे पूर्वजों से भी तुम्हारा बन्धुत्व स्थापित था। हमारे तुम्हारे एक ही पूर्वज, एक ही धन वाले थे ॥ २ ॥ यह स्तुतियाँ अश्विनीकुमारों को जगाती हैं। सब कर्म उषा का चैतन्य करते हैं। वसिष्ठ आकाश-पृथिवी की सेवा करते हुए अश्विद्वय की स्तुति करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय! उषाओं द्वारा अन्धकार हटाने पर स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करेंगे। सविता

देवता तेज के आश्रित होते हैं और अग्नि देवता भले प्रकार पूजा को प्राप्त करते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सब दिशाओं से आगमन करो। पाँचों वर्णों का कल्याण करने वाले धन के सहित आकर हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [१६]

७३ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः देवता-अश्विनौ। छन्द-त्रिष्टुप्)

अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः ।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजामर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१
न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च ।
अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥२
अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३
उप त्या वह्नी गमतो विशं नो रक्षोहणा सम्भृता वीळुपाणी ।
समन्धांस्यग्मत मत्सराणि मा नो मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥४
आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२०

हम देवताओं की कामना से स्तुति करते हुए अज्ञान को दूर करेंगे। हे अश्विद्वय ! स्तोता तुम्हारा आह्वान करता है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा प्रीतिपात्र उपासक यहाँ बैठा कर्म कर रहा है। तुम उसके मधुर सोम का पान करो। मैं हवियुक्त होकर तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हम स्तोता देव-याग की वृद्धि करते हैं। तुम इन स्तुतियों से प्रसन्न होओ। मैं वसिष्ठ तुम्हारे पास दूत के समान आकर स्तुति करता हूँ ॥ ३ ॥ अश्विद्वय दृढ़ अंग, दृढ़ भुज वाले और राक्षसों के संहारक हैं। वे हमारे पुत्रादि के सामने आवें। हे अश्विद्वय ! तुम इस हर्षदायक अन्न को ग्रहण करो। तुम कल्याण सहित आगमन करो। तुम हमें हिंसित मत करना ॥ ४ ॥ हे अश्विद्व

जिस दिशा में हो, वहीं से आओ। साथ में पाँचों वर्णों का कल्याण करने वाले धनों को लाओ और हमारा सदा पालन करो ॥ ५ ॥ [२०]

७४ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता—अश्विनौ। छन्द-बृहती,)

इमा उ वां दिविष्टय उस्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१
युवं चित्रं ददथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२
आ यातमुपभूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥३
अश्वासो ये वामुप दाशुषो गृहं युवां दीयन्ति बिभ्रतः ।
मक्षूयुभिर्नरा हयेभिरश्विना देवा यातमस्मयू ॥४
अधा ह यन्तो अश्विना पृक्षः सचन्त सूरयः ।
ता यंसतो मघवद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिरस्मभ्यं नासत्या ॥५
प्र ये ययुरवृकासो रथा इव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥६ ।२१

हे अश्विद्वय ! स्वर्ग की इच्छा करने वाले व्यक्ति तुम्हारा आह्वान करते हैं। मैं वसिष्ठ भी तुम्हें रक्षा के लिए आहूत करता हूँ। तुम सब के पास गमन करने वाले हो ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम जिस धन को धारण करते हो वह धन स्तोता को प्राप्त कराओ। तुम अपने रथ को यहाँ लाकर समान मन से सोम-पान करो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे पास आकर सोम-पान करो। तुम जल का दोहन करते हुए आओ। हमें हिंसित मत करना ॥ ३ ॥ हवि-दाता यजमान के यहाँ तुम्हारे जो अश्व जाते हैं, उनके द्वारा हमारे यहाँ आओ ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! स्तोतागण प्रभूत अन्न पाते हैं। तुम हमें स्थिर गृह और यश प्रदान करो। हम तुम्हारी कृपा से धन सम्पन्न हुए हैं ॥ ५ ॥

जो अन्य का धन न लेकर मनुष्यों में रक्षाकारी होते हुए तुम्हारे पास गमन करते हैं, वे अपने बल द्वारा वृद्धि पाते हुए श्रेष्ठ निवास प्राप्त करते हैं ।६[२१]

७५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

व्युषा आवो दिविजा ऋतेनाविष्कृण्वाना महिमानमागात् ।
अप द्रुहस्तम आवरजुष्टमङ्गिरस्तमा पथ्या अजीगः ॥१
महे नो अद्य सुविताय बोध्युषो महे सौभगाय प्र यन्धि ।
चित्रं रयिं यशसं धेह्यस्मे देवि मर्तेषु मानुषि श्रवस्युम् ॥२
एते त्ये भानवो दर्शतायाश्चित्रा उषसो अमृतास आगुः ।
जनयन्तो दैव्यानि व्रतान्यापृणन्तो अन्तरिक्षा व्यस्थुः ॥३
एषा स्या युजाना पराकात्पञ्च क्षितीः परि सद्यो जिगाति ।
अभिपश्यन्ती वयुना जनानां दिवो दुहिता भुवनस्य पत्नी ॥४
वाजिनीवती सूर्यस्य योषा चित्रामघा राय ईशे वसूनाम् ।
ऋषिष्टुता जरयन्ती मघोन्युषा उच्छति वह्निभिर्गृणाना ॥५
प्रति द्युतानामरुषासो अश्वाश्चित्रा अदृश्रन्नुषसं वहन्तः ।
याति शुभ्रा विश्वपिशा रथेन दधाति रत्नं विधते जनाय ॥६
सत्या सत्येभिर्महती महद्भिर्देवी देवेभिर्यजता यजत्रैः ।
रुजद् दृळ्हानि दददुस्रियाणां प्रति गाव उषसं वावशन्त ॥७
नू नो गोमद्वीरवद्धेहि रत्नमुषो अश्वावत्पुरुभोजो अस्मे ।
मा नो बर्हिः पुरुषता निदे कर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८[२२]

अन्तरिक्ष में प्रकट हुई उषा ने [illegible] को उत्पन्न किया । वह अपनी महिमा को प्रकट करती हुई आई । इसने [illegible] को और अन्धकार को [illegible] किया तथा सब प्राणियों के कर्म-मार्ग को दिखाया ॥ १ ॥ हे उषे ! [illegible] कल्याण के लिए चैतन्य होओ । तुम हमें सौभाग्य दो । [illegible] करो । तुम मनुष्यों को [illegible] ॥ २ ॥ [illegible]

देवों के कर्म को प्रकट करती हैं। वे अन्तरिक्ष को पूर्ण कर सब ओर फैल जाती हैं॥ ३॥ स्वर्ग की पुत्री और लोकों का पालन करने वाली उषा पाँचों वर्णों को देखती हुई उनके पास पहुँचती है॥ ४॥ अद्भुत धन वाली उषा दिव्य धन की अधीश्वरी है। वह ऋषियों द्वारा स्तुत और पूज्य उषा प्रातःकाल के करने वाली है॥ ५॥ तेजस्विनी उषा को लाने वाले श्रेष्ठ अश्व दिखाई पड़ रहे हैं। वह उषा अनेक रूपों वाले रथ द्वारा सर्वत्र गमन करती हुई सेवकों को रत्न-धन प्रदान करती है॥ ६॥ वह उषा यज्ञ योग्य देवताओं के साथ आकर अन्धकार को चीरती और गौओं को चरने के लिए प्रकाश देती है। गौएं उसी उषा की कामना करती हैं॥ ७॥ हे उषे! हमें गवादि से सम्पन्न धन प्रदान करो। तुम हमें प्रचुर अन्न भी दो। तुम हमारे यज्ञ की निन्दा न करती हुई सदा हमारा पालन करो॥ ८॥ [२२]

७६ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः। देवता-उषा। छन्द-त्रिष्टुप्)

उदु ज्योतिरमृतं विश्वजन्यं विश्वानरः सविता देवो अश्रेत्।
क्रत्वा देवानामजनिष्ट चक्षुराविरकर्भुवनं विश्वमुषाः ॥१
प्र मे पन्था देवयाना अदृश्रन्नमर्धन्तो वसुभिरिष्कृतासः।
अभूदु केतुरुषसः पुरस्तात्प्रतीच्यागादधि हर्म्येभ्यः ॥२
तानीदहानि बहुलान्यासन्या प्राचीनमुदिता सूर्यस्य।
यतः परि जारइवाचरन्त्युषो ददृक्षे न पुनर्यतीव ॥३
त इद्देवानां सधमाद आसन्नृतावानः कवयः पूर्व्यासः।
गूळ्हं ज्योतिः पितरो अन्वविन्दन्त्सत्यमन्त्रा अजनयन्नुषासम् ॥४
समान ऊर्वे अधि सङ्गतासः सं जानते न यतन्ते मिथस्ते।
ते देवानां न मिनन्ति व्रतान्यमर्धन्तो वसुभिर्यादमानाः ॥५
प्रति त्वा स्तोमैरीळते वसिष्ठा उषर्बुधः सुभगे तुष्टुवांसः।
गवां नेत्री वाजपत्नी न उच्छोषः सुजाते प्रथमा जरस्व ॥६

एषा नेत्री राधसः सूनृतानामुषा उच्छन्ती रिभ्यते वसिष्ठैः ।
दीर्घश्रुतं रयिमस्मे दधाना यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२७

सविता देवता सबका कल्याण करने वाली ज्योति को धारण करते हैं। यह देवताओं के कर्म के लिए उदित होते हैं। उषा ने लोकों को प्रकाशित किया है ॥ १ ॥ मैंने श्रेष्ठ, तेज से सम्पन्न देवयान मार्ग को देखा है उषा का तेज पूर्व दिशा में था। हमारे सामने आती हुई उषा उन्नत लोक से चलती है ॥ २ ॥ हे उषे ! तुम्हारा तेज सूर्योदय से पूर्व प्रकट होता है। तुम श्रेष्ठ कामिनी के समान अमृत तेज वाली हो ॥ ३ ॥ अंगिराओं ने गुढ़ तेज को पाकर मन्त्रों द्वारा उषा को प्रकट किया, वे अंगिरा ही देवताओं से सुसंगत हुये ॥ ४ ॥ वे सुसंगत होकर गौओं के लिए समान मति वाले हुए। क्या वे परस्पर यत्नवान नहीं हुए ? वे देव कर्मों में बाधक नहीं हुए। वे अपने पास दाता तेज सहित गमन करते हैं ॥ ५ ॥ स्तोता वसिष्ठ वंशज ऋषि, हे उषे ! तुम्हारी स्तुति करते हैं, तुम गौओं और अन्न की रक्षा करने वाली हो। तुम हमारे लिए प्रातःकाल को प्रकट करो। तुम्हारी प्रथम स्तुति की जाती है ॥ ६ ॥ स्तोता के स्तोत्रों का उषा नेतृत्व करती है। यह अन्धकार को मिटाती और वसिष्ठों द्वारा स्तुत होती है। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२१]

७७ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द–त्रिष्टुप्)

उपो रुरुचे युवतिर्न योषा विश्वं जीवं प्रसुवन्ती चरायै ।
अभूदग्निः समिधे मानुषाणामकर्ज्योतिर्बाधमाना तमांसि ॥१
विश्वं प्रतीची सप्रथा उदस्थाद्रुशद्वासो बिभ्रती शुक्रमश्वैत् ।
हिरण्यवर्णा सुदृशीकसन्दृग् गवां माता नेत्र्यह्नामरोचि ॥२
देवानां चक्षुः सुभगा वहन्ती श्वेतं नयन्ती सुदृ

उषा अदर्शि रश्मिभिर्व्यक्ता चित्रामघा विश्वमनु प्रभूता । ३
अन्तिवामा दूरे अमित्रमुच्छोर्वीं गव्यूतिमभयं कृधी नः ।
यावय द्वेष आ भरा वसूनि चोदय राधो गृणते मघोनि ॥४
अस्मे श्रेष्ठेभिर्भानुभिर्वि भाह्युषो देवि प्रतिरन्ती न आयुः ।
इषं च नो दधती विश्ववारे गोमदश्वावद्रथवच्च राधः ॥५
यां त्वा दिवो दुहितर्वर्धयन्त्युषः सुजाते मतिभिर्वसिष्ठाः ।
सास्मासु धा रयिमृष्वं बृहन्तं यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।२४

उषा सब प्राणियों को प्रेरित करते हुए सूर्य के पास तेज प्राप्त करती है । अग्नि देवता मनुष्यों की समिधाओं के योग्य होते हैं । वही अन्धकार का नाश करने वाले तेज को उत्पन्न करते हैं ॥ १ ॥ सर्व प्रसिद्ध उषा प्रकट हुई । वह अपने तेजोमय वस्त्र सहित बढ़ी । यह शोभामयी उषा दिनों की नेत्री और सब प्राणियों की माता है ॥ २ ॥ तेज का वहन करने वाली, रश्मियों द्वारा प्रकाशमती उषा सुन्दर दिखाई पड़ने वाले अश्व को उज्ज्वल करती है ॥ ३ ॥ हे उषे ! शत्रु को दूर करती हुई तुम अद्भुत धन वाली होकर हमारे पास आओ । तुम हमारी गोचर भूमि को भय-रहित करने के लिए वैरियों को दूर करो । तुम शत्रुओं का धन लाकर स्तोता की ओर प्रेरित करो ॥ ४ ॥ हे उषे ! तुम श्रेष्ठ रश्मियों सहित प्रकाशित होती हुई हमारी आयु-वृद्धि करो और गौ अश्वादि से युक्त होकर हमारी ओर देखो ॥ ५ ॥ हे उषे ! वसिष्ठगण तुम्हें स्तुतियों से बढ़ाते हैं । तुम हमें श्रेष्ठ धन दो और सदा हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [२४]

७८ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रति केतवः प्रथमा अदृश्रन्नूर्ध्वा अस्या अञ्जयो वि श्रयन्ते ।
उषो अर्वाचा बृहता रथेन ज्योतिष्मता वाममस्मभ्यं वक्षि ॥१
प्रति षीमग्निर्जरते समिद्धः प्रति विप्रासो मतिभिर्गृणन्तः ।
उषा याति ज्योतिषा बाधमाना विश्वा तमांसि दुरिताप देवी ॥२

एता उ त्याः प्रत्यदृश्रन् पुरस्ताज्ज्योतिर्यच्छन्तीरुषसो विभातीः ।
अजीजनन्त्सूर्यं यज्ञमग्निमपाचीनं तमो अगादजुष्टम् ॥३
अचेति दिवो दुहिता मघोनी विश्वे पश्यन्त्युषसं विभातीम् ।
आस्थाद्रथं स्वधया युज्यमानमा यमश्वासः सुयुजो वहन्ति ॥४
प्रति त्वाद्य सुमनसो बुधन्तास्माकासो मघवानो वयं च ।
तिल्विलायध्वमुषसो विभातीर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२५

केतु रूपी उषा प्रथम देखी जाती है। इसकी किरणें ऊपर युक्त करती हुई सब ओर जाती हैं। हे उषे! तुम अपने दैदीप्यमान रथ पर हमारे लिए श्रेष्ठ धन वहन करो ॥ १ ॥ अग्नि सर्वत्र वृद्धि पाते हैं, वे स्तुतियों से बढ़ते हैं। उषा भी सब पापों और अन्धकारों को दूर करती है ॥ २ ॥ यह उषाएं प्रभात की कारण रूपा हैं, पूर्व में दिखाई देती हैं। इन्हीं ने सूर्य, अग्नि और यज्ञ को प्रकट किया है। इन्हीं के द्वारा अन्धकार दूर हुआ है ॥ ३ ॥ स्वर्ग की पुत्री उषा धन से युक्त एवं प्रभात के करने वाली है। यह अश्व युक्त रथ पर चढ़ कर अश्वों द्वारा आती है ॥ ४ ॥ हे उषे! श्रेष्ठ पुरुषों सहित हम तुम्हें जगाते हैं। तुम प्रभात करने वाली होकर संध्या की स्निग्धता से युक्त करो। हमारा सदा पालन करती रहो ॥ ५ ॥ [२५]

७९ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—उषा। छन्द-त्रिष्टुप)

व्युषा आवः पथ्या जनानां पञ्च क्षितीर्मानुषीर्बोधयन्ती ।
सुसन्दृग्भिरुक्षभिर्भानुमश्रेद्वि सूर्यो रोदसी चक्षसावः ॥१
व्यञ्जते दिवो अन्तेष्वक्तून्विशो न युक्ता उषसो यतन्ते ।
सं ते गावस्तम आ वर्तयन्ति ज्योतिर्यच्छन्ति सवितेव बाहू ॥२
अभूदुषा इन्द्रतमा मघोन्यजीजनत् सुविताय श्रवांसि ।
वि दिवो देवी दुहिता दधात्यङ्गिरस्तमा सुकृते वसूनि ॥३
तावदुषो राधो अस्मभ्यं रास्व यावत्स्तोतृभ्यो अरदो गृणाना ।
यां त्वा जज्ञुर्वृषभस्या रवेण वि दृळ्हस्य

देवंदेवं राधसे चोदयन्त्यस्मद्र्यक्सूनृता ईरयन्ती ।
व्युच्छन्ती नः सनये धियो धा यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।२६

यह उषा अन्धकार को नष्ट कर मनुष्यों का हित करती है। यह सब मनुष्यों को जगाती और सूर्य की आश्रिता होती है। सूर्य अपने तेज से पृथिवी को ढकते हैं ॥ १ ॥ अन्तरिक्ष में तेज-प्रकाश करने वाली उषाऐं सुसंगत होकर अन्धकार को नष्ट करने में यत्नवती होती हैं। हे उषे ! तुम्हारी किरणें तमोनाशिनी हैं। वे सूर्य के तेज के समान ही प्रकाश फैलाती हैं ॥ २ ॥ यह धन वाली उषा उत्पन्न हुई। उसने सबके हितकारी अन्न को उत्पन्न किया। स्वर्ग की पुत्री और अङ्गिरोत्पन्न उषा श्रेष्ठ कर्मों के लिए धन धारण करने वाली है ॥ ३ ॥ हे उषे ! पूर्वकालीन स्तोता को तुमने जितना धन प्रदान किया, उतना ही हमें दो। तुम्हें सब लोग स्तोत्र की ध्वनि द्वारा जान लेते हैं। तुमने ही गौओं के अपहरण काल में पर्वत का द्वार दिखाया था ॥ ४ ॥ हे उषे ! स्तोताओं के और हमारे समस्त सत्यवाणी को प्रेरित करो और अन्धकार का नाश कर हमें देने की बुद्धि बनाओ। तुम सदा हमारा मङ्गल करो ॥ ५ ॥ [२६]

८० सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—उषा । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रति स्तोमेभिरुषसं वसिष्ठा गीर्भिर्विप्रासः प्रथमा अबुध्रन् ।
विवर्तयन्तीं रजसी समन्ते आविष्कृण्वतीं भुवनानि विश्वा ॥१
एषा स्या नव्यमायुर्दधाना गूढ्वी तमो ज्योतिषोषा अबोधि ।
अग्र एति युवतिरह्रयाणा प्राचिकितत्सूर्यं यज्ञमग्निम् ॥२
अश्वावतीर्गोमतीर्न उषासो वीरवतीः सदमुच्छन्तु भद्राः ।
घृतं दुहाना विश्वतः प्रपीता यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥३ ।२७

वसिष्ठों ने स्तुतियों द्वारा उषा को सर्व प्रथम जगाया। वह उषा आकाश पृथिवी को ढकती और सब प्राणियों को प्रकाश देती है ॥ १ ॥ यह उषा अपने तेज से अन्धकार को नष्ट करती हुई जागती है। वह सूर्य के सामने

आकर सूर्य, अग्नि और यज्ञ को प्रकट करती है ॥ २ ॥ गौओं और अश्वों से सम्पन्न उषायें अन्धकार को मिटाती हैं। ये जल का दोहन करती हुई वृद्धि को प्राप्त होती हैं। तुम सदा हमारा मंगल करो ॥ ३ ॥ [२७]

८१ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-उषाः । छन्द-बृहती)

प्रत्यु अदर्श्यायत्युच्छन्ती दुहिता दिवः ।
अपो महि व्ययति चक्षसे तमो ज्योतिष्कृणोति सूनरी ॥१
उदुस्रियाः सृजते सूर्यः सचां उद्यन्नक्षत्रमर्चिवत् ।
तवेदुषो व्युषि सूर्यस्य च सं भक्तेन गमेमहि ॥२
प्रति त्वा दुहितर्दिव उषो जीरा अभुत्स्महि ।
या वहसि पुरु स्पार्हं वनन्वति रत्नं न दाशुषे मयः ॥३
उच्छन्ती या कृणोषि मंहना महि प्रख्यै देवि स्वर्दृशे ।
तस्यास्ते रत्नभाज ईमहे वयं स्याम मातुर्न सूनवः ॥४
तच्चित्रं राध आ भरोषो यद्दीर्घश्रुत्तमम् ।
यत्ते दिवो दुहितर्मर्तभोजनं तद्रास्व भुनजामहै ॥५
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनं वाजां अस्मभ्यं गोमतः ।
चोदयित्री मघोनः सूनृतावत्युषा उच्छदप स्रिधः ॥६ ॥१

आकाश की पुत्री उषा अन्धकार नष्ट करती है। यह सबको दर्शन शक्ति देती और तेज को बढ़ाती है ॥ १ ॥ रश्मियों को सूर्य एक साथ गिराते हैं। यह ग्रह नक्षत्र आदि को भी प्रकाश देती है। हे उषे ! तुम्हारे और सूर्य के प्रकाश को पाकर हम अन्न से युक्त हों ॥ २ ॥ हे उषा ! हम तुम्हें जाग्रत करेंगे। तुम इच्छित धन को लाती हो। यजमान के लिए रत्नादि का वहन करती हैं ॥ ३ ॥ हे उषे ! तुम महिमामयी और अन्धकार नाशिनी हो। तुम विश्व को चैतन्य कर उसे दर्शन शक्ति देती हो। हे रत्नवती उषे ! हम तुमसे याचना करते हैं। जैसे माता के लिए पुत्र प्रिय होता है, वैसे ही हम तुम्हारे लिए प्रिय होंगे ॥४॥ हे उषे ! तुम्हारा जो धन दूर तक प्रसिद्ध है, उसी को

यहाँ लाओ । तुम्हारे पास जो अन्न है, वह हमें प्रदान करो । हम भी उसका उपभोग करेंगे ॥ ५ ॥ हे उषे ! स्तोताओं को अविनाशी यश दो । उन्हें घर अन्न और गवादि धन दो । यथार्थवादिनी उषा हमारे शत्रुओं को दूर भगावें ॥ ६ ॥ [१]

८२ सूक्त

(ऋषिः—वसिष्ठः देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—जगती)

इन्द्रावरुणा युवमध्वराय नो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ।
दीर्घप्रयज्युमति यो वनुष्यति वयं जयेम पृतनासु दूढ्यः ॥१
सम्राळन्य स्वराळन्य उच्यते वां महान्ताविन्द्रावरुणा महावसू ।
विश्वे देवासः परमे व्योमनि यं वामोजो वृषणा सं बलं दधुः ॥२
अन्वपां खान्यतृन्तमोजसा सूर्यमैरयतं दिवि प्रभुम् ।
इन्द्रावरुणा मद अस्य मायिनोऽपिन्वतमपितः पिन्वतं धियः ॥३
युवामिद्युत्सु पृतनासु वह्नयो युवां क्षेमस्य प्रसवे मितज्ञवः ।
ईशाना वस्व उभयस्य कारव इन्द्रावरुणा सुहवा हवामहे ॥४
इन्द्रावरुणा यदिमानि चक्रथुर्विश्वा जातानि भुवनस्य मज्मना ।
क्षेमेण मित्रो वरुणं दुवस्यति मरुद्भिरुग्रः शुभमन्य ईयते ॥५ ।२

हे इन्द्र और वरुण ! इस उपासक को श्रेष्ठ घर दो । यज्ञकर्ता के हिंसक शत्रु को हम संग्राम में जीतेंगे ॥ १ ॥ हे इन्द्रावरुण ! तुम श्रेष्ठ धन वाले हो । तुम में एक स्वयं सुशोभित और दूसरे राजा हैं । तुम दोनों को विश्वेदेवों ने तेजस्वी बनाया है ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वरुण तुमने अपने बल से जल के द्वार को खोला और सूर्य को आकाश में भेजा । सोम-पान जनित हर्ष के प्राप्त होने पर तुम शुष्क नदियों को जल से भरते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! शत्रु-सेना के मध्य स्तोतागण और अङ्गिरागण तुम्हारा आह्वान करते हैं । तुम दिव्य और पार्थिव धनों के स्वामी और आह्वान के योग्य हो । हम तुम्हें आहूत करते हैं ॥ ४ ॥ हे इन्द्र, वरुण ! तुमने सब प्राणियों की रचना

थी है । तुम में से इन्द्र मरुद्गण के साथ तेजोमय अलंकार धारण करते हैं और वरुण की सब सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ [२]

महे शुल्काय वरुणस्य नु त्विष ओजो मिमाते ध्रुवमस्य यत्स्वम् ।
अजामिमन्यः श्नथयन्तमातिरद्दभ्रेभिरन्यः प्र वृणोति भूयसः ॥६
न तमंहो न दुरितानि मर्त्यमिन्द्रावरुणा न तपः कुतश्चन ।
यस्य देवा गच्छथो वीथो अध्वरं न तं मर्तस्य नशते परिह्वृतिः ॥७
अर्वाङ्नरा दैव्येनावसा गतं शृणुतं हवं यदि मे जुजोषथः ।
युवोर्हि सख्यमुत वा यदाप्यं मार्डीकमिन्द्रावरुणा नि यच्छतम् ॥८
अस्माकमिन्द्रावरुणा भरेभरे पुरोयोधा भवतं कृष्ट्योजसा ।
यद्वां हवन्त उभये अध स्पृधि नरस्तोकस्य तनयस्य सातिषु ॥९
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१० ।३

धन की प्राप्ति के लिए इन्द्र और वरुण को बुलाते हैं । यह विशिष्ट बल वाले हैं । इनमें से एक अनेक शत्रुओं को वश करते और दूसरे हिंसक को मारते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र, हे वरुण ! तुम जिसके यज्ञ में जाते हो, उसके पास विघ्न नहीं जाते । पाप और दुष्कर्म और सन्ताप भी उसके पास नहीं पहुँचते ॥ ७ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! मेरी रक्षा के लिए अभिमुख होओ । मेरी स्तुति सुनो । तुम्हारी मित्रता सुख प्राप्त कराती है । तुम हमारे मित्र और बन्धु होओ ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम सब युद्धों में हमारे आगे रहो । तुम्हें प्राचीन कालीन और नवीन स्तोता रणक्षेत्र में अथवा सन्तान प्राप्ति के लिए आहूत करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा हमें धन और घर दें । अदिति का तेज हमारी हिंसा न करे । हम सवितादेव की स्तुति करेंगे ॥ १० ॥ [३]

८३ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः देवता-इन्द्रावरुणौ । छन्द-जगती)

युवां नरा पश्यमानास आप्यं प्राचा गव्यन्तः पृथु

दासा च वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमिन्द्रावरुणावसावतम् ॥१
यत्रा नरः समयन्ते कृतध्वजो यस्मिन्नाजा भवति किं चन प्रियम् ।
यत्रा भयन्ते भुवना स्वर्दृशस्तत्रा न इन्द्रावरुणाधि वोचतम् ॥२
सं भूम्या अन्ता ध्वसिरा अदृक्षतेन्द्रावरुणा दिवी घोष आरुहत् ।
अस्थुर्जनानामुप मामरातयोऽर्वागवसा हवनश्रुता गतम् ॥३
इन्द्रावरुणा वधनाभिरप्रति भेदं वन्वन्ता प्र सुदासमावतम् ।
ब्रह्माण्येषां शृणुतं हवीमनि सत्या तृत्सूनामभवत्पुरोहितिः ॥४
इन्द्रावरुणावभ्या तपन्ति माघान्यर्यो वनुषामरातयः ।
युवं हि वस्व उभयस्य राजथोऽध स्मा नोऽवतं पार्ये दिवि ॥५ ।४

हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हारी मित्रता पाकर गौओं की कामना वाले यजमान पूर्व दिशा में गए । तुम वृत्रादि का वध करो और सुदास के लिए रक्षक होकर आओ ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हे वरुण ! जहाँ दोनों पक्ष संग्राम के लिए हाथ बढ़ाते हैं, जिस युद्धमें स्वर्ग-दर्शन आदि प्राप्त होता है, उस संग्राम में तुम हमारा पक्ष ग्रहण करना ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हे वरुण ! सैनिकों द्वारा सब अन्न नष्ट किए जाते हैं । उनका कोलाहल आकाश तक फैलता है । मेरे शत्रु मेरी ओर बढ़ रहे हैं । तुम अपने रक्षा-साधनों सहित आगमन करो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुमने सुदास को बचाया था और तृत्सुओं के स्तोत्र सुने थे । उनका पौरोहित्य संग्राम के उपस्थित होने पर सफल होगया ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! मैं शत्रुओं के आयुधों से घिरा हूँ । शत्रु मुझे हर प्रकार बाधित कर रहे हैं । तुम सब धनों के स्वामी हो । युद्ध के अवसर पर हमारे रक्षक होओ ॥ ५ ॥ [४]

युवां हवन्त उभयास आजिष्विन्द्रं च वस्वो वरुणं च सातये ।
यत्र राजभिर्दशभिर्निबाधितं प्र सुदासमावतं तृत्सुभिः सह ॥६
दश राजानः समिता अयज्यवः सुदासमिन्द्रावरुणा न युयुधुः ।
सत्या नृणामद्मसदामुपस्तुतिर्देवा एषामभवन्देवहूतिषु ॥७

दाशराज्ञे परियत्ताय विश्वतः सुदास इन्द्रावरुणावशिक्षतम् ।
श्वित्यञ्चो यत्र नमसा कपर्दिनो धिया धीवन्तो असपन्त तृत्सवः ॥८
वृत्राण्यन्यः समिथेषु जिघ्नते व्रतान्यन्यो अभि रक्षते सदा ।
हवामहे वां वृषणा सुवृक्तिभिरस्मे इन्द्रावरुणा शर्म यच्छतम् ॥९
अस्मे इन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा द्युम्नं यच्छन्तु महि शर्म सप्रथः ।
अवध्रं ज्योतिरदितेर्ऋतावृधो देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे ॥१० ।५

युद्ध के अवसर पर इन्द्र और वरुण का आह्वान करते हैं, तुमने दस राजाओं द्वारा त्रस्त सुदास की तृत्सुओं सहित रक्षा की थी ॥ ६ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! यज्ञ-विमुख दस राजा भी सुदास को न जीत सके । यज्ञ में नेताओं की स्तुति फलवती हुई । सब देवता इस यज्ञ में आये थे ॥ ७ ॥ जहाँ कर्मवान् तृत्सुगण उपासना करते हैं, वहीं दस राजाओं द्वारा घिरे हुए राजा सुदास को तुमने बल दिया ॥ ८ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुममें से इन्द्र वृत्रहन्ता और वरुण कर्म-पालक हैं । तुम हमें कल्याण प्रदान करो । हम श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ९ ॥ इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा हमें धन और घर दें । अदिति का तेज हमारी हिंसा न करे । हम सविता देव को नमस्कार करते हैं ॥ १० ॥ [५]

८४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ वां राजानावध्वरे ववृत्यां हव्येभिरिन्द्रावरुणा नमोभिः ।
प्र वां घृताची बाह्वोर्दधाना परि त्मना विषुरूपा जिगाति ॥१
युवो राष्ट्रं बृहदिन्वति द्यौर्यौ सेतृभिररज्जुभिः सिनीथः ।
परि नो हेळो वरुणस्य वृज्या उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् ॥२
कृतं नो यज्ञं विदथेषु चारुं कृतं ब्रह्माणि सूरिषु प्रशस्ता ।
उपो रयिर्देवजूतो न एतु प्र णः स्पार्हाभिरूतिभिस्तिरेतम् ॥३
अस्मे इन्द्रावरुणा विश्ववारं रयिं धत्तं वसुमन्तं पुरुक्षुम् ।

प्र य आदित्यो अनृता मिनात्यमिता शूरो दयते वसूनि ॥४
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावलोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।६

हे इन्द्र और वरुण ! मैं तुम्हें इस यज्ञ में बुलाता हूँ । हाथों में ग्रहण की हुई जुहू तुम्हारी ओर गमन करती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! तुम्हारा स्वर्ग वृष्टि जल से सब को सुख देता है । तुम पापी को बन्धन में डालो । इन्द्र हमारे स्थान की वृद्धि करें और वरुण का क्रोध हमारी रक्षा के लिए हो ॥ २ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमारे गृह-यज्ञ को सुन्दर करो । स्तोताओं की स्तुतियाँ उत्कृष्टता को प्राप्त हों । देव-प्रेरित धन हमें मिले । वे हमें कामनाओं से रक्षित करें ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वरुण ! हमें वरणीय घर और अन्न-सम्पन्न धन दो । असत्य के नाशक आदित्य वीरों को प्रचुर धन प्रदान करते हैं ॥ ४ ॥ मेरी स्तुति इन्द्र और वरुण की सेवा करे । मेरे स्तोत्र मेरे पुत्रादि के रक्षक हों । हम श्रेष्ठ रत्नादि प्राप्त करें । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [६]

८५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्रावरुणौ । छन्द—त्रिष्टुप्)

पुनीषे वामरक्षसं मनीषां सोममिन्द्राय वरुणाय जुह्वत् ।
घृतप्रतीकामुषसं न देवीं ता नो यामन्नुरुष्यतामभीके ॥१
स्पर्धन्ते वा उ देवहूये अत्र येषु ध्वजेषु दिद्यवः पतन्ति ।
युवं ताँ इन्द्रावरुणावमित्रान्हतं पराचः शर्वा विषूचः ॥२
आपश्चिद्धि स्वयशसः सदःसु देवीरिन्द्रं वरुणं देवता धुः ।
कृष्टीरन्यो धारयति प्रविक्ता वृत्राण्यन्यो अप्रतीनि हन्ति ॥३
स सुक्रतुर्ऋतचिदस्तु होता य आदित्य शवसा वां नमस्वान् ।
आववर्तदवसे वां हविष्मानसदित्स सुविताय प्रयस्वान् ॥४
इयमिन्द्रं वरुणमष्ट मे गीः प्रावत्तोके तनये तूतुजाना ।
सुरत्नासो देववीतिं गमेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५ ।७

हे इन्द्र और वरुण ! मैं तुम्हारे लिए सोमरस की आहुति देता हूँ। पापों से हीन स्तुति को उषा के तेज के समान परिष्कृत करता हूँ। वे युद्ध और यात्रा में हमारी रक्षा करें ॥ १ ॥ युद्ध में शत्रुगण हमारे प्रतिद्वन्द्वी होते हैं। हे इन्द्र और वरुण ! जिस संग्राम में ध्वजा पर शस्त्र गिरें उस संग्राम में पीछे हटते हुए शत्रु को भी तुम नष्ट करो। ॥ २ ॥ सभी सोम तेजस्वी होकर इन्द्र और वरुण को धारण करते हैं। उनमें इन्द्र शत्रुओं का संहार करते हैं और वरुण प्रजाओं को पृथक-पृथक रूप से धारण करते हैं ॥ ३ ॥ हे बली आदित्यो ! जो तुम्हारी सेवा करता है, वह श्रेष्ठकर्मा और यज्ञ का जानने वाला हो। जो हवियुक्त यजमान तुम्हें तृप्त करने की इच्छा से बुलाता है, वह पुत्रवान होता हुआ फल की प्राप्ति करे ॥ ४ ॥ मेरा स्तोत्र इन्द्र और वरुण को व्याप्त करे। इससे मेरे पुत्र पौत्रादि की रक्षा हो। हम श्रेष्ठ धन और यश से सम्पन्न हों। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [७]

८६ सूक्त

(ऋषि-वसिष्ठः । देवता-वरुणः, । छन्द-त्रिष्टुप्)

धीरा त्वस्य महिना जनूंपि वि यस्तस्तम्भ रोदसी चिदुर्वी ।
प्र नाकमृष्वं नुनुदे बृहन्तं द्विता नक्षत्रं पप्रथच्च भूम ॥१
उत स्वया तन्वा सं वदे तत्कदा न्वन्तर्वरुणे भुवानि ।
किं मे हव्यमहृणानो जुषेत कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् ॥२
पृच्छे तदेनो वरुण दिदृक्षूपो एमि चिकितुषो विपृच्छम् ।
समानमिन्मे कवयश्चिदाहुरयं ह तुभ्यं वरुणो हृणीते ॥३
किमाग आस वरुण ज्येष्ठं यत्स्तोतारं जिघांससि सखायम् ।
प्र तन्मे वोचो दूळभ स्वधावोऽव त्वानेना नमसा तुर इयाम् ॥४
अव द्रुग्धानि पित्र्या सृजा नोऽव या वयं चकृमा तनूभिः ।
अव राजन्पशुतृपं न तायुं सृजा वत्सं न दाम्नो वसिष्ठम् ॥५
न स स्वो दक्षो वरुण ध्रुतिः सा सुरा मन्युर्विभीदको अचित्तिः ।

अस्ति ज्यायान्कनीयस उपारे स्वप्नश्चनेदनृतस्य प्रयोता ॥६
अरं दासो न मीळ्हुषे कराण्यहं देवाय भूर्णयेऽनागाः ।
अचेतयदचितो देवो अर्यो गृत्सं राये कवितरो जुनाति ॥७
अयं सु तुभ्यं वरुण स्वधावो हृदि स्तोम उपश्रितश्चिदस्तु ।
शं नः क्षेमे शमु योगे नो अस्तु यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।८

वरुण का जन्म महिमा से युक्त हुआ । जिन्होंने विस्तीर्ण द्यावापृथिवी की स्थापना की । इन्हीं ने आकाश को और नक्षत्र को प्रेरित कर पृथिवी को प्रशस्त किया ॥ १ ॥ मैं वरुण के साथ कब रहूँगा ? वे मेरे हव्य को कब ग्रहण करेंगे ? मैं उनके दर्शन कब कर सकूँगा ? ॥ २ ॥ हे वरुण ! मैं तुमसे उस पाप निवारण की बात पूछूँगा । मैंने विद्वानों से प्रश्न किये हैं । सभी कहते हैं कि 'तुमसे वरुण रुष्ट हुए हैं, ॥ ३ ॥ हे वरुण ! मुझसे कौन-सा अपराध हुआ है जिसके कारण तुम मेरे मित्र स्तोता का वध करना चाहते हो । मुझे वह बात बताओ जिससे मैं शुभकर्म वाला होकर नमस्कार करता हुआ तुम्हारे समक्ष पहुँचूँ ॥ ४ ॥ हे वरुण ! हमारे पैतृक द्रोह को दूर करो । हमने अपने देह से जो अपराध किया है, उससे भी मुक्त करो । जैसे पशु चोर पशु को तृणादि खिलाकर तृप्त करता है और जैसे बछड़ा रस्सी से खुल कर मुक्त होता है, वैसे ही मुझे पाप से मुक्त करो ॥ ५ ॥ पाप अपने दोष के कारण ही प्राप्त नहीं होता, अपितु वह क्रोध, भ्रम, जुआ खेलना, अज्ञान अथवा दैव-गति से प्राप्त होता है । कभी-कभी बड़े भी छोटे को कुमार्ग पर चलाते हैं तथा स्वप्न में भी कभी पाप की उत्पत्ति हो जाती है ॥ ६ ॥ मैं वरुण की, पवित्र होकर सेवा करूँगा । वे हम ज्ञान-हीनों को ज्ञान दें । स्तोता के लिए धन प्रेरित करें ॥७॥ हे वरुण ! यह स्तुति तुम्हारे लिए है । लाभ और क्षेम हमारे लिए कल्याणकारी हों । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ८ ॥ [८]

८७ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वरुणः । छन्द—त्रिष्टुप्)

रदत्पथो वरुणः सूर्याय प्रार्णांसि समुद्रिया नदीनाम् ।

सर्गो न सृष्टो अर्वतीर्ऋतायञ्चकार महीरवनीरहभ्यः ॥१
आत्मा ते वातो रज आ नवीनोत्पशुर्न भूर्णिर्यवसे ससवान् ।
अन्तर्मही बृहती रोदसीमे विश्वा ते धाम वरुण प्रियाणि ॥२
परि स्पशो वरुणस्य स्मदिष्टा उभे पश्यन्ति रोदसी सुमेके ।
ऋतावानः कवयो यज्ञधीराः प्रचेतसो य इषयन्त मन्म ॥३
उवाच मे वरुणो मेधिराय त्रिः सप्त नामाघ्न्या बिभर्ति ।
विद्वान्पदस्य गुह्या न वोचद्युगाय विप्र उपराय शिक्षन् ॥४
तिस्रो द्यावो निहिता अन्तरस्मिन्तिस्रो भूमीरुपराः षड्विधानाः ।
गृत्सो राजा वरुणश्चक्र एतं दिवि प्रेङ्खं हिरण्ययं शुभे कम् ॥५
अव सिन्धुं वरुणो द्यौरिव स्थाद् द्रप्सो न श्वेतो मृगस्तुविष्मान् ।
गम्भीरशंसो रजसो विमानः सुपारक्षत्रः सतो अस्य राजा ॥६
यो मृळयाति चक्रुषे चिदागो वयं स्याम वरुणे अनागाः ।
अनु व्रतान्यदितेर्ऋधन्तो यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।९

वरुण ने ही सूर्य को अन्तरिक्ष में मार्ग दिया था। इन्होंने नदियों को जल दिया। वरुण ने शीघ्र गमन की इच्छा से रात्रियों को दिन से पृथक कर दिया ॥ १ ॥ हे वरुण! संसार की आत्मा रूप वायु जल को सब ओर भेजता है। जैसे तृण खाकर पशु बल होता है, वैसे ही वायु भी अन्न वहन करता है। विस्तीर्ण द्यावापृथिवी में तुम्हारे सब स्थान सब को प्रिय लगते हैं ॥ २ ॥ वरुण के सब अनुचर प्रशंसा के पात्र हैं वे आकाश पृथिवी के श्रेष्ठ रूपों को देखते हैं। वे मेधावियों के स्तोत्र को भी देखते हैं ॥ ३ ॥ मैं मेधावी ऋत्विज् हूँ। वरुण ने कहा था कि पृथिवी इक्कीस नाम वाली है। मेधावी वरुण ने योग्य छात्र को उपदेश देकर सब बातें बताई हैं ॥ ४ ॥ इन वरुण के भीतर तीन स्वर्ग हैं। इनमें तीन प्रकार की भूमियाँ और छै प्रकार की दशाऐं हैं। वरुण ने सूर्य को स्वर्ण के झूले के समान तेज के निमित्त रचा है ॥ ५ ॥ वरुण ने सूर्य के समान ही समुद्र की रचना की। वे मृ
बलवान, जल के रचने वाले, दुःख से पार जाने वाले और स

पदार्थों के स्वामी हैं ॥ ६ ॥ अपराधी पर भी दया करने वाले हैं। हम उनके कर्मों को बढ़ा कर अपराधों से मुक्त हों। तुम सदा हमारा पालन करो ।७। [९]

८८ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–वरुण । छन्द–त्रिष्टुप्)

प्र शुन्ध्युवं वरुणाय प्रेष्ठां मतिं वसिष्ठ मीळ्हुषे भरस्व ।
य ईमर्वाञ्चं करते यजत्रं सहस्रामघं वृषणं बृहन्तम् ॥१
अधा न्वस्य सन्दृशं जगन्वानग्नेरनीकं वरुणस्य मंसि ।
स्वर्यदश्मन्नधिपा उ अन्धोऽभि मा वपुर्दृशये निनीयात् ॥२
आ यद्रुहाव वरुणश्च नावं प्र यत्समुद्रमीरयाव मध्यम् ।
अधि यदपां स्नुभिश्चराव प्र प्रेङ्ख ईङ्खयावहै शुभे कम् ॥३
वसिष्ठं ह वरुणो नाव्याधादृषिं चकार स्वपा महोभिः ।
स्तोतारं विप्रः सुदिनत्वे अह्नां यान्नु द्यावस्ततनन्यादुषासः ॥४
क्व त्यानि नौ सख्या बभूवुः सचावहे यदवृकं पुरा चित् ।
बृहन्तं मानं वरुण स्वधावः सहस्रद्वारं जगमा गृहं ते ॥५
आपिर्नित्यो वरुण प्रियः सन्त्वामागांसि कृणवत्सखा ते ।
मा त एनस्वन्तो यक्षिन् भुजेम यन्धि ष्मा विप्रः स्तुवते वरूथम् ॥६
ध्रुवासु त्वासु क्षितिषु क्षियन्तो व्यस्मत् पाशं वरुणो मुमोचत् ।
अवो वन्वाना अदितेरुपस्थाद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१०

हे वसिष्ठ ! वरुण कामनाओं के वर्षक हैं। तुम उनकी स्तुति करो। वे यज्ञ के योग्य और धनों के स्वामी हैं तथा सूर्य को सबके सामने लाते हैं ॥१॥ वरुण का दर्शन करता हुआ मैं अग्नि की ज्वालाओं को नमस्कार करता हूँ। सुखकारी पाषाण के कर्म में रत इस सोम-रस का वरुण अधिकाधिक पान करते हैं, तब दर्शन के निमित्त मेरी शरीर-वृद्धि करते हैं ॥ २ ॥ जब मैं और वरुण, नौका पर आरूढ़ हुए और जब समुद्र में नौका भले प्रकार चलाई गई, तब हमने उस नौका रूपी झूला पर सुख पूर्वक क्रीड़ा की थी ॥ ३ ॥ विद्वान्

वरुण ने दिन-रात्रि को बढ़ाया और मुझे नौका पर चढ़ा लिया। अपने रक्षण-कर्मों द्वारा उन्होंने वसिष्ठ को श्रेष्ठ कर्म वाला किया ॥४॥ हे वरुण ! हम प्राचीन काल में मित्र कब हुए थे ? हम में जो पहिले से हिंसा-रहित मित्रता थी, उसका हम निरन्तर निर्वाह करते चले आरहे हैं। हे वरुण ! तुम अन्नों के स्वामी हो। मैं तुम्हारे सहस्र द्वार वाले गृह में प्रविष्ट होऊँगा ॥ ५ ॥ हे वरुण ! जिस नित्य बन्धुओं ने प्राचीन समय में तुम्हारा अपराध किया था, वह अब तुम्हारे मित्र बनें। हम तुम्हारे आत्मीय पाप पूर्ण भोग को न भोगें। तुम स्तुति करने वाले को वर दो ॥ ६ ॥ हे वरुण ! हम तुम्हारे स्तोता हैं। हमें बन्धन-मुक्त करो। हम तुम्हारी रक्षा का उपभोग करें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [१०]

८६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वरुणः । छन्द—गायत्री, जगती)

मो षु वरुण मृन्मयं गृहं राजन्नहं गमम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥१
यदेमि प्रस्फुरन्निव दृतिर्न ध्मातो अद्रिवः । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥२
क्रत्वः समह दीनता प्रतीपं जगमा शुचे । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥३
अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम् । मृळा सुक्षत्र मृळय ॥४
यत्किं चेदं वरुण दैव्ये जनेऽभिद्रोहं मनुष्या श्चरामसि ।
अचित्ती यत्तव धर्मा युयोपिम मा नस्तस्मादेनसो देव रीरिषः ॥५ ॥११

हे वरुण! मैं मिट्टी का घर प्राप्त न करूँ। तुम मुझ पर दया करो और सुख दो ।१। हे वरुण ! मैं वायु से धकेले जाते हुए मेघ के समान कम्पित होता हुआ जाता हूँ, तुम मुझ पर दया करो और सुख दो ॥२॥ हे वरुण ! दरिद्रता और असमर्थता के कारण अनुष्ठान को मैं नहीं कर सका। तुम मुझ पर कृपा करो और कल्याण करो ॥३॥ समुद्र में रह कर भी मुझे प्यास लगी है। तुम मुझे कृपा पूर्वक सुखी करो ॥ ४ ॥ हे वरुण ! हम मनुष्यों से जो देवताओं अपराध हुआ है या अज्ञानवश तुम्हारे कर्म में जो त्रुटि रह गई है, उन कारण हमारी हिंसा न करना ॥ ५ ॥

६० सूक्त (छठवाँ अनुवाक)

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता-वायुः, इन्द्रवायु । छन्द–त्रिष्टुप्)

प्र वीरया शुचयो दद्रिरे वामध्वर्युभिर्मधुमन्तः सुतासः ।
वह वायो नियुतो याह्यच्छा पिबा सुतस्यान्धसो मदाय ॥१
ईशानाय प्रहुतिं यस्त आनट् शुचिं सोमं शुचिपास्तुभ्यं वायो ।
कृणोषि तं मर्त्येषु प्रशस्तं जातोजातो जायते वाज्यस्य ॥२
राये नु यं जज्ञतू रोदसीमे राये देवी धिषणा धाति देवम् ।
अध वायुं नियुतः सश्चतः स्वा उत श्वेतं वसुधितिं निरेके ॥३
उच्छन्नुषसः सुदिना अरिप्रा उरु ज्योतिर्विविदुर्दीध्यानाः ।
गव्यं चिदूर्वमुशिजो वि वव्रुस्तेषामनु प्रदिवः सस्रुरापः ॥४
ते सत्येन मनसा दीध्यानाः स्वेन युक्तासः क्रतुना वहन्ति ।
इन्द्रवायू वीरवाहं रथं वामीशानयोरभि पृक्षः सचन्ते ॥५
ईशानासो ये दधते स्वर्णो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्हिरण्यैः ।
इन्द्रवायू सूरयो विश्वमायुरर्वद्भिर्वीरैः पृतनासु सह्युः ॥६
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१२

हे वीरकर्मा वायो ! इस मधुर रस वाले सोम को अध्वर्युगण प्रस्तुत करते हैं। तुम अपने अश्वों को योजित कर यहाँ आओ और सोम-पान करो ॥ १ ॥ हे वायो ! जो यजमान तुम्हें ईश्वर मान कर आहुति देता है और हे वरुण ! जो तुम्हें सोम अर्पित करता है, उसे मनुष्यों में प्रमुख करो। वह सर्वश्रेष्ठ होकर धन पाता है ॥ २ ॥ जिन वायु को आकाश-पृथिवी ने धन के लिए प्रकट किया और इसीलिए स्तुति जिन वायु को धारण करती है, वह वायु अपने अश्वों द्वारा सेवा प्राप्त करते हैं ॥ ३ ॥ पाप रहित उषाएँ अन्धकार को मिटाती हैं, वे विशिष्ट दीप्ति वाली हुई हैं। अंगिराओं ने गौ रूप धन पाया और प्राचीन जल अङ्गिराओं का अनुगामी हुआ था ॥ ४ ॥ हे इन्द्र

और वायु ! तुम ईश्वर हो । यजमान अपनी हार्दिक स्तुतियों द्वारा तुम्हारे रथ को अपने यज्ञ में वहन करते हैं और सभी अन्न तुम्हारी सेवा करते हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और वायो ! जो समर्थ जन हमें गौ, अश्व, धन और सुवर्ण आदि देते हैं, वे दाता व्याप्त जीवन पर विजय पाते हैं ॥ ६ ॥ अश्व के समान हवि वहन करने वाले वसिष्ठों ने श्रेष्ठ स्तुति द्वारा इन्द्र और वायु को आहूत किया । तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ७ ॥ [१२]

९१ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठ. । देवता–वायुः इन्द्रावायु.। छन्द–त्रिष्टुप्)

कुविदङ्ग नमसा ये वृधमाः पुरा देवा अनवद्यास आसन् ।
ते वायवे मनवे वाधितायावासयन्नुपसं सूर्येण ॥१
उशन्ता दूता न दभाय गोपा मासश्च पाथः शरदश्च पूर्वीः ।
इन्द्रवायू सुष्टुतिर्वामियाना मार्डीकमीट्टे सुवितं च नव्यम् ॥२
पीवोअन्नाँ रयिवृधः सुमेधाः श्वेतः सिषक्ति नियुतामभिश्रीः ।
ते वायवे समनसो वि तस्थुर्विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः ॥३
यावत्तरस्तन्वो यावदोजो यावन्नरश्चक्षसा दीध्यानाः ।
शुचिं सोमं शुचिपा पातमस्मे इन्द्रवायू सदतं बर्हिरेदम् ॥४
नियुवाना नियुतः स्पार्हवीरा इन्द्रवायू सरथं यातमर्वाक् ।
इदं हि वां प्रभृतं मध्वो अग्रमध प्रीणाना वि मुमुक्तमस्मे ॥५
या वां शतं नियुतो याः सहस्रमिन्द्रवायू विश्ववाराः सचन्ते ।
आभिर्यातं सुविदत्राभिरर्वाक्पातं नरा प्रतिभृतस्य मध्वः ॥६
अर्वन्तो न श्रवसो भिक्षमाणा इन्द्रवायू सुष्टुतिभिर्वसिष्ठाः ।
वाजयन्तः स्ववसे हुवेम यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।१३

जो स्तोता वायु के स्तोत्र को करते हुए समृद्ध हुए, उन्होंने संकटग्रस्तों का उद्धार करने के लिए, वायु को हवि प्रदान करने के अभिप्राय से सूर्य और उषा को एकत्र रोका था ॥ १ ॥ हे इन्द्र और वायो ! तुम हमारे रक्षक हो

हमारी हिंसा मत करना। श्रेष्ठ स्तुति तुम्हारी ओर गमन करके श्रेष्ठ धन माँगती है ॥ २ ॥ उज्ज्वल वर्ण वाले वायु जिन पुरुषों को आश्रय देते हैं, वे पुरुष एक-से मन वाले होकर वायु का यज्ञ करते हैं। इन्होंने श्रेष्ठ अपत्य प्राप्ति के लिए यज्ञ रूप कार्यों को किया ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और वायो! जब तक तुम्हारे देह में बल तथा वेग है, जब तक ज्ञान के बल से कर्मवान् प्रकाशमान रहते हैं, तब तक तुम इन कुशों पर बैठकर सोम पान करो ॥४॥ हे इन्द्र और वायो! तुम्हारा स्तोता कामना वाला है। तुम अपने अश्वों को योजित कर आओ यह सोम तुम्हारे निमित्त है तुम इसे पीकर हमें पाप से मुक्त करो ॥ ५ ॥ हे इन्द्र और वायो! तुम्हारे सैकड़ों अश्व तुम्हारी सेवा में रत हैं। वे अश्व वरणीय हैं। उनके सहित हमारे अभिमुख होओ ॥ ६ ॥ हविवहन करने वाले, अन्न-याचक वसिष्ठगण श्रेष्ठ स्तोत्र द्वारा इन्द्र और वायु का आह्वान करते हैं। तुम हमारा सदा पालन करो ॥ ७ ॥ [१३]

९२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—वायुः इन्द्रवायू । छन्द—त्रिष्टुप्,)

आ वायो भूष शुचिपा उप नः सहस्रं ते नियुतो विश्ववार ।
उपो ते अन्धो मद्यमयामि यस्य देव दधिषे पूर्वपेयम् ॥१
प्र सोता जीरो अध्वरेष्वस्थात् सोममिन्द्राय वायवे पिबध्यै ।
प्र यद्वां मध्वो अग्रियं भरन्त्यध्वर्यवो देवयन्तः शचीभिः ॥२
प्र याभिर्यासि दाश्वांसमच्छा नियुद्भिर्वायविष्टये दुरोणे ।
नि नो रयिं सुभोजसं युवस्व नि वीरं गव्यमश्व्यं च राधः ॥३
ये वायव इन्द्रमादनास आदेवासो नितोशनासो अर्यः ।
घ्नन्तो वृत्राणि सूरिभिः ष्याम सासह्वांसो युधा नृभिरमित्रान् ॥४
आ नो नियुद्भिः शतिनीभिरध्वरं सहस्रिणीभिरुप याहि यज्ञम् ।
वायो अस्मिन्त्सवने मादयस्व यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५।१४

हे सोमपाये वायो! तुम हमारे अभिमुख होओ। तुम सहस्र अश्व वाले हो। तुम जिस सोम को प्रथम पीते हो, वह सोम तुम्हारे लिए पात्र में

स्थित है ॥ १ ॥ श्रेष्ठकर्मा अध्वर्यु ने इन्द्र और वायु के लिए सोम प्रस्तुत किया है। हे इन्द्र और वायो ! इस यज्ञ में अध्वर्युओं ने सोम का अग्रभाग तुम्हारे लिए अर्पित किया है ॥ २ ॥ हे वायो ! तुम हविदाता यजमान के घर में अपने जिन अश्वों से पहुँचते हो, उनके सहित यहाँ आओ और हमें श्रेष्ठ अन्न-युक्त धन प्रदान करो ॥ ३ ॥ जो देवोपासक इन्द्र और वायु को संतुष्ट करते हैं, वे शत्रुओं का हनन करने वाले हैं। हम उनकी सहायता से शत्रु-नाश करें ॥ ४ ॥ हे वायो ! तुम अपने सैकड़ों-हजारों अश्वों के सहित यज्ञ में आओ और सोम-पान द्वारा हर्षित होओ। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ५ ॥ [१४]

९३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—इन्द्राग्नि । छन्द—त्रिष्टुप्)

शुचिं नु स्तोमं नवजातमद्येन्द्राग्नी वृत्रहणा जुषेथाम् ।
उभा हि वां सुहवा जोहवीमि ता वाजं सद्य उशते धेष्ठा ॥१
ता सानसी शवसाना हि भूतं साकंवृधा शवसा शूशुवांसा ।
क्षयन्तौ रायो यवसस्य भूरेः पृङ्क्तं वाजस्य स्थविरस्य घृष्वेः ॥२
उपो ह यद्विदथं वाजिनो गुर्धीभिर्विप्राः प्रमतिमिच्छमानाः ।
अर्वन्तो न काष्ठां नक्षमाणा इन्द्राग्नी जोहुवतो नरस्ते ॥३
गीर्भिर्विप्रः प्रमतिमिच्छमान ईट्टे रयिं यशसं पूर्वभाजम् ।
इन्द्राग्नी वृत्रहणा सुवज्रा प्र नो नव्येभिस्तिरतं देष्णैः ॥४
सं यन्मही मिथती स्पर्धमाने तनूरुचा शूरसाता यतैते ।
अदेवयुं विदथे देवयुभिः सत्रा हतं सोमसुता जनेन ॥५ ।१५

हे इन्द्राग्ने ! मेरे अभिनव स्तोत्र को सुनो। तुम सुख पूर्वक आह्वान योग्य हो। मैं तुम्हें बारम्बार आहूत करता हूँ। तुम कामना वाले यजमान को अन्न प्रदान करो ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम भजनीय हो तुम शत्रुओं का नाश करने वाले होओ। तुम प्रचुर धन और अन्न के हमें शत्रु-नाशक अन्न प्रदान करो ॥ २ ॥ जो हविदाता यज्ञ कम

हैं, वे अश्व के समान इन्द्राग्नि के कर्मों को व्याप्त करते हुए उनका बारंबार आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्राग्ने ! उपभोग्य धन के निमित्त विप्र स्तोता तुम्हारी स्तुति करता है। तुम वृत्र-हन्ता और श्रेष्ठ हो। तुम हमें दान योग्य धन द्वारा बढ़ाओ ॥ ४ ॥ रणक्षेत्र में उपस्थित शत्रु सेनाओं को अपने तेज से नष्ट करो और देवताओं की कामना करने वाले यजमान के लिए देव द्वेषी अयाज्ञियों को भी नष्ट करो ॥ ५ ॥ [१५]

इमामु षु सोमसुतिमुप न एन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ।
नू चिद्धि परिमम्नाथे अस्माना वां शश्वद्भिर्ववृतीय वाजैः ॥६
सो अग्न एना नमसा समिद्धोऽच्छा मित्रं वरुणमिन्द्रं वोचेः ।
यत्सीमागश्चकृमा तत्सु मृळ तदर्यमादितिः शिश्रथन्तु ॥७
एता अग्न आशुषाणास इष्टीर्युवोः सचाभ्यश्याम वाजान् ।
मेन्द्रो नो विष्णुर्मरुतः परि ख्यन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥८ ।१६

हे इन्द्राग्नि ! हमारे सोमाभिषव कर्म में पधारो। तुम हमारे सिवाय अन्य किसी को नहीं जानते हो, इसलिए मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ ॥ ६ ॥ हे अग्ने ! समिधाओं द्वारा बढ़कर तुम इन्द्र और मित्र से कहो कि यह हमारी रक्षा के योग्य है। तुम हमारे द्वारा हुए अपराधों को दूर कर हमारी रक्षा करो। अर्यमा और अदिति भी हमें दोष-मुक्त करें ॥ ७ ॥ हे अग्ने ! हम इस यज्ञ के द्वारा तुम्हारा अन्न शीघ्र पावें। इन्द्र, विष्णु, मरुद्गण विरोधियों पर कृपा न करें। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ८ ॥ (१६)

९४ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता-इन्द्राग्नी । छन्द-गायत्री, अनुष्टुप्)

इयं वामस्य मन्मन इन्द्राग्नी पूर्व्यस्तुतिः । अभ्राद्वृष्टिरिवाजनि ॥१
शृणुतं जरितुर्हवमिन्द्राग्नी वनतं गिरः । ईशाना पिप्यतं धियः ॥२
मा पापत्वाय नो नरेन्द्राग्नी माभिशस्तये । मा नो रीरधतं निदे ॥३
इन्द्रे अग्ना नमो बृहत्सुवृक्तिमेरयामहे । धिया धेना अवस्यवः ॥४
ता हि शश्वन्त ईळत इत्था विप्रास ऊतये । सबाधो वाजसातये ॥५

ता वां गीर्भिर्विपन्यवः प्रयस्वन्तो हवामहे ।
मेधसाता सनिष्यवः ॥६ ।१७

हे इन्द्राग्ने ! मेघ से वृष्टि-जल के उत्पन्न होने के समान हम स्तोता ने यह स्तुति उत्पन्न की है ॥ १ ॥ हे इन्द्राग्ने ! आह्वान सुनो । तुम ईश्वर हो । इस अनुष्ठान को सम्पूर्ण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हमें पराजय, निन्दा और हीनता में मत डाल देना ॥ ३ ॥ हम रक्षा की कामना करते हुए इन्द्र और अग्नि की श्रेष्ठ स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ इन्द्राग्नि की मेधावी स्तोता स्तुति करते हैं और समान संकट में पड़े अन्य स्तोता भी अन्न के लिए उनकी स्तुति करते हैं ॥ ५ ॥ अन्न-धन की कामना वाले हम उन इन्द्राग्नि का स्तुतियों द्वारा आह्वान करें ॥ ६ ॥　　　　　　　　　　　　(१७)

इन्द्राग्नी अवसा गतमस्मभ्यं चर्षणीसहा । मा नो दुःशंस ईशत ॥७
मा कस्य नो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥८
गोमद्धिरण्यवद्वसु यद्वामश्वावदीमहे । इन्द्राग्नी तद्वनेमहि ॥६
यत्सोम आ सुते नर इन्द्राग्नी अजोहवुः । सप्तीवन्ता सपर्यवः ॥१०
उक्थेभिर्वृत्रहन्तमा या मन्दाना चिदा गिरा । आङ्गूषैराविवासतः ॥११
ताविद्दुःशंसं मर्त्यं दुर्विद्वांसं रक्षस्विनम् ।
आभोगं हन्मना हतमुदधिं हन्मना हतम् ॥१२ ।१८

हे इन्द्राग्ने ! तुम मनुष्यों को प्रकट करते हो । तुम अन्न सहित आगमन करो । कटु-भाषी पुरुष हम पर शासन न करे ॥ ७ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हम शत्रु द्वारा हिंसित न हों । हमारा मङ्गल करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्राग्ने ! हम तुमसे जिस विविध प्रकार के धन को माँगते हैं, वह उपभोग्य हो ॥ ६ ॥ सोमाभिषव के पश्चात् कर्म करने वाले पुरुष इन्द्राग्नि को बारम्बार आहूत करते हैं ॥ १० ॥ हम वृत्रहन्ता इन्द्र और अग्नि की स्तुतियों से सेवा करते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्राग्ने ! तुम अपहारक दुष्ट को घड़े के समान अपने से तोड़ डालो ॥ १८ ॥

९५ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता-सरस्वती, सरस्वान् । छन्द-त्रिष्टुप्,)

प्र क्षोदसा धायसा सस्र एषा सरस्वती धरुणमायसी पूः ।
प्रबाबधाना रथ्येव याति विश्वा अपो महिना सिन्धुरन्याः ॥१
एकाचेतत्सरस्वती नदीनां शुचिर्यती गिरिभ्य आ समुद्रात् ।
रायश्चेतन्ती भुवनस्य भूरेर्घृतं पयो दुदुहे नाहुषाय ॥२
स वावृधे नर्यो योषणासु वृषा शिशुर्वृषभो यज्ञियासु ।
स वाजिनं मघवद्भ्यो दधाति वि सातये तन्वं मामृजीत ॥३
उत स्या नः सरस्वती जुषाणोप श्रवत् सुभगा यज्ञे अस्मिन् ।
मितज्ञुभिर्नमस्यैरियाना राया युजा चिदुत्तरा सखिभ्यः ॥४
इमा जुह्वाना युष्मदा नमोभिः प्रति स्तोमं सरस्वति जुषस्व ।
तव शर्मन्प्रियतमे दधाना उपस्थेयाम शरणं न वृक्षम् ॥५
अयमु ते सरस्वति वसिष्ठो द्वारावृतस्य सुभगे व्यावः ।
वर्ध शुभ्रे स्तुवते रासि वाजान् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ॥१९

लौह निर्मित नगरी के समान धारण करने वाली होकर यह सरस्वती धारक जल के सहित गमन करती है। वह अपनी महिमा से वहने वाली सब नदियों को बाधा देने वाले सारथि के समान गमन करती है ॥ १ ॥ नदियों में श्रेष्ठ जो सरस्वती पर्वत से चल कर समुद्र तक जाती है, उसने राजा नहुष की याचना को सुना और नहुष के लिए घृत-दुग्ध का दोहन किया ॥ २ ॥ वर्षा करने में समर्थ सरस्वान् (वायु) मनुष्यों के हित के लिए यज्ञीय योषित के मध्य प्रवृद्ध हुए। वे हवि वाले यजमानों को बलवान् पुत्र प्रदान करते हैं और उनके शरीर को शुद्ध करते हैं ॥ ३ ॥ सुन्दर धन वाली सरस्वती हमारी स्तुति सुनें। पूज्य देवता भी उनके समक्ष झुकते हैं। वह धनवती देवी अपने उपासकों पर दया करती हैं ॥ ४ ॥ हे सरस्वते ! हम हवि वहन करते हुए और नमस्कार करते हुए यजमान तुमसे धन पावेंगे। तुम हमारी स्तुति का सेवन

करो। आश्रय रूपी वृक्ष के समान हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त करेंगे ॥ ५ ॥ हे सरस्वती ! तुम श्रेष्ठ धन वाली हो, यह वसिष्ठ यज्ञ-द्वार का उद्घाटन करता है। तुम शुभ्र स्तोता को अन्न प्रदान करो और सदा हमारा पालन करो ॥६॥[१९]

९६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः। देवता—सरस्वती, सरस्वान्। छन्द—बृहती, पंक्तिः, गायत्री)

बृहदु गायिषे वचोऽसुर्या नदीनाम्।
सरस्वतीमिन्महया सुवृक्तिभिः स्तोमैर्वसिष्ठ रोदसी ॥१
उभे यत्ते महिना शुभ्रे अन्धसी अधिक्षियन्ति पूरवः।
सा नो बोध्यवित्री मरुत्सखा चोद राधो मघोनाम् ॥२
भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वत्यकवारी चेतति वाजिनीवती।
गृणाना जमदग्निवत्स्तुवाना च वसिष्ठवत् ॥३
जनीयन्तो न्वग्रवः पुत्रीयन्तः सुदानवः। सरस्वन्तं हवामहे ॥४
ये ते सरस्व ऊर्मयो मधुमन्तो घृतश्चुतः। तेभिर्नोऽविता भव ॥५
पीपिवांसं सरस्वतः स्तनं यो विश्वदर्शतः। भक्षीमहि प्रजामिषम् ।६।२०

हे वसिष्ठ ! नदियों में अत्यन्त वेग वाली सरस्वती की स्तुति करो। उन्हीं का पूजन करो ॥ १ ॥ हे उज्वल वर्ण वाली सरस्वती तुम्हारी कृपा से दिव्य और पार्थिव अन्न प्राप्त होते हैं। तुम हमारी रक्षा करो और हवि देने वाले यजमानों के पास धन भेजो ॥ २ ॥ सरस्वती कल्याण करें। वे हमें बुद्धि दें। जमदग्नि के समान मेरे द्वारा स्तुत होने पर वसिष्ठ की स्तुति को ग्रहण करो ॥ ३ ॥ हम स्तोता स्त्री-पुत्र की कामना वाले हैं। हम सरस्वान् देव की स्तुति करते हैं ॥ ४ ॥ हे सरस्वान् ! तुम्हारी जो जल-राशि वृष्टि देती है उसके द्वारा हमारा कल्याण करो ॥ ५ ॥ हम सरस्वान् देवता के जलाशय को प्राप्त करें। वह देवता सब के दर्शन-योग्य हैं। उनसे [illegible] और अन्न पावें ॥ ६ ॥

९७ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । दे०–इन्द्रः बृहस्पतिः, इन्द्राब्रह्मणस्पती । छन्द–त्रिष्टुप्,)

यज्ञे दिवो नृषदने पृथिव्या नरो यत्र देवयवो मदन्ति ।
इन्द्राय यत्र सवनानि सुन्वे गमन्मदाय प्रथमं वयश्च ॥१
आ दैव्या वृणीमहेऽवांसि बृहस्पतिर्नो मह आ सखायः ।
यथा भवेम मीळ्हुषो अनागा यो नो दाता परावतः पितेव ॥२
तमु ज्येष्ठं नमसा हविर्भिः सुशेवं ब्रह्मणस्पतिं गृणीषे ।
इन्द्रं श्लोको महि दैव्यः सिषक्तु यो ब्रह्मणो देवकृतस्य राजा ॥३
स आ नो योनिं सदतु प्रेष्ठो बृहस्पतिर्विश्ववारो यो अस्ति ।
कामो रायः सुवीर्यस्य तं दात्पर्षन्नो अति सश्चतो अरिष्टान् ॥४
तमा नो अर्कममृताय जुष्टमिमे धासुरमृतासः पुराजाः ।
शुचिक्रन्दं यजतं पस्त्यानां बृहस्पतिमनर्वाणं हुवेम ॥५ ।२१

जिस यज्ञ में देवताओं की कामना वाले मेधावी जन हर्षित होते हैं और जहाँ सब सवनों में इन्द्र के लिए सोमाभिषव होता है, उस यज्ञ में सर्व प्रथम इन्द्र अपने अश्वों सहित आवें ॥ १ ॥ हम देवताओं से रक्षा-याचना करते हैं । बृहस्पति हमारी हवि को ग्रहण करें । जैसे दूर से आकर पिता पुत्र को धन देता है, वैसे बृहस्पति हमें धन दें । हम उनके प्रति किसी प्रकार अपराधी न हों ॥ २ ॥ मैं उन ब्रह्मणस्पति को नमस्कार और हव्य अर्पित करता हूँ । जो स्तोत्र मन्त्रों में श्रेष्ठ है, वही स्तोत्र इन्द्र की सेवा करे ॥ ३ ॥ ब्रह्मणस्पति हमारी वेदी पर विराजमान हों । वे हमारी धन और बल की कामना को पूर्ण करें । हम जिन विघ्नों से ग्रस्त हैं, वे उनसे पार लगावें ॥४॥ अविनाशी देवता अन्न दें । हम यज्ञ के योग्य बृहस्पति का आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

तं शग्मासो अरुषासो अश्वा बृहस्पतिं सहवाहो वहन्ति ।
सहश्चिद्यस्य नीळवत्सधस्थं नभो न रूपमरुषं वसानाः ॥६

स हि शुचिः शतपत्रः स शुन्ध्युर्हिरण्यवाशीरिषिरः स्वर्षाः ।
बृहस्पतिः स स्वावेश ऋष्वः पुरू सखिभ्य आसुतिं करिष्ठः ॥७
देवी देवस्य रोदसी जनित्री बृहस्पतिं वावृधतुर्महित्वा ।
दक्षाय्याय दक्षता सखायः करद् ब्रह्मणे सुतरा सुगाधा ॥८
इयं वां ब्रह्मणस्पते सुवृक्तिर्ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे अकारि ।
अविष्टं धियो जिगृतं पुरन्धीर्जजस्तमर्यो वनुषामरातीः ॥९
बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥१० २२

आदित्य के समान तेजस्वी अश्व उन बृहस्पति को लावें । उन बृहस्पति के पास गृह और श्रेष्ठ बल हैं ॥ ६ ॥ बृहस्पति के अनेक वाहन हैं । शोधक और रमणीक वाणों से सजे हैं । वे गमनशील और दर्शनीय हैं । स्तोता को ये वाहन प्रचुर अन्न प्राप्त कराते हैं ॥ ७ ॥ जननी रूपी द्यावा-पृथिवी बृहस्पति को अपनी महिमा से बढ़ावें । मित्रगण भी उन्हें बढ़ावें । वे जलों को अन्न के निमित्त सुख रूप में करते हैं ॥ ८ ॥ हे ब्रह्मणस्पते ! मैंने तुम्हारी और वज्रधर इन्द्र की श्रेष्ठ स्तुति की है । तुम हमारे यज्ञ की रक्षा करो । हम पर आक्रमण करने वाली शत्रु-सेना का संहार करो ॥ ९ ॥ हे बृहस्पति और इन्द्र ! तुम पार्थिव और दिव्य धनों के स्वामी हो । स्तोता को धन देने वाले हो । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ १० ॥ [२२]

९८ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–इन्द्रः, इन्द्राबृहस्पती । छन्द–त्रिष्टुप्)

अध्वर्यवोऽरुणं दुग्धमंशुं जुहोतन वृषभाय क्षितीनाम् ।
गौराद्वेदीयाँ अवपानमिन्द्रो विश्वाहेद्याति सुतसोममिच्छन् ॥१
यद्दधिषे प्रदिवि चार्वन्नं दिवेदिवे पीतिमिदस्य वक्षि ।
उत हृदोत मनसा जुषाण उशन्निन्द्र प्रस्थितान् पाहि सोमान् ॥२
जज्ञानः सोमं सहसे पपाथ प्र ते माता महिमानमुवाच ।

एन्द्र पप्राथोर्वन्तरिक्षं युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ ॥३

यद्योधया महतो मन्यमानान्त्साक्षाम तान् बाहुभिः शाशदानान् ।
यद्वा नृभिर्वृत इन्द्राभियुध्यास्तं त्वयाजिं सौश्रवसं जयेम ॥४

प्रेन्द्रस्य वोचं प्रथमा कृतानि प्र नूतना मघवा या चकार ।
यदेददेवीरसहिष्ट माया अथाभवत्केवलः सोमो अस्य ॥५

तवेदं विश्वमभितः पशव्यं यत्पश्यसि चक्षसा सूर्यस्य ।
गवामसि गोपतिरेक इन्द्र भक्षीमहि ते प्रयतस्य वस्वः ॥६

बृहस्पते युवमिन्द्रश्च वस्वो दिव्यस्येशाथे उत पार्थिवस्य ।
धत्तं रयिं स्तुवते कीरये चिद्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२३

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र के लिए सोमाहुति दो । वे इन्द्र सोम का अभिषव करने वाले यजमान को ढूँढ़ते हुए सदा आते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! प्राचीन काल में तुमने जिस सोम को धारण किया था, उसी सोम के पीने की अब भी इच्छा करो । तुम इस अर्पित सोम का पान करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुमने उत्पन्न होते ही सोम पिया था । अदिति ने तुम्हारी महिमा बताई थी कि तुमने विशाल अन्तरिक्ष को अपने तेज से परिपूर्ण किया । तुमने संग्राम द्वारा देवताओं को धन प्राप्त कराया ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम अहंकारी शत्रुओं से हमारा संग्राम कराओगे, तब हम उन्हें हरावेंगे । तुम मरुद्गण को साथ लेकर संग्राम करोगे, तब हम विजय प्राप्त करेंगे ॥ ४ ॥ मैं इन्द्र के प्राचीन कर्मों का वर्णन करता हूँ । इन्द्र के नवीन कर्मों को भी कहूँगा । इन्होंने राक्षसी माया को नष्ट किया है, अतः यह सोम केवल इन्द्र के लिए है ॥ ५ ॥ हे इन्द्र ! जिस विश्व को तुम सूर्य के प्रकाश से देखते हो, वह सब तुम्हारा ही है । तुम्हीं सब गौओं के अधिपति हो, हम तुम्हारे दान का ही उपभोग करते हैं ॥ ६ ॥ हे बृहस्पति और इन्द्र ! तुम दिव्य और पार्थिव धनों के अधिपति हो । तुम स्तोता को धन-दान करते हो । तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२३]

६६ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—विष्णुः, इन्द्राविष्णू । छन्द—त्रिष्टुप्,)

परो मात्रया तन्वा वृधान न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति ।
उभे ते विद्म रजसी पृथिव्या विष्णो देव त्वं परमस्य वित्से ॥१
न ते विष्णो जायमानो न जातो देव महिम्नः परमन्तमाप ।
उदस्तभ्ना नाकमृष्वं बृहन्तं दाधर्थ प्राचीं ककुभं पृथिव्याः ॥२
इरावती धेनुमती हि भूतं सूयवसिनी मनुषे दशस्या ।
व्यस्तभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः ॥३
उरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकं जनयन्ता सूर्यमुषासमग्निम् ।
दासस्य चिद् वृषशिप्रस्य माया जघ्नथुर्नरा पृतनाज्येषु ॥४
इन्द्राविष्णू दृंहिताः शम्बरस्य नव पुरो नवतिं च श्नथिष्टम् ।
शतं वर्चिनः सहस्रं च साकं हथो अप्रत्यसुरस्य वीरान् ॥५
इयं मनीषा बृहती बृहन्तोरुक्रमा तवसा वर्धयन्ती ।
ररे वां स्तोमं विदथेषु विष्णो पिन्वतमिषो वृजनेष्विन्द्र ॥६
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२४

हे विष्णो ! तुम्हारी महिमा को कोई नहीं जानता । हम तुम्हारे दोनों लोकों के ज्ञाता हैं, परन्तु अपने परमलोक को केवल तुम्हीं जानते हो ॥ १ ॥ हे विष्णो ! पृथिवी पर जो उत्पन्न हुए हैं और जो होंगे, उनमें भी तुम्हारी महिमा का ज्ञाता कोई नहीं है । तुमने विराट स्वर्ग को धारण किया है और पृथिवी की पूर्व दिशा को भी धारण किया है ॥ २ ॥ हे द्यावापृथिवी ! तुम स्तोता को देने की इच्छा से अन्नवती और गौ-सम्पन्ना हुई हो । हे विष्णो ! तुमने आकाश पृथिवी को विविध रूप से धारण किया है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र और विष्णो । तुमने सूर्य, अग्नि और उषा को प्रकट कर यजमान के लिए स्वर्ग की रचना की है । तुमने रणक्षेत्र में दस्यु की माया का नाश

है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र और विष्णो ! तुमने शम्बर के निन्यानवे पुरों को तोड़ा और वर्चि के शत सहस्र वीरों का संहार किया ॥ ५ ॥ यह स्तुति इन्द्र और विष्णु की बल-वृद्धि करेगी । हे इन्द्र और विष्णो ! संग्राम भूमि में तुमको स्तोत्र अर्पित किया है, तुम हमारे अन्न की वृद्धि करो ॥ ६ ॥ हे विष्णो मैंने यज्ञ में स्तुति की है । तुम हमारे हव्य को स्वीकार करो । हमारी स्तुति तुम्हारी वृद्धि करे और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२४]

१०० सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता—विष्णुः । छन्द—त्रिष्टुप्)

नू मर्तो दयते सनिष्यन्यो विष्णव उरुगायाय दाशत् ।
प्र यः सत्राचा मनसा यजात एतावन्तं नर्यमाविवासात् ॥१
त्वं विष्णो सुमतिं विश्वजन्यामप्रयुतामेवयावो मतिं दाः
पर्चो यथा नः सुवितस्य भूरेरश्वावतः पुरुश्चन्द्रस्य रायः ॥२
त्रिर्देवः पृथिवीमेष एतां वि चक्रमे शतर्चसं महित्वा ।
प्र विष्णुरस्तु तवसस्तवीयान्त्वेषं ह्यस्य स्थविरस्य नाम ॥३
वि चक्रमे पृथिवीमेष एतां क्षेत्राय विष्णुर्मनुषे दशस्यन् ।
ध्रुवासो अस्य कीरयो जनास उरुक्षितिं सुजनिमा चकार ॥४
प्र तत्ते अद्य शिपिविष्ट नामार्यः शंसामि वयुनानि विद्वान् ।
तं त्वा गृणामि तवसमतव्यान्क्षयन्तमस्य रजसः पराके ॥५
किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत्प्र यद्ववक्षे शिपिविष्टो अस्मि ।
मा वर्पो अस्मदप गूह एतद्यदन्यरूपः समिथे बभूथ ॥६
वषट् ते विष्णवास आ कृणोमि तन्मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम् ।
वर्धन्तु त्वा सुष्टुतयो गिरो मे यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७ ।२५

जो विष्णु के निमित्त हवि देता है और मन्त्रों द्वारा पूजन करता है वह धनेच्छु मनुष्य शीघ्र ही धन पाता है ॥ १ ॥ हे विष्णो ! तुम हम प अनुग्रह करो । जिस प्रकार हम प्राप्तव्य धन पा सकें ऐसी कृपा करो ॥ २ ।

विष्णु ने पृथिवी पर तीन बार चरण निक्षेप किया, वे प्रवृद्ध विष्णु हमारे ईश्वर हैं। वे अत्यन्त तेजस्वी हैं ॥ ३ ॥ विष्णु ने पृथिवी को निवास के लिए देने की इच्छा से पाद प्रक्षेप किया और विस्तृत स्थान की रचना की ॥ ४ ॥ हे विष्णो ! हम तुम्हारे प्रसिद्ध नामों का कीर्तन करेंगे, तुम प्रवृद्ध की हम अवृद्ध मनुष्य स्तुति करेंगे ॥ ५ ॥ हे विष्णो ! मैंने जो तुम्हारा 'शिपिविष्ट' नाम लिया है वह क्या उचित नहीं है ? संग्रामों में तुमने अनेक रूप धारण किये हैं। तुम अपने रूप को हम से मत छिपाओ ॥ ६ ॥ हे विष्णो ! मैं तुम्हारे निमित्त वषट्कार करता हूँ। तुम हमारे हव्य को स्वीकार करो। हमारी स्तुति तुम्हें प्रवृद्ध करे और तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ७ ॥ [२१]

१०१ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः। देवता—पर्जन्यः। छन्द—त्रिष्टुप्)

तिस्रो वाचः प्र वद ज्योतिरग्रा या एतद्दुह्रे मधुदोघमूधः ।
स वत्सं कृण्वन् गर्भमोषधीनां सद्यो जातो वृषभो रोरवीति ॥१
यो वर्धन ओषधीनां यो अपां यो विश्वस्य जगतो देव ईशे ।
स त्रिधातु शरणं शर्म यंसत् त्रिवर्तु ज्योतिः स्वभिष्ट्यस्मे ॥२
स्तरीरु त्वद्भवति सूत उ त्वद्यथावशं तन्वं चक्र एषः ।
पितुः पयः प्रति गृभ्णाति माता तेन पिता वर्धते तेन पुत्रः ॥३
यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुस्तिस्रो द्यावस्त्रेधा सस्रुरापः ।
त्रयः कोशास उपसेचनासो मध्वः श्चोतन्त्यभितो विरप्शम् ॥४
इदं वचः पर्जन्याय स्वराजे हृदो अस्त्वन्तरं तज्जुजोषत् ।
मयोभुवो वृष्टयः सन्त्वस्मे सुपिप्पला ओषधीर्देवगोपाः ॥५
स रेतोधा वृषभः शश्वतीनां तस्मिन्नात्मा जगतस्तस्थुषश्च ।
तन्म ऋतं पातु शतशारदाय यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६ ।१

अग्र भाग में ओंकार युक्त जो ऋक्, यजुः और साम नामक तीन वाक्य जल का दोहन करते हैं, इनको कहो। सहगामी विद्युत रूप अग्नि

उत्पन्न करते हुए पर्जन्य वृषभ के समान शब्द करते हैं ॥ १ ॥ जो पर्जन्य औषधियों और जलों के बढ़ाने वाले हैं वे हमें भूमियुक्त घर देकर सुखी करें। वे तीन ऋतुओं में विद्यमान तेज को हमें प्रदान करें ॥ २ ॥ पर्जन्य का एक रूप वंध्या गौ के समान और दूसरा रूप वृष्टि कारक है। यह इच्छानुसार रूप धारण करते हैं। मातृभूता पृथिवी स्वर्ग रूप पिता से रस प्राप्त करती है, तब स्वर्ग सब प्राणियों को बढ़ाते हैं ॥ ३ ॥ जिन में सब प्राणी और सब लोक निवास करते हैं और जिनसे तीन प्रकार से जल निकलता है। जिनके सब ओर तीन प्रकार के मेघ जल-वृष्टि करते हैं, वे देवता पर्जन्य ही हैं ॥ ४ ॥ पर्जन्य की यह स्तुति की गई, वे इसे स्वीकार करें। हमारे लिए कल्याणमयी वर्षा हो और औषधियाँ उत्तम फल वाली हों ॥ ५ ॥ पर्जन्य अनेक औषधियों के लिए जल धारण करते हैं। सब प्राणियों की आत्मा उन्हीं में निवास करती है। उनका जल मेरी सौ वर्ष तक रक्षा करे। तुम सदा हमारा पालन करो ॥ ६ ॥ [१]

१०२ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः कुमारो वाग्नेयः । देवता—पर्जन्य । छन्द—त्रिष्टुप्)

पर्जन्याय प्र गायत दिवस्पुत्राय मीळ्हुषे । स नो यवसमिच्छतु ॥१
यो गर्भमोषधीनां गवां कृणोत्यर्वताम् । पर्जन्यः पुरुषीणाम् ॥२
तस्मा इदास्ये हविर्जुहोता मधुमत्तमम् । इळां नः संयतं करत् ॥३ ।२

हे स्तोताओ ! पर्जन्य की स्तुति का गान करो ॥ १ ॥ जो पर्जन्य औषधियों, गौओं, अश्वों आदि को उत्पन्न करते हैं ॥ २ ॥ उन्हीं पर्जन्य के लिए अग्नि में आहुति दो। वे हमें अन्न प्रदान करें ॥ ३ ॥ [२]

१०३ सूक्त

(ऋषि—वसिष्ठः । देवता—मण्डूकाः । छन्द—अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

संवत्सरं शशयाना ब्राह्मणा व्रतचारिणः ।
वाचं पर्जन्यजिन्वितां प्र मण्डूका अवादिषुः ॥१

दिव्या आपो अभि यदेनमायन्दृतिं न शुष्कं सरसी शयानम् ।
गवामह न मायुर्वत्सिनीनां मण्डूकानां वग्नुरत्रा समेति ॥२
यदीमेनाँ उशतो अभ्यवर्षीत्तृष्यावतः प्रावृष्यागतायाम् ।
अख्खलीकृत्या पितरं न पुत्रो अन्यो अन्यमुप वदन्तमेति ॥३
अन्यो अन्यमनु गृभ्णात्येनोरपां प्रसर्गे यदमन्दिषाताम् ।
मण्डूको यदभिवृष्टः कनिष्कन्पृश्निः सम्पृङ्क्ते हरितेन वाचम् ॥४
यदेषामन्यो अन्यस्य वाचं शाक्तस्येव वदति शिक्षमाणः ।
सर्वं तदेषां समृधेव पर्व यत्सुवाचो वदथनाध्यप्सु ॥५ ।३

व्रती स्तोता के समान, एक वर्ष सोकर जागने वाले मेंढक पर्जन्य के लिए स्तुति-वाक्य उच्चारित करते हैं ॥ १ ॥ जब सरोवर में सुप्त मेंढकों के पास दिव्य जल पहुँचता है, तब सवत्साधेनु के समान मेंढक शब्द करते हैं ॥ २ ॥ वर्षा-काल में जब पर्जन्य प्यासे मेंढकों को जल से सींचते हैं, तब मेंढक एक दूसरे के पास गमन करते हैं ॥ ३ ॥ जल वृष्टि से दो जातियों के मेंढक हर्षित होते हैं और लम्बी उछलकूद करते हैं, तब परस्पर अनुग्रह करते हैं ॥ ४ ॥ जैसे शिष्य गुरु का अनुकरण करता है, वैसे ही परस्पर एक दूसरे के शब्द का वह अनुकरण करते हैं। हे मेंढको ! तुम सुन्दर शब्द करते हुए जल पर उछलते कूदते हो, उस समय तुम्हारे शरीर के सब अवयव पुष्ट हो जाते हैं ॥ ५ ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　[३]

गोमायुरेको अजमायुरेकः पृश्निरेको हरित एक एषाम् ।
समानं नाम बिभ्रतो विरूपाः पुरुत्रा वाचं पिपिशुर्वदन्तः ॥६
ब्राह्मणासो अतिरात्रे न सोमे सरो न पूर्णमभितो वदन्तः ।
संवत्सरस्य तदहः परि ष्ठ यन्मण्डूकाः प्रावृषीणं बभूव ॥७
ब्राह्मणासः सोमिनो वाचमक्रत ब्रह्म कृण्वन्तः परिवत्सरीणम् ।
अध्वर्यवो घर्मिणः सिष्विदाना आविर्भवन्ति गुह्या न के चित् ॥८
देवहितिं जुगुपुर्द्वादशस्य ऋतुं नरो न प्र मिनन्त्येते ।
संवत्सरे प्रावृष्यागतायां तप्ता घर्मा अश्नुवते विसर्गम् ॥९

गोमायुरदादजमायुरदात्पृश्निरदाद्धरितो नो वसूनि ।
गवां मण्डूका ददतः शतानि सहस्रसावे प्र तिरन्त आयुः ॥१० ।४

कोई मेंढक गौ का-सा और कोई बकरे जैसा शब्द करता है । कोई धूम्र वर्ण का और कोई हरित वर्ण वाला है । यह विभिन्न रूप वाले मेंढक अनेक स्थानों पर शब्द करते हुए प्रकट हो जाते हैं ॥ ६ ॥ हे मेंढको ! अतिरात्र नामक सोम याग में स्तोता जैसे शब्द करते हैं, वैसे ही भरे हुए सरोवर में शब्द करते हुए तुम चारों ओर निवास करो ॥ ७ ॥ यह मेंढक सोम वाले स्तोता के समान शब्द करते हैं । धूप के कारण बिल में छिपे मेंढक वर्षा-काल में बाहर निकल आते हैं ॥ ८ ॥ मेंढक देव-नियमों के रक्षक हैं । वे ऋतुओं को नष्ट नहीं करते । वर्ष के पूर्ण होने पर आगत वर्षा से प्रसन्न मेंढक गर्व के बन्धन से मुक्त होते हैं ॥९॥ गौ के समान शब्द करते हुए मेंढक हमें धन प्रदान करें । बकरे के समान शब्द वाले मेंढक भी हमें धन दें । भूरे और हरे रङ्ग के मेंढक भी धनदाता हों । सहस्रों वनस्पतियों को उत्पन्न करने वाली वर्षा ऋतु में यह मेंढक गण हमें गौएं दें और हमारी आयु की वृद्धि करें ॥ १० ॥ (४)

१०४ सूक्त

(ऋषि–वसिष्ठः । देवता–इन्द्रासोमो, अग्निः, देवाः, ग्रावाणः, मरुतः वसिष्ठ पृथिव्यन्तरिक्षे । छन्द–जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतं न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः ।
परा शृणीतमचितो न्योषतं हतं नुदेथां नि शिशीतमत्रिणः ॥१
इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघं तपुर्ययस्तु चरुरग्निवाँ इव ।
ब्रह्मद्विषे क्रव्यादे घोरचक्षसे द्वेषो धत्तमनवायं किमीदिने ॥२
इन्द्रासोमा दुष्कृतो वव्रे अन्तरनारम्भणे तमसि प्र विध्यतम् ।
यथा नातः पुनरेकश्चनोदयत्तद्वामस्तु सहसे मन्युमच्छवः ॥३
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवो वधं सं पृथिव्या अघशंसाय तर्हणम् ।
उत्तक्षतं स्वर्यं पर्वतेभ्यो येन रक्षो वावृधानं निजूर्वथः ॥४
इन्द्रासोमा वर्तयतं दिवस्पर्यग्नितप्तेभिर्युवमश्महन्मभिः ।

तपुर्वधेभिरजरेभिरत्रिणो नि पर्शाने विध्यतं यन्तु निस्वरम् ॥५ ।५

हे इन्द्र और सोम ! तुम राक्षसों को सन्तप्त और नष्ट करो। अन्धकार में प्रवृद्ध राक्षसों का पतन करो। इन्हें मार कर भगाओ अथवा फेंक दो॥ १ ॥ हे इन्द्र और सोम ! इस राक्षस को वशीभूत करो। इसे अग्नि में फेंके गए चरु के समान अदृश्य कर दो। ब्राह्मणों के वैरी, मांसाहारी, कटु भाषी, वक्र दृष्टि वाले राक्षसों के प्रति सदा शत्रुता रहे, ऐसा करो॥ २॥ हे इन्द्र और सोम ! दुष्कर्म करने वाले राक्षस को मार कर फेंक दो। एक भी राक्षस शेष न रहे। तुम्हारा क्रोधयुक्त बल उन्हें अपने वश में करे॥ ३॥ हे इन्द्र और सोम ! अन्तरिक्ष से हिंसक आयुध को प्रकट करो। इस पृथिवी से भी शत्रु-हिंसक आयुध प्रकट करो। मेघ से राक्षसों को नष्ट करने वाले वज्र को उत्पन्न करो॥ ४॥ हे इन्द्र और सोम ! प्रत्येक दिशा में आयुधों को प्रेरित करो। अग्नि और पत्थरों के अस्त्रों द्वारा राक्षसों की बगलों को फाड़ दो। वे राक्षस भयभीत होकर भाग जाँय॥ ५॥ [१]

इन्द्रासोमा परि वां भूतु विश्वत इयं मतिः कक्ष्याश्वेव वाजिना ।
यां वां होत्रां परिहिनोमि मेधयेमा ब्रह्माणि नृपतीव जिन्वतम् ॥६
प्रति स्मरेथां तुजयद्भिरेवैर्हतं द्रुहो रक्षसो भङ्गुरावतः ।
इन्द्रासोमा दुष्कृते मा सुगं भूद्यो नः कदा चिदभिदासति द्रुहा ॥७
यो मा पाकेन मनसा चरन्तमभिचष्टे अनृतेभिर्वचोभिः ।
आप इव काशिना सङ्गृभीता असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता ॥८
ये पाकशंसं विहरन्त एवैर्ये वा भद्रं दूषयन्ति स्वधाभिः ।
अहये वा तान् प्रददातु सोम आ वा दधातु निर्ऋतेरुपस्थे ॥९
यो नो रसं दिप्सति पित्वो अग्ने यो अश्वानां यो गवां यस्तनूनाम् ।
रिपुः स्तेनः स्तेयकृद्दभ्रमेतु नि ष हीयतां तन्वा तना च ॥१०।६

हे इन्द्र और सोम ! जैसे रस्सी अश्व को बाँधती है, वैसे ही यह स्तुति तुम्हारे पास पहुँचे। मैं इस स्तोत्र को तुम्हारी ओर भेजता हूँ, तुम इसे राजा के समान फल से परिपूर्ण करो॥६॥ हे इन्द्र और सोम ! तुम अपने गामी

अश्वों पर आओ। हिंसक राक्षसों को नष्ट करो। पापी कभी सुख न पावे जिससे वह कभी हमें मारने का अवसर न पा सके ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! मिथ्या-भाषी राक्षस, मुट्ठी में बँधा जल जैसे निकल जाता है, वैसे ही अस्तित्वहीन होवे ॥ ८ ॥ जो सत्यप्रिय होकर भी मुझे स्वार्थवश लांछित करे और जो कल्याण की भावना वाले पुरुष मुझे व्यर्थ दोष दें उन्हें सर्प के ऊपर फेंक दो ॥ ९ ॥ हे अग्ने ! जो दुष्ट हमारे अन्न को नष्ट करे अथवा गौ, अश्व, संतानादि को नष्ट करे, वह हिंसित हो और सन्तान सहित निर्मूल हो जाय ॥ १० ॥ (६)

परः सो अस्तु तन्वा तना च तिस्रः पृथिवीरधो अस्तु विश्वाः ।
प्रति शुष्यतु यशो अस्य देवा यो नो दिवा दिप्सति यश्च नक्तम् ॥११
सुविज्ञानं चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसी पस्पृधाते ।
तयोर्यत्सत्यं यतरदृजीयस्तदित्सोमोऽवति हन्त्यासत् ॥१२
न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति न क्षत्रियं मिथुया धारयन्तम् ।
हन्ति रक्षो हन्त्यासद्वदन्तमुभाविन्द्रस्य प्रसितौ शयाते ॥१३
यदि वाहमनृतदेव आस मोघं वा देवाँ अप्यूहे अग्ने ।
किमस्मभ्यं जातवेदो हृणीषे द्रोघवाचस्ते निर्ऋथं सचन्ताम् ॥१४
अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि यदि वायुस्ततप पूरुषस्य ।
अधा स वीरैर्दशभिर्वि यूया यो मा मोघं यातुधानेत्याह ॥१५ ।७

वह राक्षस देह रहित हो, सन्तान-हीन हो। तीनों लोकों के नीचे गिरे। हे देवगण ! हमारी हिंसा-कामना वाले राक्षस की कीर्ति शुष्क हो जाय ॥११॥ मिथ्या और यथार्थ वचन परस्पर प्रतिस्पर्द्धी होते हैं यह मेधावी जन जानते हैं। सोम सत्य का पालन करते और असत्य का नाश करते हैं ॥ १२ ॥ पापी मिथ्यावादी को सोम हिंसित करते हैं। वह असत्याचरण वाले को नष्ट करते हैं। असत्यभाषी दुष्ट इन्द्र के पाश में पड़ते हैं ॥ १३ ॥ यदि मैं असत्य देवताओं की उपासना करूँ तो हे अग्ने ! तुम क्रोध क्यों करते हो ? मिथ्या-भाषी पुरुष तुम्हारी हिंसा के लक्ष्य हों ॥ १४ ॥ यदि मैं राक्षस हूँ और किसी

के आयु-नाश का कारण हूँ तो अभी मृत्यु को प्राप्त होऊँ या मुझे जो राक्षस बतावे उसकी सन्तति नष्ट हो जाय ॥ १५ ॥ (७)

यो मायातुं यातुधानेत्याह यो वा रक्षाः शुचिरस्मीत्याह ।
इन्द्रस्तं हन्तु महता वधेन विश्वस्य जन्तोरधमस्पदीष्ट ॥१६
प्र या जिगाति खर्गलेव नक्तमप द्रुहा तन्वं गूहमाना ।
वव्राँ अनन्ताँ अव सा पदीष्ट ग्रावाणो घ्नन्तु रक्षस उपब्दैः ॥१७
वि तिष्ठध्वं मरुतो विक्ष्विच्छत गृभायत रक्षसः सं पिनष्टन ।
वयो ये भूत्वी पतयन्ति नक्तभिर्ये वा रिपो दधिरे देवे अध्वरे ॥१८
प्र वर्तय दिवो अश्मानमिन्द्र सोमशितं मघवन्त्सं शिशाधि ।
प्राक्तादपाक्तादधरादुदक्तादभि जहि रक्षसः पर्वतेन ॥१९
एत उ त्ये पतयन्ति श्वयातव इन्द्रं दिप्सन्ति दिप्सवोऽदाभ्यम् ।
शिशीते शक्रः पिशुनेभ्यो वधं नूनं सृजदशनिं यातुमद्भ्यः ॥२० ।८

जो दुष्ट मुझ साधु को 'राक्षस' बतावें और अपने को साधु कहें, इन्द्र उन्हें अपने वज्र से मार दें। वह सब प्राणियों में भी निकृष्ट गति को प्राप्त करे ॥ १६ ॥ रात्रि के समय जो राक्षसी अपने शरीर के उलूक के समान छिपा कर चले, वह नीचे मुख कर घोर गर्त में गिरे, अभिषवण प्रस्तर भी अपने शब्द से राक्षसों का नाश करें ॥ १७ ॥ हे मरुद्गण! तुम विविध प्रकार से प्रजाओं में रहो। रात्रि के समय पक्षी के रूप में आने वाले यज्ञ-हिंसक राक्षसों को पकड़ कर चूर्णित कर दो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! अन्तरिक्ष से वज्र को चलाओ। सब दिशाओं में राक्षसों से रक्षा करो ॥ १९ ॥ यह राक्षस कुत्तों के सहित यहाँ आए हैं। जो राक्षस इन्द्र की हिंसा करना चाहें उन्हें मारने को इन्द्र अपने वज्र को तीक्ष्ण करते हैं। इन्द्र राक्षसों पर अपने वज्र को चलावें ॥ २० ॥ [८]

इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरो हविर्मथीनामभ्या विवासताम् ।
अभीदु शक्रः परशुर्यथा वनं पात्रेव भिन्दन्त्सत एति रक्षसः ॥२१
उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ॥२२
मा नो रक्षो अभि नड्यातुमावतामपोच्छतु मिथुना या किमीदिना ।
पृथिवीः नः पार्थिवात् पात्वंहसोऽन्तरिक्षं दिव्यात्पात्वस्मान् ॥२३
इन्द्र जहि पुमांसं यातुधानमुत स्त्रियं मायया शाशदानाम् ।
विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु मा ते दृशन्त्सूर्यमुच्चरन्तम् ॥२४
प्रति चक्ष्व वि चक्ष्वेन्द्रश्च सोम जागृतम् ।
रक्षोभ्यो वधमस्यतमशनिं यातुमद्भ्यः ॥२५ ।६

हिंसकारी की इन्द्र हिंसा करते हैं। जैसे कुल्हाड़ा काष्ठ को काटता और गदा वर्तनों को तोड़ता है, वैसे ही इन्द्र अपने उपासकों की रक्षा के लिए राक्षसों को चूर्णित करते हुए आरहे हैं ॥ २१ ॥ हे इन्द्र ! जो राक्षस उलूकों को साथ लेकर हिंसा-कर्म करते हैं, उन्हें मारो। जो उलूक-रूप से हिंसा कर्म में प्रवृत्त हों, उन्हें भी मारो। जो कुक्कुर, चक्रवाक, श्येन और गृध का रूप धारण कर हिंसा करते हैं, उन्हें भी अपने प्रस्तर-निर्मित वज्र से नष्ट कर दो।२२। राक्षस हमें घेर न सकें। राक्षस पृथक्-पृथक् हों। 'यह क्या है' कहते घूमने वाले राक्षस भाग जाय। पृथिवी हमें अन्तरिक्ष से प्राप्त पाप से रक्षित करे और दिव्य पाप से अन्तरिक्ष हमारी रक्षा करे ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! राक्षस को मारो ! राक्षसी को भी नष्ट करो। जो राक्षस हिंसा-क्रीड़ा में रत हैं वे छिन्न मस्तक हों। वे उदय होने वाले सूर्य के दर्शन कर सकें ॥ २४ ॥ हे सोम और इन्द्र ! तुम सबको भले प्रकार देखो। राक्षसों पर अपने वज्र रूप आयुध को चलाओ ॥ २५ ॥ [६]

॥ इति सप्तम मंडलम् समाप्तम् ॥

॥ अथाष्टमं मण्डलम् ॥

१ सूक्त (प्रथम अनुवाक)

(ऋषि—प्रगाथो घौरः काण्वो वा, मेधातिथि मेध्यातिथि काण्वो । देवता—इन्द्रः। छन्द—बृहती, त्रिष्टुप्)

मा चिदन्यद्वि शंसत सखायो मा रिषण्यत ।

इन्द्रमित्स्तोता वृषणं सचा सुते मुहुरुक्था च शंसत ॥१
अवक्रक्षिणं वृषभं यथाजुरं गां न चर्षणीसहम् ।
विद्वेषणं संवननोभयङ्करं मंहिष्ठमुभयाविनम् ॥२
यच्चिद्धि त्वा जना इमे नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकं ब्रह्मेदमिन्द्र भूतु तेऽहा विश्वा च वर्धनम् ॥३
वि तर्तूर्यन्ते मघवन् विपश्चितोऽर्यो विपो जनानाम् ।
उप क्रमस्व पुरुरूपमा भर वाजं नेदिष्ठमूतये ॥४
महे चन त्वामद्रिवः परा शुल्काय देयाम् ।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ५।१०

हे मित्रो! इन्द्र के सिवाय अन्य की स्तुति न करो। अन्यथा दंडनीय होओगे। सोम सिद्ध होने पर कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र का स्तवन करने के लिए बारम्बार स्तोत्र उच्चारित करो ॥ १ ॥ बलीवर्द के समान शत्रुओं को मारने वाले, सब के विजेता, स्तोता द्वारा स्तुत्य, दिव्य एवं पार्थिव धनों के स्वामी तथा दाताओं में मुख्य इन्द्र का स्तवन करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी रक्षा के लिए मनुष्य पृथक-पृथक स्तुति करते हैं। फिर भी यह स्तोत्र तुम्हें बढ़ाने वाला हो ॥ ३ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र! तुम्हारे स्तोता शत्रुओं को कम्पायमान करते हुए विपत्तियों से बचे रहते हैं। तुम हमारे पास आओ। हमारे पालन के लिये बहु प्रकार का अन्न हमको दो ॥ ४ ॥ हे वज्रिन्! तुम्हारी भक्ति का महान् मूल्य प्राप्त होने पर भी मैं विक्रय नहीं सकता। असीम धन के बदले भी उसे नहीं बेच सकता ॥ ५ ॥ [१०]

वस्याँ इन्द्रासि मे पितुरुत भ्रातुरभुञ्जतः ।
माता च मे छदयथः समा वसो वसुत्वनाय राधसे ॥६
क्वेयथ क्वेदसि पुरुत्रा चिद्धि ते मनः ।
अलर्षि युध्म खजकृत् पुरन्दर प्र गायत्रा अगासिषुः ॥७
प्रास्मै गायत्रमर्चत वावातुर्यः पुरन्दरः ।
याभिः काण्वस्योप बर्हिरासदं यासद्वज्री भिनत्पुरः ॥

ये ते सन्ति दशग्विनः शतिनो ये सहस्रिणः ।
अश्वासो ये ते वृषणो रघुद्रुवस्तेभिर्नस्तूयमा गहि ॥९
आ त्वद्य सबर्दुघां हुवे गायत्रवेपसम् ।
इन्द्रं धेनुं सुदुघामन्यामिषमुरुधारामरङ्कृतम् ॥१०।११

हे इन्द्र ! तुम मेरे पिता से अधिक वैभव वाले हो। तुम मेरे रण से न भागने वाले भाई से भी अधिक बली हो। मेरी माता और तुम समान होकर मुझे व्यापक धनों के योग्य बनाओ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम कहाँ हो ? तुम्हारा मन सब ओर रहता है। तुम रण-कुशल एवं नगरों के विजेता हो। गायक तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ ७ ॥ इन्द्र के लिए प्रशंसनीय गायन करो। शत्रुओं के नगरों के तोड़ने वाले इन्द्र सब के लिए स्तुत्य हैं। जिन ऋचाओं द्वारा वे कण्वपुत्रों के यज्ञ में गए थे, और जिन ऋचाओं से शत्रु नगरों को तोड़ा था, उन्हीं ऋचाओं से उनकी स्तुति करो ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जो अश्व दस योजन चलते हैं, वे शीघ्र गमन करने वाले हैं। तुम उन्हीं अश्वों के द्वारा शीघ्र आओ ॥ ६ ॥ दुग्ध देने वाली, वेगवती गाय के समान इन्द्र की मैं स्तुति करता हूँ। वाँछनीय वृष्टि के भले प्रकार करने वाले इन्द्र का मैं हृदय से स्तवन करता हूँ ॥ १० ॥ [११]

यत्तुदत् सूर एतशं वङ्कू वातस्य पर्णिना ।
वहत् कुत्समार्जुनेयं शतक्रतुस्त्सरद् गन्धर्वमस्तृतम् ॥११
य ऋते चिदभिश्रिषः पुरा जत्रुभ्य आतृदः ।
सन्धाता सन्धि मघवा पुरूवसुरिष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥१२
मा भूम निष्ट्याइवेन्द्र त्वदरणा इव ।
वनानि न प्रजहितान्यद्रिवो दुरोषासो अमन्महि ॥१३
अमन्महीदनाशवोऽनुग्रासश्च वृत्रहन् ।
सकृत्सु ते महता शूर राधसानु स्तोमं मुदीमहि ॥१४
यदि स्तोमं मम श्रवदस्माकमिन्द्रमिन्दवः ।
तिरः पवित्रं ससृवांस आशवो मन्दन्तु तुग्र्यावृधः ॥१५।१२

जब सूर्य ने "एतश" को पीड़ित किया था, तब टेढ़ी चाल वाले द्रुतगामी घोड़ों ने "कुत्स" का वहन किया और इन्द्र ने अहिंसित सूर्य पर छद्मवेश से आक्रमण किया ॥ ११ ॥ जो इन्द्र कंठ से रुधिर निकलने के पूर्व ही कटे हुए जोड़ों को जोड़ देते हैं, वह इन्द्र छिन्न-भिन्न हुओं को ठीक कर देते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अनुग्रह से पतित न हों, दुःख न पावें। हम पतझड़ में क्षीण वनों के समान संतान-शून्य न हों। हे वज्रिन् ! हमको अन्य व्यक्ति पीड़ित न करें। हम तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ १३ ॥ हम उग्रता को त्याग कर, शीघ्रता न करते हुए धीरे-धीरे तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ १४ ॥ वे इन्द्र हमारी स्तुति श्रवण करें तो हम सोम-रस द्वारा उन्हें प्रसन्न कर सकते हैं। सोम दशापवित्र द्वारा निष्पन्न किए गए और जलों द्वारा शोधे गए हैं। सभी सोम हृष्टि वर्द्धक हैं ॥ १५ ॥ (१२)

आ त्वद्य सधस्तुतिं वावातुः सख्युरा गहि ।
उपस्तुतिर्मघोनां प्र त्वावत्वधा ते वश्मि सुष्टुतिम् ॥१६
सोता हि सोममद्रिभिरेमेनमप्सु धावत ।
गव्या वस्त्रेव वासयन्त इन्नरो निर्धुक्षन्वक्षणाभ्यः ॥१७
अध ज्मो अध वा दिवो बृहतो रोचनादधि ।
अया वर्धस्व तन्वा गिरा ममा जाता सुक्रतो पृण ॥१८
इन्द्राय सु मदिन्तमं सोमं सोता वरेण्यम् ।
शक्र एणं पीपयद्विश्वया धिया हिन्वानं न वाजयुम् ॥१९
मा त्वा सोमस्य गल्दया सदा याचन्नहं गिरा ।
भूर्णिं मृगं न सवनेषु चुक्रुधं क ईशानं न याचिषत् ॥२० ।१३

ये अपने स्तुति करने वाले की स्तुति की ओर शीघ्रता से आवें। हवियों से युक्त स्तोत्र तुम्हें प्राप्त हो। मैं तुम्हारे श्रेष्ठ स्तोत्र की इच्छा कर रहा हूँ ॥ १६ ॥ हे अध्वर्युओ ! पत्थरों द्वारा सोम को कूटो और जल में शुद्ध करो। मेघों के द्वारा मरुद्गण जल को दुह कर नदियों को परिपूर्ण करते हैं ॥ १७ ॥ पृथिवी और अन्तरिक्ष तथा द्युलोक से आकर इन्द्र !

द्वारा बढ़ें। वे हमारे मनुष्यों को इच्छित फल प्रदान करें ॥ १८ ॥ हे अध्वर्युओ ! तुम इन्द्र के निमित्त अत्यन्त पुष्टिकर सोम भेंट करो। वे इन्द्र अपने समस्त कर्मों द्वारा प्रसन्नताप्रद और अन्न की कामना वाले यज्ञ को बढ़ावें ॥१६ हे इन्द्र ! यज्ञों में मैं सोम अर्पित करता हुआ तथा स्तुतियाँ करता हुआ तुम्हें कभी भी रुष्ट न करूँ। तुम पालक भी हो तथा विकराल भी हो। संसार में ऐसा कोई नहीं जो तुम्हारी प्रार्थना न करता हो ॥ २० ॥ (१३)

मदेनेषितं मदमुग्रमुग्रेण शवसा ।
विश्वेषां तरुतारं मदच्युतं मदे हि ष्मा ददाति नः ॥२१
शेवारे वार्या पुरु देवो मर्ताय दाशुषे ।
स सुन्वते च स्तुवते च रासते विश्वगूर्तो अरिष्टुतः ॥२२
एन्द्र याहि मत्स्व चित्रेण देव राधसा ।
सरो न प्रास्युदरं सपीतिभिरा सोमेभिरुरु स्फिरम् ॥२३
आ त्वा सहस्रमा शतं युक्ता रथे हिरण्यये ।
ब्रह्मयुजो हरय इन्द्र केशिनो वहन्तु सोमपीतये ॥२४
आ त्वा रथे हिरण्यये हरी मयूरशेप्या ।
शितिपृष्ठा वहतां मध्वो अन्धसो विवक्षणस्य पीतये ॥२५ ।१४

हे इन्द्र ! तुम अत्यन्त पराक्रमी हो । हर्षाभिलाषी स्तोता द्वारा अर्पित हर्षकारी सोम को पीओ। सोम के हर्ष से प्रसन्न इन्द्र हमको शत्रुओं को जीतने वाला पुत्र प्रदान करते हैं ॥ १२ ॥ सुखदायक यज्ञ में इन्द्र हवि-दाता यजमान को वरण करने योग्य धन प्रदान करते हैं। वे सभी कार्यों के करने वाले हैं ॥ ३२ ॥ हे इन्द्र ! आओ। तुम दर्शनीय ऐश्वर्य से ऐश्वर्यशाली बनो। तुम एकत्र हुए पीले वर्ण के सोम से अपना उदर पूर्ण रूपेण भर लो ॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! सैकड़ों और हजारों घोड़े तुमको सोम पान के लिए रथ पर लावें ॥ २४ ॥ मयूर वर्ण के श्वेत पीठ वाले घोड़े मधुर स्तुति के योग्य, सोम-पान के लिए इन्द्र को यहाँ लावें ॥ २५ ॥ (१४)

पिबा त्वस्य गिर्वणः सुतस्य पूर्वपा इव ।

परिष्कृतस्य रैसिन इयमासुतिश्चारुर्मदाय पत्यते ॥२६
य एको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभि व्रतैः ।
गमत्स शिप्री न स योषदा गमद्धवं न परि वर्जति ॥२७
त्वं पुरं चरिष्ण्वं वधैः शुष्णस्य सं पिणक् ।
त्वं भा अनु चरो अध द्विता यदिन्द्र हव्यो भुवः ॥२८
मम त्वा सूर उदिते मम मध्यन्दिने दिवः ।
मम प्रपित्वे अपिशर्वरे वसवा स्तोमासो अवृत्सत ॥२९
स्तुहि स्तुहीदेते घा ते मंहिष्ठासो मघोनाम् ।
निन्दिताश्वः प्रपथी परमज्या मघस्य मेध्यातिथे ॥३० ।१५

हे स्तुत्य इन्द्र ! तुम पहले सोम पीने वाले के समान इस सोम को पीओ। यह शुद्ध रस से युक्त है। यह हर्षकारी और सुन्दर है। प्रसन्नता के लिए ही यह तैयार किया जाता है ॥ २६ ॥ जो इन्द्र अकेले ही अपने बल से सबको हराते हैं और जो विशाल कर्म वाले हैं, वे इन्द्र यहाँ आगमन करें। वह हमसे दूर न हों। हमारे स्तोत्रों के सामने आयें ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के निवास को वज्र से चूर्ण कर दिया। तुम यज्ञ करने वाले स्तोता द्वारा आहूत करने योग्य हो। तुमने तेजस्वी होकर "शुष्ण" का पीछा किया ॥ २८ ॥ तुम सूर्य के उदित होने पर मेरे सब स्तोत्रों को पुनः चैतन्य करो। दिन के मध्य में, अन्त में, रात में भी मेरे स्तोत्र को आवर्तित करो ॥२९ हे मेधातिथि ! तुम मेरी बारम्बार स्तुति करो। हम सबसे अधिक धन देते हैं। मेरी शक्ति से ही दूसरों के अश्व नियोजित हुए हैं। मेरे आयुध और मार्ग श्रेष्ठ हैं ॥ ३० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　(१५)

आ यदश्वान्वनन्वतः श्रद्धयाहं रथे रुहम् ।
उत वामस्य वसुनश्चिकेतति यो अस्ति याद्वः पशुः ॥३१
य ऋज्रा मह्यं मामहे सह त्वचा हिरण्यया ।
एष विश्वान्यभ्यस्तु सौभगासङ्गस्य स्वनद्रथः ॥३२
अध प्लायोगिरति दासदन्यानासङ्गो अग्ने दशभिः सहस्रैः ।
अधोक्षणो दश मह्यं रुशन्तो नळाइव सरसो निरतिष्ठन् ॥३

अन्वस्य स्थूरं ददृशे पुरस्तादनस्थ ऊरुरवरम्वमाणः ।
शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं विभर्षि ॥३४ ।१६

मैंने श्रद्धा सहित तुम्हारे रथ को योजित किया । मैं सुन्दर दान करने वाला हूँ । मैं यदुवंश में उत्पन्न हुआ हूँ ॥ ३१ ॥ जिन्होंने सुवर्णमय चर्मास्तरण सहित मुझे सुन्दर धन दिया था, वे (आसंग) शब्द वाले रथ से युक्त होकर शत्रुओं के धन पर विजय प्राप्त करें ॥ ३२ ॥ हे अग्ने ! प्लयोग के पुत्र आसंग ने दस हजार गौओं का दान किया, इससे वे सब दानियों में श्रेष्ठ हुए. तब सभी सेंचन समर्थ पशु उनके पास से चले गए ॥ ३३ ॥ आसङ्ग खूब हृष्ट-पुष्ट हैं । उनकी शक्तिशाली देह विशाल और यथेष्ट दीर्घ है । उनकी स्त्री "शश्वती" ने कहा था-हे स्वामिन् ! आप परम सौभाग्यवान और सभी से बढ़ कर हैं । (१६)

२ सूक्त

(ऋषि—मेधातिथि काण्वः प्रियमेधश्चाङ्गिरसः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, अनुष्टुप्)

इदं वसो सुतमन्धः पिबा सुपूर्णमुदरम् । अनाभयिन्ररिमा ते ॥१
नृभिर्धूतः सुतो अश्नैरव्यो वारैः परिपूतः । अश्वो न निक्तो नदीषु ॥२
तं ते यवं यथा गोभिः स्वादुमकर्म श्रीणन्तः । इंद्र त्वास्मिन्त्सधमादे ॥३
इन्द्र इत्सोमपा एक इन्द्रः सुतपा विश्वायुः । अन्तर्देवान् मर्त्यांश्च ॥४
न यं शुक्रो न दुराशीर्न तृप्रा उरुव्यचसम् । अपस्पृण्वते सुहार्दम् । ५।१७

हे इन्द्र ! इस अभिषुत सोम को पीओ । तुम्हारा उदर इससे परिपूर्ण हो । हे इन्द्र ! हम तुम्हारे निमित्त सोम प्रदान करेंगे ॥ १ ॥ ज्ञानीजन ने जिसे धोकर स्वच्छ किया और वस्त्र से छाना गया वह सोम-रस, नदी में स्नान करके निकले हुए घोड़े के समान सुशोभित हो रहा है ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हमने अन्न के समान उक्त सोम को तुम्हारे निमित्त गोदुग्ध आदि से मिश्रित कर सुस्वादु किया है । हे इन्द्र ! उस सोम के पान के निमित्त मैं तुम्हें इस यज्ञ में आहूत करता हूँ ॥ ३ ॥ देवताओं और मनुष्यों में इन्द्र ही सम्पूर्ण सोम को पीने के अधिकारी हैं । वे सोमपायी इन्द्र सब प्रकार अन्नों से सम्पन्न हैं ॥४॥

जिन इन्द्र को सोम रुष्ट नहीं करता, यह क्षीरादि से युक्त सोम भी जिन्हें अप्रसन्न नहीं करता, अन्य पुरोडाश आदि भी जिन्हें रुष्ट नहीं करते, उन इन्द्र का स्तवन करते हैं ॥ ५ ॥ (१७)

गोभिर्यदीमन्ये अस्मन्मृगं न व्रा मृगयन्ते । अभित्सरन्ति धेनुभिः ॥६
अय इन्द्रस्य सोमाः सुतासः सन्तु देवस्य । स्वे क्षये सुतपाव्नः ॥७
भयः कोशासः श्चोतन्ति तिस्रश्चम्वः सुपूर्णाः । समाने अधि भार्मन् ॥८
शुचिरसि पुरुनिःष्ठाः क्षीरैर्मध्यत आशीर्तः । दध्नां मन्दिष्ठः शूरस्य ॥६
इमे त इन्द्र सोमास्तीव्रा अस्मे सुतासः ।
शुक्रा आशिरं याचन्ते ॥१० ।१८

जैसे जाल के द्वारा घेरे गए मृग को शिकारी ढूँढता है, वैसे ही ऋत्विक् आदि सोम द्वारा इन्द्र को खोजते हैं । जो व्यक्ति अस्वच्छ हृदय से इन्द्र के पास पहुँचते हैं, वे उन इन्द्र को पा नहीं सकते ॥ ६ ॥ छाने हुए सोम-रस के पीने वाले इन्द्र के निमित्त तीनों सवनों में, यज्ञ-गृह में सोम सिद्ध किया जाता ॥७॥ ऋत्विकों का पालन करने वाले यज्ञ में तीन प्रकार के कलश सोम-रस को प्राप्त करते और पूर्ण होते हैं ॥ ८ ॥ हे सोम ! तुम पवित्र पात्रों में स्थित होते हो तथा दूध या दही से मिश्रित होते हो । तुम अपने आनन्द-दायक प्रभाव से उन वीर इन्द्र को हृष्ट करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे यह सोम अत्यन्त हर्षकारी हैं । हमारे अभिषुत एवं मिश्रण युक्त सोम तुम्हें चाहते हैं ॥ १० ॥ (१८)

ताँ आशिरं पुरोळाशमिन्द्रेमं सोमं श्रीणीहि ।
रेवन्तं हि त्वा शृणोमि ॥११
हृत्सु पीतासो युध्यन्ते दुर्मदासो न सुरायाम् । ऊधर्न नग्ना जरन्ते ॥१२
रेवाँ इन्द्रे वतः स्तोता स्यात्त्वावतो मघोनः । प्रेदु हरिवः श्रुतस्य ॥१३
उक्थं चन शस्यमानमगोररिरा चिकेत । न गायत्रं गीयमानं ॥ ४
मा न इन्द्र पीयत्नवे मा शर्धते परा दाः ।
शिक्षा शचीवः शचीभिः

शिप्रिन्नृषीवः शचीवो नायमच्छा सधमादम् ॥२८
स्तुतश्च यास्त्वा वर्धन्ति महे राधसे नृम्णाय ।
इन्द्र कारिणं वृधन्तः ॥२९
गिरश्च यास्ते गिर्वाह उक्था च तुभ्यं तानि ।
सत्रा दधिरे शवांसि ॥३० ।२२

सोम-पान में लगे हुए तथा वृत्र के मारने वाले इन्द्र यहाँ आगमन करें। वे हमसे दूर न जावें। वे बहुत रक्षाओं से युक्त इन्द्र हमारे शत्रुओं का मान खण्डन करें ॥ २६ ॥ सुख से युक्त, स्तोत्र-सम्पन्न दोनों घोड़े स्तुतियों से नियुक्त होकर आश्रयदाता, मित्र रूप इन्द्र को यहाँ लावें ॥ २७ ॥ हे सशक्त इन्द्र ! यह सोम अत्यन्त सुस्वादु है। तुम यहाँ आगमन करो। सभी सोम दुग्धादि से मिश्रित हुए रखे हैं। तुम हृष्टि को चाहते हो। अतः यहाँ आओ। स्तुति करने वाला साधक तुम्हारा स्तवन करता है ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले और सभी स्तोत्र, महान् ऐश्वर्य और पराक्रम के निमित्त तुम्हें वर्द्धमान करते हैं ॥ २९ ॥ हे इन्द्र ! जो स्तोत्र तुम्हारे लिए हैं, वे सब एकत्र होकर तुम्हारे ही पराक्रम को प्राप्त हों ॥ ३० ॥ [२२]

एवेदेष तुविकूर्मिर्वाजाँ एको वज्रहस्तः । सनादमृक्तो दयते ॥३१
हन्ता वृत्रं दक्षिणेनेन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥३२
यस्मिन् विश्वाश्चर्षणय उत च्यौत्ना ज्रयांसि च ।
अनु घेन्मन्दी मघोनः ॥३३
एष एतानि चकारेन्द्रो विश्वा योऽति शृण्वे । वाजदावा मघोनाम् ॥३४
प्रभर्ता रथं गव्यन्तमपाकाच्चिद्यमवति ।
इनो वसु स हि वोळ्हा ॥३५ ।२३

हे इन्द्र ! तुम विविध कर्म वाले एवं वज्रधारी हो। तुम किसी के द्वारा कभी जीते नहीं जासकते। तुम स्तुति करने वाले यजमान को बल प्रदान करते हो ॥ ३१ ॥ इन्द्र ने दक्षिण हाथ से वृत्र को मारा। वे अनेक स्थानों में बहुत बार आहूत हुए हैं। वे विविध कर्मों द्वारा अत्यन्त महान् हैं ॥ ३२ ॥ जिन

इन्द्र के आश्रित समस्त प्रजा है और जो इन्द्र महा पराक्रमी तथा अभिनव हैं, वह इन्द्र यजमानों की बात रखने वाले हों ॥ ३३ ॥ इन्द्र ने यह सभी कार्य किए हैं। वे सब जगह कहे जाते हैं। वे हवि देने वालों को अन्न प्रदान करते हैं ॥ ३४ ॥ हे इन्द्र ! तुम गौ की कामना वाले जिस यजमान की दुर्बुद्धि वाले शत्रु से रक्षा करते हो, वह यजमान धन वहन करने वाला होकर उसका स्वामी होता है ॥ ३५ ॥   [२१]

प्रनिता विप्रो अर्वद्भिर्हन्ता वृत्रं नृभिः शूरः ।
मर्त्योऽविता विधन्तम् ॥३६
यजध्वैनं प्रियमेधा इन्द्रं सत्राचा मनसा । यो भूत्सोमैः सत्यमद्वा ॥३७
गाथश्रवसं सत्पतिं श्रवस्कामं पुरुत्मानम् ।
कण्वासो गात वाजिनम् ॥३८
य ऋते चिद्गास्पदेभ्यो दात् सखा नृभ्यः शचीवान् ।
ये अस्मिन्काममश्रियन् ॥३९
इत्था धीवन्तमद्रिवः काण्वं मेध्यातिथिम् । मेषो भूतोभि यन्नयः ॥४०
शिक्षा विभिन्दो अस्मै चत्वार्ययुता ददत् । अष्टा परः सहस्रा ॥ ४१
उत सु त्ये पयोवृधा माकी रणस्य नप्त्या ।
जनित्वनाय मामहे ॥४२ ।२४

ऐश्वर्यशाली इन्द्र सभी गमन योग्य स्थानों पर अश्व की सहायता से गमन करते हैं। वे मरुद्गण के सहयोग से वृत्र का हनन करते हैं। वे सत्य रूप वाले एवं अपने उपासक के रक्षक हैं ॥ ३६ ॥ हे प्रियमेध ! इन्द्र में मन लगा कर उनके लिए यज्ञ करो। सोम पान करने पर वे हर्षित होते हैं तब उनका हर्ष व्यर्थ नहीं होता ॥ ३७ ॥ हे कण्व-पुत्रो ! तुम सज्जनों की रक्षा करने वाले, अन्न की कामना वाले, विभिन्न स्थानों में जाने वाले, वेगवान् एवं यश वाले योग्य इन्द्र का स्तवन करो ॥ ३८ ॥ पद चिन्ह न मिलने पर भी उत्तम कर्म वाले मित्र रूप इन्द्र ने देवताओं को गौएं फिर ढूँढ कर देवताओं ने इन्द्र से इच्छित धन प्राप्त किया था ॥ ३९ ॥ हे वज्रिन् !

करते हुए, सामने से जाते हुए मेघ रूप वाले कण्वपुत्र मेधातिथि को तुमने पाया ॥ ४० ॥ हे "विभिन्दु" राजन् ! तुम अत्यन्त दानी हो। तुमने मुझे चालीस सहस्र संख्या वाला धन प्रदान किया। इसके पश्चात् आठ सहस्र संख्यक धन दिया ॥ ४१ ॥ मैंने सुप्रसिद्ध, जल की वृष्टि करने वाली प्राणियों को जीवन देने वाली और स्तोता पर कृपा करने वाली आकाश पृथिवी की धन उत्पन्न करने के लिए स्तुति की ॥ ४२ ॥ [२४]

३ सूक्त

(ऋषि मेध्यातिथि : काण्वः । देवता–इन्द्रः । छन्द–बृहती, पंक्तिः अनुष्टुप्, गायत्री)

पिबा सुतस्य रसिनो मत्स्वा न इन्द्र गोमतः ।
आपिर्नो बोधि सधमाद्यो वृधेस्माँ अवन्तु ते धियः ॥१
भूयाम ते सुमतौ वाजिनो वयं मा नः स्तरभिमातये ।
अस्माञ्चित्राभिरवतादभिष्टिभिरा नः सुम्नेषु यामय ॥२
इमा उ त्वा पुरूवसो गिरो वर्धन्तु या मम ।
पावकवर्णाः शुचयो विपश्चितोऽभि स्तोमैरनूषत ॥३
अयं सहस्रमृषिभिः सहस्कृतः समुद्र इव पप्रथे ।
सत्यः सो अस्य महिमा गृणे शवो यज्ञेषु विप्रराज्ये ॥४
इन्द्रमिद्देवतातय इंद्रं प्रयत्यध्वरे ।
इन्द्रं समीके वनिनो हवामह इन्द्रं धनस्य सातये ॥५ ।२५

हे इन्द्र हमारे छाने हुए सोम रस कर तृप्त होओ। तुम तृप्त होने के योग्य हो। तुम मित्र होकर हमें बढ़ाने के लिए स्वयं बढ़ो। तुम्हारी बुद्धि हमारी पालक हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! हम तुम्हारे अनुग्रह से हवियों से युक्त हों। हमको शत्रु के लिए दण्डित मत करना। हमारी रक्षा करते हुए तुम हमको सदा सुखी बनाओ ॥ २ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! मेरी स्तुति रूप वाणी तुम्हें बढ़ावें। अग्नि के समान तेजस्वी और ज्ञानी पुरुष तुम्हारा स्तवन करते हैं ॥ ३ ॥ सहस्रों ऋषियों के द्वारा बल पाकर इन्द्र बड़े हैं। इनकी

प्रसिद्ध महिमा और पराक्रम की सदा प्रशंसा की जाती है ॥ ४ ॥ यज्ञारम्भ में हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। यज्ञ की समाप्ति पर भी हम इन्द्र का आह्वान करते हैं। हम धन प्राप्ति की कामना करते हुए भी इन्द्र का ही आह्वान करते हैं ॥ ५ ॥ [२५]

इंद्रो मह्ना रोदसी पप्रथच्छव इन्द्रः सूर्यमरोचयत् ।
इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिर इन्द्रे सुवानास इन्दवः ॥६
अभि त्वा पूर्वपीतय इन्द्र स्तोमेभिरायवः ।
समीचीनास ऋभवः समस्वरन् रुद्रा गृणन्त पूर्व्यम् ॥७
अस्येदिन्द्रो वावृधे वृष्ण्यं शवो मदे सुतस्य विष्णवि ।
अद्या तमस्य महिमानमायवोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा ॥८
तत्त्वा यामि सुवीर्यं तद् ब्रह्म पूर्वचित्तये ।
येना यतिभ्यो भृगवे धने हिते येन प्रस्कण्वमाविथ ॥९
येना समुद्रमसृजो महीरपस्तदिन्द्र वृष्णि ते शवः ।
सद्यः सो अस्य महिमा न संनशे यं क्षोणीरनुचक्रदे ॥१० ।२६

अपनी महत्ता से ही इन्द्र ने आकाश-पृथिवी को बढ़ाया। इन्द्र ने ही सूर्य को प्रकाशमान किया। इन्द्र के द्वारा ही समस्त लोक नियमित हैं। सोम भी इन्द्र द्वारा ही नियत हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! स्तुति करने वाले लोग सोम-पान के निमित्त तुम्हें सब देवताओं से पहिले बुलाने के लिए स्तुति करते हैं। ऋभुगण भी तुम्हारी स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! तुम प्राचीन हो। रुद्रों ने भी तुम्हारा स्तवन किया था ॥ ७ ॥ छने हुए सोम को पीकर आनन्दित होने पर इन्द्र यजमान के बल-वीर्य की वृद्धि करते हैं। प्राचीन काल के समान ही आज भी स्तोतागण उन्हीं का गुण गान करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सुन्दर वीर्य वाले हो। मैं तुमसे उत्तम अन्न की याचना करता हूँ। कर्म रहित मनुष्यों से हितकारी धन लेकर तुमने "भृगु" को प्रदान किया और 'प्रस्कण्व' की तुमने रक्षा की। मैं तुमसे उसी वीर्य और अन्न की याचना करता हूँ ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! जिस बल से तुमने समुद्र को उत्तम एवं प्रचुर जल प्रदान कि

तुम्हारा वही बल अभीष्ट पूर्ण करने वाला है। तुम्हारी महिमा का पृथिवी अनुगमन करती है ॥ १० ॥ (२६)

शग्धी न इन्द्र यत्त्वा रयिं यामि सुवीर्यम् ।
शग्धि वाजाय प्रथमं सिषासते शग्धि स्तोमाय पूर्व्य ॥११
शग्धी नो अस्य यद्ध पौरमाविथ धिय इन्द्र सिषासतः ।
शग्धि यथा रुशमं श्यावकं कृपमिन्द्र प्रावः स्वर्णरम्॥१२
कन्नव्यो अतसीनां तुरो गृणीत मर्त्यः ।
नही न्वस्य महिमानमिन्द्रियं स्वर्गृणन्त आनशुः ॥१३
कदु स्तुवन्त ऋतयन्त देवत ऋषिः को विप्र ओहते ।
कदा हवं मघवन्निन्द्र सुन्वतः कदु स्तुवत आ गमः ॥१४
उदु त्ये मधुमत्तमा गिरः स्तोमास ईरते ।
सत्राजितो धनसा अक्षितोतयो वाजयन्तो रथा इव ॥१५ ।२७

हे इन्द्र ! जिस सुन्दर वीर्ययुक्त धन की मैं तुमसे याचना करता हूँ, मुझे वह धन दो। हवियुक्त यजमान को सब से पहले धन दो। फिर स्तुति करने वाले को भी दो॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! जिस बल से तुमने पुरु के पुत्र की रक्षा की, वही बल यजमानों में प्रधान करो। जैसे "रुशम", "श्यावक" और "कृप" की तुमने रक्षा की, वैसी ही रक्षा सब हविवालों की करो ॥ १२ ॥ कौन-सा मनुष्य सदा गमनशील स्तुतियों को करने वाला, इन्द्र का स्तोता है ? इन्द्र के स्तोता इन्द्र की महिमा को नहीं पा सकते ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम देवता हो। कौन-सा स्तोता तुम्हारे लिए यज्ञ संपादन की शक्ति रखता है ? कौन ऋषि तुम्हरी स्तुतियों का वाहक है ? हे इन्द्र ! स्तोता के आह्वान पर तुम कब आते हो ? ॥ १४ ॥ प्रसिद्ध और अत्यन्त मधुर वाणी, स्तोत्र, शत्रु के जीतने वाले अक्षय रक्षा से युक्त और अन्न की अभिलाषा करने वाले रथ के समान कही जाती है ॥ १५ ॥ (२७)

कण्वाइव भृगवः सूर्या इव विश्वमिद्धीतमानशुः ।
इन्द्रं स्तोमेभिर्महयन्त आयवः प्रियमेधासो अस्वरन् ॥१६

युक्ष्वा हि वृत्रहन्तम हरी इन्द्र परावतः।
अर्वाचीनो मघवन्त्सोमपीतय उग्र ऋष्वेभिरा गहि ॥१७
इमे हि ते कारवो वावशुर्धिया विप्रासो मेधसातये।
स त्वं नो मघवन्निन्द्र गिर्वणो वेनो न शृणुधी हवम् ॥१८
निरिन्द्र बृहतीभ्यो वृत्रं धनुभ्यो अस्फुरः।
निरर्बुदस्य मृगयस्य मायिनो निः पर्वतस्य गा आजः ॥१९
निरग्नयो रुरुचुर्निरु सूर्यो निः सोम इन्द्रियो रसः।
निरन्तरिक्षादधमो महामहिं कृषे तदिन्द्र पौंस्यम् ॥२० ।२८

कण्वों के समान ही भृगुओं ने सूर्य किरणों के समान इन्द्र को व्याप्त किया। प्रियमेध ने स्तोत्र द्वारा इन्द्र का ही पूजन किया था ॥ १६ ॥ हे इन्द्र! तुम वृत्र का भले प्रकार वध करते हो। अपने दोनों घोड़ों को रथ में युक्त करो। हे इन्द्र! तुम उग्रकर्मा एवं धनी हो। दर्शनीय मरुद्गण के साथ सोम पीने के लिए यहाँ आगमन करो ॥ १७ ॥ हे इन्द्र! कर्मवान् यजमान यज्ञ के निमित्त तुम्हारा ही स्तवन करते हैं। हे धनी इन्द्र! तुम स्तुत्य हो। पुरुष जैसे पत्नी का आह्वान सुनता है वैसे ही हमारा आह्वान सुनो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र! तुमने वृत्र का हनन किया। मायावी "अर्बुद" और "मृगय" को मारा। पर्वत से गौओं को मुक्त किया ॥ १९ ॥ हे इन्द्र! जब तुमने अन्तरिक्ष से वृत्र को हटाया, तब बल को प्रकट किया। उस समय अग्नि, सूर्य और इन्द्र के सेवन योग्य सोम रस भी उज्ज्वल हो गए ॥ २० ॥ (२८)

यं मे दुरिन्द्रो मरुतः पाकस्थामा कौरयाणः।
विश्वेषां त्मना शोभिष्ठमुपेव दिवि धावमानम् ॥२१
रोहितं मे पाकस्थामा सुधुरं कक्ष्यप्राम्। अदाद्रायो विबोधनम् ॥२२
यस्मा अन्ये दश प्रति धुरं वहन्ति वह्नयः। अस्तं वयो न तुग्र्यम् ॥२३
आत्मा पितुस्तनूर्वास ओजोदा अभ्यञ्जनम्।
तुरीयमिद्रोहितस्य पाकस्थामानं भोजं दातारमब्रवम् ॥२४ ।२९

• इन्द्र और मरुद्गण ने मुझे जो दिया, वही "

"पाकस्थामा" ने दिया। वह धन सभी धनों में प्रकाशमान् सूर्य के समान सुशोभित होता है ॥ २१ ॥ पाकस्थामा ने मुझे लाल रङ्ग का सुन्दर, विविध प्रकार के श्रेष्ठ धनों को प्राप्त कराने वाला अश्व प्रदान किया ॥ २२ ॥ उस अश्व के दश प्रतिनिधि अश्व हैं। वे मुझे वहन करते हैं। इसी प्रकार अश्वों ने "तुग्र-पुत्र भुज्यु" का वहन किया ॥ २३ ॥ पाकस्थामा अपने पिता के श्रेष्ठ पुत्र हैं। वे निवास तथा बल के देने वाले हैं। वे शत्रुओं की हिंसा करने वाले हैं। लाल रङ्ग का अश्व प्रदान करने वाले पाकस्थामा का मैं स्तव करता हूँ ॥ २४ ॥ [२६]

४ सूक्त

(ऋषि—देवातिथिः काण्वः। देवता—इन्द्रः पूषा वा।
छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः, बृहती, उष्णिक्)

यदिन्द्र प्रागपागुदङ् न्यग्वा हूयसे नृभिः।
सिमा पुरू नृषूतो अस्यानवेऽसि प्रशर्ध तुर्वशे ॥१
यद्वा रुमे रुशमे श्यावके कृप इन्द्र मादयसे सचा।
कण्वासस्त्वा ब्रह्मभिः स्तोमवाहस इन्द्रा यच्छन्त्या गहि ॥२
यथा गौरो अपा कृतं तृष्यन्नेत्यवेरिणम्।
आपित्वे नः प्रपित्वे तूयमा गहि कण्वेषु सु सचा पिब ॥३
मन्दन्तु त्वा मघवन्निन्द्रेन्दवो राधोदेयाय सुन्वते।
आमुष्या सोममपिबश्चमू सुतं ज्येष्ठं तद्दधिषे सहः ॥४
प्र चक्रे सहसा सहो बभञ्ज मन्युमोजसा।
विश्वे त इन्द्र पृतनायवो यहो नि वृक्षाइव येमिरे ॥५ ।३०

हे इन्द्र! तुम सभी दिशाओं में रहने वाले स्तोताओं द्वारा आहूत होते हो, तो भी "आनुक" राजा के पुत्र के लिए स्तोताओं द्वारा प्रीतिदायक होते हो। "तुर्वश" के लिए भी तुम प्रेरित होते हो ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुम "रुम" रुशम", श्यावक और "कृप" के साथ प्रीति करते थे। फिर भी कण्व वंशी तुम्हारा स्तोत्र कहते हैं। आगमन करो ॥ २ ॥ जैसे प्यासा मृग जल से

परिपूर्ण तथा घासादि से युक्त स्थान की पहिचान कर लेता है, हे इन्द्र ! वैसे ही मित्रता स्थापित होने पर तुम हमारे समक्ष आगमन करो। हम कण्व पुत्रों के साथ सोमपान करो ॥ ३ ॥ हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! सोमाभिषव करने वाले को धन देने के निमित्त तुमने बल धारण किया है ॥४॥ अपने वीर कर्म से इन्द्र ने शत्रुओं को वशीभूत किया। बल के द्वारा दूसरे के द्वारा प्रकट किए गए क्रोध को उन्होंने दूर किया। उन महान् इन्द्र ने युद्ध की कामना वाले शत्रुओं को वृक्ष के समान गिरा दिया ॥ ५ ॥ [३०]

सहस्रेणेव सचते यवीयुधा यस्त आनळुपस्तुतिम् ।
पुत्रं प्रावर्गं कृणुते सुवीर्ये दाश्नोति नम उक्तिभिः ॥६
मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव ।
महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम् ॥७
सव्यामनु स्फिग्यं वावसे वृषा न दानो अस्य रोषति ।
मध्वा सम्पृक्ताः सारघेण धेनवस्तूयमेहि द्रवा पिब ॥८
अश्वी रथी सुरूप इद् गोमाँ इदिन्द्र ते सखा ।
श्वात्रभाजा वयसा सचते सदा चन्द्रो याति सभामुप ॥९
ऋश्यो न तृष्यन्नवपानमा गहि पिबा सोमं वशाँ अनु ।
निमेघमानो मघवन्दिवेदिव ओजिष्ठं दधिषे सहः ॥१० ॥३१

हे इन्द्र ! जो तुम्हारी स्तुति करता है वह सहस्रों वज्रायुध पाता है। जो नमस्कार पूर्वक हवि देता है, वह सुन्दर, पराक्रमी तथा शत्रु को मारने वाला पुत्र पाता है ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम उग्रकर्मा हो। तुम्हारी मित्रता प्राप्त होने पर हमको किसी का भय नहीं रहेगा। हम परिश्रान्त भी नहीं होंगे। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम्हारे सभी महान् कर्मों को कहना चाहिये। तुमने "तुर्वश" और "यदु" को भी देखा था ॥ ७ ॥ कामनाओं की वर्षा करने वाले इन्द्र ने सभी जीवों को आच्छादित किया। हवि देने वालो ! इन्द्र को कुपित मत करना। हे इन्द्र ! मधु मक्खी के शहद से युक्त हर्षदायक सोम के पास शीघ्र आगमन कर उसका पान करो

इन्द्र ! तुम्हारा मित्र ही अश्व, रथ, गौ एवं रूप से युक्त है। वह सदा ही श्रेष्ठ धन पाता और प्रसन्न होता हुआ सभा-स्थान के लिए गमन करता है ॥ ९ ॥ "ऋश्य" नामक मृग के समान, पात्र में अवस्थित सोम के समक्ष आकर इच्छानुसार पीओ। हे ऐश्वर्यशाली इन्द्र ! तुम सदा नीचे की ओर वर्षा जल गिराते हुए पराक्रमी होते हो ॥ १० ॥ [३१]

अध्वर्यो द्रावया त्वं सोममिन्द्रः पिपासति ।
उप नूनं युयुजे वृषणा हरी आ च जगाम वृत्रहा ॥११
स्वयं चित्स मन्यते दाशुरिर्जनो यत्रा सोमस्य तृम्पसि ।
इदं ते अन्नं युज्यं समुक्षितं तस्येहि प्र द्रवा पिब ॥१२
रथेष्ठायाध्वर्यवः सोममिन्द्राय सोतन ।
अधि ब्रध्नस्याद्रयो वि चक्षते सुन्वन्तो दाश्वध्वरम् ॥१३
उप ब्रध्नं वावाता वृषणा हरी इन्द्रमपसु वक्षतः ।
अर्वाञ्चं त्वा सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ॥१४
प्र पूषणं वृणीमहे युज्याय पुरूवसुम् ।
स शक्र शिक्ष पुरुहूत नो धिया तुजे राये विमोचन ॥१५ ।३२

हे अध्वर्युओ ! इन्द्र सोम-पान करना चाहते हैं। तुम सोम को सिद्ध करो। आज दोनों युवा घोड़े जोड़े गए हैं। वे वृत्र के संहारक इन्द्र आ पहुँचे हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र तुम जिसके सोम से तृप्त होते हो, वह हविदाता यजमान ही इसे जानता है। तुम्हारे लिए सींचा गया सोम पात्र में है। तुम आकर उसका पान करो ॥ १२ ॥ हे अध्वर्युओ ! इन्द्र रथ पर चढ़े हैं। उनको सोम दो। सोम अभिषव के लिए चर्म पर रखे हुए सुशोभित हो रहे हैं ॥ १३ ॥ अन्तरिक्ष में घूमने वाले दोनों घोड़े हमारे यज्ञ में इन्द्र को ले आवें। हे इन्द्र ! दोनों घोड़े तुम्हें यज्ञ के पास पहुँचाने वाले हों ॥ १४ ॥ हम पूषा का मित्रता के लिए वरण करते हैं। हे इन्द्र ! और अनेकों द्वारा बुलाए गए पाप-नाशक पूषन् ! तुम दोनों ही अपनी वृद्धि करते हुए हमें धन तथा शत्रु-नाश के लिए सामर्थ्य प्रदान करो ॥ १५ ॥ [३२]

सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरं रास्व रायो विमोचन ।
त्वे तन्नः सुवेदमुस्रियं वसु यं त्वं हिनोषि मर्त्यम् ॥१६
वेमि त्वा पूषन्नृञ्जसे वेमि स्तोतव आघृणे ।
न तस्य वेम्यरणं हि तद्वसो स्तुषे पज्राय साम्ने ॥१७
परा गावो यवसं कच्चिदाघृणे नित्यं रेक्णो अमर्त्य ।
अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव मंहिष्ठो वाजसातये ॥१८
स्थूरं राधः शताश्वं कुरुङ्गस्य दिविष्टिषु ।
राज्ञस्त्वेषस्य सुभगस्य रातिषु तुर्वशेष्वमन्महि ॥१९
धीभिः सातानि काण्वस्य वाजिनः प्रियमेधैरभिद्युभिः ।
षष्टिं सहस्रानु निर्मजामजे निर्यूथानि गवामृषिः ॥२०
वृक्षाश्चिन्मे अभिपित्वे अरारणुः ।
गां भजन्त मेहनाश्वं भजन्त मेहना ॥२१।३३

नाई के हाथ में रहने वाले उस्तरे के समान हमारी बुद्धि को तीक्ष्ण करो। हे पाप-नाशक! हमको धन प्रदान करो। तुम्हारा गौ रूप धन हमको सुलभता से साध्य हो। तुम मनुष्यों के लिए धनों का प्रेरण करते हो ॥१६॥ हे पूषा, मैं तुम्हें प्रसन्न करना चाहता हूँ। तुम्हारी स्तुति करने का इच्छुक हूँ। मैं अन्य देवताओं की कामना नहीं करता। तुम साम स्तोता को इच्छित धन प्रदान करो ॥ १७ ॥ हे पूषन्! तुम तेजस्वी एवं अमरणशील हो, हमारी गायें चर कर लौटती रहें। हमारा गवादि धन स्थिर हो। तुम हमारी रक्षा करने वाले और कल्याण करने वाले हो। तुम अन्न देने के लिए महान् बनो ॥ १८ ॥ "कुरुङ्ग" नामक राजा की स्वर्ग कामना के निमित्त हुए यज्ञ और दान में हमने सौ अश्वों वाले प्रचुर धन को पाया था ॥ १९ ॥ कण्वपुत्र और मेधातिथि तथा उनके स्तोताओं द्वारा एवं प्रियमेध द्वारा मैंने साठ सहस्र गौओं को समर्के पश्चात् पाया था ॥ २० ॥ मेरे धन प्राप्त करने पर वृक्षों ने भी हर्ष रूप ध्वनि की थी। उनका भाव था कि मैंने स्तुति योग्य गौ और अश्व रूप धन को पाया है ॥ २१ ॥ [३३]

५ सूक्त

(ऋषि–ब्रह्मातिथि: काण्वः देवता–अश्विनौ, । चैद्यस्य: कशोर्दानस्तुति ।
छन्द–गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्)

दूरादिहेव यत्सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् । वि भानुं विश्वधातनत् ॥१
नृवद्स्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा । सचेथे अश्विनोपसम् ॥२
युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत । वाचं दूतो यथोहिषे ॥३
पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू । स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥४
मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती । गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥५ ।१

दूर से ही पास में दिखाई पड़ने वाली उषा जब सब पदार्थों को श्वेत करती है, उस समय वह अपनी काँति को फैलाती हुई बढ़ती है ॥ १ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अग्रगण्य हो । इच्छा होते ही अश्वों द्वारा योजित अन्नवान् रथ से तुम उषा के पास पहुँचो ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय तुम अन्न और धन से युक्त हो । अपने रचे हुए स्तोत्रों का अवलोकन करो । जैसे दूत स्वामी के वचन की याचना करता है, वैसे ही हम तुम्हारे वचन के लिए याचना करते हैं ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अनेकों के प्रीति भाजन हो । बहुत धन वाले तुम, अनेकों धन प्रदान करते हो । हम कण्ववंशी अपनी रक्षा के लिए अश्विनीकुमारों से याचना करते हैं ॥ ४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम पूजनीय हो । तुम सर्वाधिक अन्न देते हो, तुम सुन्दर धनों के अधिपति हो । तुम मंगलकारी

जो हविदाता सुन्दर देवता का उपासक है, तुम उसके लिए यज्ञ युक्त सुन्दर भूमि को सींचो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! अश्वों पर सवार होकर हमारी स्तुतियों के प्रति शीघ्र आओ। तुम्हारे अश्वों की चाल स्तुत्य है ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम तीन दिन रात समस्त उज्ज्वल स्थानों पर अपने घोड़ों की सहायता से जाओ ॥ ८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम प्रातः सवन में स्तुति के योग्य हो। हमारे उपभोग के लिए धन तथा गौ युक्त अन्न प्रदान करो ॥ ९ ॥ हे अश्विद्वय हमारे निमित्त गौ, रथ, अश्व, और सुन्दर सन्तान से युक्त धन-लाभ कराओ ॥ १० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　　　　[२]

वावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी । पिबतं सोम्यं मधु ॥११
अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः । छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२
नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् । मोष्वन्याँ उपारतम् ॥१३
अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः । मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४
अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् । पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५।३

हे अश्विद्वय ! तुम सुन्दर पदार्थों के स्वामी हो। तुम उज्ज्वल मार्ग वाले तथा दर्शनीय हो। बढ़ते हुए तुम सोम-मधु को पीओ ॥ ११ ॥ हे अश्वि-द्वय ! तुम धनवान् हो। हम भी धन से युक्त हैं। हमको विस्तृत और सुर-क्षित घर दो ॥ १२ ॥ हे अश्विद्वय ! मनुष्य के स्तोत्र की रक्षा करो। तुम शीघ्र हमारे पास आओ। अन्य के पास मत जाओ ॥ १३ ॥ हे अश्विनी-कुमारो ! तुम स्तुति के पात्र हो। हमारे द्वारा प्रदत्त हर्षकारी मधुर सोम को पीओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय ! हमारे निमित्त शत एवं सहस्र संख्यक धन निवास से युक्त प्राप्त कराओ ॥ १५ ॥　　　　　　　　　　　　　　[३]

पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः । वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१६
जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरङ्कृतः । युवां हवन्ते अश्विना ॥१७
अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः । युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८
यो ह वां मधुनो दृतिराहितो रथचर्षणे । ततः पिबतमश्विना ॥१९
तेन नो वाजिनीवसू पश्वे तोकाय शं गवे । वहतं पीवरीरिषः ॥२०।४

हे अश्विद्वय ! तुमको विद्वज्जन अनेक स्थानों में आहूत करते हैं । तु अपने अश्व की सहायता से आगमन करो ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! हवि वा यजमान कुशोच्छेन करते हुए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ १७ ॥ हे अश्वि कुमारो ! हमारा यह सुन्दर स्तोत्र सब स्तोत्रों से अधिक वाहक होता हु तुम्हारे पास पहुँचे ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय ! जो मधुर रस से पूर्ण पात्र बीच रखा है उससे मधु पीओ ॥ १९ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्नवान् और धनव हो । हमारे गवादि पशु और संतान के लिए अपने रथ द्वारा प्रचुर ध लाओ ॥ २० ॥ [४

उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा । अप द्वारेव वर्षथः ॥२१
कदा वां तौग्र्यो विधत्समुद्रे जहितो नरा । यद्वां रथो विभिष्पतात्॥
युवं कण्वाय नासत्यापिरिप्ताय हर्म्ये । शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३
ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः । यद्वां वृषण्वसू हुवे ॥२
यथा चित्कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५ ॥५

हे अश्विद्वय ! तुम प्रातःकाल में जाने जाते हो । तुम आवश्यक दि जल को हमारे द्वार से ही सींचो ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! समुद्र में पड़े "उग्र-पुत्र भुज्यु" ने कब तुम्हारी स्तुति की थी, जिससे तुम्हारा अश्ववान् उसके पास गया था ? ॥ २२ ॥ हे कभी भी असत्य न होने वाले अश्विद्व असुरों द्वारा महल के नीचे बाँधे गये "कण्व" की तुमने रक्षा की थी ॥ २३ हे अश्विनीकुमारों ! तुम वर्षणशील तथा वैभवशाली हो । मैं तुमको बुलाऊँ तभी तुम अपने विशाल एवं अभिनव रक्षा-साधनों सहित आगम करो ॥ २४ ॥ हे अश्विद्वय ! तुमने "कण्व", "प्रियमेध", "उपस्तुत" अ स्तुति करने वाले "अत्रि" की जैसे रक्षा की थी, वैसे ही हमा करो ॥ २५ ॥ [

यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यम् । यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६
एतावद्वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना । गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२

रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना । आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ।२८
हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः । उभा चक्रा हिरण्यया ॥२६
तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् । उपेमां सुष्टुतिं मम ॥३०।६

धन के निमित्त "वंश", गौओं के लिये "व्यश्व" और अन्न के लिए "सौभर" की जैसे रक्षा की, वैसे ही हमारी भी करो ॥ २६ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम वर्षणशील एवं ऐश्वर्यशाली हो। स्तुति करने वाले हम बहुत धन की प्रार्थना करते हैं ॥ २७ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम सुवर्ण युक्त ढाँचे एवं स्वर्ण की लगाम वाले रथ पर चढ़ कर आओ ॥ २८ ॥ हे अश्विद्वय! तुम्हारे रथ की ईशा, अक्ष, दोनों पहिए यह सब सुवर्ण निर्मित हैं ॥ २६ ॥ हे अन्न और धन से युक्त अश्विनीकुमारो! दूर हो तो भी इस रथ पर आओ। हमारी सुन्दर स्तुति के पास पहुँचो ॥ ३० ॥ [६]

आ वहेथे पराकात्पूर्वीरश्नन्तावश्विना । इषो दासीरमर्त्या ॥३१
आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना । पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥३२
एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः । अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥३३
रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह । न चक्रमभि बाधते ॥३४
हिरण्ययेन रथेन द्रवत्पाणिभिरश्वैः । धीजवना नासत्या ॥३५ ।७

हे अश्विद्वय! तुम अविनाशी हो। दुष्टों के अनेक पुरों को ध्वस्त कर अन्न लेकर आओ ॥ ३१ ॥ हे अश्विद्वय! तुम सत्य स्वभाव वाले तथा बहुतों के स्तुत्य हो, हमारे पास अन्न लेकर आओ। यश और धन के सहित हमारे पास आओ ॥ ३२ ॥ हे अश्विनीकुमारो! पक्षियों के समान द्रुतगति वाले अश्व तुम्हें यज्ञ करने वाले यजमान के पास लावें ॥ ३३ ॥ जो घोड़ा रथ में जुता है तथा स्तुति करने वालों ने जिसकी प्रशंसा की है, तुम्हारा वह घोड़ा हमारे कार्यों में सहायक बने ॥ ३४ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम मन के समान वेग वाले हो। तुम शीघ्र चाल वाले घोड़ों से युक्त सुवर्णमय रथ पर चढ़ कर यहाँ आगमन करो ॥ ३५ ॥ [७]

युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू । ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥

ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ।
यथा चिच्चैद्यः कशुः शतमुष्ट्रानां ददत्सहस्रा दश गोनाम् ।३७
यो मे हिरण्यसन्दृशो दश राज्ञो अमंहत ।
अधस्पदा इच्चैद्यस्य कृष्टयश्चर्मम्ना अभितो जनाः ॥३८
माकिरेना पथा गाद्येनेमे यन्ति चेदयः ।
अन्यो नेत्सूरिरोहते भूरिदावत्तरो जनः ॥३९ ।८

हे अश्विद्वय! तुम सदा चैतन्य रहते तथा सोम-पान करते हो। तुम हमको अन्न प्रदान करो ॥ ३६ ॥ हे अश्विद्वय! तुम नवीन धनों के जानने वाले हो। चेदि वंशीय "कशु" राजा ने सौ ऊँट और सहस्र संख्यक धेनु प्रदान की थीं, तुम इसे जानते हो ॥ ३७ ॥ मेरी सेवा के निमित्त जिन "कशु" राजा ने स्वर्ण के समान चमकते हुए दस संस्थानों को दिया, उन "कशु" की प्रजा उनके चरणों में आश्रय प्राप्त करती है ॥ ३८ ॥ चेदि वंश वाले जिस मार्ग से जाते हैं, उससे कोई नहीं जाता। "कशु" से बढ़ कोई दानी विद्वान् स्तोता को नहीं देता ॥ ३९ ॥ [८]

६ सूक्त (दूसरा अनुवाक)

(ऋषि-वत्सः काण्वः। देवता-इन्द्रः, तिरिन्दिरस्य पारशव्यस्य दानस्तुतिः। छन्द-गायत्री)

महाँ इन्द्रो य ओजसा पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव । स्तोमैर्वत्सस्य वावृधे ॥१
प्रजामृतस्य पिप्रतः प्र यद्भरन्त वह्नयः । विप्रा ऋतस्य वाहसा ॥२
कण्वा इन्द्रं यदक्रत स्तोमैर्यज्ञस्य साधनम् । जामि ब्रुवत आयुधम् ॥३
समस्य मन्यवे विशो विश्वा नमन्त कृष्टयः । समुद्रायेव सिन्धवः ॥४
ओजस्तदस्य तित्विष उभे यत्समवर्तयत् । इन्द्रश्चर्मेव रोदसी ॥५ ।९

जो इन्द्र पर्जन्य के समान पराक्रमी हैं, वह पुत्र के समान स्तोता के पराक्रम से बढ़ते हैं ॥ १ ॥ जब आकाश को परिपूर्ण करने वाले यज्ञ रूप अश्व इन्द्र को वहन करते हैं, तब विद्वज्जन स्तोत्रों से उनकी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ कण्व वंशियों ने स्तोत्र से ही इन्द्र को यज्ञ का साधनकर्त्ता नियुक्त

किया। इसीलिए इन्द्र को मित्र कहा जाता है ॥ ३ ॥ जैसे नदियाँ समुद्र का स्तवन करती हैं, वैसे सब मनुष्य इन्द्र के डर से, इन्द्र का स्तवन करते हैं ॥ ४ ॥ जिस बल से इन्द्र आकाश-पृथिवी को चमड़े के समान रखते हैं, वह बल अत्यन्त तेज से पूर्ण है ॥ ५ ॥ [१]

वि चिद्वृत्रस्य दोधतो वज्रेण शतपर्वणा । शिरो बिभेद वृष्णिना ॥६
इमा अभि प्र णोनुमो विपामग्रेषु धीतयः । अग्नेः शोचिर्न दिद्युतः ॥७
गुहा सतीरुप त्मना प्र यच्छोचन्त धीतयः । कण्वा ऋतस्य धारया ॥८
प्र तमिन्द्र नशीमहि रयिं गोमन्तमश्विनम् । प्र ब्रह्म पूर्वचित्तये ॥९
अहमिद्धि पितुष्परि मेधामृतस्य जग्रभ । अहं सूर्य इवाजनि ॥१० ।१०

कम्पायमान् वृत्र के शिर को इन्द्र ने शतधार वाले दृढ़ वज्र से छिन्न कर दिया था ॥ ६ ॥ हम स्तुति करने वालों के सामने अग्नि के तेज के समान चमकते, हुए इन स्तोत्रों का बारम्बार उच्चारण करेंगे ॥ ७ ॥ गुफा में स्थित जो गौएं इन्द्र के पास जाकर प्रशस्त होती हैं, उन्हें कण्व वंशीय ऋषि सोम से सींचें ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! हम गौ और घोड़ों से युक्त धन पावें और सब से पहिले ही अन्न प्राप्त करें ॥ ९ ॥ मैंने ही सत्य स्वरूप एवं पिता तुल्य इन्द्र की कृपा प्राप्त की और सूर्य के समान तेजस्वी हुआ ॥१०॥ [१०]

अहं प्रत्नेन मन्मना गिरः शुम्भामि कण्ववत् । येनेन्द्रः शुष्ममिद्दधे ॥११
ये त्वामिन्द्र न तुष्टुवुॠषयो ये च तुष्टुवुः । ममेद्वर्धस्व सुष्टुतः ॥१२
यदस्य मन्युरध्वनीद्वि वृत्रं पर्वशो रुजन् । अपः समुद्रमैरयत् ॥१३
नि शुष्ण इन्द्र धर्णसिं वज्रं जघन्थ दस्यवि । वृषा ह्युग्र शृण्विषे ॥१४
न द्याव इन्द्रमोजसा नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
न विव्यचन्त भूमयः ॥१५ ।११

कण्व के समान मैं स्तोत्र द्वारा वाणी को अलंकृत करता हूँ। इन्द्र ही स्तोत्र से बल पाते हैं ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! जो तुम्हारा स्तव नहीं करते और जो तुम्हारा स्तव करते हैं, इन दोनों में भी मेरी स्तुति ... है ॥ १२ ॥ तब इन्द्र के क्रोध से छिन्न-भिन्न होते हुए वृत्र

था, तब इन्द्र ने समुद्र की ओर जल भेजा था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुमने "शुष्ण" के लिए धारण किए गए वज्र को चलाया। हे इन्द्र ! तुम कामनाओं के वर्षक हो ॥ १४ ॥ इन्द्र को आकाश अन्तरिक्ष और पृथिवी अपने बलों से व्याप्त नहीं कर सकते ॥ १५ ॥ [११]

यस्त इन्द्र महीरपः स्तभूयमान आशयत् । नि तं पद्यासु शिश्नथः ॥१६
य इमे रोदसी मही समीची समजग्रभीत् । तमोभिरिन्द्र तं गुहः ॥१७
य इन्द्र यतयस्त्वा भृगवो ये च तुष्टुवुः । ममेदुग्र श्रुधी हवम् ॥१८
इमास्त इन्द्र पृश्नयो घृतं दुहत आशिरम् । एनामृतस्य पिप्युषीः ॥१९
या इन्द्र प्रस्वस्त्वासा गर्भमचक्रिरन् । परि धर्मेव सूर्यम् ॥२० ।१२

हे इन्द्र ! जिस वृत्र ने जलों को अन्तरिक्ष में रोक रखा था, उस वृत्र को तुमने जल में ही मार दिया ॥ १६ ॥ जिस वृत्र ने महत्त्ववती आकाश-पृथिवी को व्याप्त किया था, उसे हे इन्द्र ! तुमने मरण रूप अन्धकार में डाल दिया ॥१७॥ हे पराक्रमी इन्द्र ! जो अंगिरागण एवं भृगु वंशीय तुम्हारी स्तुति करते हैं, उन सब में मेरी स्तुति श्रवण करो ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! यज्ञ के वृद्धि करने वाली गौएं दूध एवं घृत प्रदान करती हैं ॥ १९ ॥ हे इन्द्र ! इन प्रसवधर्म वाली गौओं ने तुम्हारे दिए हुए अन्न को मुख से खाकर सूर्य के चारों ओर वर्तमान जल के समान गर्भ को धारण किया था ॥२०॥ (१२)

त्वामिच्छवसस्पते कण्वा उक्थेन वावृधुः । त्वां सुतास इन्दवः ॥२१
तवेदिन्द्र प्रणीतिषूत प्रशस्तिरद्रिवः । यज्ञो वितन्तसाय्यः ॥२२
आ न इन्द्र महीमिषं पुरं न दर्षि गोमतीम् । उत प्रजां सुवीर्यम् ॥२३
उत त्यदाश्वश्व्यं यदिन्द्र नाहुषीष्वा । अग्रे विक्षु प्रदीदयत् ॥२४
अभि व्रजं न तत्निषे सूर उपाकचक्षसम् ।
यदिन्द्र मृळयासि नः ॥ २५ । १३

हे इन्द्र ! तुम बल के स्वामी हो। कण्ववंशीय तुम्हें स्तोत्र द्वारा बढ़ाते हैं। सिद्ध सोम तुम्हें बढ़ाते हैं ॥ २१ ॥ हे वज्रिन् ! तुम्हारे पथ-प्रदर्शन करने पर श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा यज्ञ किये जाते हैं ॥ २२ ॥ हे इन्द्र ! हमको

महान् गौ युक्त अश्व तथा वीर्यवान् पुत्र प्रदान करने का विचार करो॥ २३ ॥ हे इन्द्र ! नहुष को प्रजाओं के सम्मुख द्रुतगामी घोड़े से युक्त जो बल तुमने दिया था, वह हमको भी दो ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम मेधावी हो। इस गौओं के सुन्दर गोष्ट को परिपूर्ण करो और हमको सुख दो ॥ २५ ॥ (१३)

यदङ्ग तविषीयस इन्द्र प्रराजसि क्षितीः। महाँ अपार ओजसा ॥२६
तं त्वा हविष्मतीर्विश उप ब्रुवत ऊतये। उरुज्रयसमिन्दुभिः ॥२७
उपह्वरे गिरीणां सङ्गथे च नदीनाम्। धिया विप्रो अजायत ॥२८
अतः समुद्रमुद्वतश्चिकित्वाँ अव पश्यति। यतो विपान एजति ॥२९
आदित्प्रत्नस्य रेतसो ज्योतिष्पश्यन्ति वासरम्।
परो यदिध्यते दिवा ॥३०॥१४

हे इन्द्र ! तुम बल के समानवर्त्ती हो, मनुष्यों के स्वामी होओ। तुम अपने बल के द्वारा अजेय हो ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! तुम व्यापक हो, हविवान् व्यक्ति तुम्हें सोम से तृप्त करने के लिए तुम्हारे पास आकर स्तुति करते हैं ॥ २७ ॥ पर्वतों में, नदियों के संगमों पर होने वाले यज्ञानुष्ठानों में विद्वान् इन्द्र प्रकट होते हैं ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! तुम सर्वत्र व्याप्त हो। जो संसार में विचरण करते हैं, वे इन्द्र ऊपर से नीचे की ओर मुख करते हुए समुद्र को देखते हैं ॥ २९ ॥ आकाश पर जब इन्द्र अपना तेज फैलाते हैं, तब उन प्राचीन जलदाता इन्द्र की ज्योति का सभी दर्शन करते हैं ॥ ३० ॥ (१४)

कण्वास इन्द्र ते मतिं विश्वे वर्धन्ति पौंस्यम्।
उतो शविष्ठ वृष्ण्यम् ॥३१
इमां म इन्द्र सुष्टुतिं जुषस्व प्र सु मामव। उत प्र वर्धया मतिम् ॥३२
उत ब्रह्मण्या वयं तुभ्यं प्रवृद्ध वज्रिवः। विप्रा अतक्ष्म जीवसे ॥३३
अभि कण्वा अनूषतापो न प्रवता यतीः। इन्द्रं वनन्वती मतिः ॥३४
इन्द्रमुक्थानि वावृधुः समुद्रमिव सिन्धवः। अनुत्तमन्युमजरम् ॥३५॥१५

हे इन्द्र ! तुम्हारे बुद्धि-बल की कण्व वंशीय वृद्धि क[illegible] तुम्हारे वीर कर्म को भी प्रचण्ड करते हैं ॥ ३१ ॥ हे इन्द्र ! इ[illegible]

स्तुतियों को सुनो । हमारी भले प्रकार रक्षा करते हुए बुद्धि को बढ़ाओ ॥२२॥ हे वज्रिन् ! हम विद्वान् हैं । अपने जीवन के लिए तुम्हारे प्रति हम स्तोत्रोच्चार करते हैं ॥ २३ ॥ कण्ववंशीय स्तुति करते हैं । नीचे ओर जाते हुए जलों के समान स्तुतियाँ स्वयं ही इन्द्र की सेवा में जाती हैं ॥ २४ ॥ नदियाँ समुद्र को जैसे बढ़ाती हैं, वैसे ही मन्त्र इन्द्र को बढ़ाते हैं, वे इन्द्र जरा रहित हैं । उनके प्रभाव को कोई रोक नहीं सकता ॥ २५ ॥ [१५]

आ नो याहि परावतो हरिभ्यां हर्यताभ्याम् । इममिन्द्र सुतं पिब ॥२६
त्वामिद्वृत्रहन्तम जनासो वृक्तबर्हिषः । हवन्ते वाजसातये ॥२७
अनु त्वा रोदसी उभे चक्रं न वर्त्येतशम् । अनु सुवानास इन्दवः ॥२८
मन्दस्वा सु स्वर्णर उतेन्द्र शर्यणावति । मत्स्वा विवस्वतो मती ॥२९
वावृधान उप द्यवि वृषा वज्र्यरोरवीत् ।
वृत्रहा सोमपातमः ॥४० ॥१६

हे इन्द्र ! सुन्दर रथ द्वारा दूर से भी हमारे पास आगमन करो और सुसिद्ध सोम को पीओ ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! तुम सबसे अधिक राक्षसों के हनन-कारी हो । कुश छेदन करने वाले साधक अन्न लाभ के लिए तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! जैसे रथ के पहिये घोड़े के पीछे चलते हैं, वैसे ही आकाश पृथिवी तुम्हारी अनुवर्त्ती होती हैं और सोम भी तुम्हारा अनुगमन करता है ॥ २८ ॥ हे इन्द्र ! "शर्यणादेश" के तालाब (कुरुक्षेत्र) के निकट सब ऋषियों के यज्ञ में तृप्त होओ और स्तुतियों से पुष्टि को प्राप्त करो ॥ २९ ॥ कामनाओं के वर्षक, प्रवृद्ध, पराक्रमी, अत्यन्त सोमों के पान करने वाले वृत्रहन्ता इन्द्र आकाश के निकट से बोलते हैं ॥ ४० ॥ [१६]

ऋषिर्हि पूर्वजा अस्येक ईशान ओजसा । इन्द्र चोष्कूयसे वसु ॥४१
अस्माकं त्वा सुताँ उप वीतपृष्ठा अभि प्रयः । शतं वहन्तु हरयः ॥४२
इमां सु पूर्व्यां धियं मधोर्घृतस्य पिप्युषीम् । कण्वा उक्थेन वावृधुः ॥४३
इन्द्रमिद्विमहीनां मेधे वृणीत मर्त्यः । इन्द्रं सनिष्युरूतये ॥४४
अर्वाञ्चं त्वा पुरुष्टुत प्रियमेधस्तुता हरी । सोमपेयाय वक्षतः ॥४५

शतमहं तिरिन्दिरे सहस्रं पर्शावा ददे । राधांसि याद्वानाम् ॥४६
त्रीणि शतान्यर्वतां सहस्रा दश गोनाम । ददुष्पज्राय साम्ने ॥४७
उदानट् ककुहो दिवमुष्ट्राञ्चतुर्युजो ददत् ।
श्रवसा याद्वं जनम् ॥४८ ।१७

हे इन्द्र ! तुम पहिले ऋषि रूप से उत्पन्न हुए फिर अपने महान् बल से सब देवताओं के अधिपति हुए । हमको बारम्बार धन प्रदान करो ॥ ४१ ॥ मजबूत चौड़ी पीठ वाले सौ घोड़े हमारे अभिषुत सोम तथा अन्न के लिये तुम्हें ले आयें ॥ ४२ ॥ स्तोत्र द्वारा कण्व वंशीय पूर्वजों द्वारा की हुई मधुर जलों के बढ़ाने वाली यज्ञ क्रिया को वृद्धि करें ॥ ४३ ॥ सभी देवता महान् हैं । उन सबके मध्य इन्द्र को ही रक्षण के निमित्त धन की कामना करते हुए वरण करते हैं ॥ ४४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा स्तुत हो । यज्ञ-कामना वाले ऋषियों द्वारा प्रशंसित दो घोड़े तुम को हमारे समस्त सोम पीने के लिए ले आवें ॥ ४५ ॥ यदुवंशियों में 'परशु' के पुत्र 'तिरिंदिर' से सहस्र संख्यक धन मैंने प्राप्त किया था ॥ ४६ ॥ उन 'तिरिंदर' राजा ने 'पज्र' और 'साम' को तीन सौ घोड़े और एक हजार गौऐं प्रदान कीं ॥ ४७ ॥ उन 'तिरिन्दिर' राजा ने चार स्वर्ण भारों सहित ऊँटों को दान किया और अपने यश के तेज से वे स्वर्ग प्राप्त कर सके ॥ ४८ ॥ [१७]

७ सूक्त

(ऋषि– पुनर्वत्सः काण्वः । देवता–मरुतः । छन्द–गायत्री)

प्र यद्वस्त्रिष्टुभमिषं मरुतो विप्रो अक्षरत् । वि पर्वतेषु राजथ ॥१
यदङ्ग तविषीयवो यामं शुभ्रा अचिध्वम् । नि पर्वता अहासत ॥२
उदीरयन्त वायुभिर्वाश्रासः पृश्निमातरः । धुक्षन्त पिप्युषीमिषम् ॥३
वपन्ति मरुतो मिहं प्र वेपयन्ति पर्वतान् । यद्यामं यान्ति वायुभिः ॥४
नि यद्यामाय वो गिरिर्नि सिन्धवो विधर्मणे । शुष्माय येमिरे ॥५ ।१८

हे मरुद्‌गण ! जब मेधावी जन यज्ञ के तीनों सवनों में हव्य डालते हैं, तब तुम पर्वतों में प्रकाश फैलाते हो ॥ १ ॥ हे बल की कामना वाले

रूप वाले मरुद्गण ! जब तुम घोड़ों को रथ में योजित करते हो तब पर्वत भी कम्पायमान् होने लगते हैं ॥ २ ॥ शब्दवान् मरुत् वायु वेग से मेघादि को ऊपर उठाकर वृष्टि द्वारा अन्न प्रदान करते हैं ॥ ३ ॥ जब मरुद्गण वायुओं के साथ गमन करते हैं तब वे वृष्टि करते हुए पर्वतों को कम्पित करते हैं ॥४॥ हे मरुतो ! तुम्हारे रथ की गति पर्वतों पर निश्चित है । नदियाँ तुम्हारी रक्षा और गमन के लिए नियुक्त हैं ॥ ५ ॥ [१८]

युष्माँ उ नक्तमूतये युष्मान्दिवा हवामहे । युष्मान्प्रयत्यध्वरे ॥६
उदु त्ये अरुणप्सवश्चित्रा यामेभिरीरते । वाश्रा अधिष्णुना दिवः ॥७
सृजन्ति रश्मिमोजसा पन्थां सूर्याय यातवे । ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥८
इमां मे मरुतो गिरमिमं स्तोममृभुक्षणः । इमं मे वनता हवम् ॥९
त्रीणि सरांसि पृश्नयो दुदुह्रे वज्रिणे मधु ।
उत्सं कवन्धमुद्रिणम् ॥१० ।१९

हम रात्रि में तुम्हें रक्षा की इच्छा से बुलाते हैं । दिन में भी तथा यज्ञ के आरम्भ होने पर भी हम तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ ६ ॥ वे अरुण वर्ण वाले, अद्भुत तथा शब्द करने वाले मरुद्गण रथ पर चढ़े हुए स्वर्ग से जाते हैं ॥ ७ ॥ जो मरुद्गण सूर्य के जाने का किरण से युक्त मार्ग बनाते हैं, वे उन्हें प्रकाश से पूर्ण करते हैं, ॥ ८ ॥ हे मरुद्गण ! मेरे इस वाक्य को आश्रय दो । हे महान् कर्म वालो ! इस स्तोत्र को आश्रय दो । मेरे आह्वान को सुनो ॥ ९ ॥ मरुद्गण की माता पृश्नियों ने वज्रधारी इन्द्र के लिए मीठे सोमरस को 'उत्स,' 'कवन्ध' और 'अद्रि' नामक सरोवरों से निकाला ॥ १० ॥ (१९)

मरुतो यद्ध वो दिवः सुम्नायन्तो हवामहे । आ तू न उप गन्तन ॥११
यूयं हि ष्ठा सुदानवो रुद्रा ऋभुक्षणो दमे । उत प्रचेतसो मदे ॥१२
आ नो रयिं मदच्युतं पुरुक्षुं विश्वधायसम् । इयर्ता मरुतो दिवः ॥१३
अधीव यद् गिरीणां यामं शुभ्रा अचिध्वम् । सुवानैर्मन्दध्व इन्दुभिः ।१४
एतावतश्चिदेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । अदाभ्यस्य मन्मभिः ॥१५ ।२०

हे मरुद्गण ! जब तुमको हम सुख की कामना करते हुए, स्वर्ग से बुलावें, तब तुम शीघ्र ही हमारे पास आगमन करो ॥ ११ ॥ हे दानशील, सुन्दर, तेजस्वी मरुद्गण ! तुम यज्ञ स्थान में हर्षकारी सोम पीकर श्रेष्ठ ज्ञानी बनते हो ॥ १२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हमारे निमित्त स्वर्ग से हर्षकारी, बहुत निवासप्रद तथा पोषण-समर्थ धन लाओ ॥ १३ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम पर्वत पर अपना रथ लेकर पहुँचते हो, तब सोम के हर्ष से हृष्ट होते हो ॥१४॥ स्तुति करने वाला मनुष्य स्तोत्रों द्वारा मरुद्गण से अपनी सुख की याचना करता है ॥ १५ ॥ (२०)

ये द्रप्साइव रोदसी धमन्त्यनु वृष्टिभिः । उत्सं दुहन्तो अक्षितम् ।१६
उदु स्वानेभिरीरत उद्रथैरुदु वायुभिः । उत्स्तोमैः पृश्निमातरः ॥१७
येनाव तुर्वशं यदुं येन कण्वं धनस्पृतम् । राये सु तस्य धीमहि ॥१८
इमा उ वः सुदानवो घृतं न पिप्युषीरिषः । वर्धान्काण्वस्य मन्मभिः ।१९
क्व नूनं सुदानवो मदथा वृक्तबर्हिषः । ब्रह्मा को वः सपर्यति ।२० ।२१

मरुद्गण क्षीण न होने वाले मेघ को दुहते हुए जल की बूँदों के समान, वर्षा से आकाश-पृथिवी को व्याप्त करते हैं ॥ १६ ॥ पृश्नि-पुत्र मरुद्गण शब्द करते हुए उठते हैं, वे अपने रथ से ऊर्ध्वगामी होते हैं। वे वायु तथा मन्त्र की शक्ति से ऊपर की ओर चढ़ते हैं ॥ १७ ॥ हे मरुतो ! जिन रक्षण-साधनों से तुमने 'यदु' और 'तुर्वश' की रक्षा की थी और जिन साधनों से धन की कामना वाले 'कण्व' की रक्षा की थी, हम भी धन के निमित्त उन्हीं साधनों को चाहते हैं ॥ १८ ॥ हे दानशील चित्त वाले मरुद्गण ! तुम घृत के समान शरीर को बलिष्ट बनाने वाले इस अन्न को, कण्व वंशियों द्वारा उत्पन्न किये स्तोत्र के समान बढ़ाओ ॥ १९ ॥ हे मरुतो ! तुम दानशील हो। यह कुश तुम्हारे निमित्त उखाड़े गए हैं। इस समय तुम कहाँ विहार करते हो ? कौन स्तोता तुम्हारी पूजा करता है ? ॥ २० ॥ (२१)

नहि ष्म यद्ध वः पुरा स्तोमेभिर्वृक्तबर्हिषः ।
शर्धां ऋतस्य जिन्वथ ॥२१
समु त्ये महतीरपः सं क्षोणी समु सूर्यम् । सं वज्रं पर्वशो

वि वृत्रं पर्वशो ययुर्वि पर्वतां अराजिनः ।
चक्राणा वृष्णि पौंस्यम् ॥२३
अनु त्रितस्य युध्यतः शुष्ममावन्नुत क्रतुम् । अन्विन्द्रं वृत्रतूर्ये ॥२४
विद्युद्धस्ता अभिद्यवः शिप्राः शीर्षन्हिरण्ययीः ।
शुभ्रा व्यञ्जत श्रिये ॥२५ ।२२

हे मरुद्गण ! तुम अन्यों के स्तोत्रों से अपने यज्ञीय बल की वृद्धि करते हो, उनके स्थान पर हमारे स्तोत्रों को ग्रहण करो ॥ २१ ॥ उन मरुद्गण ने औषधियों में जल मिश्रित किया । आकाश और पृथिवी को उन के स्थानों पर स्थिर किया और सूर्य की स्थापना की । उन्होंने वृत्र को छिन्न भिन्न करने के लिए वज्र को धारण किया ॥ २२ ॥ स्वच्छन्द एवं बल की वृद्धि करने वाले मरुतों ने पर्वत के समान वृत्र के खंड खंड कर डाले ॥ २३ ॥ उन मरुतों ने वीर त्रित के बल की रक्षा की, त्रित के कर्म की भी रक्षा की और वृत्र हनन कर्म के लिए इन्द्र की रक्षा की ॥ २४ ॥ हाथ में आयुध धारण करने वाले, सुन्दर, तेजस्वी मरुद्गण ने अपने मस्तक पर शोभा के लिए शिप्र धारण किया ॥ २५ ॥ [२२]

उशना यत्परावत उक्ष्णो रन्ध्रमयातन । द्यौर्न चक्रदद्भिया ॥२६
आ नो मखस्य दावनेऽश्वैर्हिरण्यपाणिभिः । देवास उप गन्तन ॥२७
यदेषां पृषती रथे प्रष्टिर्वहति रोहितः । यान्ति शुभ्रा रिणन्नपः ॥२८
सुषोमे शर्यणावत्यार्जीके पस्त्यावति । ययुर्निचक्रया नरः ॥२९
कदा गच्छाथ मरुत इत्था विप्रं हवमानम् ।
मार्डीकेभिर्नाधमानम् ॥३० ।२३

हे मरुद्गण ! स्तुति करने वालों की कामना करते हुए कामनाओं की वर्षा करने वाले रथ से तुमने दूर से आगमन किया था । उस समय देवताओं के समान मर्त्यलोक के प्राणी भी भय से कंपित हो गए थे ॥ २६ ॥ वे देवता मरुत् यज्ञ में दान के निमित्त सुवर्ण युक्त पाँवों वाले घोड़ों पर चढ़ कर आगमन करें ॥ २७ ॥ इन मरुद्गण के रथ पर जब श्वेत बूंद वाली मृगी और

द्रुतगामी रोहित मृग चढ़ते हैं तब सुन्दर मरुद्गण गमन करते हैं। उस समय जल वृष्टि होती है ॥ २८ ॥ मरुद्गण! सुन्दर सोम से युक्त और यश गृह वाले हैं। ऋजीका देश के "शर्यणा सरोवर" में रथ के पहिये को नीचे मुख करके ले जाते हैं ॥२९॥ हे मरुद्गण! तुम कामना करने वाले विद्वान स्तोता के पास सुख के कारण रूप धन सहित कब आओगे? ॥ ३० ॥ [२३]

कद्ध नूनं कधप्रियो यदिन्द्रमजहातन। को वः सखित्व ओहते ॥३१
सहो षु णो वज्रहस्तैः कण्वासो अग्निं मरुद्भिः।
स्तुषे हिरण्यवाशीभिः ॥३२
ओ षु वृष्णः प्रयज्यूना नव्यसे सुविताय। ववृत्यां चित्रवाजान् ॥३३
गिरयश्चिन्नि जिहते पर्शानासो मन्यमानाः। पर्वताश्चिन्नि येमिरे ॥३४
आक्ष्णयावानो वहन्त्यन्तरिक्षेण पततः। धातारः स्तुवते वयः ॥३५
अग्निर्हि जानि पूर्व्यश्छन्दो न सूरो अर्चिषा
ते भानुभिर्वि तस्थिरे ॥३६ ।२४

हे मरुतों! तुम स्तोत्र से प्रसन्न होते हो। तुमने इन्द्र को कब छोड़ा? तुम्हारी मैत्री के लिए किसने याचना की? ॥ ३१ ॥ कण्व वंशियों! तुम वज्र धारण करने वाले मरुद्गण के सहित अग्नि का स्तवन करो ॥ ३२ ॥ यजन के योग्य, अद्भुत पराक्रमी वाले, वर्षणशील मरुद्गण को मैं सुख से प्राप्त होने वाले धन के निमित्त बुलाता हूँ ॥ ३३ ॥ सभी पर्वत आघात होने पर स्थान-भ्रष्ट नहीं होते। वे सदा ही स्थिर रहते हैं ॥ ३४ ॥ बहुत दूर तक जाने की सामर्थ्य वाले घोड़े आकाश-मार्ग से मरुद्गण को लेकर आते हैं। ये स्तुति करने वाले को अन्न प्रदान करते हैं ॥ ३५ ॥ अग्नि अपने तेज के बल से सूर्य के समान सबसे श्रेष्ठ होते हुए प्रकट हुए। वे मरुद्गण भी अपने तेज के बल से विभिन्न स्थानों में वास करते हैं ॥ ३६ ॥ [२४]

८ सूक्त

(ऋषि—सध्वंस काण्वः। देवता—अश्विनौ। छन्द—त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम्।

अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥९
आ यद्वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१० ।२६

हे अश्विनीकुमारो ! प्राचीन कालीन ऋषियों ने जब रक्षा के लिए तुम्हारा आह्वान किया, तब तुम आगए। अतः मेरी भी स्तुति के प्रति आगमन करो ॥ ६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सूर्य के जानने वाले हो। आकाश और अन्तरिक्ष से हमारे निकट आगमन करो। तुम स्तुति करने वाले के लिए प्रकृष्ट बुद्धि सहित आओ ! हे आह्वान के श्रवण करने वाले अश्विद्वय ! तुम स्तोत्र सहित आगमन करो ॥ ७ ॥ मेरे सिवाय अन्य कौन साधक अश्विनीकुमारों की स्तोत्र द्वारा स्तुति कर सकता है ? कण्व के पुत्र वत्स ऋषि स्तोत्र के द्वारा तुम्हें प्रवृद्ध करते हैं ॥ ८ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! इस यज्ञ में रक्षा के निमित्त स्तुति करने वाले ने तुम्हारा आह्वान किया है। हे अमन्य रहित, हे शत्रुओं के नाश करने में श्रेष्ठ अश्विद्वय ! तुम हमारे लिए कल्याणकारी होओ ॥ ९ ॥ धन और अन्न वाले अश्विनीकुमारो ! तुम सभी इच्छित पदार्थों को प्राप्त करो ॥ १० ॥ [२६]

अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत्काव्यः कविः ॥११
पुरुमन्द्रा पुरूवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥१२
आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे ॥१३
यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४
यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५ ।२७

हे अश्विद्वय ! तुम जिस लोक में हो, वहीं से सुन्दर रा

कर यहाँ आओ। कण्व और कवि वत्स मधुर वाणी का उच्चारण करते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम अत्यन्त हृष्ट, संसार के वहन करने वाले, धनों के देने वाले मेरे इस स्तोत्र का पालन करो ॥ १२ ॥ हे अश्विद्वय ! हमको धन प्रदान करो । हमको प्रजोत्पादन कर्म में समर्थ बनाओ। हमको निंदा करने वालों के वश में मत डाल देना ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सत्य स्वभाव वाले हो । तुम दूर हो या निकट चाहे जहाँ होओ, असंख्य रूप वाले सुन्दर रथ से आओ ॥ १४ ॥ हे अश्विद्वय ! जिन वत्स ऋषि ने अपनी स्तुति से तुम्हें बढ़ाया, उन्हें विविध रूपों से युक्त तथा घृत युक्त अन्न प्रदान करो ॥ १५ ॥ (२७)

प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चु तमश्विना यच्छतं युवम् ।
या वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६
आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७
आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८
आ नो गन्तं मयोभुवाश्विना शम्भुवा युवम ।
यो वा विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१६
याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२० ॥२८

हे अश्विद्वय ! उन स्तुति करने वालों को घृत युक्त बलकारक अन्न दो तुम दानों के स्वामी हो। इन स्तोताओं ने तुम्हें सुख देने के लिए स्तुति की है। यह अपने लिए धन चाहते हैं ॥ १६ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम शत्रुओं के भक्षक तथा बहुत हव्य भक्षण करने वाले हो। हमारी स्तुतियों के प्रति आकर हमको सुन्दर ऐश्वर्य से युक्त करो ॥ १७ ॥ 'प्रियमेध' ऋषि ने देवताओं का आह्वान करते समय तुम्हें रक्षा-साधनों सहित आहूत किया। हे अश्विनीकुमारो ! तुम इस यज्ञ में आकर विराजमान होओ ॥ १८ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सुख

प्रदान करने वाले, आरोग्य दाता और स्तुति के योग्य हो। जिन 'वत्स' ने अपनी स्तुति से तुम्हें बढ़ाया, उनके समक्ष पधारो ॥ १९ ॥ जिन रक्षा साधनों से तुमने 'कण्व' 'मेधातिथि', 'वश', 'दशव्रज' और 'गोशर्य' की रक्षा की थी, उन्हीं साधनों से हमारी रक्षा करो ॥ २० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　　(२८)

याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्वस्मा अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१
प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२
त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग्जीवेभ्यस्परि ॥२३ ।२९

हे अश्विनीकुमारो ! जिन रक्षा-साधनों से तुमने 'त्रसदस्यु' की रक्षा की थी, उन्हीं से हमारी रक्षा करो ॥ २१ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम बहुतों के रक्षक तथा शत्रुओं का नाश करने वालों में प्रमुख हो। निर्दोष स्तोत्रमय वाक्य तुम्हारी वृद्धि करें। तुम हमारे प्रति कामनाओं वाले होओ ॥ २२ ॥ अश्विनीकुमारों का तीन पहियों वाला रथ छिपा हुआ रह कर फिर प्रकट होता है। हे अश्विद्वय ! यज्ञ के कारण रूप रथ से हमारे सामने आगमन करो ॥२३॥ (२९)

९ सूक्त

(ऋषि–शशकर्णः काण्वः । देवता–अश्विनौ । छन्द–बृहती, गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, पंक्तिः, जगती ।

आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१
यदन्तरिक्षे यद्दिवि यत्पञ्च मानुषाँ अनु । नृम्णं तद्धत्तमश्विना ॥२
ये वां दंसांस्यश्विना विप्रासः परिमामृशुः । एवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥३
अयं वां घर्मो अश्विना स्तोमेन परि षिच्यते ।
अयं सोमो मधुमान्वाजिनीवसू येन वृत्रं चिकेतथः ॥४

यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माविष्टमश्विना ॥५ ।३०

हे अश्विनीकुमारो ! तुमने "वत्स" ऋषि की रक्षा के लिए गमन किया था । इन ऋषि को विघ्न रहित घर दो और इनके शत्रुओं को भगाओ ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जो धन अन्तरिक्ष और स्वर्ग में है तथा जो पंच श्रेणी में है, वह धन हमको दो ॥ २ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! जिस साधक ने तुम्हारे निमित्त बारंबार अनुष्ठान किया, तुम उनको जानो और कण्व-पुत्रों के कार्यों की भी जानकारी करो ॥ ३ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम्हारा धर्म (यज्ञ का पाक पात्र) स्तोत्र से भिगोया जाता है । तुम अन्न और धन वाले हो । तुमने जिस सोम के द्वारा वृत्र को जाना था वह मधुर सोम यही है ॥ ४ ॥ हे विविध कर्मों के करने वाले अश्विनीकुमारो ! जल, वनस्पति और लताओं को जो तुमने औषधि गुण दिया है, उसके द्वारा हमारी रक्षा करो ॥५ ॥ [३०]

यन्नासत्या भुरण्यथो यद्वा देव भिषज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥६
आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥७
आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥८
यदद्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद्वा वाणीभिरश्विनेवेत्काण्वस्य बोधतम् ॥९
यद्वां कक्षीवाँ उत यद्व्यश्व ऋषिर्यद्वां दीर्घतमा जुहाव ।
पृथी यद्वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१० ।३१

हे सत्यशील अश्विद्वय ! तुमने संसार का पालन किया और उसे आरोग्य दिया । स्तुति द्वारा वत्स ऋषि तुम्हें प्राप्त नहीं कर पाते । तुम तो हविर्वान् साधकों के निकट जाते हो ॥ ६ ॥ "वत्स" ऋषि ने उत्तम बुद्धि से

अश्विनीकुमारों की स्तुति को जाना। "वत्स" ने मधुर सोम और हव्य को अर्पित किया था ॥ ७ ॥ हे अश्विद्वय! तुम द्रुतगामी रथ पर आरोहण करो। मेरे यह सूर्य के समान तेज वाले स्तोत्र तुम्हें प्राप्त होते हैं ॥८॥ हे अश्विद्वय! हम स्तोत्र द्वारा जैसे तुम्हें ले आते हैं, वैसे ही तुम मेरे स्तोत्र को जानो ॥९ हे अश्विद्वय! जैसे "कक्षीवान्" ने तुम्हें आहूत किया था, जैसे "व्यश्व" तथा "दीर्घतमा" ने, "वेन" के पुत्र "पृथु" ने यज्ञ स्थान में आहूत किया था, वैसे ही मैं स्तुति करता हूँ मेरे इस स्तोत्र को जानो ॥ १० ॥ [३१]

यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११
यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा ।
यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद्वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२
यदद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।
यत्पृत्सु तुर्वणे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३
आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वां हिता ।
इमे सोमासो अधि तुर्वशे यदाविमे कण्वेषु वामथ ॥१४
यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५ ।३२

हे अश्विद्वय! तुम घर के रक्षक होकर आगमन करो। तुम अत्यन्त पालनकर्त्ता हो। तुम संसार के पालक हो। पुत्र और पौत्र के घर में आओ ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो! तुम यदि इन्द्र के साथ रथ पर बैठ कर गमन करते हो, यदि तुम वायु के साथ एक स्थान पर रहते हो, यदि तुम विष्णु के पादक्षेप के साथ लोकत्रय में व्यापते हो तो यहाँ आओ ॥ १२ ॥ जब मैं युद्ध के लिए अश्विद्वय का आह्वान करता हूँ तब वे आगमन करें। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए जो रक्षा-साधन अश्विनीकुमारों के पास है, वह अत्युत्कृष्ट हैं ॥ १३ ॥ हे अश्विद्वय! ये हवियाँ तुम्हारे निमित्त हैं। तुम अवश्य आगमन करो। यह सोम "तुर्वश" और "यदु" द्वारा वर्तमान हैं। यह

को दिया गया था ॥ १४ ॥ हे सत्याचरण वाले अश्विनीकुमारो ! दूर अथवा पास जो औषध है, उसके सहित "विमद" के समान "वत्स" को भी निवास योग्य घर दो ॥ १५ ॥ [३२]

अभुत्स्यु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्येभ्यः ॥१६
प्र बोधयोषो अश्विना प्र देवि सूनृते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुषक्प्र मदाय श्रवो बृहत् ॥१७
यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८
यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद्वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९
प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृषाह्याय शर्मणे । प्र दक्षाय प्र चेतसा ॥२०
यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद्वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१ ।३३

मैं अश्विनीकुमारों के स्तोत्र के साथ जाग गया । हे कान्तिमती उषे ! मेरी स्तुति से अन्धकार को नष्ट करो और मनुष्यों को धन प्रदान करो ॥ १६॥ सुन्दर नेत्र वाली देवी उषा ! तुम अश्विद्वय को जगा कर प्रवृद्ध करो । हे देवताओं का आह्वान करने वाली, तुम अश्विद्वय को सदा चैतन्य करो । उनके हर्ष के लिऐ बृहद् अन्न यहाँ उपस्थित है ॥ १७ ॥ हे उषे ! जब तुम तेज के साथ जाती हो, तब सूर्य के समान सुशोभित होती हो । उस समय अश्विनीकुमारों का यह रथ मनुष्यों का पोषण करने वाले यज्ञ गृह में आगमन करता है ॥ १८ ॥ जिस समय पीले रङ्ग वाली सोमलता गौ के स्तन के समान दुही जाती है और जिस समय देवताओं की कामना वाले मनुष्य स्तुति करते हैं, उस समय हे अश्विनीकुमारो ! तुम रक्षा करने वाले होओ ॥ १९ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! धन के निमित्त तुम हमारी रक्षा करो । बल के निमित्त रक्षा करो । मनुष्यों की सुख-समृद्धि के निमित्त रक्षक होओ ॥ २० ॥ हे अश्विनी-

कुमारो ! यदि तुम पिता के समान स्वर्ग के अङ्क में कर्म सहित स्थित हो, यदि प्रशंसा के योग्य होकर सुख सहित निवास करते हो तोभी हमारे पास आगमन करो ॥ २१ ॥ [३३]

१० सूक्त

(ऋषि–प्रगाथः काण्वः । देवता–अश्विनौ छन्द–बृहती, त्रिष्टुप्, पंक्तिः)

यत्स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद्वादो रोचने दिवः ।
यद्वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥१
यद्वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत्काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान्देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू अश्विनावाशुहेषसा ॥२
त्या न्वश्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
ययोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥३
ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४
यदद्याश्विनावपाग्यत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद् द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ मा गतम् ॥५
यदन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६ ।३४

हे अश्विनीकुमारो ! जहाँ बृहद् यज्ञ गृह है यदि तुम वहाँ रहते हो यदि तुम स्वर्ग के तेजोमय प्रदेश में वास करते हो, यदि अन्तरिक्ष में बने घर में वास करते हो, तो इन सब स्थानों से यहाँ आगमन करो ॥ १ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुमने मनु के निमित्त जैसे यज्ञ को सींचा था, वैसे ही कण्व-पुत्र के यज्ञ को जानो । मैं बृहस्पति, इन्द्र, विष्णु अश्विद्वय और सभी देवताओं का आह्वान करता हूँ ॥ २ ॥ अश्विनीकुमार सुन्दर कर्म वाले हैं । ये हमारे हव्य को ग्रहण करने के लिए उत्पन्न हुए हैं । मैं उनका आह्वान करता हूँ । अश्विनीकुमारों की मित्रता सभी देवताओं में श्रेष्ठ सुलभता में

जाती है ॥ ३ ॥ जिन अश्विनीकुमारों पर यज्ञ-कर्म होते हैं, जिनके स्तोता स्तोत्र-रहित स्थान में भी हैं, वे हिंसा-शून्य यज्ञ के ज्ञाता हैं। वे स्तुति के साथ सोमयुक्त मधु को पीवें ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न-धन से युक्त हो। तुम इस समय पूर्व या पश्चिम में हो अथवा "द्रुह्यु" "अनु", "तुर्वश" और "यदु" के निकट हो, वहीं से मेरे आह्वान के प्रति आगमन करो ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम बहुत हव्य के भक्षण करने वाले हो। यदि अन्तरिक्ष में जा रहे हो, यदि आकाश-पृथिवी के समक्ष जा रहे हो। और यदि तेज के बल से रथ पर बैठ रहे हो, तो इन समस्त स्थानों से आगमन करो ॥ ६ ॥ [३४]

११ सूक्त

(ऋषि-वत्सः काण्वः। देवता-अग्निः। छन्द-गायत्री त्रिष्टुप्)

त्वमग्ने व्रतपा असि देव आ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः ॥१

त्वमसि प्रशस्यो विदथेषु सहन्त्य। अग्ने रथीरध्वराणाम् ॥२

स त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः। अदेवीरग्ने अरातीः ॥३

अन्ति चित्सन्तमह यज्ञं मर्तस्य रिपोः। नोप वेषि जातवेदः ॥४

मर्ता अमर्त्यस्य ते भूरि नाम मनामहे। विप्रासो जातवेदः ॥५ ।३५

हे अग्ने ! तुम मनुष्यों में कर्म की रक्षा करने वाले हो, इसलिए तुम यज्ञ में स्तुति के योग्य हो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! तुम शत्रु को पराजित करने वाले हो। तुम यज्ञ में बढ़ते हो, यज्ञों के नेता हो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम उत्पन्न पदार्थों के जानने वाले हो। हमारे शत्रुओं को पृथक् करो। हे अग्ने ! तुम देवताओं के शत्रु और उसकी सेना को दूर करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने ! पास रहने पर भी तुम शत्रु के यज्ञ की कभी इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ हे उत्पन्न वस्तु के ज्ञाता अग्नि ! हम विप्र हैं। हम तुम्हारे स्तोत्र की वृद्धि करेंगे ॥५॥ [३५]

विप्रं विप्रासोऽवसे देवं मर्तास ऊतये। अग्निं गीर्भिर्हवामहे ॥६

आ ते वत्सो मनो यमत्परमाच्चित्सधस्थात्। अग्ने त्वांकामया गिरा ॥७

पुरुत्रा हि सदृङ्ङसि विशो विश्वा अनु प्रभुः।
समत्सु त्वा हवामहे ॥८

समत्स्वग्निमवसे वाजयन्तो हवामहे। वाजेषु चित्रराधसम् ॥९
प्रत्नो हि कमीड्यो अध्वरेषु सनाच्च होता नव्यश्च सत्सि।
स्वां चाग्ने तन्वं पिप्रयस्वास्मभ्यं च सौभगमा यजस्व ॥१०।३६

हम अग्नि को हव्य द्वारा प्रसन्न करने के लिए अपनी रक्षा के लिए स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं ॥ ६ ॥ हे अग्ने श्रेष्ठ याम स्थान से भी वत्स ऋषि तुम्हारे मन को आकर्षित करते हैं। उनकी स्तुति तुम्हें चाहती हैं ॥ ७ ॥ तुम अनेक देशों में समान रूप में देखने वाले हो। तुम समस्त प्रजा के अधिपति हो। हम तुम्हें युद्ध में आहूत करते हैं ॥ ८ ॥ हम अन्न की कामना वाले होकर रक्षा के लिए रणक्षेत्र में अग्नि का आह्वान करते हैं। वे अग्नि युद्धस्थल में अद्भुत धन वाले होते हैं ॥ ९ ॥ हे अग्ने! तुम प्राचीन हो। यज्ञ में पूजनीय हो। तुम चिरकाल से ही होता और स्तुति के योग्य हो तुम यज्ञ में बैठते हो। तुम अपने शरीर को हव्य से संतुष्ट करो। हमको भी सौभाग्य शाली बनाओ ॥ १० ॥ [३६]

॥ पंचम अष्टक समाप्तम् ॥

षष्ठ अष्टक

प्रथम अध्याय

१२ सूक्त

(ऋषि—पर्वतः काण्वः। देवता—इन्द्रः। छन्द—उष्णिक्)

य इन्द्र सोमपातमो मदः शविष्ठ चेतति।
येना हंसि न्यत्रिणं तमीमहे ॥१
येना दशग्वमध्रिगुं वेपयन्तं स्वर्णरम्।
येना समुद्रमाविथा तमीमहे ॥२
येन सिन्धुं महीरपो रथाँ इव प्रचोदयः।
पन्थामृतस्य यातवे तमीमहे ॥३
इमं स्तोममभिष्टये घृतं न पूतमद्रिवः।
येना नु सद्य ओजसा ववक्षिथ ॥४
इमं जुषस्व गिर्वणः समुद्र इव पिन्वते।
इन्द्र विश्वाभिरूतिभिर्ववक्षिथ ॥५ ।१

हे इन्द्र! तुम अत्यन्त सोम के प्रेमी हो। पराक्रमियों में मुख्य हो। सोम पीने से हृष्ट हुए तुम अपने कर्मों को भले प्रकार जानते हो। जैसे तुम सोम से उत्पन्न पराक्रम द्वारा दैत्यों का हनन करते हो, वैसे ही हर्षयुक्त होने की हम प्रार्थना करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र! तुमने सोम की जिस शक्ति से हृष्ट होकर अङ्गिरा वंशीय "अध्रिगु" की तथा अन्धकार के नाश करने वाले सूर्य की रक्षा की थी, जिस शक्ति से तुमने समुद्र की रक्षा की थी, उसी शक्ति से युक्त होने की हम तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! जैसे सोम पीने से उत्पन्न बल द्वारा रथ के समान जल रूप वृष्टि को समुद्र की ओर प्रेरित करते

हो, वैसे ही शक्ति युक्त होने पर हम तुमसे यज्ञ-मार्ग की कामना से प्रार्थना करते हैं ॥ ३ ॥ हे वज्रिन् ! जिस स्तुति से पूजित होकर तुम अपनी शक्ति से हमारा अभीष्ट पूर्ण करते हो, उसी पवित्र स्तुति को अभीष्ट के लिए प्रहण करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम स्तोत्र द्वारा उपासनीय हो, हमारे स्तोत्र को स्वीकार करो । यह स्तोत्र समुद्र के समान प्रवृद्ध होता है । हे इन्द्र ! तुम उस स्तोत्र के द्वारा हमारा समस्त रक्षा-साधनों से मङ्गल करने में समर्थ हो ॥ ५ ॥ [1]

यो नो देव: परावत: सखित्वनाय मामहे ।
दिवो न वृष्टिं प्रथयन्ववक्षिथ ॥६
ववक्षुरस्य केतव उत वज्रो गभस्त्योः ।
यत्सूर्यो न रोदसी अवर्धयत् ॥७
यदि प्रवृद्ध सत्पते सहस्रं महिषाँ अघः ।
आदित्त इन्द्रियं महि प्र वावृधे ॥८
इन्द्रः सूर्यस्य रश्मिभिर्न्यर्शसानमोषति ।
अग्निर्वनेव सासहिः प्र वावृधे ॥९
इयं त ऋत्वियावती धीतिरेति नवीयसी ।
सपर्यन्ती पुरुप्रिया मिमीत इत् ॥१० ।२

इन्द्र ने दूर देश से आगमन कर हमारे प्रति सख्य भाव वर्धने को धन प्रदान किया है । हे इन्द्र ! तुम आकाश से होने वाली वृष्टि के समान हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि करते हुए हमें कर्मों का श्रेय देने की कामना करते हो ॥ ६ ॥ जब वे इन्द्र सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य के समान वृष्टि आदि कर्मों से आकाश-पृथिवी की वृद्धि करते हैं, तब उनकी पताकाएं और इन्द्र के हाथ में सुशोभित वज्र हमारे लिये मङ्गलकारी होता है ॥ ७ ॥ हे श्रेष्ठ अनुष्ठान करने वालों की रक्षा करने वाले इन्द्र ! जब तुमने सहस्त्रों वृत्र आदि राक्षसों का संहार किया, उसके पश्चात् ही तुम्हारा पराक्रम अत्यन्त प्रवृद्ध हुआ ॥ ८ ॥ जैसे दावाग्नि जङ्गलों को दग्ध करती है, वैसे ही इन्द्र उन-विघ्नकारी

को सूर्य की रश्मियों द्वारा दग्ध करते हैं। शत्रुओं को वशीभूत करने वाले इन्द्र भले प्रकार प्रवृद्ध होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! मेरा स्तोत्र तुम्हारे प्रति गमन करता है। वह स्तोत्र वसंत आदि में किए जाने वाले यज्ञ से युक्त, अत्यन्त सुखकारक है ॥ १० ॥ [२]

गर्भो यज्ञस्य देवयुः क्रतुं पुनीत आनुषक् ।
स्तोमैरिन्द्रस्य वावृधे मिमीत इत् ॥११
सनिर्मित्रस्य पप्रथ इन्द्रः सोमस्य पीतये ।
प्राची वाशीव सुन्वते मिमीत इत् ॥१२
विप्रा उक्थवाहसोऽभिप्रमन्दुरायवः ।
घृतं न पिप्य आसन्यृतस्य यत् ॥१३
उत स्वराजे अदितिः स्तोममिन्द्राय जीजनत् ।
पुरुप्रशस्तमूतय ऋतस्य यत् ॥१४
अभि वह्नय ऊतयेऽनूषत प्रशस्तये ।
न देव विव्रता हरी ऋतस्य यत् ॥१५ ।३

यह स्तुति करने वाला इन्द्र का यज्ञकर्त्ता है। वह इन्द्र के पीने योग्य सोम को दशा पवित्रे में छानता है। वह स्तोत्र से इन्द्र को बढ़ाता है और स्तोत्र से ही इन्द्र को सीमित करता है ॥ ११ ॥ स्तुति करने वाले सखा के लिए दानशील इन्द्र ने गुण गाने वाले की वाणी के समान धन देने के निमित्त अपने शरीर का विस्तार किया। यह स्तुति रूप वाणी इन्द्र के गुणों की सीमा करती है ॥ १२ ॥ मेधावी स्तोता जिन इन्द्र को भले प्रकार प्रसन्न कर लेते हैं, उन इन्द्र के मुख में, मैं यज्ञ की हवियों को घृत के समान सींचूँगा ॥१३॥ अदिति ने स्वयं सुशोभित इन्द्र के लिए, रक्षा वाले तथा अनेकों से प्रशंसित सत्य रूप स्तोत्र को प्रकट किया ॥ १४ ॥ यज्ञ वहन करने वाले ऋत्विक् रक्षा के निमित्त इन्द्र की स्तुति करते हैं। हे इन्द्र ! विविध कर्मों के करने वाले दोनों घोड़े तुमको यज्ञ में वहन करते हैं ॥ १५ ॥ [३]

यत्सोममिन्द्र विष्णवि यद्वा घ त्रित आप्त्ये ।
यद्वा मरुत्सु मन्दसे समिन्दुभिः ॥१६
यद्वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित्सुते रणा समिन्दुभिः ॥१७
यद्वासि सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ॥१८
देवंदेवं वोऽवस इन्द्रमिन्द्रं गृणीषणि ।
अधा यज्ञाय तुर्वणे व्यानशुः ॥१९
यज्ञेभिर्यज्ञवाहसं सोमेभिः सोमपातमम् ।
होत्राभिरिन्द्रं वावृधुर्व्यानशुः ॥२० ।४

हे इन्द्र ! विष्णु, आप्तत्रित या मरुद्गण के आगमन पर दूसरों के यज्ञ में उनके साथ सोम से हृष्ट होते हो, फिर भी तुम हमारे सोम से हृष्टि को प्राप्त होओ ॥ १६ ॥ हे इन्द्र ! तुम दूरस्थ देश में हव्य रूप सोम से हृष्ट होते हो तो भी हमारे सोम के अर्पित होने पर तुम उसके साथ प्रसन्न होओ ॥१७॥ हे इन्द्र ! तुम सत्य के पालनकर्त्ता हो। तुम सोम अभिषव करने वाले को बढ़ाते हो। तुम जिस यजमान के स्तोत्र से प्रसन्न होते हो उसके सोम से हृष्टि को प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ हे ऋत्विको ! तुम्हारी रक्षा के लिए मैं जिन इन्द्र का स्तव करता हूँ, यज्ञ के निमित्त उन इन्द्र को मेरी स्तुतियाँ प्राप्त करें ॥ १९ ॥ हव्य, स्तोत्र और सोम द्वारा यज्ञ में लाने योग्य सब से अधिक सोम पीने वाले इन्द्र की स्तुति करने वाले यजमान बढ़ाते हुए व्याप्त करते हैं ॥ २० ॥　　　　　　　　　　　　　　　　(४)

महीरस्य प्रणीतयः पूर्वीरुत प्रशस्तयः ।
विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः ॥२१
इन्द्रं वृत्राय हन्तवे देवासो दधिरे पुरः ।
इन्द्रं वाणीरनूषता समोजसे ।२२

महान्तं महिना वयं स्तोमेभिर्हवनश्रुतम् ।
अर्केरभि प्र णोनुमः समोजसे ॥२३
न यं विविक्तो रोदसी नान्तरिक्षाणि वज्रिणम् ।
अमादिदस्य तित्विषे समोजसः ॥२४
यदिन्द्र पृतनाज्ये देवास्त्वा दधिरे पुरः ।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२५ ।५

इन्द्र का दान प्रचुर परिमाण में मिलता है। वे बहुत यशस्वी हैं। वे हवि देने वाले यजमान के लिए समस्त ऐश्वर्यों को व्याप्त करते हैं ॥ २१ ॥ देवताओं ने वृत्र-नाश के निमित्त इन्द्र को धारण किया था, बल के निमित्त हमारी वाणी इन्द्र की स्तुति करती है ॥ २२ ॥ अत्यन्त महिमावान् और आह्वान के सुनने वाले इन्द्र की हम स्तोत्र द्वारा बल प्राप्ति के लिये बारम्बार स्तुति करते हैं ॥ २३ ॥ जिन वज्रधारी इन्द्र को आकाश-पृथिवी और अन्तरिक्ष अपने से पृथक् नहीं होने देते, उन्हीं इन्द्र के बल से संसार प्रकाशित होता है ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! जब कभी युद्ध में देवताओं ने तुम्हें धारण किया तभी अश्वों ने तुम्हारा वहन करके वहाँ पहुँचाया ॥ २५ ॥ (५)

यदा वृत्रं नदीवृतं शवसा वज्रिन्नवधीः ।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ॥२६
यदा ते विष्णुरोजसा त्रीणि पदा विचक्रमे ।
आदित्ते हर्यता हरी ववक्षतुः ।२७
यदा ते हर्यता हरी वावृधाते दिवेदिवे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२८
यदा ते मारुतीर्विशस्तुभ्यमिन्द्र नियेमिरे ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥२९
यदा सूर्यममुं दिवि शुक्रं ज्योतिरधारयः ।
आदित्ते विश्वा भुवनानि येमिरे ॥३०

इमां त इन्द्र सुष्टुतिं विप्र इयर्ति धीतिभिः ।
जामिं पदेव पिप्रतीं प्राध्वरे ॥३१
यदस्य धामनि प्रिये समीचीनासो अस्वरन् ।
नाभा यज्ञस्य दोहना प्राध्वरे ॥३२
सुवीर्यं स्वश्व्यं सुगव्यमिन्द्र दद्धि नः ।
होतेव पूर्वचित्तये प्राध्वरे ॥३३ ।६

हे इन्द्र ! जब तुमने जल रोकने वाले वृत्र का वध किया, तभी तुम्हें घोड़े अपने स्थान पर ले आए ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! जब विष्णु ने तीन पग से लोक त्रय को नाप लिया, तब तुम्हें दोनों घोड़े ले आए ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! जब तुम्हारे दोनों अश्व वृद्धि को प्राप्त हुए, तभी सारा विश्व तुम्हारे द्वारा नियमित होगया ॥२८॥ हे इन्द्र ! जब तुम्हारे मरुद्गण समस्त जीवों को नियमित करते हैं, तभी तुम सब विश्व को नियमित करते हो ॥२९॥ हे इन्द्र ! जब इन ज्योतिमान सूर्य को तुम सूर्यमण्डल में स्थित करते हो, तभी इस विश्व को नियमित करते हो ॥३०॥ हे इन्द्र ! जैसे सभी अपने बन्धुओं को उच्च स्थान में ले जाते हैं, वैसे ही विद्वान् स्तुति करने वाला प्रसन्न करने वाली स्तुति को, यज्ञ में तुम्हारे पास पहुँचाता है ॥३१॥ इन्द्र के तेज की कामना के लिए यज्ञ स्थान में एकत्रित स्तोतागण जब भले प्रकार स्तुति करते हैं, तब हे इन्द्र ! नाभिरूप यज्ञ के अभिषव स्थान पर धन प्रदान करो ॥३२॥ हे इन्द्र ! श्रेष्ठ पराक्रम, श्रेष्ठ गौओं और उत्तम अश्वों से युक्त ऐश्वर्य हमको प्रदान करो। मैंने सबसे पहले, ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त होता के समान यज्ञ-गृह में तुम्हारी स्तुति की थी ॥ ३३ ॥ (६)

१३ सूक्त (तीसरा अनुवाक)

(ऋषि–नारदः काण्वः । देवता–इन्द्रः । छन्द–उष्णिक्)

इन्द्रः सुतेषु सोमेषु क्रतुं पुनीत उक्थ्यम् ।
विदे वृधस्य दक्षसो महान्हि षः ॥१
स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ।

सुपारः सुश्रवस्तमः समप्सुजित ॥२
तमह्वे वाजसातय इन्द्रं भराय शुष्मिणम् ।
भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे ॥३
इयं त इन्द्र गिर्वणो रातिः क्षरति सुन्वतः ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥४
नूनं तदिन्द्र दद्धि नो यत्त्वा सुन्वन्त ईमहे ।
रयिं नश्चित्रमा भरा स्वर्विदम् ॥५ ।७

वे इन्द्र सोम के अर्पित किए जाने पर यज्ञ करने वाले और स्तुति करने वाले को पवित्र करते हैं। इन्द्र ही बढ़ाने वाले बल की प्राप्ति के लिए महत्तावान् होते हैं ॥ १ ॥ वे इन्द्र प्रथम व्योम और स्वर्ग में यजमानों की रक्षा करते है। वह प्रारम्भ किए कर्म को सम्पूर्ण कराने वाले हैं। वे अत्यन्त यशस्वी, जल की प्राप्ति के लिए वृत्र पर विजय प्राप्त करते हैं ॥ २ ॥ मैं पराक्रमी इन्द्र का युद्ध स्थल में आह्वान करता हूँ। हे इन्द्र ! धन की कामना होने पर तुम वृष्टि के निमित्त हमारे मित्र बनो ॥ ३ ॥ हे स्तुतियों द्वारा पूजनीय इन्द्र ! तुम्हारे निमित्त यजमान द्वारा प्रदत्त आहुति प्राप्त होती हैं। तुम प्रसन्न होते हुए हमारे यज्ञ में विराजमान होओ ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! सोम सिद्ध करने वाले तुमसे कामना करते हैं, तुम मुझे वह ऐश्वर्य अवश्य दो। वह अद्भुत और स्वर्ग प्राप्त कराने वाला ऐश्वर्य लेकर आओ ॥ ५ ॥ (७)

स्तोता यत्ते विचर्षणिरतिप्रशर्धयद् गिरः ।
वया इवानु रोहते जुषन्त यत् ॥६
प्रत्नवज्जनया गिरः शृणुधी जरितुर्हवम् ।
मदेमदे ववक्षिथः सुकृत्वने ॥७
क्रीळन्त्यस्य सूनृता आपो न प्रवता यतीः ।
अया धिया य उच्यते पतिर्दिवः ॥८
उतो पतिर्य उच्यते कृष्टीनामेक इद्वशी ।
नमोवृधैरवस्युभिः सुते रण ॥९

स्तुहि श्रुतं विपश्चितं हरी यस्य प्रसक्षिणा ।
गन्तारा दाशुषो गृहं नमस्विनः ॥१० ॥८

हे इन्द्र ! स्तुति करने वाला जब तुम्हारे लिए शत्रुओं को हराने वाली ...ुति करता है और जब सभी वचन तुम्हें हर्षित करते हैं, तब तुम सभी ...ओं से युक्त हो जाते हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! पूर्व काल के समान स्तोत्र प्रकट ...रो। स्तुति करने वाले का आह्वान सुनो। जब तुम सोम से हृष्ट होते हो ...ब सुन्दर कार्य करने वाले यजमान को फल देते हो ॥ ७ ॥ इन्द्र की स्तुति ...ाणी नीचे की ओर जाते हुए जल के समान जाती हैं। स्वर्गाधिपति इन्द्र ...स स्तुति द्वारा यश प्राप्त करते हैं ॥ ८ ॥ एक मात्र इन्द्र ही मनुष्यों के ...क हैं। हे इन्द्र ! तुम स्तोत्र द्वारा बढ़ाने वालों और युद्ध की कामना वालों ...के साथ सोम से हृष्ट होओ ॥ ९ ॥ हे स्तुति करने वालो ! तुम मेधावी एवं ...सिद्ध इन्द्र की स्तुति करो। शत्रुओं के जीतने वाले इन्द्र के दोनों घोड़े हव्य और नमस्कार वाले यजमान के गृह में पहुँचते हैं ॥ १० ॥ [८]

तूतुजानो महेमतेऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
आ याहि यज्ञमाशुभिः शमिद्धि ते ॥११
इन्द्र शविष्ठ सत्पते रयिं गृणत्सु धारय ।
श्रवः सूरिभ्यो अमृतं वसुत्वनम् ॥१२
हवे त्वा सूर उदिते हवे मध्यन्दिने दिवः ।
जुषाण इन्द्र सप्तिभिर्न आ गहि ॥१३
आ तू गहि प्र तु द्रव मत्स्वा सुतस्य गोमतः ।
तन्तुं तनुष्व पूर्व्यं यथा विदे ॥१४
यच्छक्रासि परावति यदर्वावति वृत्रहन् ।
यद्वा समुद्रे अन्धसोऽवितेदसि ॥१५ ॥९

हे इन्द्र ! तुम्हारी बुद्धि अत्यन्त फल देने वाली है। तुम अपने द्रुतगामी घोड़ों सहित हमारे यज्ञ में आओ। क्योंकि तुम यज्ञ में ही सुख ... हो ॥ ११ ॥ हे सज्जनों की रक्षा करने वाले, पराक्रमी इन्द्र ! हम

स्तवन करते हैं। तुम हमको धन प्रदान करो। स्तुति करने वालों को कभी भी नष्ट न होने वाला व्यापक यश दो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! सूर्योदय-काल में, मैं तुम्हारा आह्वान करता हूँ। मैं दिन के मध्य के सवन में भी तुम्हें बुलाता हूँ, प्रसन्न होते अपने गतिमान् घोड़ों सहित आगमन करो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! शीघ्र ही जहाँ सोम है, वहाँ आगमन करो। दुग्ध मिश्रित सोम से प्रसन्न होओ फिर मैं जैसा जानता हूँ वैसे ही मेरे यज्ञ को पूर्ण करो ॥ १४ ॥ हे वृत्र के मारने वाले इन्द्र ! तुम दूर हो अथवा पास हो या अन्तरिक्ष में कहीं भी हो तो भी वहाँ से आकर सोम-रस को पियो और हमारे रक्षक बनो ॥१५॥ [९]

इन्द्रं वर्धन्तु नो गिर इन्द्रं सुतास इन्दवः ।
इन्द्रे हविष्मतीर्विशो अराणिषुः ॥१६

तमिद्विप्रा अवस्यवः प्रवत्वतीभिरूतिभिः ।
इन्द्रं क्षोणीरवर्धयन्वया इव ॥१७

त्रिकद्रुकेषु चेतनं देवासो यज्ञमत्नत ।
तमिद्वर्धन्तु नो गिरः सदावृधम् ॥१८

स्तोता यत्ते अनुव्रत उक्थन्यृतुथा दधे ।
शुचिः पावक उच्यते सो अद्भुतः ॥ १९

तदिद्रुद्रस्य चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ।
मनो यत्रा वि तद्दधुर्विचेतसः ॥२० ॥१०

हमारी स्तुतियाँ इन्द्र को बढ़ावें। अभिषुत सोम इन्द्र को बढ़ावें। हवि वाले यजमान इन्द्र की साधना में लीन हुए हैं ॥ १६ ॥ रक्षा की कामना वाले मेधावी जन उन इन्द्र को तृप्त करते हुए आहुतियों द्वारा बढ़ाते हैं। पृथिवी के सभी जीव इन्द्र को वृक्ष की शाखा के समान बढ़ाते हैं ॥ १७ ॥ त्रिकद्रुक नामक यज्ञ में देवताओं ने चैतन्यता प्रदान करने वाले इन्द्र का सम्मान किया। इन्द्र को हमारी वर्द्धक स्तुतियाँ सदा बढ़ावें ॥ १८ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी स्तुति करने वाले समय-समय पर स्तोत्रोच्चार करते हैं। तुम अद्भुत वेश वाले, पवित्र करने वाले एवं स्तुत्य हो ॥ १९ ॥ जिनके निमित्त

मेधावी जन स्तोत्रोच्चार करते हैं, वे रुद्र पुत्र मरुद्गण अपने पुरातन स्थानों में वर्तमान हैं ॥ २० ॥ (१०)

यदि मे सख्यमावर इमस्य पाह्यन्धसः ।
येन विश्वा अति द्विषो अतारिम ॥ २१
कदा त इन्द्र गिर्वणः स्तोता भवाति शन्तमः ।
कदा नो गव्ये अश्व्ये वसौ दधः ॥२२
उत ते सुष्टुता हरी वृषणा वहतो रथम् ।
अजुर्यस्य मदिन्तमं यमीमहे ॥२३
तमीमहे पुरुष्टुतं यह्वं प्रत्नाभिरूतिभिः ।
नि बर्हिषि प्रिये सदद्ध द्विता ॥२४
वर्धस्वा सु पुरुष्टुत ऋषिष्टुताभिरूतिभिः ।
धुक्षस्व पिप्युषीमिषमवा च नः ॥ २५ ॥ ११

हे इन्द्र ! तुम मुझे अपनी मित्रता दो और इस सोमरस को पीओ तभी हम सब शत्रुओं को जीत सकते हैं ॥२१॥ हे इन्द्र ! तुम स्तुतियों के पात्र हो। तुम्हारी स्तुति करने वाला क्या कम सुखी होगा ? तुम हमको अश्व गवादि से युक्त सुन्दर गृह वाला धन कब प्रदान करोगे ? ॥२२॥ हे इन्द्र ! तुम जरा-रहित हो। कामनाओं की वर्षा वाले, भले प्रकार स्तुत्य तुम्हारे दोनों घोड़े तुम्हारे रथ को हमारे यहाँ लावें। तुम अत्यन्त हृष्ट हो। हम तुमसे प्रार्थना करते हैं ॥ २३ ॥ बहुतों द्वारा स्तुत एवं महान् इन्द्र की तृप्ति करने वाली आहुतियों सहित हम प्रार्थना करते हैं। वे प्रसन्नताप्रद कुशों पर विराजमान हों। फिर दोनों प्रकार का हव्य ग्रहण करें ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम बहुतों एवं ऋषियों द्वारा स्तुत हो। अपने रक्षण-साधनोंसे हमको बढ़ाओ और हमको अत्यन्त अन्न प्रदान करो ॥ २५ ॥ (११)

इन्द्र त्वमवितेदसीत्था स्तुवतो अद्रिवः ।
ऋतादियमि ते धियं मनोयुजम् ॥
इह त्या सधमाद्या युजानः सोमपीतये ।

हरी इन्द्र प्रतद्वसू अभि स्वर ॥२७

अभि स्वरन्तु ये तव रुद्रासः सक्षत श्रियम् ।

उतो मरुत्वतीर्विशो अभि प्रयः ॥२८

इमा अस्य प्रतूर्तयः पदं जुषन्त यद्दिवि ।

नाभा यज्ञस्य सं दधुर्यथा विदे ॥२९

अयं दीर्घाय चक्षसे प्राचि प्रयत्यध्वरे ।

मिमीते यज्ञमानुषग्विचक्ष्य ॥३० ॥१२

हे वज्रिन् ! तुम स्तुति करने वाले के रक्षक हो । मैं तुम्हारे स्तोत्र वाले सुन्दर कर्म को प्राप्त होता हूँ ॥ २६ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने प्रसन्न मन वाले, दृढ़ एवं धन युक्त दोनों घोड़ों को रथ में जोत कर सोम पीने के निमित्त यहाँ आगमन करो ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे जो मरुद्गण हैं वे इस यज्ञ में आगमन करें । मरुद्गण की प्रजाऐं भी यहाँ आवें ॥ २८ ॥ इन्द्र की मरुदादि प्रजाऐं स्वर्ग में या जहाँ भी वे हैं, उनकी परिचर्या करती हैं । हम जिस प्रकार धन पावें, उसी प्रकार वे यज्ञ के नाभि स्थल पर रहते हैं ॥ २९ ॥ यज्ञ के प्राचीन गृह में आरम्भ होने पर यज्ञ को यथाविधि देखकर इच्छित फल के निमित्त इन्द्र यज्ञ का सम्पादन करते हैं ॥ ३० ॥ (१२)

वृषायमिन्द्र ते रथ उतो ते वृषणा हरी ।

वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः ॥३१

वृषा ग्रावा वृषा मदो वृषा सोमो अयं सुतः ।

वृषा यज्ञो यमिन्वसि वृषा हवः ॥३२

वृषा त्वा वृषणं हुवे वज्रिञ्चित्राभिरूतिभिः ।

वावन्थ हि प्रतिष्टुतिं वृषा हवः ॥३३ ॥१३

हे इन्द्र ! तुम्हारा रथ अभीष्टों को पूर्ण करने वाला है । तुम्हारे दोनों अश्व भी कामनाओं की वर्षा करते हैं । हे सैकड़ों कर्म करने वाले इन्द्र ! तुम अभीष्ट की वर्षा करने वाले हो और तुम्हारा आह्वान इच्छित फल का देने वाला है ॥ ३१ ॥ सोम को कूटने वाला पाषाण कामनाओं की वर्षा करता

सोम मनोरथों का दाता है। सोम सभी कामनाओं की वर्षा करने वाला जिस यज्ञ को तुम प्राप्त करते हो वह भी इच्छित वर्षक हो। तुम्हारा ह्वान इच्छित फलों का देने वाला है ॥ ३२ ॥ हे वज्रिन्! तुम कामनाओं वर्षक हो। मैं हविसिंचन करने वाला हूँ। मैं विविध स्तुतियों से तुम्हारा ह्वान करता हूँ। तुम अपने निमित्त की जाने वाली स्तुति को ग्रहण करते अतः तुम्हारा आह्वान इच्छित फलों का देने वाला है ॥ ३३ ॥   (१३)

१४ सूक्त

(ऋषि—गोषूक्त्यश्वसूक्तिनौ। देवता—इन्द्रः। छन्द—गायत्री)

देन्द्राहं यथा त्वमीशीय वस्व एक इत्। स्तोता मे गोषखा स्यात् ॥१
क्षेयमस्मै दित्सेयं शचीपते मनीषिणे। यदहं गोपतिः स्याम् ॥२
ष्ट इन्द्र सूनृता यजमानाय सुन्वते। गामश्वं पिप्युषी दुहे ॥३
ते वर्तास्ति राधस इन्द्र देवो न मर्त्यः। यद्दित्ससि स्तुतो मघम् ॥४
इन्द्रमवर्धयद्यद्भूमिं व्यवर्तयत्। चक्राण ओपशं दिवि ॥५ ॥१४

हे इन्द्र! जैसे केवल तुम्हीं सब के स्वामी हो, वैसे ही यदि मैं भी स्वामी हो जाऊँ तो मेरा स्तोता गौओं से युक्त हो जाय ॥ १ ॥ हे इन्द्र! र सर्व शक्तिमान हो। यदि मैं तुम्हारी कृपा से गौ वाला हो जाऊँ तो इस ति करने वाले को माँगा हुआ धन देने की इच्छा करूँगा ॥ २ ॥ हे इन्द्र! हारी सत्यप्रिय और बढ़ाने वाली स्तुति रूप धेनु सोम प्रस्तुत करने को और घोड़े प्रदान करती है ॥ ३ ॥ हे इन्द्र! तुम स्तुत होकर धन देने कामना करते हो। उस समय कोई देवता या मनुष्य तुम्हारे धन को नहीं क सकता ॥ ४ ॥ यज्ञ ने इन्द्र को बढ़ाया है। इन्द्र ने स्वर्ग में मेघ को घुस कर पृथिवी को वृष्टि देकर स्थिर किया है ॥ ५ ॥   (१४)

वृधानस्य ते वयं विश्वा धनानि जिग्युषः। ऊतिमिन्द्रा वृणीमहे ॥६
यन्तरिक्षमतिरन्मदे सोमस्य रोचना। इन्द्रो यदभिनद्वलम् ॥७
द्गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन्गुहा सतीः। अर्वाञ्चं नुनुदे

इन्द्रेण रोचना दिवो दृळ्हानि दृंहितानि च ।
स्थिराणि न पराणुदे ॥९

अपामूर्मिर्मदन्निव स्तोम इन्द्राजिरायते ।
वि ते मदा अराजिषुः ॥१० ॥१५

हे इन्द्र ! तुम बढ़ने वाले एवं शत्रुओं के सब धनों को जीत लें वाले हो। हम तुम्हारी रक्षा चाहते हैं ॥ ६ ॥ सोम से उत्पन्न हर्ष के हों पर इन्द्र ने अन्तरिक्ष को बढ़ाया है। क्योंकि इन्होंने मेघ को खोला है ॥ ७ । इन्द्र ने गुफा में छिपी हुई गौओं को निकाल कर अङ्गिराओं को प्रदान कं और गौओं के चुराने वाले पणियों के मुखिया "वल" राक्षस को नी गिराया ॥ ८ ॥ इन्द्र ने आकाश के नक्षत्रों को स्थिर किया । उन नक्षत्रों क उनके स्थानों से च्युत कोई नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! समुद्र क लहरों के समान तुम्हारी स्तुतियाँ शीघ्र जाती हैं। तुम्हारी दृष्टि सदा तेज व प्राप्त करती ॥ १० ॥ [१५

त्वं हि स्तोमवर्धन इन्द्रास्युक्थवर्धनः । स्तोतॄणामुत भद्रकृत् ॥११
इन्द्रमित्केशिना हरी सोमपेयाय वक्षतः । उप यज्ञं सुराधसम् ॥१२
अपां फेनेन नमुचेः शिर इन्द्रोदवर्तयः । विश्वा यदजयः स्पृधः ॥१३
मायाभिरुत्सिसृप्सत इन्द्र द्यामारुरुक्षतः । अव दस्यूँरधूनुथाः ॥१४
असुन्वामिन्द्र संसदं विषूचीं व्यनाशयः ।
सोमपा उत्तरो भवन् ॥१५ ॥१६

हे इन्द्र ! तुम स्तोत्र द्वारा बढ़ते हो और "उक्थ" द्वारा भी ब हो । तुम स्तुति करने वाले के लिए मङ्गलकारी हो ॥ ११ ॥ इन्द्र के दो अश्व सोम पीने के लिए इन्द्र को यज्ञ स्थान में ले जाते हैं ॥ १२ ॥ हे इन्द्र जब तुमने सब राक्षसों को पराजित किया था, तब जल के फेन द्वारा "नमुचि" के सिर को पृथक कर दिया था ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम माया द्वा सर्वत्र व्याप्त हो । तुमने स्वर्ग में चढ़ने की इच्छा करने वाले शत्रुओं को नी गिरा दिया ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! सोम पीकर श्रेष्ठतम होते हुए तुम

अभिपत्र न करने वाले व्यक्तियों को परस्पर लड़ा कर नष्ट कर
॥ ॥ १९ ॥   [१६]

१५ सूक्त

ऋषि-गोपूक्त्यश्वसूक्तिनौ काण्वायनौः। देवता-इन्द्रः। छन्द-उष्णिक्)

अभि प्र गायत पुरुहूतं पुरुष्टुतम्। इन्द्रं गीर्भिस्तविषमा विवासत ॥१
य द्विबर्हसो बृहत्सहो दाधार रोदसी।
गरींरज्रां अपः स्वर्वृपत्वना ॥२
राजसि पुरुष्टुतं एको वृत्राणि जिघ्नसे।
इन्द्र जैत्रा श्रवस्या च यन्तवे ॥३
ते मदं गृणीमसि वृषणं पृत्सु सासहिम्।
उ लोककृत्नुमद्रिवो हरिश्रियम् ॥४
ज्योतींष्यायवे मनवे च विवेदिथ।
मन्दानो अस्य बर्हिषो वि राजसि ॥५ ।१७

मनुष्यो! अनेकों द्वारा आहूत और अनेकों द्वारा ही स्तुत उन्हीं इन्द्र स्तुति करो। सुन्दर वाणी से महान इन्द्र की पूजा करो ॥ १ ॥ इन्द्र का सनीय पराक्रम आकाश पृथिवी को धारण करता है। वह शीघ्रगामी मेघ गतिशील जल को अपने पराक्रम से ही धारण करते हैं ॥ २ ॥ हे इन्द्र! बहुतों द्वारा स्तुत हो। तुम सुशोभित हो। जीतने तथा सुनने के योग्य को स्वच्छन्द करने के लिए तुम वृत्रादि राक्षसों को मारते हो ॥ ३ ॥ हे ! तुम्हारे पराक्रम की हम स्तुति करते हैं। वह अभीष्ट पूर्ण करने वाले, ओं के पराजित करने वाले तथा अश्वों द्वारा सेवा के योग्य है ॥ ४ ॥ हे ! तुमने जिस तेज से सूर्य आदि ज्योतियों को प्रकट किया था, उसी के त बढ़ते हुए तुम यज्ञ कर्म के करने वाले हुए ॥ ५ ॥   [१७]

द्या चित्त उक्थिनोऽनु ष्टुवन्ति पूर्वथा। वृषपत्नीरपो जया दिवेदिवे॥६
र त्यदिन्द्रियं बृहत्तव शुष्ममुत क्रतुम्।

वज्रं शिशाति धिषणा वरेण्यम् ॥७

द्यौरिन्द्र पौंस्यं पृथिवी वर्धति श्रवः ।
त्वामापः पर्वतासश्च हिन्विरे ॥८

त्वां विष्णुर्बृहन् क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ।
त्वां शर्धो मदत्यनु मारुतम् ॥९

त्वं वृषा जनानां मंहिष्ठ इन्द्र जज्ञिषे ।
सत्रा विश्वा स्वपत्यानि दधिषे ॥१० ।१८

हे इन्द्र ! पूर्व काल के समान अब भी स्तोत्र करने वाले तुम्हारे बल की स्तुति करते हैं। जिस जल के स्वामी पर्जन्य हैं तुम उस जल को मुक्त करो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! हमारे स्तोत्र, तुम्हारे पराक्रम, कर्म और वरण करने योग्य वज्र को तीक्ष्ण करते हैं ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! आकाश तुम्हारे बल को, पृथिवी तुम्हारे यश को तथा अन्तरिक्ष और मेघ तुम्हारी प्रसन्नता को बढ़ाते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! पालनकर्त्ता विष्णु, मित्र और वरुण तुम्हारा स्तव करते हैं। मरुद्गण तुम्हारे भरोसे से अधिकार को प्राप्त होते हैं ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम वर्षणशील एवं दानशील हो। तुम अपत्ययुक्त सुन्दर धन धारण करते हो ॥ १० ॥ [१८]

सत्रा त्वं पुरुष्टुतं एको वृत्राणि तोशसे ।
नान्य इन्द्रात् करणं भूय इन्वति ॥११

यदिन्द्र मन्मशस्त्वा नाना हवन्त ऊतये ।
अस्माकेभिर्नृभिरत्रा स्वर्जय ॥१२

अरं क्षयाय नो महे विश्वा रूपाण्याविशन् ।
इन्द्रं जैत्राय हर्षया शचीपतिम् ॥१३ ।१९

हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा स्तुत हो। तुम अकेले ही असंख्य शत्रुओं को नष्ट करते हो। इन्द्र से बढ़कर कर्म करने वाला अन्य कोई भी नहीं है ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! रक्षा के निमित्त जिस युद्ध में तुम स्तोत्र द्वारा पूजित होते हो। उसी युद्ध में बुलाए जाकर तुम शत्रुओं के बल पर विजय प्रा

करो ॥ १२ ॥ हे स्तुति करने वालो ! हमारे महान् गृह के निमित्त सर्वत्र व्याप्त और कर्मों के रक्षक इन्द्र का, जीतने योग्य धन के निमित्त, स्तवन करो ॥ १३ ॥ [१६]

१६ सूक्त

(ऋषि इरिम्बिठिः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

प्र सम्राजं चर्षणीनामिन्द्रं स्तोता नव्यं गीर्भिः । नरं नृषाहं मंहिष्ठम् ।१
यस्मिन्नुक्थानि रण्यन्ति विश्वानि च श्रवस्या । अपामवो न समुद्रे ॥२
तं सुष्टुत्या विवासे ज्येष्ठराजं भरे कृत्नुम् । महो वाजिनं सनिभ्यः ॥३
यस्यानूना गभीरा मदा उरवस्तरुत्राः । हर्षुमन्तः शूरसातौ ॥४
तमिद्धनेषु हितेष्वधिवाकाय हवन्ते । येषामिन्द्रस्ते जयन्ति ॥५
तमिच्च्यौत्नैरार्यन्ति तं कृतेभिश्चर्षणयः । एष इन्द्रो वरिवस्कृत् ॥६।२०

हे स्तोताओ ! मनुष्यों के सम्राट इन्द्र का स्तव करो। वे स्तुतियों द्वारा प्रशंसित, शत्रुओं के डराने वाले एवं अन्य सब की अपेक्षा अधिक देने वाले हैं ॥ १ ॥ जैसे जल की लहरें सिन्धु में सुशोभित होती हैं, वैसे ही स्तोत्र और हविरन्न इन्द्र में सुशोभित होते हैं ॥ २ ॥ मैं सुन्दर स्तोत्र द्वारा इन्द्र की धन-प्राप्ति के लिए स्तुति करता हूँ। वे इन्द्र सभी श्रेष्ठ देवताओं में सुशोभित रहते हैं। वे पराक्रमी रणक्षेत्र में महान् बल दिखाते हैं ॥ ३ ॥ इन्द्र की शक्ति महती, गम्भीर, विस्तृत, शत्रु से बचाने वाली और वीरों के संग्राम में प्रसन्न रहती है ॥ ४ ॥ धन मिलने पर, स्तुति करने वाले अपने पक्ष के लिए इन्हीं इन्द्र का आह्वान करते है। जिस पक्ष में इन्द्र रहते हैं, उधर विजय मिलती हैं ॥ ५ ॥ अपने शक्तिशाली स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को ही ईश्वर बनाया जाता है। अपने कर्म से ही मनुष्य उन्हें ईश्वर मानते हैं। इन्द्र ही धन के कर्त्ता स्वरूप हैं ॥ ६ ॥ [२०]

इन्द्रो ब्रह्मेन्द्र ऋषिरिन्द्रः पुरू पुरुहूतः । महान्महीभिः शचीभिः ॥७
सः स्तोम्यः स हव्यः सत्यः सत्वा तुविकूर्मिः । एकश्चित्सन्नभिभूतिः ।८
तमर्केभिस्तं सामभिस्तं गायत्रैश्चर्षणयः । इन्द्रं वर्धन्ति क्षितयः ॥९

प्रणेतारं वस्यो अच्छा कर्तारं ज्योतिः समत्सु ।
सासह्वांसं युधामित्रान् ॥१०

स नः पप्रिः पारयाति स्वस्ति नावा पुरुहूतः ।
इन्द्रो विश्वा अति द्विषः ॥११

स त्वं न इन्द्र वाजेभिर्दशस्या च गातुया च ।
अच्छा च नः सुम्नं नेषि ॥१२ ।२१

इन्द्र बहुतों द्वारा बुलाए जाते हैं। वे अपने महान् कार्यों के द्वारा ही महान् हैं ॥ ७ ॥ वे इन्द्र स्तुति और आह्वान के योग्य हैं। वे शत्रुओं के अवसादक बहुत कर्मवान् हैं, तथा अकेले रहते हुए भी असंख्य शत्रुओं को भगाने वाले हैं ॥ ८ ॥ मेधावी मनुष्य पूजा साधक स्तोत्रों द्वारा इन्द्र को बढ़ाते हैं। गायन योग्य स्तोत्रों से बढ़ाते हैं और गायत्री आदि छन्दों तथा युद्ध मन्त्रों द्वारा भी बढ़ाते हैं ॥ ९ ॥ वे इन्द्र प्रशंसा योग्य धनों के प्रकट करने वाले, रणक्षेत्र में पराक्रम के दिखाने वाले और शस्त्रों द्वारा शत्रुओं को पराजित करने वाले हैं ॥ १० ॥ वे इन्द्र सब कार्यों के सम्पन्न कर्त्ता और बहुतों द्वारा आहूत हैं। वे हमको अपनी रक्षा रूप नाव के द्वारा शत्रुओं के विघ्नादि से पार लगावें ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! अपने बल से हमको धन दो। तुम हमको श्रेष्ठ मार्ग दो। हमको सुखी बनाओ ॥ १२ ॥ [२१]

१७ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः काण्वः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री, बृहती)

आ याहि सुषुमा हि त इंद्र सोमं पिबा इमम् । एदं बर्हि सदो मम ।१

आ त्वा ब्रह्मयुजा हरी वहतामिन्द्र केशिना । उप ब्रह्माणि नः शृणु ।२

ब्रह्माणस्त्वा वयं युजा सोमपामिन्द्र सोमिनः । सुतावन्तो हवामहे ।।३

आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप । पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ।।४

आ ते सिञ्चामि कुक्ष्योरनु गात्रा वि धावतु ।
गृभाय जिह्वया मधु ।।५ ।२२

हे इन्द्र ! यहाँ आओ । तुम्हारे निमित्त छना हुआ सोम रखा है । मेरे इस कुश पर विराजमान होकर इस मधुर सोम-रस का पान करो ॥१ हे इन्द्र ! मरुद्गण द्वारा जोड़े हुए सुन्दर केश वाले घोड़े तुम्हें यहाँ ले आवें । तुम इस यज्ञ स्थान में आगमन कर हमारे सुन्दर स्तोत्र को श्रवण करो ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! हम स्तुति करने वाले हैं । तुमको आह्वानीय स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं । हम अभिषुत सोम से युक्त हैं । हम सोमपान करने वाले इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हम सोमवान् हैं । तुम हमारे समक्ष आगमन करो । हमारे श्रेष्ठ स्तोत्रों को जानो । तुम सुन्दर मुकुट धारण करने वाले हो । तुम अन्न सेवन करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारे दीप्ति और बाँए उदर को सोम से पूर्ण करता हूँ । यह सोम तुम्हारे शरीर को परिपूर्ण करे । तुम इस मधुर सोम को जिह्वा द्वारा सेवन करो ॥ ५ ॥ [२२]

स्वादुष्टे अस्तु संसुदे मधुमान्तन्वेतव । सोमः शमस्तु ते हृदे ॥६
अयमु त्वा विचर्षणे जनीरिवाभि संवृतः । प्र सोम इन्द्र सर्पतु ॥७
तुविग्रीवो वपोदरः सुबाहुरन्धसो मदे । इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते ॥८
इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वं विश्वस्येशान ओजसा । वृत्राणि वृत्रहञ्जहि ॥९
दीर्घस्ते अस्त्वङ्कुशो येना वसु प्रयच्छसि । यजमानाय सुन्वते ॥१०।२३

हे इन्द्र ! तुम्हारे दानशील शरीर के निमित्त यह मधुर रस वाला सोम सुस्वादु बने । यह सोम तुम्हारे लिए मोन दश्रय करने वाला हो ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! यह सोम सुरक्षित रहने के लिये सब तरफ से ढका हुआ तुम्हारे समीप में गमन करे ॥ ७ ॥ वे विशाल स्कंध, स्थूल उदर और शोभन बाहु वाले इन्द्र अन्न रूप सोम का प्रभाव होने पर वृत्र आदि असुरों का संहार करते हैं ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! तुम बल के कारण रूप एवं संसार के ईश्वर हो । तुम हमारे समक्ष आओ । हे वृत्र-हन्ता इन्द्र ! तुम शत्रुओं और असुरों का संहार करो ॥ ९ ॥ हे इन्द्र ! तुम अपने जिस अंकुश से अभिषव करने वाले यजमान को ऐश्वर्य प्रदान करते हो, तुम्हारा वह अंकुश महान् हो ॥१० [२३]

अयं त इन्द्र सोमो निपूतो अधि बर्हिषि । एहीमस्य द्रवा पिब ।

शाचिगो शाचिपूजनायं रणाय ते सुतः । आखण्डल प्र हूयसे ॥१२
यस्ते शृङ्गवृषो नपात् प्रणपात्कुण्डपाय्यः । न्यस्मिन्दध्र आ मनः ॥१३
वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणांसत्रं सोम्यानाम् ।
द्रप्सो भेत्ता पुरां शश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥१४
पृदाकुसानुर्यजतो गवेषण एकः सन्नभि भूयसः ।
भूर्णिमश्वं नयत्तुजा पुरो गृभेन्द्रं सोमस्य पीतये ॥१५ ॥२४

हे इन्द्र! यह सोम वेदी पर बिछे हुए कुश पर विशेष रूप से तुम्हारे लिए सुसिद्ध किया गया है। तुम इस सोम के सामने आकर शीघ्र ही इसका पान करो ॥ ११ ॥ हे प्रसिद्ध पूजा के योग्य इन्द्र ! तुम्हें प्रसन्न करने के लिए सोम अभिषुत हुआ है। हे शत्रुहन्ता, तुम श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा बुलाए जाते हो ॥ १२ ॥ हे इन्द्र! तुम्हारी रक्षा वाला श्रेष्ठ कुण्डपायी यज्ञ है, उसमें ऋषिगण लीन हो रहे हैं ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! तुम गृहपति हो। घर का आधार रूप स्तंभ सुदृढ़ हो। हम सोम के सम्पादन कर्त्ता हैं। हमारे स्कंध में रक्षा के लिए सामर्थ्य हो। सोमवान् एवं अनेक नगरों के ध्वस्त करने वाले इन्द्र ऋषियों के सखा बनें ॥ १४ ॥ ऊँचे शिर वाले, यज्ञ के योग्य, गौओं के प्रकट करने वाले वे इन्द्र अकेले रह कर भी असंख्य शत्रुओं को हराते हैं। स्तुति करने वाले विद्वान् उन विस्तृत इन्द्र को सोम पीने के लिए हमारे सामने लाते हैं ॥ १५ ॥ [२४]

१८ सूक्त

(ऋषि—इरिम्बिठिः काण्वः । देवता—आदित्याः, अश्विनौ, अग्निः सूर्यानिलाः । छन्द—उष्णिक्)

इदं ह नूनमेषां सुम्नं भिक्षेत मर्त्यः । आदित्यानामपूर्व्यं सवीमनि ॥१
अनर्वाणो ह्येषां पन्था आदित्यानाम् ।
अदब्धाः सन्ति पायवः सुगेवृधः ॥२
तत्सु नः सविता भगो वरुणो मित्रो अर्यमा ।

शर्म यच्छन्तु सप्रथो यदीमहे ॥३

देवेभिर्देव्यदितेऽरिष्टभर्मन्ना गहि । स्मत्सूरिभिः पुरुप्रिये सुशर्मभिः ॥४

ते हि पुत्रासो अदितेर्विदुर्द्वेषांसि योतवे ।

अंहोश्चिदुरुचक्रयोऽनेहसः ॥५ ।२५

इस समय मनुष्य आदित्यों के सामने पूर्ण न हुए सुख के परिपूर्ण होने की याचना करें ॥ १ ॥ इन आदित्यों के मार्ग अहिंसित हैं। उन मार्गों पर अन्य कोई नहीं चला है। वे पालन वाले मार्ग सर्व सुखों के बढ़ाने वाले हैं ॥ २ ॥ हम जिस अत्यन्त सुख की इच्छा करते हैं, उसी सुख को सविता, भग, मित्र, वरुण और अर्यमा हमको दें ॥ ३ ॥ हे देवताओ ! अहिंसा को पुष्ट करने वाली और बहुतों को प्रिय अदिति, विद्वान और सुख के देने वाले देवताओं के सहित सुख रूप होकर यहाँ आवें ॥ ४ ॥ अदिति के बन्धु एवं पुत्रादि वैरियों को भगाना जानते हैं। विस्तृत कर्मों के करने वाले और रक्षा करने में समर्थ वे सभी हमको पापों से बचाना जानते हैं ॥५ ॥ [२५]

अदितिर्नो दिवा पशुमदितिर्नक्तमद्वयाः । अदितिः पात्वंहसः सदावृधा ६

उत स्या नो दिवा मतिरदितिरूत्या गमत् ।

सा शन्ताति मयस्करदप स्रिधः ॥७

उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।

युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥८

शमग्निरग्निभिः करच्छं नस्तपतु सूर्यः ।

शं वातो वात्वरपा अप स्रिधः ॥९

अपामीवामप स्रिधमप सेधत दुर्मतिम् ।

आदित्यासो युयोतना नो अंहसः ॥१० २६

दिन एवं रात में भी हमारे पशुओं की रक्षा माता अदिति करें तथा वे अपने विस्तृत रक्षा साधनों द्वारा हमारी पाप से भी रक्षा करें स्तुति की पात्र अदिति दिन में अपनी रक्षाओं सहित आगमन करें

वाले सुख को हमें प्रदान करें। वे विघ्न करने वालों को हमसे दूर करें ॥७ देवताओं में विख्यात चिकित्सक अश्विनीकुमार हमको सुख प्रदान करें। पापों को हमारे पास से हटावें। शत्रुओं को भी हमसे दूर करें ॥ ८ ॥ अग्निदेव हमारे रोग को शान्त करें। सूर्य का ताप सुख देने वाला हो। वायु पाप और ताप से रहित होकर प्रवाहित हो और यह सभी, शत्रुओं को दूर भगावें ॥९॥ हे आदित्यो ! रोगों को हमसे दूर करो। शत्रुओं को भी दूर भगाओ। बुरी गतियों और पापों को भी दूर रखो ॥ १० ॥ [२६]

युयोता शरुमस्मदाँ आदित्यास उतामतिम् ।
ऋधग् द्वेषः कृणुत विश्ववेदसः ॥
तत्सु नः शर्म यच्छतादित्या यन्मुमोचति ।
एनस्वन्तं चिदेनसः सुदानवः ॥१२
यो नः कश्चिद्रिरिक्षति रक्षस्त्वेन मर्त्यः ।
स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः ॥१३
समित्तमघमश्नवद्दुःशंसं मर्त्यं रिपुम् ।
यो अस्मत्रा दुर्हणावाँ उप द्वयुः ॥१४
पाकत्रा स्थन देवा हृत्सु जानीथ मर्त्यम् ।
उप द्वयुं चाद्वयुं च वसवः ॥१५।२७

हे आदित्यो ! हिंसकों को हमसे दूर करो। कुबुद्धि को भी दूर करो। शत्रुओं को भी दूर करो ॥ ११ ॥ सुन्दर दान वाले आदित्यो ! तुम्हारा जो सुख पापी स्तोता को भी पाप से छुड़ा देता है, वही सुख हमें दो ॥ १२ ॥ जो मनुष्य राक्षस-वृत्ति द्वारा हमारा वध करना चाहता है, वह अपने ही कार्यों से मारा जाय। वह हमसे दूर रहे ॥ १३ ॥ जो कुख्यात व्यक्ति कपटी एवं हमारा हिंसक है, उसे उसका ही पाप व्याप्त करे ॥ १४ ॥ हे सुन्दर वास देने वाले आदित्यो ! तुम पूर्णज्ञानी हो। अतः तुम कपटी और निर्मल चित्त वाले, दोनों तरह के मनुष्यों के पूरी तरह जानने वाले हो ॥ १५ ॥ [२७]

आ शर्म पर्वतानामोतापां वृणीमहे । द्यावाक्षामारे अस्मद्रपस्कृतम् ॥१६
ते नो भद्रेण शर्मणा युष्माकं नावा वसवः ।
अति विश्वानि दुरिता पिपर्तन ॥१७
तुचे तनाय तत्सु नो द्राघीय आयुर्जीवसे ।
आदित्यासः सुमहसः कृणोतन ॥१८
यज्ञो हीळो वो अन्तर आदित्या अस्ति मृळत ।
युष्मे इद्वो अपि ष्मसि सजात्ये ॥१९
बृहद्वरूथं मरुतां देवं त्रातारमश्विना । मित्रमीमहे वरुणं स्वस्तये ॥२०
अनेहो मित्रार्यमन्नृवद्वरुण शंस्यम् । त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः ॥२१
ये चिद्धि मृत्युबन्धव आदित्या मनवः स्मसि ।
प्र सू न आयुर्जीवसे तिरेतन ॥२२।२८

हम पर्वत के तथा जलों के सुखों की इच्छा करते हैं। हे आकाश, पृथिवी! तुम पापों को हमसे दूर भेज दो ॥ १६ ॥ हे वास देने वाले आदित्यो! अपनी सुन्दर और सुख देने वाली नाव के द्वारा सभी पापों से पार लगाओ ॥ १७ ॥ हे आदित्यो! तुम अत्यन्त तेजस्वी हो हमारी सन्तान को अधिकतम आयु प्रदान करो ॥ १८ ॥ हे आदित्यो! हमारे कृत यज्ञ तुम्हारे पास हैं। तुम हमको सुख दो। तुम्हारी मित्रता पाकर हम सदैव तुम्हारे रहेंगे ॥ १९ ॥ हे मरुद्गण के पालनकर्त्ता इन्द्र! अश्विनीकुमार, मित्र और वरुण! हम तुमसे शीत ताप आदि के निवारक घर को अपने सुख के लिए माँगते हैं ॥ २० ॥ हे मित्र, अर्यमा, वरुण, मरुद्गण! तुम अहिंसित एवं स्तुत्य हो। शीत-ताप-वर्षा आदि का निवारक संतान युक्त घर हमको प्रदान करो ॥ २१ ॥ हे आदित्यो! जो मनुष्य मृत्यु के निकट जाने वाले (अल्प आयु) हैं, उनके जीवन के निमित्त आयु की वृद्धि करो ॥२२॥ [२८]

१९ सूक्त

(ऋषिः—सोभरिः काण्वः। देवता—अग्निः, आदित्याः। छन्द—उष्णिक, पंक्तिः, बृहती)

तं गूर्धया स्वर्णरं देवासो देवमरतिं दधन्विरे। देवत्रा

विभूतरातिं विप्र चित्रशोचिषमग्निमीळिष्व यन्तुरम् ।
अस्य मेधस्य सोम्यस्य सोभरे प्रे मध्वराय पूर्व्यम् ॥२
यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥३
ऊर्जो नपातं सुभगं सुदीदितिमग्निं श्रेष्ठशोचिषम् ।
स नो मित्रस्य वरुणस्य सो अपामा सुम्नं यक्षते दिवि ॥४
यः समिधा य आहुती यो वेदेन ददाश मर्तो अग्नये ।
यो नमसा स्वध्वरः ॥५ ।२६

हे स्तोताओ ! अग्नि का स्तवन करो । वे स्वर्ग में हवि पहुँचाने वाले हैं । ऋत्विग्गण अपने स्वामी अग्नि की सेवा में पहुँच कर देवताओं के निमित्त पुरोडाश आदि देते हैं ॥ १ ॥ हे विद्वानो ! इन अद्भुत तेज वाले, दानी, यज्ञ के नियंता, सोम-साध्य, प्राचीन अग्नि की यज्ञ के लिए स्तुति करो ॥ २ ॥ हे अग्ने ! तुम याज्ञिकों में श्रेष्ठ, देवताओं में अत्यन्त दानादि गुण से युक्त, अविनाशी, होता एवं यज्ञकर्त्ता हो । हम तुम्हारा स्तव करते हैं ॥३॥ मैं अन्न-दाता, सुन्दर धनदाता, अत्यन्त तेजस्वी एवं प्रकाशप्रद अग्नि का स्तवन करता हूँ । वे हमारे देवताओं के निमित्त किये जाने वाले, यज्ञ में मित्र और वरुण के लिए यज्ञ करें ॥ ४ ॥ जो साधक समिधादि से अग्नि सेवा करता है- जो आहुतियों से अग्नि की सेवा करता है, जो वेदाध्ययन से अथवा सुन्दर यज्ञादि अनुष्ठानों से नमस्कार युक्त होकर अग्नि की सेवा करता है······॥५॥ [२६]

तस्येदर्वन्तो रंहयन्त आशवस्तस्य द्युम्नितमं यशः ।
न तमंहो देवकृतं कुतश्चन न मर्त्यकृतं नशत् ॥६
स्वग्नयो वो अग्निभिः स्याम सूनो सहस ऊर्जां पते ।
सुवीरस्त्वमस्मयुः ॥७
प्रशंसमानो अतिथिर्न मित्रियोऽग्नी रथो न वेद्यः ।
त्वे क्षेमासो अपि सन्ति साधवस्त्वं राजा रयीणाम् ॥८
सो अद्धा दाश्वध्वरोऽग्ने मर्तः सुभग स प्रशंस्यः ।
स धीभिरस्तु सनिता ॥९

यस्य त्वमूर्ध्वो अध्वराय तिष्ठसि क्षयद्वीरः स साधते ।
सो अर्वद्भिः सनिता स विपन्युभिः स शूरैः सनिता कृतम् ॥१० । ३०

उसके ही अश्व द्रुतगति वाले होते हैं। वह सब से अधिक यशस्वी होता है और उसे दैविक तथा दैहिक पाप नहीं व्यापते ॥ ६ ॥ हे बल के पुत्र और अन्नादि के स्वामी, हम तुम्हारे गार्हपत्यादि अग्नि-पुंजों द्वारा सुन्दर अग्नि वाले होंगे। तुम सुन्दर वीरों वाले होकर हमारे रक्षक बनो ॥ ७ ॥ अतिथि के समान प्रशंसक अग्निदेव स्तुति करने वालों के हित साधक और रथ के समान फल के देने वाले हैं। हे अग्निदेव! तुम रेखाओं से युक्त हो। तुम धनों के स्वामी हो ॥ ८ ॥ हे अग्ने! जो मनुष्य यज्ञ कर्म से युक्त है, वह सत्य फल से भी युक्त हो। वह स्तोत्रों द्वारा तुम्हारा संभजन करने वाला हो ॥ ६ ॥ हे अग्ने! जिस यजमान का यज्ञ कर्म करने को तुम उच्च स्थान में रहते हो, वह यजमान गृह से युक्त होकर तथा वीर संतान वाला होकर अपने सभी कार्यों को साध लेता है। वह अश्वों द्वारा विजय प्राप्त करता और विद्वानों तथा वीरों से युक्त हुआ न्याययुक्त वितरणकर्ता होता है ॥१०॥ [३०]

यस्याग्निर्वपुर्गृहे स्तोमं चनो दधीत विश्ववार्यः ।
हव्या वा वेविषद्विषः ॥११
विप्रस्य वा स्तुवतः सहसो यहो मक्षूतमस्य रातिषु ।
अवोदेवमुपरिमर्त्यं कृधि वसो विविदुषो वचः ॥१२
यो अग्निं हव्यदातिभिर्नमोभिर्वा सुदक्षमाविवासति ।
गिरा वाजिरशोचिषम् ॥१३
समिधा यो निशिती दाशददितिं धामभिरस्य मर्त्यः ।
विश्वेत्स धीभिः सुभगो जनां अति द्युम्नैरुद्न इव तारिषत् ॥१४
तदग्ने द्युम्नमा भर यत्सासहत्सदने कं चिदत्रिणम् ।
मन्युं जनस्य दूढ्यः ॥१५ ।३१

वे अग्नि जिस यजमान के घर में स्तोत्र और अन्न ग्रहण करते हैं, उस यजमान की हवियाँ देवताओं को प्राप्त होती हैं ॥ ११ ॥

बल के पुत्र तथा निवासप्रद हो। विद्वान् स्तोता के दान में शीघ्रकारी के वचनों को देवगण से नीचे रखते हुए भी मनुष्यों से ऊपर उठाओ ॥ १२ ॥ जो यजमान हविर्दान और नमस्कारों से सुन्दर तेज वाले अग्नि की पूजा करता है वह समृद्धि को प्राप्त होता है ॥ १३ ॥ जो मनुष्य इन अग्नि की समिधादि के द्वारा सेवा करता है, वह अपने कर्मों से ही भाग्यशाली होकर सुन्दर यश के द्वारा सब मनुष्यों को जल के समान लाँघता है ॥ १४ ॥ हे अग्ने ! जो धन घर में आसुरी वृत्ति को दबाता तथा पापी मनुष्य के क्रोध को भी दबाता है, वही धन लेकर आओ ॥ १५ ॥ [३१]

येन चष्टे वरुणो मित्रो अर्यमा येन नासत्या भगः ।
वयं तत्ते शवसा गातुवित्तमा इन्द्रत्वोता विधेमहि ॥१६
ते घेदग्ने स्वाध्यो ये त्वा विप्र निदधिरे नृचक्षसम् ।
विप्रासो देव सुक्रतुम् ॥१७
त इद्वेदिं सुभग त आहुतिं ते सोतुं चक्रिरे दिवि ।
त इद्वाजेभिर्जिग्युर्महद्धनं ये त्वे कामं न्येरिरे ॥१८
भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।
भद्रा उत प्रशस्तयः ॥१९
भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये येना समत्सु सासहः ।
अव स्थिरा तनुहि भूरि शर्धतां वनेमा ते अभिष्टिभिः ॥२० ।३२

अग्नि के जिस तेज से वरुण, मित्र और अर्यमा ज्योति देते हैं तथा जिस तेज से अश्विद्वय और भग देवता प्रकाश देते हैं, हे अग्ने ! हम इन्द्र के द्वारा रक्षा प्राप्त करते हुए तथा बल के द्वारा अधिक स्तोत्र वाले होकर तुम्हारे उस तेज की सेवा करते हैं ॥ १६ ॥ हे विद्वान एवं तेजस्वी अग्निदेव ! जो मेधावी जन मनुष्यों के साक्षि रूप तुम श्रेष्ठ कर्म वाले को धारण करते हैं, वे श्रेष्ठ ध्यानी होते हैं ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! यह यजमान तुम्हारे निमित्त वेदी बनाते हैं, आहुतियाँ देते हैं, सोम का अभिषव करते हैं, वे अपने ही बल से अभीष्ट धन पाते हैं ॥ १८ ॥ यह आहुति अग्नि के लिए सुखकर हो। हे

अग्ने ! तुम्हारा दान हमारे लिए मङ्गलकारी हो । यह यज्ञ एवं स्तुतियाँ सभी कल्याण करने वाले हों ॥ १६ ॥ रणक्षेत्र में मन कल्याण वाहक हो । मन के द्वारा ही हे अग्ने ! तुम युद्ध में शत्रुओं को हराओ । शत्रुओं के बल को भी जीत लो । स्तोत्रों द्वारा हम तुम्हारी उपासना करेंगे ॥ २० ॥ (३२)

ईळे गिरा मनुर्हितं यं देवा दूतमरतिं न्येरिरे । यजिष्ठं हव्यवाहनम् ॥२१
तिग्मजम्भाय तरुणाय राजते प्रयो गायस्यग्नये ।
यः पिंशते सूनृताभिः सुवीर्यमग्निर्घृतेभिराहुतः ॥२२
यदी घृतेभिराहुतो वाशीमग्निर्भरत उच्चाव च असुर इव निर्णिजम् ।२३
यो हव्यान्यैरयता मनुर्हितो देव आसा सुगन्धिना ।
विवासते वार्याणि स्वध्वरो होता देवो अमर्त्यः ॥२४
यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । सहसः सूनवाहुत ॥२५।३३

मैं प्रजापति के द्वारा स्थापित अग्नि का पूजन करता हूँ । वे सबसे अधिक यज्ञ करने वाले, हवि-वाहक एवं ईश्वर रूप हैं और देवताओं ने उन्हें दूत रूप से भेजा है ॥ २१ ॥ सतत युवा, सुशोभित तथा तीखी ज्वालाओं वाले अग्नि को लक्ष्य कर हव्य रूप अन्न का गान करो । प्रिय एवं सत्य वाणी द्वारा स्तुति किए हुए तथा घृत की आहुतियाँ ग्रहण करते हुए वे अग्नि स्तुति करने वाले को श्रेष्ठ वीर्य देते हैं ॥ २२ ॥ घृत द्वारा आहूत अग्नि जब ऊपर और नीचे शब्द करते हैं, तब महा-पराक्रमी सूर्य के समान अपने तेज को प्रकट करते हैं ॥ २३ ॥ प्रजापति द्वारा स्थापित जो अग्नि अग्नि अपने मुख में ग्रहण कर देवों के निकट हव्य पहुँचाते हैं, वे सुन्दर यज्ञवान्, देवाह्वाक, तेजस्वी और अविनाशी अग्नि, धन प्रदान करते हैं ॥ २४ ॥ हे अग्ने ! तुम बल के पुत्र, घृत द्वारा आहूत एवं सुन्दर तेज वाले हो । मैं मरणधर्मा मनुष्य तुम्हारी उपासना करता हुआ तुम्हारे समान ही अमरत्व प्राप्त करूँ ।२५। [२७

न त्वा रासीयाभिशस्तये वसो न पापत्वाय सन्त्य ।
न मे स्तोतामतीवा न दुर्हितः स्यादग्ने न पापया ॥२६
पितुर्न पुत्रः सुभृतो दुरोण आ देवाँ एतु प्र णो हविः ॥२७

तवाहमग्न ऊतिभिर्नेदिष्ठाभिः सचेय जोषमा वसो ।
सदा देवस्य मर्त्य ॥२८

तव क्रत्वा सनेयं तव रातिभिरग्ने तव प्रशस्तिभिः ।
त्वामिदाहुः प्रमतिं वसो ममाग्ने हर्षस्व दातवे ॥२९

प्र सो अग्ने तवोतिभिः सुवीराभिस्तिरते वाजभर्मभिः ।
यस्य त्वं सख्यमावरः ॥३० ।३४

हे अग्ने ! मैं तुम्हें मिथ्या अपवाद के लिए तिरस्कृत नहीं करूँगा मैं पाप के लिए तुम्हारा तिरस्कार नहीं करूँगा । मेरा स्तोता अनुचित शब्द द्वारा तुम्हारा तिरस्कार न करेगा । मेरा शत्रु कुबुद्धिवाला न हो, वह पाप बुद्धि से मेरे लिए विघ्नकारक न बने ॥ २६ ॥ पुत्र द्वारा पिता के लिए प्रेरणा करने के समान पोषक अग्नि यज्ञ-स्थान में देवताओं के निमित्त हव्य प्रेरणा करते हैं ॥ २७ ॥ हे इन्द्र ! मैं यजमान निकटवर्ती साधनों से तुम्हारी प्रसन्नता प्राप्त करूँ ॥२८॥ हे अग्ने ! तुम्हारी सेवा करता हुआ ही मैं उपासना करूँगा । हव्य और स्तुति के द्वारा तुम्हारी उपासना करूँगा । तुम धावी हो । तुम मेरे रक्षक कहलाते हो । हे अग्ने ! दान के निमित्त हर्षित ओ ॥ २९ ॥ हे अग्ने ! तुम जिस यजमान को सखा बनाते हो । वह तुम्हारी बल और अन्न से युक्त रक्षा के द्वारा प्रवृद्ध होता है ॥३०॥ (३४)

तव द्रप्सो नीलवान्वाश ऋत्विय इन्धानः सिष्णवा ददे ।
त्वं महीनामुषसामसि प्रियः क्षपो वस्तुषु राजसि ॥३१

तमागन्म सोभरयः सहस्रमुष्कं स्वभिष्टिमवसे। सम्राजं त्रासदस्यवम् ।३२

यस्य ते अग्ने अन्ये अग्नय उपक्षितो वयाइव ।
विपो न द्युम्ना नि युवे जनानां तव क्षत्राणि वर्धयन् ।।३३

यमादित्यासो अद्रुहः पारं नयथ मर्त्यम्। मघोनां विश्वेषां सुदानवः ।३

यूयं राजानः कं चिच्चर्षणीसहः क्षयन्तं मानुषाँ अनु ।
वयं ते वो वरुण मित्रार्यमन्त्स्यामेदृतस्य रथ्यः ।।३५

अदान्मे पौरुकुत्स्य पञ्चाशतं त्रसदस्युर्वधूनाम् ।

मंहिष्ठो अर्यः सत्पतिः ॥३६
उत मे प्रयियोर्वयियोः सुवास्त्वा अधि तुग्वनि ।
तिसृणां सप्ततीनां श्यावः प्रणेता भुवद्वसुर्दियानां पतिः ॥३७ ।३५

सोम द्वारा सिंचित, शब्द करने वाले, तेजस्वी अग्ने! तुम्हारे निमित्त सोम ग्रहण किया जाता है। तुम विशाल रूप वाली उषाओं के सखा हो। तुम रात्रि में चीजों को दिखाते हो ॥ ३१ ॥ रक्षा के निमित्त हम अग्नि को प्राप्त हुए हैं। हे अग्ने! तुम अत्यन्त तेजस्वी, सुन्दर रूप वाले तथा "त्रसदस्यु" के द्वारा पूजित हो ॥ ३२ ॥ हे अग्ने! अन्य अग्नियाँ, वृक्ष की शाखा के समान तुम्हारी, शाखा रूप हैं। हे मनुष्यो! मैं तुम्हारे पराक्रम को बढ़ाते हुए समान यश-लाभ करूँगा ॥ ३३ ॥ हे श्रेष्ठ दान वाले, द्रोह रहित आदित्यो! हवि वाले यजमानों में भी जिस किसी को तुम पार लगाना चाहते हो, वही उत्तम फल प्राप्त करता है ॥ ३४ ॥ हे आदित्यो! तुम शोभा सम्पन्न एवं शत्रुओं के पराजित करने वाले हो। अतः मनुष्य के हिंसक शत्रुओं को हराओ। वरुण, मित्र और अर्यमा यह यज्ञ में मुख्य होंगे ॥ ३५ ॥ "पुरुकुत्स" के पुत्र "त्रसदस्यु" ने मुझे पचास वन्धु दिये, जो अत्यन्त दानी और स्तुति करने वालों के रक्षक हैं ॥ ३६ ॥ सुन्दर वास वाली नदी के किनारे श्याम वर्ण वाले बैलों के स्वामी और श्रेष्ठ धन देने के योग्य २१० गायों के अधिपति "त्रसदस्यु" ने धन और वस्त्रादि प्रदान किये थे ॥ ३७ ॥ [३५]

२० सूक्त

(ऋषि–सोभरिः काण्वः । देवता—मरुतः । उष्णिक्, पंक्तिः)

आ गन्ता मा रिषण्यत प्रस्थावानो माप स्थाता समन्यवः ।
स्थिरा चिन्नमयिष्णवः ॥१
वीळुपविभिर्मरुत ऋभुक्षण आ रुद्रासः सुदीतिभिः ।
इषा नो अद्या गता पुरुस्पृहो यज्ञमा सोभरीयवः ॥२
विद्मा हि रुद्रियाणां शुष्ममुग्रं मरुतां शिमीवताम् ।

विष्णोरेपस्य मीळ्हुषाम् ॥३
वि द्वीपानि पापतन्तिष्ठद्दुच्छुनोभे युजन्त रोदसी ।
प्र धन्वान्यैरत शुभ्रखादयो यदेजथ स्वभानवः ॥४
अच्युता चिद्वो अज्मन्ना नानदति पर्वतासो वनस्पतिः ।
भूमिर्यामेषु रेजते ॥५ ।३६

हे मरुतो ! तुम गमनशील हो, हमको हिंसित न करना । हमें त्याग कर अन्यत्र वास न करना । तुम समान तेज वाले होकर भीषण पर्वतों को भी कम्पायमान करते हो ॥ १ ॥ हे रुद्रपुत्रो ! तुम शोभन आवास वाले, तेजस्वी हो । पहिये में लगे डंडों वाले रथ से आओ । तुम सभी के द्वारा कामना करने योग्य हो । मुझ सौभरि की ओर आने की इच्छा करते हुए तुम हमारे यज्ञस्थान में अन्न के सहित आगमन करो ॥ २ ॥ कर्म में रत रहने वाले विष्णु और काम्य जलों को सींचने वाले इन्द्रपुत्र मरुतों के विकराल पराक्रम के हम ज्ञाता हैं ॥ ३॥ हे मरुद्गण ! तुम तेज से युक्त और श्रेष्ठ आयुधों से सम्पन्न हो । जब तुम कम्पन-कर्म करते हो तब सभी द्वीप च्युत हो जाते हैं । गमनशील जल प्रवाहमान होता है, आकाश-पृथिवी कम्पित होते हैं और स्थावर पदार्थ विपत्ति को प्राप्त होते हैं ॥ ४ ॥ हे मरुद्गण ! जब तुम रण-के लिए प्रस्थान करते हो तब पतनशील मेघ तथा वनस्पति आदि बारम्बार घोर शब्द करते हैं । भू मंडल भी कम्पायमान हो जाता है ॥ ५ ॥ [३६]

अमाय वो मरुतो यातवे द्यौर्जिहीत उत्तरा बृहत् ।
यत्रा नरो देदिशते तनूष्वा त्वक्षांसि बाह्वोजसः ॥६
स्वधामनु श्रियं नरो महि त्वेषा अमवन्तो वृषप्सवः ।
वहन्ते अह्रुतप्सवः ॥७
गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये ।
गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु ॥८
प्रति वो वृषदञ्जयो वृष्णे शर्धाय मारुताय भरध्वम् ।
हव्या वृषप्रयाव्णे ॥९

वृषणश्वेन मरुतो वृषप्सुना रथेन वृषनाभिना ।
आ श्येनासो न पक्षिणो वृथा नरो हव्या नो वीतये गत ॥१०॥३७

हे मरुद्गण ! विस्तृत आकाश तुम्हारे बल के परिभ्रमण के निमित्त अन्तरिक्ष से पृथक् होकर ऊर्ध्वगामी हुआ । नेता एवं विकराल बल सम्पन्न मरुद्गण अपने देह को उज्ज्वल बनाते हैं ॥ ६ ॥ यह नेता मरुद्गण शक्तिशाली, कुटिलता-रहित, तेजस्वी और सेचन-समर्थ हैं ॥ ७ ॥ मरुद्गण की वीणा सौभरि आदि महर्षियों के शब्दों से स्वर्णिम रथ के मध्य में आविर्भूत हो रही है । वे मरुद्गण सुन्दर जन्म वाले तथा गोमातृक हैं । वे हमारी प्रीति, अन्न और भोगों को प्राप्त कराने में प्रयत्नशील हों ॥८॥ हे अध्वर्युओ ! तुम सोम की वर्षा करने वाले हो, अतः तुम वर्षा प्रदान करने वाले मरुतों के बल के निमित्त हविरन्न लेकर आओ । तुम्हारे द्वारा प्राप्त बल से वे शीघ्र गमनशील और सेचन समर्थ होते हैं ॥ ९ ॥ वे मरुद्गण अभीष्ट वर्षक, वृष्टिकारक के रूप में, अश्वों के समान हमारी हवि के समीप आवें ॥ १० ॥ [३७]

समानमञ्ज्येषां वि भ्राजन्ते रुक्मासो अधि बाहुषु ।
दविद्युतत्यृष्टयः ॥११
त उग्रासो वृषण उग्रबाहवो नकिष्टनूषु येतिरे ।
स्थिरा धन्वान्यायुधा रथेषु वोऽनीकेष्वधि श्रियः ॥१२
येषामर्णो न सप्रथो नाम त्वेषं शश्वतामेकमिद्भुजे ।
वयो न पित्र्यं सहः ॥१३
तान्वन्दस्व मरुतस्ताँ उप स्तुहि तेषां हि धुनीनाम् ।
अराणां न चरमस्तदेषां दाना मह्ना तदेषाम् ॥१४
सुभगः स व ऊतिष्वास पूर्वासु मरुतो व्युष्टिषु ।
यो वा नूनमुतासति ॥१५॥३८

उन मरुद्गण की वेशभूषा एक सी हो रही है । उनकी भुजाओं में चमकता हुआ सुवर्ण हार सुशोभित है । उनकी भुजाओं

रहे हैं ॥ ११ ॥ वे मरुद्गण पराक्रमी हैं, उग्रकर्मा और वर्षक हैं। उन्हें अपने देहों की रक्षा का यत्न नहीं करना पड़ता। हे मरुद्गण! तुम्हारा रथ धनुष और आयुधों से सम्पन्न हैं और रणक्षेत्र में सभी सेनाओं से मुख पर तुम्हारी जीत के भाव ही लक्षित होते हैं ॥१२॥ इन वहुसंख्यक मरुद्गण का नाम एक होकर भी, जैसे भोग के लिए पैतृक सम्पत्ति यथेष्ट होती है, वैसे ही यथेष्ट है। यह तेजस्वी, सर्वत्र ही जल के समान विस्तार युक्त हैं ।१३॥ स्वामी के तुच्छ सेवक के समान, हम कम्पन को उत्पन्न करने वाले मरुद्गण के तुच्छ सेवक हैं, उनका दान महिमावान् है। इसलिए उनकी स्तुति करते हुए नमस्कार करो ॥ १४ ॥ हे मरुद्गण! तुम्हारा स्तोता पूर्वकाल में तुम्हारे द्वारा रक्षित हुआ था। तुम्हारी स्तुति करने पर तुम्हारा ही होता है ॥ १५॥ [३८]

यस्य वा यूयं प्रति वाजिनो नरः आ हव्या वीतये गथ।
अभि ष द्युम्नैरुत वाजसातिभिः सुम्ना वो धूतयो नशत् ॥१६
यथा रुद्रस्य सूनवो दिवो वशन्त्यसुरस्य वेधसः। युवानस्तथेदसत् ।१७
ये चार्हन्ति मरुतः सुदानवः स्मन्मीळ्हुषश्चरन्ति ये।
अतश्चिदा न उप वस्यसा हृदा युवान आ ववृध्वम् ॥१८
यून ऊ षु नविष्ठया वृष्णः पावकाँ अभि सोभरे गिरा।
गाय गा इव चर्कृषत् ॥१९
साहा ये सन्ति मुष्टिहेव हव्यो विश्वासु पृत्सु होतृषु।
वृष्णश्चन्द्रान्न सुश्रवस्तमान् गिरा वन्दस्व मरुतो अह ॥२० ।३९

हे मरुद्गण! तुम जिस हवि सम्पन्न यजमान के पास हवि सेवनार्थ प्रस्थान करते हो, वह तुम्हारे तेजस्वी अन्न और उसके उपभोग से प्राप्त सुख को सब ओर फैलाता है ॥१६॥ यह रुद्रपुत्र, बलकारक, सदा तरुण रहते हैं। वे मरुद्गण जिस प्रकार अन्तरिक्ष से आकर हमको चाहने लगें, हमारा यह स्तोत्र उसी प्रकार का हो ॥१७॥ जो हविदाता यजमान इन्हें हवि देते हुए पूजते हैं अथवा जो दानशील यजमान इनकी उपासना करते हैं, इन दोनों प्रकार के यजमानों के समान ही हम भी हैं। हे मरुतो! महान् धन देने वाले

मन से आते हुए हमको प्राप्त होओ ॥ १८ ॥ अत्यन्त वर्षाकारक, सदा युवा, पवित्र करने वाले मरुतों की हे सोभरि ! अत्यन्त नवीन शोभन स्तोत्रों द्वारा, कृषक द्वारा वृषभों का स्तव करने के समान ही, स्तुति करो ॥ १९ ॥ वीरों द्वारा आहूत किये जाने पर मरुद्गण विजय करने वाले होते हैं। वे आह्वान योग्य पहलवान के समान आनन्द देने वाले हैं। उन अत्यन्त सेचन समर्थ और तेजस्वी मरुद्गण की सुन्दर स्तोत्र द्वारा पूजा करो ॥२०॥ [३९]

गावश्चिद्घा समन्यवः सजात्येन मरुतः सबन्धवः ।
रिहते ककुभो मिथः ॥२१
मर्तश्चिद्वो नृतवो रुक्मवक्षस उप भ्रातृत्वमायति ।
अधि नो गात मरुतः सदा हि व आपित्वमस्ति निध्रुवि ॥२२
मरुतो मारुतस्य न आ भेषजस्य वहता सुदानवः ।
यूयं सखायः सप्तयः ॥२३
याभिः सिन्धुमवथ याभिस्तूर्वथ याभिर्दशस्यथा क्रिविम् ।
मयो नो भूतोतिभिर्मयोभुवः शिवाभिरसचद्विषः ॥२४
यत्सिन्धौ यदसिक्न्यां यत्समुद्रेषु मरुतः सुबर्हिषः ।
यत्पर्वतेषु भेषजम् ॥२५
विश्वं पश्यन्तो बिभृथा तनूष्वा तेना नो अधि वोचत ।
क्षमा रपो मरुत आतुरस्य न इष्कर्ता विह्रुतं पुनः ॥२६ ॥४०

हे मरुद्गण ! तुम समान तेज वाले हो। समान जाति के कारण गौएं समान बन्धुत्व को प्राप्त सब ओर से चाटती हैं ॥ २१ ॥ हे मरुद्गण ! तुम हृदय-प्रदेश में दमकते हुए आभूषण धारण करते हो। हे मरुतो ! तुम नर्तनशील हो। मनुष्य भी तुम्हारे सख्यभाव की कामना करते हैं। इसलिए तुम हमारे प्रति आत्मीयता से कहने वाले होओ। सभी धारक यज्ञों में तुम्हारा बन्धु-भाव सदा ही बना रहता है ॥ २२ ॥ हे मरुद्गण ! तुम मित्र रूप हो। तुम सुन्दर दानशील एवं गमनशील हो। तुम हमें अपनी सम्बन्धित औषधियाँ प्राप्त कराओ ॥ २३ ॥ हे मरुद्गण ! तुमने अपने जिन रक्षा सामर्थ्यों

द्वारा गौतम को कूप प्रदान किया, जिस सामर्थ्य से तुम यजमान के शत्रु श
को मारते हो तथा जिस सामर्थ्य से तुमने समुद्र की रक्षा की है, उसी साम
से हे शत्रु रहित, सुख उत्पन्न करने वाले मरुद्गण ! हमारे निमित्त सुख
त्पादक होओ ॥ २४ ॥ हे मरुद्गण ! तुम शोभन यज्ञ वाले हो । समुः
नदी, पर्वत आदि में तुम्हारी ही औषधि हैं ॥ २५ ॥ हे मरुद्गण ! हम
शरीर की चिकित्सा के लिए उपयुक्त औषधि को लाओ और व्याधिग्रस्त अ
को, जैसे भी रोग का शमन होसके, वैसे ही पूर्ण करो ॥२६॥ [४८

२१ सूक्त (चौथा अनुवाक)

(ऋषि–सोभरिः काण्वः । देवता–इन्द्रः, चित्रस्य दानस्तुतिः ।
छन्द–उष्णिक्,पंक्तिः)

वयमु त्वामपूर्व्य स्थूरं न कच्चिद्भरन्तोऽवस्यवः ।
वाजे चित्रं हवामहे ॥
उप त्वा कर्मन्नूतये स नो युवोग्रश्चक्राम यो धृषत् ।
त्वामिद्ध्यवितारं ववृमहे सखाय इन्द्र सानसिम् ॥ २
आ याहीम इन्दवोऽश्वपते गोपत उर्वरापते । सोमं सोमपते पिब ॥
वयं हि त्वा बन्धुमन्तमबन्धवो विप्रास इन्द्र येमिम ।
या ते धामानि वृषभ तेभिरा गहि विश्वेभिःसोमपीतये ॥४
सीदन्तस्ते वयो यथा गोश्रीते मधौ मदिरे विवक्षणे ।
अभि त्वामिन्द्र नोनुमः ॥५ ॥१

हे इन्द्र ! तुम अद्भुत हो । तुम विभिन्न रूपों के धारण करने वाले हो ।
विद्वान् पुरुषों के समान हम भी तुम्हें रक्षा की कामना करते हुए सोम द्वारा
पुष्ट करने के लिए आहूत करते हैं ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम शत्रुओं के विजेता
और विकराल तथा उग्र हो । तुम हमारे सामने होओ । हम अपने यज्ञों की
रक्षा के लिए तुम्हारे आश्रय से आते हैं । हे इन्द्र ! तुम उपासनीय और
हमारे मित्र हो । हम तुम्हारा वरण करते हैं ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम सोम के

अधिपति हो, यहाँ आकर सोमपान करो। तुम गौओं के पालनकर्त्ता, उर्वर भूमि तथा अश्वों के भी स्वामी हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो ! तुम अपनी शारीरिक शक्ति सहित आकर सोमपान करो। हम बन्धु रहित तुम बन्धुवान से बन्धुत्व स्थापन करने के इच्छुक हैं ॥४॥ हे इन्द्र ! स्वर्ग प्राप्ति के निमित्त रूप गव्य मिश्रित सोम में रहते हुए तुम्हारे सामने हम पक्षियों के समान मधुर शब्द में तुम्हारा ही स्तव करते हैं ॥ ५ ॥ [१]

अच्छा च त्वैना नमसा वदामसि किं मुहुश्चिद्वि दीधयः ।
सन्ति कामासो हरिवो ददिष्ट्वं स्मो वयं सन्ति नो धियः ॥६
नूत्ना इदिन्द्र ते वयमूती अभूम नहि नू ते अद्रिवः ।
विद्मा पुरा परीणसः ॥७
विद्मा सखित्वमुत शूर भोज्यमा ते ता वज्रिन्नीमहे ।
उतो समस्मिन्ना शिशीहि नो वसो वाजे सुशिप्र गोमति ॥८
यो न इदमिदं पुरा प्र वस्य आनिनाय तमु व स्तुषे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥९
हर्यश्वं सत्पतिं चर्षणीसहं स हि ष्मा यो अमन्दत ।
आ तु नः स वयति गव्यमश्व्यं स्तोतृभ्यो मघवा शतम् ॥१० ॥२

हे इन्द्र ! तुम चिन्तित न होओ, हम इस स्तोत्र द्वारा तुम्हारी ही स्तुति करेंगे। हम पुत्र, पशु आदि की कामना करते हैं और तुम धनादि के देने वाले हो। अतः हे हर्यश्ववान इन्द्र ! हमारे सब श्रेष्ठ कर्म तुम्हारे लिए ही प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम्हारी रक्षा को पाकर हम सदा नवीन रहेंगे। हे वज्रिन् ! तुम सर्व व्याप्त हो, यह अभी हमने जाना है। पहिले हम इस बात को नहीं जानते थे ॥ ७ ॥ हे इन्द्र ! हे वज्रिन् ! हम तुम्हारे सख्य भाव जानते हुए उसकी कामना करते हैं। हम तुम्हारे धन को जानते हैं, इस-लिए तुमसे धन माँगते हैं। तुम सुन्दर मुकुट धारण करने वाले और निवास-दाता हो, अतः गवादि से सम्पन्न धनों को हमारे लिए उज्ज्वल करो ॥ ८ ॥ हे सखा रूप ऋत्विजो और यजमानो ! प्राचीन काल में जो इन्द्र हमारे लिए

सम्पूर्ण ऐश्वर्य को ले आये थे, रक्षा के निमित्त मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ ९ ॥ जो मनुष्य हर्यश्वयुक्त, देवताओं के स्वामी, शत्रु को वश करने वाले इन्द्र का स्तव करता है, वह तृप्त होता है। वे इन्द्र हम स्तोताओं के लिए सौ-सौ गौऐं और अश्व लेकर आये थे ॥१० ॥ [२]

त्वया ह स्विद्युजा वयं प्रति श्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि ।
संस्थे जनस्य गोमतः ॥११
जयेम कारे पुरुहूत कारिणोऽभि तिष्ठेम दूढ्यः ।
नृभिर्वृत्रं हन्याम शूशुयाम चावेरिन्द्र प्र णो धियः ॥१२
अभ्रातृव्यो अना त्वमनापिरिन्द्र जनुषा सनादसि । युधेदापित्वमिच्छसे।१३
नकी रेवन्तं सख्याय विन्दसे पीयन्ति ते सुराश्वः ।
यदा कृणोषि नदनुं समूहस्यादित्पितेव हूयसे ॥ १४
मा ते अमाजुरो यथा मूरास इन्द्र सख्ये त्वावतः ।
नि षदाम सचा सुते ॥१५ ॥३

हे इन्द्र ! तुम अभीष्ट फल देने वाले हो। गौओं से सम्पन्न शत्रुओं के साथ युद्ध में लगे हुये हम तुम्हारी सहायता पाकर अत्यन्त कुपित शत्रु को भी शांत कर देंगे ॥ ११ ॥ हे इन्द्र ! तुम अनेकों द्वारा आहूत किये जाते हो। हम पाप बुद्धि वाले हिंसक शत्रुओं को रणक्षेत्र में पराजित करेंगे। मरुद्गण की सहायता पाकर हम वृत्र रूप शत्रुओं को मारते हुए वीर कर्म की वृद्धि करेंगे। हे इन्द्र ! हमारे सब कर्मों के रक्षक होओ ॥ १२ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्पन्न होते ही शत्रुओं से शून्य होगए थे। तुम बहुत समय से बन्धु रहित हो। हे इन्द्र ! तुम जिस सख्य भाव की कामना करते हो, उसे संग्राम से ही पाते हो ॥ १३ ॥ हे इन्द्र ! अयाज्ञिक मनुष्य सुरा पीकर उन्मत्त हो जाते हैं और वे तुम्हारी हिंसा करने में प्रवृत्त होते हैं, इसीलिए तुम उन अयाज्ञिकों को धन होने पर भी अपना आश्रय नहीं देते। जब तुम्हें स्तुति करने वाला अपने पिता के समान मानता हुआ आहूत करता है, तब तुम उसे अपना मान कर धन प्रदान करते हो ॥ १४ ॥ हे इन्द्र ! हम सोम का अभिषव करने से

वंचित न हों। हम तुम्हारे जैसे देवता के बन्धुत्व से हीन न हो सकें। सोम का संस्कार होने पर हम एक साथ ही उपवेशन करेंगे ॥ १५ ॥ [३]

मा ते गोदत्र निरराम राधस इन्द्र मा ते गृहामहि ।
दृळ्हा चिदर्यः प्र मृशाभ्या भर न ते दामान आदभे ॥ १६
इन्द्रो वा घेदियन्मघं सरस्वती वा सुभगा ददिर्वसु ।
त्वं वा चित्र दाशुषे ॥१७
चित्र इद्राजा राजका इदन्यके यके सरस्वतीमनु ।
पर्जन्यइव ततनद्धि वृष्ट्या सहस्रमयुता ददत् ॥ १८ ॥४

हे इन्द्र ! तुम गौ प्रदान करने वाले हो। हम धन से हीन न हों। हम तुम्हारे हैं अतः अन्य किसी से धन न लें। हे स्वामिन् तुम्हारे दान को कोई बाधा नहीं दे सकता अतः हमारे पास अचल स्थायी धन प्रेरित करो ॥१६॥ हे चित्र नामक यजमान ! तुम हवि देने वाले को यह दान क्या इन्द्र ने दिया है ? या सुन्दर धन की स्वामिनी सरस्वती ने दिया है ? अथवा क्या तुमने ही प्रदान किया है ? ॥१७॥ वर्षा के द्वारा मेघ जैसे पृथिवी को पुष्ट करता है, वैसे ही राजा चित्र सरस्वती नदी के तट पर वास करने वालों को धन प्रदान करते हुए उन्हें सुखी करते हैं ॥१८॥ (४)

२२ सूक्त

(ऋषि-सोभरिः काण्व । देवता अश्विनौ । छन्द-बृहती, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, त्रिष्टुप्)

ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये ।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः ॥ १
पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम् ॥२
इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥

युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु ॥ ४
रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५ ॥५

हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्तूयमान मार्ग वाले और शोभन आह्वान वाले हो । तुम जिस रथ पर सूर्या का वरण करने को आरूढ़ हुए थे, उसी रथ की रक्षा के निमित्त आह्वान करता हूँ ॥ १ ॥ हे सौभरि ! यह प्राचीन रथ स्तुति करने वालों को पुष्ट करने वाला है, अतः अपनी मंगलमयी स्तुतियों से इस रथ की स्तुति करो । यह रथ पाप रहित, युद्ध क्षेत्र में आगे चलने वाला, सब की रक्षा करने वाला, बहुतों के द्वारा कामना किया गया और सुन्दर आह्वान से सम्पन्न है ॥ २ ॥ हे शत्रु-विजेता अश्विनीकुमारो ! तुम इस हवि-दाता यजमान के स्वामी हो । हम इस यज्ञ-कर्म में रक्षा प्राप्त करने के निमित्त नमस्कार करते हुए तुम्हें अपने सामने बुलावेंगे ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारे रथ का एक पहिया तुम्हारे साथ रहता है और एक पहिया स्वर्गलोक तक पहुँचता है । तुम जलों के स्वामी तथा सभी कार्यों के प्रेरणा करने वाले हो । तुम्हारी कल्याणमयी सुबुद्धि हमको गौओं के समान प्राप्त हो ॥ ४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ सुवर्ण की लगामों वाला और तीन प्रकार की गद्दी वाला है । तुम्हारा वह रथ आकाश-पृथिवी को अपने प्रकाश से सुशोभित करता है ॥ ५ ॥

(५)

दशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६
उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥ ७
अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥ ८
आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९

याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१० ॥६

हे अश्विनीकुमारो ! तुमने आकाश स्थित प्राचीन जल को मनु को दिया और हल से जौ की खेती की। तुम जल के पालन करने वालों की हम अपने सुन्दर स्तोत्र द्वारा पूजा करते हैं ॥६॥ हे अश्विद्वय ! तुम अन्नवान एवं धनवान हो, तुम धन को प्रदान करने वाले हो। तुमने जिस मार्ग से आकर त्रसदस्यु के पुत्र तृक्षि को अपरमित धन प्रदान कर संतुष्ट किया था, उसी पथ मार्ग से आगमन करो ॥७॥ हे अश्विद्वय ! यह सोम पाषाणों द्वारा तुम्हारे निमित्त ही संस्कारित किया गया है। हे धन-सम्पन्न एवं वर्षणशील अश्विनीकुमारो ! इस हविदाता के गृह आकर सुमधुर सोम का पान करो ॥८॥ हे वर्षणशील अश्विनीकुमारो ! तुम्हारा रथ सुवर्ण की लगामों से युक्त तथा आयुधों का कोश रूप है। तुम अपने उस रमण योग्य रथ पर आरूढ़ होओ ॥९॥ हे अश्विद्वय ! तुमने जिन रक्षा साधनों से अध्रिगु नामक राजा की तथा पक्थ नामक राजा की रक्षा की थी और जिन रक्षा-साधनों द्वारा तुमने बभ्रु नामक राजा की सोम पीकर रक्षा की थी, तुम अपने उसी रक्षा-साधन द्वारा इस रोगी की चिकित्सा के लिए शीघ्र ही हमारे पास आगमन करो ॥१०॥ (६)

यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११

ताभिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सुं विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा याभिः क्रिविं वावृधुस्ताभिरा गतम् ॥१२
ताविदा चिदहानां तावश्विना वन्दमान उप ब्रुवे ।
ता ऊ नमोभिरीमहे ॥१३

ताविद्दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन्रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥१४
आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोभरी ॥१५ ॥७

हे अश्विद्वय ! जैसे तुम रणक्षेत्र में शत्रु-वध वाले कर्म में शीघ्रकारी हो, वैसे ही हम अपने कर्म में कुशल एवं शीघ्रकारी हैं। इस प्रातः सवन में हम तुम्हें स्तोत्र द्वारा आहूत करते हैं ॥ ११ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम विविध रूप वाले, वर्षणशील और सब देवताओं द्वारा वरण करने योग्य हो तथा हवि की कामना करने वाले, रणक्षेत्र में धनों को जीतने वाले, अत्यन्त धन देने वाले हो। तुमने अपने जिन रक्षा-साधनों से कूप को बढ़ाया है, उन सब रक्षा-साधनों सहित हमारे द्वारा आह्वान करने पर आगमन करो ॥ १२ ॥ मैं उन अश्विनीकुमारों से स्तुति द्वारा धन आदि माँगता हूँ। मैं इस प्रातः सवन में उनकी नमस्कार पूर्वक स्तुति करता हूँ ॥ १३ ॥ हम अश्विनीकुमारों को वर्षा काल, दिन और रात्रि तीनों समय आहूत करते हैं। वे रण में स्तूयमान मार्ग वाले हैं तथा जलों को पुष्ट करते हैं। हे अश्विनीकुमारो ! तुम अन्न और धन वाले हो। हमको शत्रुओं के आधीन मत कर देना ॥ १४ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! मैं सौभरि ऋषि सुख पाने का अधिकारी हूँ। अपने पिता के समान मैं भी तुम्हें आहूत करता हूँ। तुम दोनों सेंचन-समर्थ हो। तुम अपने रथ पर आरूढ़ होकर प्रातःकाल ही सुख को लेकर यहाँ आगमन करो ॥ १५ ॥ [७]

मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुङ्गमाभिरूतिभिः ।
आरात्ताच्चिद्भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा ॥१६
आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥१७
सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना । ।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥१८ ॥८

हे अश्विद्वय ! तुम धन की वर्षा करने वाले, शीघ्रगमन वाले, अनेकों के रक्षक और शत्रुओं का नाश करने में समर्थ हो। इसलिए अपने द्रुतगामी रक्षा साधनों सहित हमारी रक्षा के लिए आगमन करो ॥ १६ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम नेता, अत्यन्त सोम पीने वाले तथा दर्शन के योग्य हो। तुम हमारे यज्ञ मार्ग को गौ, अश्व, सुवर्ण आदि धनों से सम्पन्न करते हुए

आगमन करो ॥ १७ ॥ जिस धन का सुन्दर रूप सब के वरण करने योग्य है, जिसका बल और दान भी सुन्दर हैं तथा जिसे पराक्रमी पुरुष भी नहीं हरा सकते, हम ऐसे धन को धारण करते हैं। हे अश्विद्वय ! तुम अन्न और धन वाले हो, तुम्हारे आने पर हम समस्त धनों को पा लेंगे ॥१८॥ [८]

२३ सूक्त

(ऋषि-विश्वमना वैयश्वः। देवता-अग्निः। छन्द—उष्णिक्)

ईळिष्वा हि प्रतीव्यं यजस्व जातवेदसम्।
चरिष्णुधूममगृभीतशोचिषम् ॥१

दामानं विश्वचर्षणेऽग्निं विश्वमनो गिरा।
उत स्तुषे विष्पर्धसो रथानाम् ॥२

येषामाबाध ऋग्मिय इषः पृक्षश्च निग्रभे।
उपविदा वह्निर्विन्दते वसु ॥३

उदस्य शोचिरस्थाद्दीदियुषो व्यजरम्।
तपुर्जम्भस्य सुद्युतो गणश्रियः ॥४

उदु तिष्ठ स्वध्वर स्तवानो देव्या कृपा।
अभिख्या भासा बृहता शुशुक्वनिः ॥५ ॥९

जिन अग्नि का धूम सब ओर फैलता है, जिनकी ज्वाला को पकड़ने में कोई समर्थ नहीं है, वे अग्नि शत्रुओं के विरुद्ध जाने वाले हैं। उन्हीं जातवेदा की स्तुति और पूजा करो ॥ १ ॥ हे विश्वमना ऋषि ! तुम सर्वार्थ दर्शक हो। तुम इस यजमान के लिए, रथादि प्रदान करने वाले अग्निदेव की स्तोत्रों द्वारा स्तुति करो ॥ २ ॥ जिनके अन्न और मधुर सोमरस को शत्रुओं को बाधा देने वाली ऋचाओं के द्वारा ग्रहण करते हैं, वे यजमान धन पाते हैं ॥३ वे अग्नि अत्यन्त तापप्रद, तेजस्वी, सुन्दर दीप्ति वाले तथा दण्ड से युक्त हैं। वे अग्नि यजमानों के आश्रय में रहते हैं उनकी नवीन दीप्ति है ॥४॥ हे सुन्दर यज्ञरूप अग्ने ! तुम सुन्दर दीप्ति द्वारा दैदीप्य अपनी दमकती हुई ज्वाला सहित उठो ॥ ५ ॥

अग्ने याहि सुशस्तिभिर्हव्या जुह्वान आनुषक् ।
यथा दूतो वभूथः हव्यवाहन ॥६
अग्निं वः पूर्व्यं हुवे होतारं चर्षणीनाम् ।
तमया वाचा गृणे तमु वः स्तुपे ॥७
यज्ञेभिरद्भुतक्रतुं यं कृपा सूदयन्त इत् ।
मित्रं न जने सुधितमृतावनि ॥८
ऋतावानमृतायवो यज्ञस्य साधनं गिरा । उपो एनं जुजुषुर्नमसस्पदे ॥६
अच्छा नो अङ्गिरस्तमं यज्ञासो यन्तु संयतः ।
होता यो अस्ति विक्ष्वा यशस्तमः ॥१० ॥१०

हे अग्ने ! तुम हवियों के वहन करने वाले दूत हो अतः देवताओं को हव्य पहुँचाने के निमित्त सुन्दर स्तोत्र सहित गमन करो ॥ ६ ॥ मैं यज्ञ सम्पादक प्राचीन अग्नि को आहूत करता हूँ। मैं सूक्त वचनों के द्वारा तुम्हारे निमित्त उन्हीं अग्नि की स्तुति करता हूँ ॥ ७ ॥ अग्नि देवता अत्यन्त मेधावी और मित्र रूप हैं। उनके तृप्त होने पर यज्ञ के वल और उनकी कृपा से यजमान का अभीष्ट पूर्ण होता है ॥८॥ हे यज्ञ की कामना वालो ! तुम इस हवियों वाले यज्ञ में यज्ञ के साधन रूप अग्नि की स्तोत्रों द्वारा पूजा करो ॥६॥ यह अग्नि यज्ञ सम्पादक और अत्यन्त तेजस्वी हैं। हमारे यज्ञ उन्हीं आंगिरस अग्नि के सामने पहुँचें ॥ १०॥ [१०]

अग्ने तव त्ये अजरेन्धानासो वृहद्भाः अश्वा । इव वृषणस्तविषीयवः ॥१
स त्वं न ऊर्जां पते रयिं रास्व सुवीर्यम् ।
प्राव नस्तोके तनये समत्स्वा ॥१२
यद्वा उ विश्पतिः शितः सुप्रीतो मनुषो विशि ।
विश्वेदग्निः प्रति रक्षांसि सेधति ॥१३
श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य वीर विश्पते ।
नि मायिनस्तपुषा रक्षसो दह ॥१४

न तस्य मायया चन रिपुरीशीत मर्त्यः ।
यो अग्नये ददाश हव्यदातिभिः ॥१५ ॥११

हे अग्ने ! तुम जरा रहित हो । तुम्हारी रश्मियाँ अत्यन्त तेजवाली तथा कामनाओं की वर्षा करने वाली हैं । ये अश्व के समान बल को उत्पन्न करती हैं ॥ ११ ॥ हे अग्ने ! तुम अन्नों के स्वामी हो । तुम हमको सुन्दर बल से सम्पन्न धन प्रदान करो । रण के अवसर पर हमारे पुत्र-पौत्रादि के पास स्थित धन को रक्षा करो ॥११॥ जब वे तीक्ष्ण एवं मनुष्यों के रक्षक अग्नि अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक घर में निवास करते हैं, तब वे सब दैत्यों का नाश कर देते हैं ॥ १३ ॥ हे अग्ने ! तुम मनुष्यों के रक्षक हो । तुम हमारे स्तोत्र को श्रवण कर मायावी दैत्यों को अपने संतापक तेज से भस्म करो ॥१४ जो हविदाता यजमान अग्नि के लिए हवि देता है, उसे मनुष्यों के शत्रु दैत्य अपनी माया से भी अपने आधीन नहीं कर सकते ॥१५॥ [११]

व्यश्वस्त्वा वसुविदमुक्षण्युरप्रीणादृषिः । महो राये तमु त्वा समिधीमहि।१६
उशना काव्यस्त्वा नि होतारमसादयत् ।
आयजि त्वा मनवे जातवेदसम् ॥१७
विश्वे हि त्वा सजोषसो देवासो दूतमक्रत ।
श्रुष्टी देव प्रथमो यज्ञियो भुवः ॥१८
इमं घा वीरो अमृतं दूतं कृण्वीत मर्त्यः ।
पावकं कृष्णवर्तनिं विहायसम् ॥१९
तं हुवेम यतस्रुचः सुभासं शुक्रशोचिषम् ।
विशामग्निमजरं प्रत्नमीड्यम् ॥२० ॥१२

हे अग्ने ! व्यश्व ऋषि ने अपने को धन की वर्षा करने वाला बनाने की कामना से तुम्हें प्रसन्न किया था । हे अग्ने ! तुम धन-प्रदान करने वाले को हम भी महान् धन के निमित्त प्रदीप्त करते हैं ॥ १६ ॥ हे अग्ने के ज्ञाता, कवि और यज्ञशील उशना ने तुम्हें होता रूप स्थापित किया था ॥ १७ ॥ हे अग्ने ! तुम देवताओं में प्रमुख

[illegible] ॥ २० ॥ [११]

[illegible] ।

[illegible] ॥२१

[illegible] ।

[illegible] हविष्मती ॥२२

[illegible] ।

[illegible] शुक्रशोचिषे ॥२३

[illegible] स्थूरयूपवत् ।

ऋषे वैयश्व दम्यायाग्नये ॥२४

अतिथिं मानुषाणां सूनुं वनस्पतीनाम् ।

विप्रा अग्निमवसे प्रत्नमीळते ॥२५ ॥१२

जो यजमान अग्नि को हवि प्रदान करता है वह अत्यन्त पुष्टि, वीर संतान और अन्न आदि पाता है ॥ २१ ॥ अग्नि उत्तम कर्मों के ज्ञाता, देवताओं में मुख्य और प्राचीन हैं हवि युक्त स्रुक नमस्कार के सहित उनके पास पहुँचता है ॥ २२ ॥ हम उन पूज्य, उज्ज्वल, तेजस्वी और स्तुतियों द्वारा प्रवृद्ध अग्नि की सेवा करते हैं ॥ २३ ॥ हे ऋषि विश्वमना ! तुम स्थूलयूप ऋषि के समान ही यजमान के घर में प्रकट हुए अग्निदेव को स्तोत्रों द्वारा पूजो ॥२४॥ विद्वान् यजमान वनस्पतियों द्वारा उत्पन्न, प्राचीन एवं मनुष्यों के अतिथि रूप अग्नि की रक्षा की कामना करते हुए स्तुति करते हैं ॥२५॥ [१२]

महो विश्वाँ अभिषतोऽभिहव्यानि मानुषा ।

अग्ने नि षत्सि नमसाधि बर्हिषि ॥२६

वंस्वा नो वार्या पुरु वंस्व रायः पुरुस्पृहः ।

सुवीर्यस्य प्रजावतो यशस्वतः ॥२७

त्वं वरो सुषाम्णेऽग्ने जनाय चोदय ।

सदा वसो रातिं यविष्ठ शश्वते ॥२८

त्वं हि सुप्रतूरसि त्वं नो गोमतीरिषः ।

महो रायः सातिमग्ने अपा वृधि ॥२९

अग्ने त्वं यशा अस्या मित्रावरुणा वह ।

ऋतावाना सम्राजा पूतदक्षसा ॥ ३० ॥१४

हे अग्ने ! तुम सब स्तुति करने वालों के समक्ष कुशा के ऊपर प्रतिष्ठित होओ। हे स्तुति के पात्र ! तुम मनुष्यों द्वारा दी जाती हुई हवियों को ग्रहण करो ॥ २६ ॥ हे अग्ने ! वरण करने योग्य, बहुतों द्वारा कामना किया गया, सुन्दर पुत्र-पौत्रादि से सम्पन्न और यश से सम्पन्न धन हमको प्रदान करो ॥२७॥ हे अग्ने ! तुम सखा, वरणीय एवं निवास-प्रद हो। इन सुन्दर साम गायकों के लिए धन आदि का प्रेरण करो ॥ २८॥ हे अग्ने ! तुम अत्यन्त दानी हो। पशुओं से सम्पन्न धन हमको प्रदान करो ॥ २९ ॥ हे अग्ने ! देवताओं में तुम अत्यन्त यशस्वी हो। जो मित्रावरुण अत्यन्त बली, सत्यनिष्ठ एवं प्रतिष्ठित हैं, उन्हें हमारे इस यज्ञ-कर्म में ले आओ ॥ ३० ॥ [१४]

२४ सूक्त

(ऋषि—विश्वमना वैयश्वः । देवता—इन्द्रः वरोः सौषाम्णस्य दानस्तुतिः । छन्द—उष्णिक्, अनुष्टुप्)

सखाय आ शिषामहि ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।

स्तुष ऊ षु वो नृतमाय धृष्णवे ॥१

शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।

मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ॥२

स नः स्तवान आ भर रयिं चित्रश्रवस्तमम् ।

निरेके चिद्यो हरिवो वसुर्ददिः ॥३

आ निरेकमुत प्रियमिन्द्र दर्षि जनानाम् ।

धृषता धृष्णो स्तवमान आ भर ॥४

न ते सव्यं न दक्षिणं हस्तं वरन्त आमुरः ।

न परिबाधो हरिवो गविष्टिषु ॥५ ॥१५

हे सखा रूप ऋत्विजो ! हम इस स्तोत्र को इन्द्र के निमित्त करेंगे। वे इन्द्र शत्रुओं के घसीटने वाले एवं आयुधों के स्वामी हैं। युद्ध में आने के लिये मैं उन्हीं इन्द्र की स्तुति करूँगा ॥१॥ हे इन्द्र ! तुम वृत्र हनन के कारण ही वृत्रहन्ता कहलाते हो। तुम अपने पराक्रम के द्वारा ही विख्यात हुए हो। हे वीर ! तुम धनवान् पुरुषों को अपने ही धन से अधिक धन प्रदान करते हो ॥२॥ हे इन्द्र ! तुम अश्ववान् हो। हमारे द्वारा स्तुत होने पर तुम विभिन्न अन्नों से सम्पन्न धन हमें दो। तुम आने के समय ही शत्रुओं के धन को देने वाले होते हो ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! हमारे निमित्त धन को प्रकट करो। तुम शत्रुओं के नाश करने वाले होकर, उनका धन हमको प्रदान करो ॥ ४ ॥ हे अश्ववान् इन्द्र ! जब तुम गौओं को ढूँढते हो तब वीर पुरुष भी तुम्हारे दाँये या बाँए हाथ को नहीं रोक सकते। तुम बाधा-रहित हो, इसलिए वृत्र आदि भी तुम्हारे हाथ रोकने में समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ [१५]

आ त्वा गोभिरिव व्रजं गीर्भिर्ऋणोम्यद्रिवः ।

आ स्मा कामं जरितुरा मनः पृण ॥६

विश्वानि विश्वमनसो धिया नो वृत्रहन्तम ।

उग्र प्रणेतरधि षू वसो गहि ॥७

वयं ते अस्य वृत्रहन्विद्याम शूर नव्यसः ।

वसोः स्पार्हस्य पुरुहूत राधसः ॥८

इन्द्र यथा ह्यस्ति तेऽपरीतं नृतो शवः ।

अमृक्ता रातिः पुरुहूत दाशुषे ॥९

आ वृषस्व महामह महे नृतम राधसे ।

दृळ्हाश्चिद् दृह्य मघवन्मघत्तये ॥१० ।१६

हे वज्रिन् ! जैसे गौएं गोष्ठ को प्राप्त होती हैं, वैसे ही मैं तुम्हें स्तुतियों के द्वारा प्राप्त होता हूँ ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम उत्तम ग्रास देने वाले, नेता, उग्र एवं वृत्रादि का नाश करने वाले हो । विश्वमना ऋषि जिन स्तोत्रों को करते हैं, उनके उन सब स्तोत्रों में तुम अभिमुख रहना ॥ ७ ॥ हे बहुतों द्वारा आहूत, वृत्रहन इन्द्र ! तुम से हम सुख का साधन रूप, स्पृहणीय एवं नवीन धन प्राप्त करेंगे ॥ ८ ॥ हे इन्द्र ! शत्रु तुम्हारे बल को दबाने में समर्थ नहीं हैं । तुम बहुतों द्वारा आहूत और सबको नचाने वाले हो । तुम जिस हविदाता को धन प्रदान करते हो, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता ॥ ६ ॥ हे इन्द्र ! तुम नेताओं में उत्कृष्ट और अत्यन्त पूज्य हो । तुम धन की प्राप्ति के लिए शत्रुओं के दृढ़ पुरों को ध्वस्त करो । अपने वृहद् उदर को महान् धन के निमित्त तृप्त करो ॥ १० ॥   (१६)

नू अन्यत्रा चिदद्रिवस्त्वन्नो जग्मुराशसः ।

मघवञ्छग्धि तव तन्न ऊतिभिः ॥११

नह्य ङ्ग नृतो त्वदन्यं विन्दामि राधसे ।

राये द्युम्नाय शवसे च गिर्वणः ॥१२

एन्दुमिन्द्राय सिञ्चत पिबाति सोम्यं मधु ।

प्र राधसा चोदयाते महित्वना ॥१३

उपो हरीणां पतिं दक्षं पृञ्चन्तमब्रवम् । नूनं श्रुधि स्तुवतो अश्व्यस्य ॥१४

नह्य ङ्ग पुरा चन जज्ञे वीरतरस्त्वत् ।

नकी राया नैवथा न भन्दना ॥१५ ।१७

हे वज्रिन् ! तुमसे पूर्व, हमने अन्य देवताओं से याचनाएं की थीं, अब तुम हमको धन प्रदान करते हुए रक्षक बनो ॥ ११ ॥ हे स्तवनीय इन्द्र ! तुम सबको नचाने वाले हो । अन्न को प्रकट करने वाले बल निमित्त मैं केवल तुमको ही जानता हूँ, अन्य किसी को नहीं ॥

तुम्हारे मधुर सोम का पान करें, इसलिए उन्हीं के निमित्त तुम सोम को सींचो। वह इन्द्र अपनी महिमा के द्वारा अन्नयुक्त धन आदि को प्रेरित करते हैं ॥ १३॥ वे इन्द्र अपना वृद्धि करने वाला बल दूसरे को प्रदान करते हैं, अतः मैं उन्हीं अश्व-स्वामी इन्द्र की स्तुति करूँ। हे इन्द्र! मुझ व्यश्व के पुत्र की स्तुति सुनो ॥१४॥ हे इन्द्र! प्राचीन काल में तुम से अधिक बलशाली धनवान् आश्रयदाता और स्तुतियों से सम्पन्न अन्य कोई प्रकट नहीं हुआ ॥ १५ ॥ (१७)

एदु मध्वो मदिन्तरं सिञ्च वाध्वर्यो अन्धसः ।
एवा हि वीरः स्तवते सदावृधः ॥१६

इन्द्र स्थातर्हरीणां नकिष्टे पूर्व्यस्तुतिम् ।
उदानंश शवसा न भन्दना ॥१७

तं वो वाजानां पतिमहूमहि श्रवस्यवः । अप्रायुभिर्यज्ञेभिर्वावृधेन्यम् ॥१८

एतोन्विन्द्रं स्तवाम सखाय स्तोम्यं नरम् ।
कृष्टीर्योविश्वा अभ्यस्त्येक इत् ॥१९

अगोरुधाय गविषे द्युक्षाय दस्म्यं वचः ।
घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत ॥२० ॥१८

हे ऋत्विजो! सोम रूप अन्न के हर्षकारी रस को इन्द्र के लिए ही सींचो। क्योंकि यह इन्द्र सदा बढ़ने वाले और वीर हैं। सभी स्तोता इनकी ही स्तुति करते हैं ॥ १६॥ हे इन्द्र! तुम हर्यश्वों के स्वामी हो। प्रथम तुम्हारे निमित्त की गई स्तुति को कोई भी धनी या बली उल्लंघन नहीं कर सकता है ॥१७॥ हम अन्न की कामना करते हुए, जिन यज्ञों में ऋत्विग्गण आलस्य नहीं करते उन्हीं यज्ञों से, अन्नों के स्वामी इन्द्र का आह्वान करते हैं ॥१८॥ हे सखारूप ऋत्विजो! तुम शीघ्र ही यहाँ आओ। हम स्तुति के योग्य इन्द्र का ही स्तव करेंगे क्योंकि यह अकेले ही शत्रु की सेना को हरा देते हैं ॥१९॥ हे ऋत्विजो! जो इन्द्र स्तुतियों की कामना करते हैं, जो स्तुतियों को रोकते नहीं, उन इन्द्र के प्रति घृत, मधु से ही सुस्वादु मधुर वाणी का उच्चारण करो ॥ २० ॥ (१८)

यस्यामितानि वीर्या न राधः पर्येतवे । ज्योतिर्न विश्वमभ्यस्ति दक्षिणा॥२१
स्तुहीन्द्रं व्यश्ववदनूर्मि वाजिनं यमम् ।
अर्यो गयं मंहमानं वि दाशुषे ॥२२
एवा नूनमुप स्तुहि वैयश्व दशमं नवम् ।
सुविद्वांसं चर्कृत्यं चरणीनाम् ॥२३
वेत्था हि निर्ऋतीनां वज्रहस्त परिवृजम् ।
अहरहः शुन्ध्युः परिपदामिव ॥२४
तदिन्द्राव आ भर येना दंसिष्ठ कृत्वने ।
द्विता कुत्साय शिश्नथो नि चोदय ॥२५ ॥१६

जो इन्द्र असीमकर्मा हैं, जिनके धन को शत्रु प्राप्त नहीं कर सकते, जिनका दान ज्योति के समान सब स्तुति करने वालों में व्याप्त होता है । हे स्तोताओ ! उन्हीं अहिंस्य, बलवान् इन्द्र की व्यश्व ऋषि के समान स्तुति करो । ये इन्द्र हवि देने वाले को विशाल गृह प्रदान करते हैं ॥ २१-२२ ॥ हे विश्वमना ऋषि ! इन्द्र मनुष्य के दसवें प्राप्य हैं और नमस्कारों के योग्य, मेधावी तथा अभिनव हैं, तुम उन्हीं इन्द्र की स्तुति करो ॥२३ ॥ हे वज्रिन् ! जैसे सूर्य पक्षियों के उड़ने को नित्य ही जानते हैं, वैसे ही तुम निर्ऋतियों के गमन को जानते हो ॥ २४ ॥ हे इन्द्र ! तुम अतीव दर्शनीय हो । कुत्स ऋषि के लिए तुमने दो रक्षाओं से शत्रुओं को मारा था, उन्हीं रक्षाओं को हमें प्रदान करो । इस कर्म के करने वाले यजमान को अपनी शरण प्रदान करो ॥ २५ ॥ [१६]

तमु त्वा नूनमीमहे नव्यं दंसिष्ठ सन्यसे ।
स त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः ॥२६
य ऋक्षादंहसो मुचद्यो वार्यात्सप्त सिन्धुषु ।
वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनमः ॥२७
यथा वरो सुषाम्णे सनिभ्य आवहो रयिम् ।
व्यश्वेभ्यः सुभगे वाजिनीवति ॥२८

आ नार्यस्य दक्षिणा व्यश्वां एतु सोमिनः ।
स्थूरं च राधः शतवत्सहस्रवत् ॥२६
यत्त्वा पृच्छादीजानः कुहया कुहयाकृते ।
एषो अपश्रितो वलो गोमतीमव तिष्ठति ॥३० ॥२०

हे स्तुतियों के पात्र इन्द्र ! तुम दर्शन के योग्य हो । हम तुमसे धन माँगते हैं । तुम हमारे शत्रुओं की सेनाओं को हराने वाले हो ॥ २६ ॥ जो इन्द्र सात नदियों के किनारे निवास करने वाले यजमानों के पास धन प्रेरण करते हैं और जो निर्ऋति के बन्धन से छुड़ाते हैं, ऐसे हे इन्द्र ! तुम राक्षसों का संहार करने के लिए शस्त्र को झुकाओ ॥२७॥ हे वरु ! प्राचीन काल में जैसे तुमने सुषामा राजा के लिए याचकों को धन प्रदान किया था, वैसे ही हम व्यश्वों को प्रदान करो । हे उषे ! तुम शोभन अन्न-धन से सम्पन्न हो, अतः तुम भी धन प्रदान करो ॥ २८ ॥ इन राजा वरु की दक्षिणा हम व्यश्व पुत्रों को प्राप्त हो । सौ और सहस्र संख्यक धन हमारे पास आवे ॥ २६ ॥ हे उषे ! अग्र-जिज्ञासु 'वरु कहाँ रहते हैं' ऐसा पूछते हैं । यदि तुमसे इन आश्रय-स्थान और शत्रु-नाशक वरु राजा के सम्बन्ध में पूछे तो बताना कि वे गोमती-तट पर वास करते हैं ॥३०॥ [२०]

२५ सूक्त

(ऋषि-विश्वमना वैयश्वः । देवता-मित्रावरुणौ, विश्वेदेवाः । छन्द-उष्णिक्)

ता वां विश्वस्य गोपा देवा देवेषु यज्ञिया ।
ऋतवाना यजसे पूतदक्षसा ॥१
मित्रा तना न रथ्या वरुणो यश्च सुक्रतुः ।
सनात्सुजाता तनया धृतव्रता ॥२
ता माता विश्ववेदसासुर्याय प्रमहसा । मही जजानादितिर्ऋतावरी ॥३
महान्ता मित्रावरुणा सम्राजा देवावसुरा ।
ऋतावानावृतमा घोषतो बृहत् ॥४

नपाता शवसो महः सूनू दक्षस्य सुक्रतू ।
सुप्रदानू इषो वास्त्वधि क्षितः ॥५ २१

हे मित्रावरुण ! तुम सब विश्व के पालक हो । तुम देवताओं में उपासना के योग्य हो । तुम हवि के लिए यजमान का आश्रय बनाओ । हे व्यश्व ! तुम बलवान् एवं यशवान् मित्रावरुण के लिए यजन करो ॥ १ ॥ मित्रावरुण अदिति के पुत्र हैं । वे व्रत धारण करने वाले, सुन्दर कर्म वाले, शोभन उत्पत्ति तथा धन और रथ वाले हैं ॥ २ ॥ सत्यनिष्ठा एवं महिमामयी अदिति ने उन तेजस्वी एवं ऐश्वर्यशाली मित्रावरुण को राक्षसों का बल मिटाने के लिए ही प्रकट किया है ॥ ३॥ वे मित्रावरुण सत्य-सम्पन्न, बली, सम्राट एवं महान् हैं । वे शोभन यज्ञ को प्रकट करने वाले हैं ॥ ४॥ मित्रावरुण वेग से उत्पन्न, सुन्दर कर्म वाले, प्रचुर धनदाता और बल के पौत्र रूप हैं । वे अन्न के स्थान में वास करते हैं ॥ ५ ॥ [२१]

सं या दानूनि येमथुर्दिव्याः पार्थिवीरिषः ।
नभस्वतीरा वां चरन्तु वृष्टयः । ६
अधि या बृहतो दिवोभि यूथेव पश्यतः ।
ऋतावाना सम्राजा नमसे हिता ॥७
ऋतावाना नि षेदतुः साम्राज्याय सुक्रतू ।
धृतव्रता क्षत्रिया क्षत्रमाशतुः ॥८
अक्ष्णश्चिद्गातुवित्तरानुल्बणेन चक्षसा ।
नि चिन्मिषन्ता निचिरा नि चिक्यतुः ॥९
उत नो देव्यदितिरुरुष्यतां नासत्या ।
उरुष्यन्तु मरुतो वृद्धशवसः ॥१० ॥२२

हे मित्रावरुण ! तुम द्यावा पृथिवी पर धन और अन्न प्रदान करते हो । जल से सम्पन्न वृष्टि तुम्हारी आश्रित है ॥ ६ ॥ हे मित्रावरुण ! तुम वृषभ द्वारा गौओं को देखने के समान ही प्रसन्न करने वाले,
वाले, सत्यनिष्ट, सम्राट और हवियों के प्रति प्रेम करने

सुन्दर कर्मवाले मित्रावरुण साम्राज्य के निमित्त प्रतिष्ठित हों। वे व्रतधारी, बल को व्याप्त करने वाले हों ॥ ८ ॥ नेत्र की सृष्टि होने से पूर्व ही प्राणियों के ज्ञाता, सबको प्रेरणा देने वाले मित्रावरुण तेज और बल से सुशोभित हुए ॥ ६ अदिति, अश्विनीकुमार और वेगवान् मरुद्गण हमारी रक्षा करने वाले हों ॥ १० ॥ [२२]

ते नो नावमुरुष्यत दिवा नक्तं सुदानवे ।
अरिष्यन्तो नि पायुभिः सचेमहि ॥११
अघ्नते विष्णवे वयमरिष्यन्तः सुदानवे ।
श्रुधि स्वयावन्त्सिन्धो पूर्वचित्तये ॥१२
तद्वार्यं वृणीमहे वरिष्ठं गोपयत्यम् ।
मित्रो यत्पान्ति वरुणो यदर्यमा ॥१३
उत नः सिन्धुरपां तन्मरुतस्तदश्विना ।
इन्द्रो विष्णुर्मीढ्वांस सजोषसः ॥१४
ते हि ष्मा वनुषो नरोऽभिमातिं कयस्य चित् ।
...मं न क्षोदः प्रतिघ्नन्ति भूर्णयः ॥१५ ॥२३

वेगवान् जल द्वारा वृक्ष को उखाड़ फेंकने के समान ही शत्रु को समूल उखाड़ फेंकने वाले हैं ॥ १२ ॥ [२२]

अयमेक इत्था पुरू उरु चष्टे वि विश्पतिः
तस्य व्रतान्यनु वश्चरामसि ॥१६

— पूर्वान्वोत्था साम्राज्यस्य सश्चिम ।
मित्रस्य व्रता वरुणस्य दीर्घश्रुत् १७

यो रश्मिना दिवोऽन्तान्नमे पृथिव्याः ।
उभे आ पप्रौ रोदसी महित्वा ॥१८

प्य शरणे दिवो ज्योतिरयंस्त सूर्यः ।
अग्निर्न शुक्रः समिधान आहुतः ॥१६

। दीर्घप्रसद्मनीशे वाजस्य गोमतः ।
ईशे हि पित्वोऽविषस्य दावने ॥१० ॥२४

मित्र और वरुण में से मैं तुम्हारे निमित्त मित्र के व्रत को करता हूँ । मित्र देवता लोकों के अधिपति हैं और अपने तेज से सभी प्रधान द्रव्यों को ते हैं ॥ १६ ॥ हम सम्राट वरुण से गृह प्राप्त करेंगे । इन अत्यन्त विख्यात र देवता के व्रत को भी करेंगे ॥ १७॥ जो मित्र देवता अपने तेज से स्वर्ग । विश्व के अन्त को प्रकट करते हैं वे इन दोनों को अपनी ही महिमा से करते हैं ॥ १८ ॥ वे मित्रावरुण सूर्य के स्थान में अपनी ज्योति को प्रकट ते हैं, फिर सब के द्वारा बुलाए जाकर अग्नि के समान दमकते हुए चलते ॥ १६ ॥ हे स्तुति करने वालो ! मित्रावरुण विशाल गृह के स्वामी हैं, तुम हीं की स्तुति करो । पशुओं से सम्पन्न अन्न के स्वामी वरुण हैं, वे अत्यन्त वे देने वाले अन्न को प्रदान करने वाले हैं ॥ २० ॥ (२१)

न्यूनं रोदसी उभे दोषा वस्तोरुप ब्रुवे ।
भोजेष्वस्माँ अभ्युच्चरा सदा ॥२१

ऋजुस्नायमने रजतं हरयाणे । रथं युक्तमसनाम सुषामणि ॥२२
ता मे अश्व्यानां हरीणां नितोशना । उतो नु कृत्व्यानां नृवाहसा ॥२३

में निवास करने वाले हो। तुम्हारा कान सब बातें सुनने में समर्थ है, इसलिए सब यजमान तुम्हारा स्तव करते हैं ॥६॥ [२८]

१४१ सूक्त

(ऋषि—अग्निस्तापसः। देवताः–विश्वेदेवाः। छन्दः–अनुष्टुप्)

अग्ने अच्छा वदेह नः प्रत्यङ् सुमना भव।
प्र नो यच्छ विशस्पते धनदा असि नस्त्वम् ॥ १
प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र भगः प्र बृहस्पतिः।
प्र देवाः प्रोत सूनृता रायो देवी ददातु नः ॥ २
सोमं राजानमवसेऽग्निं गीर्भिर्हवामहे।
आदित्यान्विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ३
इन्द्रवायू बृहस्पतिं सुहवेह हवामहे।
यथा नः सर्व इज्जनः सङ्गत्यां सुमना असत् ॥ ४
अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय।
वातं विष्णुं सरस्वतीं सवितारं च वाजिनम् ॥ ५
त्वं नो अग्ने अग्निभिर्ब्रह्म यज्ञं च वर्धय।
त्वं नो देवतातये रायो दानाय चोदय ॥ ६ । २९

हे अग्ने! तुम हम पर प्रसन्न होओ। हमें उचित उपदेश दो। हे धनदाता! हमें धन दान दो ॥१॥ बृहस्पति, भग, अर्यमा तथा अन्य सब देवता, वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के सहित आकर हमें धन दें ॥२॥ बृहस्पति, विष्णु, सूर्य, अग्नि, आदित्यगण, प्रजापति और राजा सोम को हम अपनी रक्षा के लिए आहूत करते हैं ॥३॥ इन्द्र, वायु, बृहस्पति का आह्वान करने से सुख की प्राप्ति होती है, इसलिए हम इनका आह्वान करते हैं। धन-प्राप्ति के लिए सब हमारे अनुकूल हों ॥४॥ हे स्तोतागण! तुम बृहस्पति, इन्द्र, वायु, विष्णु, अर्यमा सविता और सरस्वती से दान की याचना करो ॥५॥ हे अग्ने! तुम समस्त अग्नियों से मिलकर हमारे यज्ञ को

सम्पन्न करो और हमारे स्तोत्र की वृद्धि करो। हमारे यज्ञ में धन-दाता देवताओं को दान के लिए आहूत करो ॥६॥ [२९]

१४२ सूक्त

(ऋषि—शार्ङ्गाः । देवता—अग्निः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप्, अनुष्टुप्)

अयमग्ने जरिता त्वे अभूदपि सहसः सूनो नह्यन्यदस्त्याप्यम् ।
भद्रं हि शर्म त्रिवरूथमस्ति त आरे हिंसानामप दिद्युमा कृधि ॥ १
प्रवत्ते अग्ने जनिमा पितूयतः साचीव विश्वा भुवना न्यृञ्जसे ।
प्र सप्तयः प्र सनिषन्त नो धियः पुरश्चरन्ति पशुपा इव त्मना ॥ २
उत वा उ परि वृणक्षि बप्सद्बहोरग्न उलपस्य स्वधावः ।
उत खिल्या उर्वराणां भवन्ति मा ते हेतिं तविषीं चुक्रुधाम ॥ ३
यदुद्वतो निवतो यासि बप्सत्पृथगेषि प्रगर्धिनीव सेना ।
यदा ते वातो अनुवाति शोचिर्वप्तेव श्मश्रु वपसि प्र भूम ॥ ४
प्रत्यस्य श्रेणयो ददृश्र एकं नियानं बहवो रथासः ।
बाहू यदग्ने अनुमर्मृजानो न्यङ्ङुत्तानामन्वेषि भूमिम् ॥ ५
उत्ते शुष्मा जिहतामुत्ते अर्चिरुत्ते अग्ने शशमानस्य वाजाः ।
उच्छ्वञ्चस्व नि नम वर्धमान आ त्वाद्य विश्वे वसवः सदन्तु ॥ ६
अपामिदं न्ययनं समुद्रस्य निवेशनम् ।
अन्यं कृणुष्वेतः पन्थां तेन याहि वशाँ अनु ॥ ७
आयने ते परायणे दूर्वा रोहन्तु पुष्पिणीः ।
ह्रदाश्च पुण्डरीकाणि समुद्रस्य गृहा इमे ॥ ८ । ३०

हे अग्ने ! यह जरिता ऋषि तुम्हारी स्तुति करते हैं। तुम्हारे समान अन्य कोई व्यक्ति हमारा स्वजन नहीं है। तुम्हारा निवास स्थान श्रेष्ठ है। हम तुम्हारे उत्ताप से दग्ध न हों, इसलिए अपनी तेजस्वी ज्वालाओं को हमसे दूर रखो ॥१॥ हे अग्ने ! जब तुम अन्न की कामना करते हुए प्रकट होते हो तब तुम्हारी उत्पत्ति अत्यन्त सुन्दर होती है। तुम भाई के समान

सब लोकों को सुशोभित करते हो। तुम्हारे इधर-उधर गमनशील ज्वालाओं को देखकर हमारे स्तोत्र प्रकट हुए हैं। वे ज्वालाएं पशुओं के स्वामी के समान अग्रगमन वाली होती हैं ॥२॥ हे अग्ने! तुम तेजस्वी हो। तुम जलाते समय बहुत से तृणों को स्वयं ही छोड़ते हो। धन-धान्य सम्पन्न भू-भाग को तुम अन्न-रहित कर देते हो। इस प्रकार कोप करने वाली तुम्हारी ज्वालाओं के हम कोप-भाजन न हों ॥३॥ जब तुम वृक्षों को ऊपर नीचे से दग्ध करते हो, तब लुटेरों के समान पृथक्-पृथक् गमन करते हो। जब तुम्हारे पीछे वायु प्रवाहित होता है, तब तुम उस हरे-भरे भू-भाग को उसी प्रकार अन्न रहित कर देते हो, जिस प्रकार नाई दाढ़ी मूँछों को साफ कर देता है ॥४॥ अग्नि की ज्वालाएं अनेक हैं, पर यह एक स्थान को ही गमन करती हैं। हे अग्ने! तुम इनके द्वारा सम्पूर्ण जंगल को दग्ध करते हो और झुक-झुक कर ऊँचे स्थानों पर चढ़ जाते हो ॥५॥ हे अग्ने! तुम्हारे तेज, बल और ज्वालाओं का उदय हो। तुम ऊपर नीचे जाओ आओ। सभी देवता तुमसे मिलें। हम तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥६॥ [३०]

१४३ सूक्त

(ऋषि–अत्रिः सांख्यः। देवता–अश्विनौ। छन्द–अनुष्टुप्।)

त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥ १

त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥ २

नरा दंसिष्ठवत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३

चिते तद्वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना।
आ यन्नः सदने पृथौ सुमने पर्षथो नरा ॥४

युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम्।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥ ५

आ वां सुम्नैः शंयूइव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं व पिप्युषीरिषः ॥ ६ । १

हे अश्विनीकुमारो ! यज्ञ करते-करते ही महर्षि वृद्ध हो गए, तुम दोनों ने उन्हें अश्व के समान गन्तव्य स्थान पर पहुँचने वाला बना दिया। कक्षीवान् ऋषि को तुमने जो युवावस्था प्रदान की, वह जीर्ण रथ को नवीन कर देने के समान थी ॥ १ ॥ अत्यन्त बली शत्रुओं ने अत्रि को द्रुतगामी अश्व के समान बाँध रखा था। जैसे दृढ़ गाँठ को खोलना कठिन होता है, वैसे कठिन बंधन से तुमने अत्रि को छुड़ाया। तब वे युवा पुरुष के समान अपने स्थान को प्राप्त हुए ॥ २ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम उज्ज्वल वर्ण वाले और नेता हो। महर्षि अत्रि को बुद्धि देने की कामना करो। जब तुम ऐसा करोगे तब मैं फिर तुम्हारी स्तुति करूँगा ॥ ३ ॥ हे अश्विनीकुमारो ! तुम श्रेष्ठ अन्न वाले हो। हमारे महान् यज्ञ के आरम्भ में होने पर जब तुमने उसकी रक्षा की, तब हमें यह ज्ञात हुआ कि तुमने हमारे स्तोत्र को स्वीकार कर लिया है ॥ ४ ॥ समुद्र की लहरों पर डूबते उतराते भुज्यु के लिये तुम पंख वाली नाव लेकर गये और समुद्र से उसे पार लगाकर अनुष्ठान करने की सामर्थ्य प्रदान की ॥ ५ ॥ हे अश्विद्वय ! तुम सबके जानने वाले और नेता हो। तुम दाता होकर अपने धन के सहित हमारे यज्ञ में आगमन करो। जैसे दूध से थन पूर्ण होता है, वैसे ही तुम हमें धन से पूर्ण कर दो ॥ ६ ॥ [1]

१४४ सूक्त

(ऋषि—सुपर्णस्तार्क्ष्यपुत्र ऊर्ध्वकृशनो वा यामायनः । देवता—इन्द्रः ।
छन्द—गायत्री, बृहती, पंक्तिः ।)

अयं हि ते अमर्त्य इन्दुरत्यो न पत्यते । दक्षो विश्वायुर्वेधसे ॥ १
अयमस्मासु काव्य ऋभुर्वज्रो दास्वते ।
अयं बिभर्त्यूर्ध्वकृशनं मदमृभुर्न कृत्व्यं मदम् ॥ २
घृषुः श्येनाय कृत्वन आसु स्वासु वंसगः । अव दीधेदहीशुवः ॥ ३
यं सुपर्णः परावतः श्येनस्य पुत्र आभरत् ।

शनचक्र यो ह्यो वर्तनिः ॥ ४
यं ते श्येनश्चारुमवृकं पदाभरदरुणं मानमन्धसः ।
एना वयो वि तार्यायुर्जीवस एना जागार वन्धुता ॥ ५
एवा तदिन्द्र इन्दुना देवेषु चिद्धारयाते महि त्यजः ।
क्रत्वा वयो वि तार्यायुः सुक्रतो क्रत्वायमस्मदा सुत ॥ ६ । २

हे सृष्टि रचयिता इन्द्र ! यह अमृत के समान मधुर सोम तुम्हारी ओर अश्व के समान गमन करता है। यह सोम बल का आश्रय रूप और प्राण के समान है ॥ १ ॥ इन्द्र दानशील हैं। उनका वज्र प्रशंसनीय है। वे इन्द्र ऊर्द्धवकृशन नामक स्तोता के रक्षक हैं। ऋभुगण के समान यह भी यज्ञ करने वाले का पालन करते हैं ॥ २ ॥ यह तेजस्वी इन्द्र अपने यजमानों के पास भले प्रकार गमन करते हैं। मुझ सुपर्णश्येन ऋषि के वंश को उन्होंने भली भाँति प्रवृद्ध किया है ॥ ३ ॥ श्येन अत्यन्त दूर देश से सोम को ले आये। यह सोम सभी अनुष्ठानों के लिए श्रेष्ठ है। वह वृत्र-वध के लिए उत्साहवर्द्धन करता है ॥ ४ ॥ वह लोहित वर्ण वाला, श्रेष्ठ दर्शन और देव-विमुखों द्वारा अवध्य है। श्येन उसे अपने पन्जे में रखकर ले आये। हे इन्द्र ! इस सोम को रस, प्राण और परमायु प्रदान करो और सोम के निमित्त हमसे भी मित्रता स्थापित करो ॥ ५ ॥ जब इन्द्र सोम-पान कर लेते हैं, तब वे हमारी भले प्रकार रक्षा करते हैं। हे श्रेष्ठकर्मा इन्द्र ! हमें यज्ञ के लिए अन्न और आयु प्रदान करो। यह सोम यज्ञानुष्ठान के निमित्त ही निष्पन्न किया गया है ॥ ६ ॥ [२]

१४५ सूक्त

(ऋषि-इन्द्राणी । देवता—उपनिषत्सपत्नीबाधनम् । छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः ।)

इमां खनाम्योषधिं वीरुधं बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ॥
उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।

सपत्नीं मे परा धम पतिं मे केवलं कुरु ॥ २

उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।

अथा सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ॥ ३

नह्यस्या नाम गृभ्णामि नो अस्मिन्रमते जने ।

परामेव परावतं सपत्नीं गमयामसि ॥ ४

अहमस्मि सहमानाथ त्वमसि सासहिः ।

उभे सहस्वती भूत्वी सपत्नीं मे सहावहै ॥ ५

उप तेऽधां सहमानामभि त्वाधां सहीयसा ।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ६ । ३

मैं उस अत्यन्त गुणवती, लताह्लपिणी औषधि को खोदता हूँ। इसके द्वारा सपत्नी को क्लेश दिया जाता है और पति को आकर्षित किया जाता है ॥ १ ॥ हे औषधि! तुम्हारे पत्तों का मुख ऊँचा है। तुम पति का प्रेम प्राप्त करने में कारण रूप हो। तुम्हें देवताओं ने ही इस योग्य बनाया है। तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है। तुम मेरी सपत्नी (सौत) को यहाँ से दूर करो और मेरे पति को मेरे वश में रहने वाला करो ॥ २ ॥ हे औषधि तुम सर्वश्रेष्ठ हो। मैं भी तुम्हारी कृपा से श्रेष्ठों में श्रेष्ठ होऊँ। मेरी सपत्नी निकृष्ट से निकृष्ट हो जाय ॥ ३ ॥ सपत्नी किसी के लिए प्रिय नहीं होती, इसलिए मैं अपनी सपत्नी का नाम तक नहीं लेती। मैं उसे दूर से भी दूर भेज देना चाहती हूँ ॥ ४ ॥ हे औषधि! तुम अद्भुत शक्ति वाली हो। मेरा सामर्थ्य भी अद्भुत है। तुम मेरे पास आगमन करो तब हम और तुम दोनों अपने सम्मिलित प्रयत्न से सपत्नी को निर्बल करें ॥ ५ ॥ हे स्वामिन्! यह महान् शक्ति वाली औषधि मेरे द्वारा तुम्हारे सिरहाने स्थापित की गई है। मैंने शक्तिशाली तकिया तुम्हारे सिरहाने को रखा है। जैसे गौ बछड़े की ओर आती है और जल नीचे की ओर गमन करता है, वैसे ही तुम्हारा मन मेरी ओर गमनशील हो ॥ ६ ॥ [३]

१४६ सूक्त

(ऋषि—देवमुनिरैरम्मदः । देवता-अरण्यानी । छन्द-अनुष्टुप् ।)

अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि ।
कथा ग्रामं न पृच्छसि न त्वा भीरिव विन्दती ॥१

वृषारवाय वदते यदुपावति चिच्चिकः ।
आघाटिभिरिव धावयन्नरण्यानिर्महीयते ॥२

उत गावइवादन्त्युत वेश्मेव दृश्यते ।
उतो अरण्यानिः सायं शकटीरिव सर्जति ॥ ३

गामङ्गैष आ ह्वयति दार्वङ्गैषो अपावधीत् ।
वसन्नरण्यान्यां सायमक्रुक्षदिति मन्यते ॥ ४

न वा अरण्यानिर्हन्त्यन्यश्चेन्नाभिगच्छति ।
स्वादोः फलस्य-जग्ध्वाय यथाकामं नि पद्यते ॥ ५

आञ्जनगन्धि सुरभि बह्वन्नामकृषीवलाम् ।
प्राहं मृगाणां मातरमरण्यानिमशंसिषम् ॥६ । ४

हे अरण्यानी ! तुम देखते-देखते ही दृष्टि से ओझल हो जाते हो। तुम गाँव के मार्ग पर क्यों नहीं जाते ? क्या तुम एकाकी रहने में भयभीत नहीं होते ? ॥ १ ॥ कोई जन्तु बैल के समान शब्द करता और कोई 'चीं' करता हुआ ही उसका उत्तर-सा देता है, उस समय लगता है कि वे वीणा के प्रत्येक स्वर को निकालते हुए अरण्यानी का यश-गान करते हैं ॥ २ ॥ इस जङ्गल में कहीं गौएँ चरती हुई जान पड़ती हैं और कहीं लता गुल्म आदि से निर्मित कुटीर दिखाई पड़ती है। ऐसा भी लगता है कि सायंकाल में वनमार्ग से अनेक शकट निकल रहे हों ॥ ३ ॥ अरण्यानी में निवास करने वाला व्यक्ति रात्रि में शब्द सुनता है। एक पुरुष गौ को बुलाता है और दूसरा पुरुष वृक्ष से काष्ठ को काटता है ॥ ४ ॥ कस्तूरी के समान ही अरण्यानी सौरभमय हैं। वह अन्न से परिपूर्ण है। पहले वहाँ कृषि का अभाव था। वह हरिणों की

आश्रयदात्री है। मैं इस प्रकार उस सुहद् अरण्यानी की स्तुति करता हूँ ॥ ६ ॥ [४]

१४७ सूक्त

(ऋषि—सुवेदाः शैरीषिः । देवता—इन्द्रः । छन्द—जगती, त्रिष्टुप् ।)

श्रत्ते दधामि प्रथमाय मन्यवेऽहन्यद्वृत्रं नर्यं विवेरपः ।
उभे यत्त्वा भवतो रोदसी अनु रेजते शुष्मात्पृथिवी चिदद्रिवः ॥१
त्वं मायाभिरनवद्य मायिनं श्रवस्यता मनसा वृत्रमर्दयः ।
त्वामिन्नरो वृणते गविष्टिषु त्वां विश्वासु हव्यास्विष्टिषु ॥ २
एषु चाकन्धि पुरुहूत सूरिषु वृधासो ये मघवन्नानशुर्मघम् ।
अर्चन्ति तोके तनये परिष्टिषु मेधसाता वाजिनमह्रये धने ॥ ३
स इन्नु रायः सुभृतस्य चाकनन्मदं यो अस्य रंह्यं चिकेतति ।
त्वावृधो मघवन्दाश्वध्वरो मक्षू स वाजं भरते धना नृभिः ॥ ४
त्वं शर्धाय महिना गृणान उरु कृधि मघवञ्छग्धि रायः ।
त्वं नो मित्रो वरुणो न मायी पित्वो न दस्म दयसे विभक्ता ॥ ५ । ५

हे इन्द्र ! तुम्हारा क्रोध अत्यन्त भीषण होता है। तुमने वृत्र का संहार कर विश्व का मंगल करने के लिए वृष्टि-मार्ग की रचना की। यह आकाश-पृथिवी तुम्हारी आश्रिता हैं। हे वज्रिन् ! यह पृथिवी तुम्हारे भय से कम्पित होती है ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम प्रशंसा के पात्र हो। अन्न का उत्पादन कल्पित करके तुमने अपनी महिमा से मायावी वृत्र को संकटग्रस्त किया। गौ की कामना करने वाले उपासक तुमसे याचना करते हैं। सभी यज्ञों में आहुति के समय स्तोतागण तुम्हारी स्तुति करते हैं ॥ २ ॥ हे पुरुहूत इन्द्र ! तुम अत्यन्त ऐश्वर्यवान हो। अतः इन मेधावी स्तोताओं के समक्ष प्रकट होने की कृपा करो। यह तुम्हारे अनुग्रह से ही समृद्धशाली और बलवान हुए हैं। पुत्र-पौत्रों और विभिन्न इच्छित सम्पत्तियों और ऐश्वर्यों की प्राप्ति के निमित्त यह यज्ञानुष्ठान का आरम्भ कर अत्यन्त पराक्रमी इन्द्र का पूजन करते हैं ॥ ३ ॥ जो उपासक सोम-पान से उत्पन्न हर्ष इन्द्र को देना जानता है, वह अपने अभीष्ट धन को

याचना करता है। हे बलवान इन्द्र ! तुम जिस यज्ञ-दान वाले पुरुष को समृद्ध करना चाहते हो, वह उपासक पुरुष शीघ्र ही अन्न, धन और भृत्यादि से युक्त होता है ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! वल की प्राप्ति के निमित्त विशेष प्रकार से तुम्हारा स्तोत्र करते हैं। तुम हमें अत्यन्त धन और वल प्रदान करो। तुम रमणीय दर्शन वाले और मित्रावरुण के समान दिव्य ज्ञान के अधीश्वर हो। संसार के सभी दिव्य और भौतिक ऐश्वर्य को तुम ही हमारे लिए बाँटते हो ॥ ५ ॥ [५]

१४८ सूक्त

(ऋषि–पृथुर्वैन्यः । देवता—इन्द्रः । छन्द–त्रिष्टुप् ।)

सुष्वाणास इन्द्र स्तुमसि त्वा ससवांसश्च तुविनृम्ण वाजम् ।
आ नो भर सुवितं यस्य चाकन्त्मना तना सनुयाम त्वोताः ॥ १
ऋष्वस्त्वमिन्द्र शूर जातो दासीर्विशः सूर्येण सह्याः ।
गुहा हितं गुह्यं गूळ्हमप्सु बिभृमसि प्रस्रवणे न सोमम् ॥ २
अर्यो वा गिरो अभ्यर्च विद्वानृषीणां विप्रः सुमतिं चकानः ।
ते स्याम ये रणयन्त सोमैरेनोत तुभ्यं रथोळ्ह भक्षैः ॥ ३
इमा ब्रह्मेन्द्र तुभ्यं शंसि दा नृभ्यो नृणां शूर शवः ।
तेभिर्भव सक्रतुर्येषु चाकन्नुत त्रायस्व गृणत उत स्तीन् ॥ ४
श्रुधी हवमिन्द्र शूर पृथ्या उत स्तवसे वेन्यस्यार्कैः ।
आ यस्ते योनिं घृतवन्तमस्वारूर्मिर्न निम्नैर्द्रवयन्त वक्वाः ॥ ५ । ६

हे ऐश्वर्यवान् इन्द्र ! हम अन्न एकत्र कर और सोम का निष्पादन कर तुम जिस स्तुति की कामना करते हो, उसे तुम्हारे निमित्त करेंगे। जो ऐश्वर्य तुम्हारे मनोनुकूल है उसे तुम हमें बहुसंख्यक रूप में प्रदान करने वाले होओ। हे इन्द्र ! हम तुम्हारे आश्रय को प्राप्त होकर अपने उद्योग द्वारा ही सम्पत्ति-सम्पन्न हो जाँयगे ॥ १ ॥ हे इन्द्र ! तुम श्रेष्ठ दर्शन वाले और वीर कर्मा हो। तुम उत्पन्न होते ही सूर्य के तेज द्वारा दस्युओं को दूर करते हो। जो शत्रु गुफा में छिप जाता है अथवा जल में वास करता है, उसे भी पराभूत

करने में तुम समर्थ हो। जब वर्षा होती तब हम सोमाभिषव करेंगे ॥ २ ॥ हे इन्द्र ! तुम सब प्राणियों के स्वामी हो। तुम मेधावी जनों के स्तोत्र प्राप्त करने की सदा अभिलाषा करते हो। तुम हमारी स्तुतियों से सहमति प्रकट करो। सोमाभिषव करके उसके द्वारा हमने तुम्हारी जो प्रीति प्राप्ति की है, उसके द्वारा ही हम तुम्हारे आत्मीय बनें। हे इन्द्र ! जब तुम रथारूढ़ होकर आगमन करो, तब हम तुम्हें यह हविरन्न अर्पित करते हैं ॥ ३ ॥ हे इन्द्र ! यह सब स्तोत्र प्रमुख हैं। यह तुम्हारे लिए ही उच्चारित किये गये हैं। तुम मुख्य से भी मुख्य पुरुषों को धन्न प्रदान करो। तुम्हारे प्रीति-पात्र उपासक तुम्हारे निमित्त ही यज्ञानुष्ठान करते हैं। तुम हमारे संचित स्तोत्रों की भले प्रकार रक्षा करो ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! मैं पृथु तुम्हारा आह्वान करता हूँ। तुम मेरे स्तोत्र को श्रवण करो। मैं अपने सुन्दर स्तोत्र द्वारा तुम्हारी स्तुति कर रहा हूँ। हे इन्द्र ! पृथु वेनपुत्र ने इस घृतादि सामग्री वाले यज्ञानुष्ठान में उपस्थित होकर तुम्हारा स्तोत्र किया है। जैसे नदी का प्रवाह निम्नगामी होता है, वैसे ही अन्य सभी स्तोता तुम्हारे समक्ष झुक रहे हैं ॥ ५ ॥ [६]

१४९ सूक्त

(ऋषि—अर्चन्हैरण्यस्तूपः । देवता-सविता । छन्द-त्रिष्टुप् ।)

सविता यन्त्रैः पृथिवीमरम्णादस्कम्भने सविता द्यामदृंहत् ।
अश्वमिवाधुक्षद्धुनिमन्तरिक्षमतूर्ते बद्धं सविता समुद्रम् ॥१
यत्रा समुद्रः स्कभितो व्यौनदपां नपात्सविता तस्य वेद ।
अतो भूरत आ उत्थितं रजोऽतो द्यावापृथिवी अप्रथेताम् ॥ २
पश्चेदमन्यदभवद्यजत्रममर्त्यस्य भुवनस्य भूना ।
सुपर्णो अङ्ग सवितुर्गरुत्मान्पूर्वो जातः स उ अस्यानु धर्म ॥ ३
गावइव ग्रामं यूयुधिरिवाश्वान्वाश्रेव वत्सं सुमना दुहाना ।
पतिरिव जायामभि नो न्येतु धर्ता दिवः सविता विश्ववारः ॥४
हिरण्यस्तूपः सवितर्यथा त्वाङ्गिरसो जुह्वे वाजे अस्मिन् ।
एवा त्वार्चन्नवसे वन्दमानः सोमस्येवांशुं प्रति जागराहम् ॥ ५

सविता देवता ने अपने विभिन्न कर्मों द्वारा पृथिवी को स्थिर किया
उन्होंने सहारे के बिना आकाश को दृढ़ता से अधर में स्थापित किया है।
आकाश में समुद्र के समान दुधर्ष जल भी निवास करता है। कम्पित
से समान यह मेघ राशि भी अपना शरीर भड़काती है। इसका स्थान
द्रव रहित है। सवितादेव इसीसे जल निकालते हैं ॥ १ ॥ जिस अन्तरिक्ष
निवास करने वाले मेघ पृथिवी को भिगो देते हैं। उस अन्तरिक्ष को जल के
त्र सवितादेव जानते हैं। उन्हीं सवितादेवा ने पृथिवी, अन्तरिक्ष और
द्यावापृथिवी को भी विस्तृत किया है ॥ २ ॥ स्वर्ग लोक में उत्पन्न हुए अवि-
नाशी सोम के द्वारा जिन देवताओं का यज्ञ किया जाता है, वे देवता सविता
के पश्चात् ही उत्पन्न हुए हैं। शोभामय पंख वाले गरुड़ ने सवितादेव से
प्रथम जन्म लिया था। उन्हीं सविता देव की धारण क्रिया के आश्रय में वे
रहते हैं ॥ ३ ॥ सबकी प्रार्थना के योग्य सवितादेव स्वर्ग को धारण करने
वाले हैं। जैसे गौ ग्राम की ओर जाने को उत्सुक होती है, वैसे ही सविता
हमारे पास आगमन करने में उत्सुक होते हैं। जैसे प्रसूता धेनु दूध पिलाने
के अभिप्राय से बछड़े की ओर जाती है, जैसे वीर अश्व की ओर गमन करता
है, वैसे ही सविता भी याज्ञिकों की ओर गमन करते हैं ॥ ४ ॥ हे सविता-
देव ! अङ्गिरा वंशज मेरे पिता ने जिस प्रकार अपने यज्ञ में तुम्हारा आह्वान
किया था, उसी प्रकार मैं भी तुम्हारी शरण प्राप्ति के लिए प्रार्थना करता हुआ
परिचर्या करता हूँ। जैसे यजमान सोम को निष्पन्न करने में उत्साहित होता
है, वैसे ही मैं भी तुम्हारे कर्म में उत्साहित हूँ ॥ ५ ॥ [७]

१५० सूक्त

(ऋषि–मृलीको वासिष्ठः। देवता–अग्नि। छन्द–बृहती, जगती।)

समिद्धश्चित्समिध्यसे देवेभ्यो हव्यवाहन।
आदित्यै रुद्रैर्वसुभिर्न आ गहि मृळीकाय न आ गहि ॥ १
इमं यज्ञमिदं वचो जुजुषाण उपागहि।
मर्त्तासस्त्वा समिधान हवामहे मृळीकाय हवामहे ॥ २

त्वामु जातवेदसं विश्ववारं गृणे धिया ।
अग्ने देवाँ आ वह नः प्रियव्रतान्मृळीकाय प्रियव्रतान् ॥ ३
अग्निर्देवो देवानामभवत्पुरोहितोऽग्निं मनुष्या ऋषयः समीधिरे ।
अग्निं महो धनसातावहं हुवे मृळीकं धनसातये ॥ ४
अग्निरत्रिं भरद्वाजं गविष्ठिरं प्रावन्नः कण्वं त्रसदस्युमाहवे ।
अग्निं वसिष्ठो हवते पुरोहितो मृळीकाय पुरोहितः ॥ ५ । ८

हे अग्ने ! तुम देवताओं के निमित्त हव्य वहन करते हो। तुम प्रज्वलित और प्रदीप्त हुए हो। तुम हमारे इस यज्ञानुष्ठान में आदित्यगण, वसुगण और रुद्रगण के सहित आगमन करो कल्याण उपस्थित करो ॥ १ ॥ हे अग्ने ! यह यज्ञ-भूमि है, यह स्तोत्र है। तुम यहाँ आकर इनका अनुमोदन करो। तुम प्रदीप्त हो गये हो। हम अपने कल्याण के निमित्त तुम्हारा आह्वान करते हैं ॥ २ ॥ हे अग्ने तुम मेधावी हो। सभी तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। मैं श्रेष्ठ स्तोत्रों द्वारा तुम्हारी स्तुति करता हूँ। जो देवता सदा मङ्गलमय कार्यों को ही करते हैं, उन्हें साथ लेकर हमारे यज्ञ में आगमन करो ॥ ३ ॥ अग्नि ही देवताओं के पुरोहित हैं। सब मनुष्यों और मेधावी ऋषियों ने अग्नि को प्रदीप्त किया है। महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति के निमित्त मैं अग्नि का आह्वान करता हूँ। वे अग्नि मेरा कल्याण करें ॥ ४ ॥ इन अग्नि ने संग्राम उपस्थित होने पर भरद्वाज, अत्रि, कण्व, त्रसदस्यु और गविष्ठिर की भले प्रकार रक्षा की थी। पुरोहित वसिष्ठ उन्हीं अग्निदेव का आह्वान करते हैं। वे मेरा कल्याण करें ॥ ५ ॥　　[८]

१५१ सूक्त

(ऋषि—श्रद्धा कामायनी । देवता—श्रद्धा । छन्द—अनुष्टुप्)

श्रद्धयाग्निः समिध्यते श्रद्धया हूयते हविः ।
श्रद्धां भगस्य मूर्धनि वचसा वेदयामसि ॥१
प्रियं श्रद्धे ददतः प्रियं श्रद्धे दिदासतः ।

प्रियं भोजेषु यज्वस्विदं म उदितं कृधि ॥२
यथा देवा असुरेषु श्रद्धामुग्रेषु चक्रिरे ।
एवं भोजेषु यज्वस्वस्माकमुदितं कृधि ॥ ३
श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।
श्रद्धां हृदय्य याकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ॥४
श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥ ५ । ६

श्रद्धा के बिना अग्नि प्रदीप्त नहीं होते । जिस यज्ञीय पदार्थ का किया जाता है, वह भी श्रद्धा से ही सुफल होता है । सम्पत्ति के मस्तक श्रद्धा ही निवास करती है । यह सब बातें यथार्थ ही हैं ॥ १ ॥ हे श्रद्धे दानशील को अभीष्ट फल प्रदान करो । जो दान करने की इच्छा करता है (परन्तु धनाभाव से दान नहीं कर पाता) उसे भी इच्छित फल का भागी बनाओ । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल दान करो ॥२ इन्द्रादि देवताओं ने भीषणकर्मा राक्षसों के प्रति संहार कर्म का निश्चय किया । हे श्रद्धे ! इन याज्ञिकों और यजमानों को अभीष्ट फल प्रदान करो ॥३ वायु को अपने रक्षक रूप में प्राप्त करने वाले देवता और मनुष्य श्रद्धा की आराधना करते है । मन में जब कोई निश्चय उठता है, तब उपासकगण श्रद्धा का ही आश्रय लेते हैं । श्रद्धा की अनुकूलता से ही वैभव की प्राप्ति होती है ॥ ४ ॥ प्रातःकाल, मध्यान्ह और सायंकाल में हम श्रद्धा का ही आह्वान करते हैं । हे श्रद्धे ! हम आराधकों को तुम अपनी महिमा से परिपूर्ण करो ॥ ५ ॥

१५२ सूक्त (बारहवाँ अनुवाक)

(ऋषि—शासो भारद्वाजः । देवता—इन्द्रः । छन्द—अनुष्टुप् ।)

शास इत्था महाँ अस्यमित्रखादो अद्भुतः ।
न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदा चन ॥ १
स्वस्तिदा विशस्पतिर्वृत्रहा विमृधो वशी ।

न्द्रः पुर एतु नः सोमपा अभयङ्करः ॥२
रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज ।
मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः ॥ ३
न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः ॥४
न्द्र द्विषतो मनोऽप जिज्यासतो वधम् ।
मन्योः शर्म यच्छ वरीयो यवया वधम् ॥ ५ । १०

हे इन्द्र ! जो तुम्हारा मित्र हो जाता है, उसका पराभव या मृत्यु
 होती, क्योंकि तुम विचित्र कर्म वाले, शत्रुओं के नाशक और महान् हो ।
(स, स्तोत्र द्वारा उन्हीं इन्द्र की स्तुति करता हूँ ॥ १ ॥ प्रजाओं के अधि-
 इन्द्र वृत्र का संहार करने वाले, संग्राम करने वाले, शत्रु को अभिभूत
ने में समर्थ, कामनाओं के वर्षक मङ्गलप्रद, अभय प्रदान करने वाले सोम-
 करने वाले हैं । ऐसे इन्द्र हमारे अभिमुख पधारें ॥ २ ॥ हे इन्द्र !
 वृत्र के नाशक हो । इन दैत्यों और शत्रुओं का संहार करो । वृत्र के
ों जबड़ों को छिन्न करो और उसके क्रोध को व्यर्थ कर दो ॥ ३ ॥ हे
द्र ! हमारे शत्रुओं को मारो । युद्ध की इच्छा करने वाले विरोधियों के बल
 क्षीण करो । जो हमें नीचे गिराना चाहता है, उसे घोर अन्धकार में पतित
 ॥ ४ ॥ हे इन्द्र ! शत्रुओं की बुद्धि का नाश करो । जो हमें क्षीण
ने की इच्छा करता है, उसे मारने के लिए अपने आयुध को चलाओ ।
 हमें शत्रु के क्रोध से बचाकर श्रेष्ठ कल्याण दो और शत्रु के भीषण अस्त्र
 काट डालो ॥ ५ ॥   [१०]

१५३ सूक्त

(ऋषि-इन्द्रमातरो देवजामयः । देवता-इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

ईङ्खयन्तीरपस्युव इन्द्रं जातमुपासते । भेजानासः सुवीर्यम् ॥ १
त्वमिन्द्र बलादधि सहसो जात ओजसः । त्वं वृषन्वृषेदसि ॥ २
त्वमिन्द्रासि वृत्रहा व्यन्तरिक्षमतिरः । उद् द्यामस्तभ्ना ओ...

कोई पितर घृत-सेवन करते हैं और कोई अभिषुत सोम रस का पान करते हैं। जिन पितरों के लिए मधुर रस का स्रोत प्रवाहित है, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ॥ १ ॥ तप के बल से जो दुर्धर्ष हुए हैं, तप के बल से जो स्वर्ग में पहुँचे हैं और जिन्होंने घोर तप किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास ही गमन करो ॥ २ ॥ जो संग्राम भूमि में संग्राम करते हैं, जिन्होंने अपने देह के मोह को त्याग दिया है अथवा जिन्होंने मधुर दक्षिणा दी है, हे प्रेत ! तुम उनके पास गमन करो ॥ ३ ॥ जो प्राचीनकालीन पुरुष पुण्य-कर्मों द्वारा फल के अधिकारी हुए हैं, जो पुण्य के स्रोत को विस्तृत कर चुके हैं और जिन्होंने तपस्या का फल संचय किया है, हे प्रेत ! तुम उनके पास गमन करो ॥ ४ ॥ जिन मेधावी जनों ने सहस्रों कर्मों की विधि निश्चित की है और जो सूर्य की सदा रक्षा करते हैं, जिन्होंने तप के प्रभाव से उत्पन्न होकर तप किया है, हे यम ! यह प्रेत उन्हीं पितरों के पास निवास करे ॥ ५ ॥ [१२]

१५५ सूक्त

(ऋषि—शिरिम्बिठो भारद्वाजः । देवता—अलक्ष्मीघ्नम्, ब्रह्मणस्पति, विश्वेदेवाः । छन्द—अनुष्टुप् ।)

अरायि काणे विकटे गिरिं गच्छ सदान्वे ।
शिरिम्बिठस्य सत्वभिस्तेभिष्ट्वा चातयामसि ॥ १
चत्तो इतश्चत्तामुतः सर्वा भ्रूणान्यारुषी ।
अराय्यं ब्रह्मणस्पते तीक्ष्णशृङ्गोदृषन्निहि ॥ २
अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः पारे अपूरुषम् ।
तदा रभस्व दुर्हणो तेन गच्छ परस्तरम् ॥ ३
यद्ध प्राचीरजगन्तोरो मण्डूरधाणिकीः ।
हता इन्द्रस्य शत्रवः सर्वे बुद्बुदयाशवः ॥ ४
परीमे गामनेषत पर्यग्निमहृषत ।
देवेष्वक्रत श्रवः क इमाँ आ दधर्षति ॥ ५ । १३

हे अलक्ष्मी ! तुम सदा दान से विमुख रहती है। तुम्हारी आकृति विकराल है, तुम क्रोध पूर्वक कुत्सित शब्द किया करती हो। तुम इस पर्वत पर आगमन करो। मैं शिरिम्बिठ तुम्हें जन-सम्पर्क से दूर रहने के लिए दृढ़ उपाय करता हूँ ॥ १ ॥ यह अलक्ष्मी वृक्ष, लता और अन्न आदि नष्ट करने वाली हैं। यही दुर्भिक्ष को उपस्थित करती हैं। मैं उस अलक्ष्मी को इस लोक से और उस लोक से भी दूर भगाता हूँ। हे ब्रह्मणस्पते ! तुम्हारा तेज अत्यन्त तीक्ष्ण है। दान का विरोध करने वाली इस दुष्कर्मा अलक्ष्मी को तुम यहाँ से दूर भगाओ ॥ २ ॥ समुद्र के किनारे निकट यह जो काष्ठ बह रहा है, उसका स्वामी कोई नहीं है। हे अलक्ष्मी ! तुम्हारी आकृति भयङ्कर है, तुम उस पर चढ़कर समुद्र के उस पार चली जाओ ॥ ३ ॥ हे अलक्ष्मियो ! तुम हिंसामयी और कुत्सित शब्द करने वाली हो। जब तुम जाने में तत्पर होकर यहाँ से चली गईं, तब इन्द्र के सभी शत्रु जल में उठ कर मिटने वाले बुलबुलों के समान ही अदृश्य हो गये ॥ ४ ॥ इन्होंने गौओं को मुक्त किया, इन्हीं ने अग्नि की अनेक स्थानों में स्थापना की। इन्हीं ने देवताओं को हवि रूप अन्न प्रदान किया। फिर इन इन्द्र पर आक्रमण करने में कौन समर्थ होगा ? ॥ ५ ॥ [१३]

१५६ सूक्त

(ऋषि—केतुराग्नेयः। देवता—अग्निः। छन्द—गायत्री।)

अग्निं हिन्वन्तु नो धियः सप्तिमाशुमिवाजिषु। तेन जेष्म धनन्धनम् ॥१
यया गा आकरामहे सेनयाग्ने तवोत्या। तां नो हिन्व मघत्तये ॥२
आग्ने स्थूरं रयिं भर पृथुं गोमन्तमश्विनम्। अङ्ग्धि खं वर्तया पणिम् ॥३
अग्ने नक्षत्रमजरमा सूर्यं रोहयो दिवि। दधज्ज्योतिर्जनेभ्यः ॥४
अग्ने केतुर्विशामसि प्रेष्ठः श्रेष्ठ उपस्थसत्। बोधा स्तोत्रे वयो दधत् ॥५

द्रुतगामी अश्व जैसे घुड़दौड़ के स्थान में दौड़ाये जाते हैं, वैसे ही अग्नि को हमारे स्तोतागण दौड़ा रहे हैं। उन अग्नि की अनुकूलता को प्राप्त हुए हम यजमान सब धनों पर विजय प्राप्त करने वाले हों ॥ १ ॥ हे अग्ने !

कृपा से जैसे हम गौओं को प्राप्त करते हैं, वैसे ही तुम सेना के सहायता देने वाले अपने रक्षण-साधनों को हमें प्राप्त कराओ। तुम्हारी से हम धन प्राप्त करने वाले हों ॥ २ ॥ हे अग्ने! तुम असंख्य गौओं और के सहित प्रचुर धन हमें प्रदान करो। अन्तरिक्ष से वृष्टि जल का सिंचन और वाणिज्य कर्म को प्रशस्त करो ॥ ३ ॥ हे अग्ने! जो सूर्य जरा हैं, जो सब लोकों को प्रकाश से परिपूर्ण करते हैं और जो सदा गमन रहते हैं, उन सूर्य को तुम्हीं ने अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित किया है ॥ ४ ॥ अग्ने! तुम प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हो, तुम सब देवताओं में श्रेष्ठ हो, सभी से प्रीति करते हो। तुम हमारी यज्ञ वेदी में विराजमान होकर री स्तुति सुनो और अन्न लेकर आओ ॥५॥ [१४]

१५७ सूक्त

(ऋषिः—भुवन आप्त्यः, साधनो वा भौवनः। देवता-विश्वेदेवा। छन्द-त्रिष्टुप्)

इमा नु कं भुवना सीषधामेन्द्रश्च विश्वे च देवाः ॥१
यज्ञं च नस्तन्वं च प्रजां चादित्यैरिन्द्रः सह चीक्लृपाति ॥२
आदित्यैरिन्द्रः सगणो मरुद्भिरस्माकं भूत्वविता तनूनाम् ॥३
हत्वाय देवा असुरान्यदायन्देवा देवत्वमभिरक्षमाणाः ॥४
प्रत्यञ्चमर्कमनयञ्छचीभिरादित्स्वधामिषिरां पर्यपश्यन् ॥५॥१५

संसार के सभी प्राणी हमें सुख प्रदान करें और इन्द्रादि सभी समर्थ देवता हमारे लिए कल्याण को उपस्थित करने वाले हों ॥१॥ इन्द्र तथा आदित्यगण हमारे यज्ञ को निर्विघ्न सम्पूर्ण करें। वे हमारी देह को आरोग्यता प्रदान करें और हमारे पुत्र-पौत्रादि को भी व्याधि से बचावें ॥२॥ आदित्यगण और मरुद्गण को सहायक बनाकर इन्द्र हमारे शरीर की रक्षा करें ॥ ३ ॥ जब देवगण वृत्रादि राक्षसों को मार कर आये उस समय उनका अमृतत्व सुरक्षित हुआ ॥४॥ विभिन्न प्रकार वाली स्तुतियाँ देवताओं के निकट गईं। फिर अन्तरिक्ष से जल-वृष्टि होती दिखाई पड़ी ॥५॥

मैं तुम्हें लौटा लाया। तुम यहाँ पुनः नवीन होकर आए हो। मैंने
सभी अङ्गों, नेत्रों और परम आयु को भी पा लिया है ॥५॥ [१९]

१६२ सूक्त

ऋषि—रक्षोहा ब्राह्मः। देवता—गर्भसंस्रावे प्रायश्चित्तम्। छन्द—अनुष्टुप

ब्रह्मणाग्निः संविदानो रक्षोहा बाधतामितः।
अमीवा यस्ते गर्भं दुर्णामा योनिमाशये ॥१
यस्ते गर्भममीवा दुर्णामा योनिमाशये।
अग्निष्टं ब्रह्मणा सह निष्क्रव्यादमनीनशत् ॥२
यस्ते हन्ति पतयन्तं निषत्स्नुं यः सरीसृपम्।
जातं यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥३
यस्त ऊरु विहरत्यन्तरा दम्पती शये।
योनिं यो अन्तरारेळिह तमितो नाशयामसि ॥४
यस्त्वा भ्राता पतिर्भूत्वा जारो भूत्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥५
यस्त्वा स्वप्नेन तमसा मोहयित्वा निपद्यते।
प्रजां यस्ते जिघांसति तमितो नाशयामसि ॥६॥२०

अग्नि राक्षसों का संहार करने वाले हैं। वे हमारे स्तोत्र से सहमत होकर समस्त विघ्नों को दूर करें। वह हमारे सब उपद्रवों को शान्त करें। हे नारी! जिन उपद्रवों से तुम रोगिणी बनी हो, उन सब उपद्रवों को अग्नि देव दूर कर दें ॥१॥ हे नारी! जिन पिशाचों, राक्षसों, रोग-व्याधियों ने तुम्हारे देह को आक्रान्त किया है, उन सबको, राक्षसों का नाश करने वाले अग्निदेव हमारे स्तोत्र से सहमत होकर नष्ट कर डालें ॥२॥ हे नारी! जो रोग रूप पिशाच तुम्हारे गर्भ को नष्ट करता है अथवा नष्ट करना चाहता है, उसे हम तेरे शरीर से दूर भगाते हैं ॥३॥ जो रोग तुम्हें निश्चेष्ट कर तुम्हारे ... को खींच लेता है उसे हे नारी! हम तुम्हारी देह से दूर करते हैं।

हे नारी ! जो रोग तुम्हें अनजाने में अथवा भूल से प्राप्त हुआ है और जो तुम्हारी सन्तान का नाश करने को तत्पर है, उस रोग को तेरे शरीर से निकालते हैं ॥५॥ हे नारी ! जो व्याधि तुम्हें दुःस्वप्न देखने से अथवा अधिक आलस्य रूप निद्रा के द्वारा प्राप्त होगई है और वह तुम्हारे गर्भस्थ शिशु को नष्ट कर देने को तत्पर है, उसे हम तुम्हारे शरीर से दूर करते हैं ॥६॥ [२०]

१६३ सूक्त

(ऋषि—विवृहा काश्यपः । देवता—यक्ष्मघ्नम् । छन्द—अनुष्टुप्)

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कर्णाभ्यां छुबुकादधि ।
यक्ष्मं शीर्षण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया वि वृहामि ते ॥१
ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात् ।
यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते ॥२
आन्त्रेभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठोर्हृदयादधि ।
यक्ष्मं मतस्नाभ्यां यक्नः प्लाशिभ्यो वि वृहामि ते ॥३
ऊरुभ्यां ते अष्ठीवद्भ्यां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम् ।
यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंसंसो वि वृहामि ते ॥४
मेहनाद्वनंकरणाल्लोमभ्यस्ते. नखेभ्यः ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि ते ॥५
अङ्गादङ्गाल्लोम्नोलोम्नो जातं पर्वणिपर्वणि ।
यक्ष्मं सर्वस्मादात्मनस्तमिदं वि वृहामि त ॥६॥२१

हे रोगिन् ! तुम्हारे दोनों कान, दोनों नेत्र, दोनों नथुने, शिर, मस्तिष्क, जिह्वा और ठोडी आदि से यक्ष्मा रोग को बाहर निकालता हूँ ॥१॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे कंठ की धमनियों, हड्डियों की संधि, दोनों बाहुओं, दोनों कंधों और स्नायु आदि में प्राप्त हुए रोग को बाहर करता हूँ ॥२॥ हे रोगिन् ! तुम्हारी बड़ नाड़ी, क्षुद्र नाड़ी, हृदय, मूत्राशय, वृक्क, यकृत तथा अन्य विभिन्न अवयवों में प्राप्त तुम्हारे रोग को निकालता हूँ ॥३॥ हे रोगिन् !

तुम्हारी जंघाओं, गुल्मों, पाँवों, कटि देश आदि से समस्त व्याधि को दूर करता हूँ ॥४॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे लोम, नख आदि शरीर के सभी उपांगों से रोग को निकालता हूँ ॥५॥ हे रोगिन् ! तुम्हारे शरीर के प्रत्येक संधि-स्थान, लोम आदि सर्वाङ्ग में, जहाँ कहीं भी रोग की उत्पत्ति हुई हो, वहीं से रोग को निकालता हूँ ॥६॥ [२१]

१६४ सूक्त

(ऋषि-प्रचेताः । देवता-दुःस्वप्नघ्नम् । छन्द-अनुष्टुप, त्रिष्टुप, पंक्तिः)

अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आ चक्ष्व बहुधा जीवतो मनः ॥१
भद्रं वै वरं वृणते भद्रं युजन्ति दक्षिणम् ।
भद्रं वैवस्वते चक्षुर्बहुत्रा जीवतो मनः ॥२
यदाशसा निःशसाभिशसोपारिम जाग्रतो यत्स्वपन्तः ।
अग्निर्विश्वान्यप दुष्कृतान्यजुष्टान्यारे अस्मद्दधातु ॥३
यदिन्द्र ब्रह्मणस्पतेऽभिद्रोहं चरामसि ।
प्रचेता न आङ्गिरसो द्विषतां पात्वंहसः ॥४
अजैष्माद्यासनाम चाभूमानागसो वयम् ।
जाग्रत्स्वप्नः सङ्कल्पः पापो यं द्विष्मस्तं स ऋच्छतु
यो नो द्वेष्टि तमृच्छतु ॥५॥२२

हे दुःस्वप्न ! तुमने हमारे मन पर अधिकार किया है, तुम अब यहाँ से दूर भागो और वहीं विचरण करो । हमसे बहुत दूर जो निर्ऋति देवता विराजमान हैं, उनसे हम पर कृपा करने को कहो । क्योंकि मनुष्य के अभीष्ट विस्तृत होते हैं और वे अभीष्टों को विफल करने वाली हैं ॥१॥ प्राणवान मनुष्य विस्तृत कामनाओं वाले होते हैं । वे श्रेष्ठ अभीष्ट सम्पत्ति की कामना करते हैं । वे श्रेष्ठ फल प्राप्त करने की आशा में सदा रहते हैं । यमराज उन्हें अपने मङ्गलमय चक्षु से देखते हैं ॥२॥ अपनी आशा को फलवती करने

के लिए, निराश होने पर, निद्रावस्था में अथवा जागते हुए ही हमसे जो अपराध बन जाते हैं, उनसे उत्पन्न पापों को अग्नि हमसे दूर करें ॥३॥ हे इन्द्र ! हे ब्रह्मणस्पते ! हमने जो दुष्कर्म किये हों और उनके फलस्वरूप हमारा जो अमङ्गल होने को हो, उस शत्रु रूप अमंगल से आंगिरस प्रचेता हमारी रक्षा करें ॥४॥ आज हमारी विजय हुई है, पाने योग्य वैभव हमने प्राप्त कर लिया है। हम सभी अपराधों से भी मुक्त हो चुके हैं। हमारी सुषुप्तावस्था में अथवा वाणी द्वारा हो जो पाप हमसे होगया हो, उसका दुष्ट फल हमारे शत्रु को पीड़ित करे। हम जिससे बैर करते हैं, वह उसी को प्राप्त हो ॥५।२२

१६५ सूक्त

(ऋषि – कपोतो नैर्ऋतः। देवता-कपोतापहतौ प्रायश्चित्तं वैश्वदेवम्। छन्द-त्रिष्टुप्)

देवाः कपोत इषितो यदिच्छन्दूतो निर्ऋत्या इदमाजगाम ।
तस्मा अर्चाम कृणवाम निष्कृतिं शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥१
शिवः कपोत इषितो नो अस्त्वनागा देवाः शकुनो गृहेषु ।
अग्निर्हि विप्रो जुषतां हविर्नः परि हेतिः पक्षिणी नो वृणक्तु ॥२
हेतिः पक्षिणी न दभात्यस्मानाष्ट्र्यां पदं कृणुते अग्निधाने ।
शं नो गोभ्यश्च पुरुषेभ्यश्चास्तु मा नो हिंसीदिह देवाः कपोतः ॥३
यदुलूको वदति मोघमेतद्यत्कपोतः पदमग्नौ कृणोति ।
यस्य दूतः प्रहित एष एतत्तस्मै यमाय नमो अस्तु मृत्यवे ॥४
ऋचा कपोतं नुदत प्रणोदमिषं मदन्तः परि गां नयध्वम् ।
संयोपयन्तो दुरितानि विश्वा हित्वा न ऊर्जं प्र पतात्पतिष्ठः ॥५॥२३

हे विश्वेदेवो ! यह पारावत निर्ऋति का भेजा हुआ दूत है। यह हमें पीड़ित करने को ही हमारे घर में आगया है। हम इस कपोत का पूजन करते हैं। हम इस अमंगल को अपने पास से दूर करते हैं। इसके द्वारा हमारे गौ, अश्व आदि पशु, पुत्र-पौत्र, दास-दासी आदि [illegible]

फँसे ॥१॥ हे विश्वेदेवो ! हमारे घर में जिस कपोत को प्रेरित किया गया, वह हमारा अमंगल न करे, कल्याणकारी ही हो । मेधावी और हमारे यजन अग्नि हमारी हवियों को स्वीकार करें । शत्रुओं का पंखमय तीक्ष्ण आयुध हमें छोड़ कर अन्यत्र चला जाय ॥२॥ यह पंख वाला कबूतर हमारी हिंसा न करे। यह हमारे लिए आयुध रूप न होजाय । विस्तृत स्थान में अग्नि देव प्रतिष्ठित हुए हैं, यह भी उसी स्थान पर बैठे। हे देवगण ! यह कपोत हमारे लिए अमंगलजनक न हो । हमारे मनुष्यों और पशुओं का कल्याण हो ॥३॥ इस उलूक की अमंगलसूचक ध्वनि व्यर्थ होजाय। यह कबूतर अग्नि स्थान में बैठता है। जिन यमराज का दूत होकर यह कपोत हमारे घर में आया है, मृत्युरूपी उन यमराज को हम प्रणाम करते हैं ॥४॥ हे देवगण ! यह कबूतर घर में रहने योग्य नहीं है, तुम इसे अपने प्रभाव से दूर भगाओ। इसके द्वारा जिस अमंगल की आशंका हुई है, उसे नष्ट करके हमारी गौ को सुखपूर्वक आहार प्राप्त करने वाली करो। यह अत्यन्त वेग से उड़ने वाला कबूतर हमारे अन्न को त्याग कर अन्यत्र गमन करे ॥५॥ [२३]

१६६ सूक्त

(ऋषि-ऋषभो वैराजः शाक्वरो वा । देवता—सपत्नघ्नम् ।
छन्द—अनुष्टुप्, पंक्तिः)

ऋषभं मा समानानां सपत्नानां विषासहिम् ।
हन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपतिं गवाम् ॥१
अहमस्मि सपत्नहेन्द्रइवारिष्टो अक्षतः ।
अधः सपत्ना मे पदोरिमे सर्वे अभिष्ठिताः ॥२
अत्रैव वोऽपि नह्याम्युभे आर्त्नीइव ज्यया ।
वाचस्पते नि षेधेमान्यथा मदधरं वदान् ॥३
अभिभूरहमागमं विश्वकर्मेण धाम्ना ।
आ वश्चित्तमा वो व्रतमा वोऽहं समितिं ददे ॥४
योगक्षेमं व आदायाहं भूयासमुत्तम आ वो मूर्धानमक्रमीम् ।

अधस्पदान्म उद्वदत मण्डूकाइवोदकान्मण्डूका उदकादिव ॥५॥२४

हे इन्द्र ! मुझे अपने समान पुरुषों में श्रेष्ठ करो। मैं अपने शत्रुओं पर विजय प्राप्त करूँ अपने विरोधियों का संहार करूँ। तुम्हारी कृपा से मैं सर्वोत्कृष्ट होकर महान् गोधन को प्राप्त करूँ ॥१॥ मैंने शत्रुओं का विध्वंस कर डाला। मुझे हिंसित करने में अब कोई समर्थ नहीं है। मेरे सब शत्रु मेरे द्वारा पददलित हुए ॥२॥ हे शत्रुओ! जैसे धनुष के दोनों छोरों को प्रत्यंचा से आबद्ध करते हैं, उसी प्रकार मैं तुम्हें इस स्थान में बंधनयुक्त करता हूँ। हे वाचस्पते! इन शत्रुओं को आदेश दो कि वह मेरे विषय में किसी से कोई बात न करें ॥३॥ मैं अपने तेज को कर्म के उपयुक्त बनाता हूँ, मैं अपने उसी तेज के द्वारा शत्रु को पराजित करने में प्रवृत्त हुआ हूँ। हे शत्रुओ! मैं तुम्हारी बुद्धि, कार्य और संगठन सबको विनष्ट किये देता हूँ ॥४॥ मैंने तुम्हारी अर्थ-संचय शक्ति को छीन लिया है। मैं तुमसे श्रेष्ठ होगया हूँ। मैं मस्तक के समान ही तुमसे ऊँचा हूँ। जैसे जल में रहने वाले मेंढक कोलाहल करते हैं, वैसे ही तुम मुझसे दब कर चीत्कार करो ॥५॥ [२४]

१६७ सूक्त

(ऋषि—विश्वामित्रजमदग्नी। देवता—इन्द्रः, लिङ्गोक्ताः। छन्द—जगती)

तुभ्येदमिन्द्र परि षिच्यते मधु त्वं सुतस्य कलशस्य राजसि।
त्वं रयिं पुरुवीरामु नस्कृधि त्वं तपः परितप्याजयः स्वः ॥१
स्वर्जितं महि मन्दानमन्धसो हवामहे परि शक्रं सुताँ उप।
इमं नो यज्ञमिह बोध्या गहि स्पृधो जयन्तं मघवानमीमहे ॥२
सोमस्य राज्ञो वरुणस्य धर्मणि बृहस्पतेरनुमत्या उ शर्मणि।
तवाहमद्य मघवन्नुपस्तुतौ धातर्विधातः कलशाँ अभक्षयम् ॥३
प्रसूतो भक्षमकरं चरावपि स्तोमं चेमं प्रथमः सूरिरुन्मृजे।
सुते सातेन यद्यागमं वां प्रति विश्वामित्रजमदग्नी दमे ॥४॥२५

हे इन्द्र! यह मधुर सोम रस तुम्हारे लिए ही अभिषुत हुआ है। सोम युक्त इस कलश के स्वामी तुम ही हो। तुमने अपने

न वायु के वेग से चलने पर पर्वत तक कम्पित होते हैं। जैसे अश्व युद्धस्थल की ओर गमन करता है, वैसे ही पर्वत आदि सब वायु के आश्रय में जाते हैं। मरुतों की सहायता से रथारूढ हुए वायु देवता सब लोकों के राजा के समान गमन करते हैं ॥२॥ वायु जब अन्तरिक्ष में वेग से चलते हैं तब वे कठिनता से स्थिर होते हैं। यह जल के बन्धु एवं जल के आगे प्रकट होने वाले हैं। स्वभाव सत्य से ओत-प्रोत है। यह कहाँ उत्पन्न हुए ? कहाँ से इनका हुआ ? ॥३॥ वायु देवता प्राण रूप हैं। यह लोकों के अपत्य के हैं। यह इच्छानुसार विचरण करते हैं। इनके रूप के प्रत्यक्ष दर्शन होते। इनके गमन का शब्द ही सुना जाता है। हम उपासकगण अपने में श्रेष्ठ हविरन्न द्वारा इन वायु का पूजन करते हैं ॥४॥ [२६]

१६६ सूक्त

(ऋषि—शबरः काक्षीवतः। देवता-गावः। छन्द-त्रिष्टुप्)

वातो अभि वातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरा रिशन्ताम्।
ीर्जीवधन्याः पिबन्त्ववसाय पद्वते रुद्र मृळ ॥१
सरूपा विरूपा एकरूपा यासामग्निरिष्टया नामानि वेद।
अङ्गिरसस्तपसेह चक्रुस्ताभ्यः पर्जन्य महि शर्म यच्छ ॥२
देवेषु तन्व मैरयन्त यासां सोमो विश्वा रूपाणि वेद।
अस्मभ्यं पयसा पिन्वमाना. प्रजावतीरिन्द्र गोष्ठे रिरीहि ॥३
मेता रराणो विश्वैर्देवैः पितृभिः संविदानः।
:सतीरुप नो गोष्ठमाकस्तासां वयं प्रजया सं सदेम ॥४॥२७

सुखप्रद वायु गौओं की ओर प्रवाहित हों। यह गौएँ बल देने वाले तृणा ...का सेवन करें। यह जल पीकर तृप्त हों। हे रुद्र ! इन श्रेष्ठ गौओं को रक्षा ॥१॥ गौएँ कभी एक-से रंग की होती हैं और कभी रंग होती हैं। यज्ञ में स्थित उन गौओं के ज्ञाता हैं। द्वारा पृथिवी पर उत्पन्न किया है। हे पर्जन्य ! तुम हमारी ॥ गौएँ अपने शरीर का रस-रूप दुग्ध देवताओं के

प्रदान करती हैं। सोम उनकी विशिष्ट आहुतियों के साथी हैं। हे इन्द्र ! उन गौओं को सन्तानवती बनाकर दुग्ध से परिपूर्ण करो और हमारे गोष्ठ में भेजो ॥३॥ प्रजापति ने देवताओं और पितरों के परामर्श से यह गौएं मुझे प्रदान की हैं। इन गौओं को मंगलमयी बना कर हमारे गोष्ठ में स्थापित करते हैं। तब वे सन्तानवती होकर हमें दुग्ध प्रदान करती हैं ॥४॥ [२७]

१७० सूक्त

(ऋषि—विभ्राट् सूर्यः । देवता—सूर्यः । छन्द—जगती, पंक्तिः)

विभ्राड् बृहत्पिबतु सोम्यं मध्वायुर्दधद्यज्ञपतावविह्रुतम ।
वातजूतो यो अभिरक्षति त्मना प्रजाः पुपोष पुरुधा वि राजति ॥१
विभ्राड् बृहत्सुभृतं वाजसातमं धर्मन्दिवो धरुणे सत्यमर्पितम् ।
अमित्रहा वृत्रहा दस्युहन्तमं ज्योतिर्जज्ञे असुरहा सपत्नहा ॥२
इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमं विश्वजिद्धनजिदुच्यते बृहत् ।
विश्वभ्राड् भ्राजो महि सूर्यो दृश उरु पप्रथे सह ओजो अच्युतम् ॥३
विभ्राजञ्ज्योतिषा स्वरगच्छो रोचनं दिवः ।
येनेमा विश्वा भुवनान्याभृता विश्वकर्मणा विश्वदेव्यावता ॥४॥२८

अत्यन्त तेजस्वी सूर्य हमारे मधुर सोम-रस का पान-कर तृप्त हों और अभिषवंकर्त्ता यजमान को श्रेष्ठ आयु प्रदान करें। वे सूर्य वायु की प्रेरणा पाकर सब प्राणियों की रक्षा करते हुए उनका पालन-पोषण करते हैं और कभी भी न मिटने वाली शोभा को प्राप्त होते हैं ॥१॥ सूर्य के रूप से महान् ज्योतिर्पिण्ड उदय को प्राप्त हुआ है। यह महान् तेजस्वी, भले प्रकार प्रतिष्ठित और सर्व श्रेष्ठ अन्न प्रदान करने वाले हैं। आकाश पर विराजमान होकर यह आकाश के ही आश्रय रूप बने हैं। यह शत्रु का नाश करने वाले, वृत्र के मारने वाले, राक्षसों और वैरियों का संहार करने में समर्थ हैं ॥२॥ समस्त ज्योति-पिण्डों में सूर्य सर्व श्रेष्ठ एवं अग्रगन्ता हैं। वे संसार के जीतने वाले एवं धन के भी जीतने वाले हैं। यह महान् तेजस्वी और समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाले हैं। यह जल-वृष्टि के लिए प्रशस्त होने वाले

बल के साक्षात् रूप और तेज से सम्पन्न हैं ॥३॥ हे सूर्य ! तुम अपने तेज द्वारा प्रकाशित होकर अन्तरिक्ष के दमकते हुए स्थान को प्राप्त हुए हो । तुम्हारी महिमा सभी श्रेष्ठ कर्मों में सहायक होती है । वही, सब यज्ञों के अनुकूल होकर सब लोकों का पालन करती है ॥४॥ [२८]

१७१ सूक्त

(ऋषि—इटो भार्गवः । देवता—इन्द्रः । छन्द—गायत्री)

त्वं त्यमिटतो रथमिन्द्र प्रावः सुतावतः । अशृणोः सोमिनो हवम् ॥१
त्वं मखस्य दोधतः शिरोऽव त्वचो भरः । अगच्छः सोमिनो गृहम् ॥२
त्वं त्यमिन्द्र मर्त्यमास्त्रबुध्नाय वेन्यम् । मुहुः श्रथ्ना मनस्यवे ॥३
त्वं त्यमिन्द्र सूर्यं पश्चा सन्तं पुरस्कृधि । देवानां चित्तिरो वशम् ॥४॥२९

हे इन्द्र ! जब इट नामक ऋषि ने सोम का अभिषव किया, तब तुमने उन ऋषि की रक्षा करते हुए उनके श्रेष्ठ आह्वान को सुना था ॥१॥ हे इन्द्र ! जब तुमने यज्ञ को पृथक् किया तब वह भय से कम्पित होगया । तब तुम सोमाभिषवकारी इट-ऋषि के घर में प्रविष्ट हुए ॥२॥ हे इन्द्र ! अस्त्रबुध्न के पुत्र ने तुम्हारा बारम्बार स्तोत्र किया था, तुमने इसीलिए वेन-पुत्र पृथु को उनके आधीन कर दिया ॥३॥ हे इन्द्र ! जब तेजस्वी सूर्य पश्चिम में गमन करते हैं, तब देवता भी नहीं जानते कि वे कहाँ छिप गए । उन सूर्य को तुम्हीं पूर्व में पुनः लेकर आते हो ॥४॥ [२९]

सूक्त १७२

(ऋषि—संवर्तः । देवता—उषा । छन्द—गायत्री)

आ याहि वनसा सह गावः सचन्त वर्तनिं यदूधभिः ॥१
आ याहि वस्व्या धिया मंहिष्ठो जारयन्मखः सुदानुभिः ॥२
पितुभृतो न तन्तुमित्सुदानवः प्रति दध्मो यजामसि ॥३
उषा अप स्वसुस्तमः सं वर्तयति वर्तनिं सुजातता ॥४॥३०

हे उषे ! तुम अपने तेज के सहित आगमन करो । गौएँ अपने स्तन से

हुए थनों के सहित गमनशील हुई हैं ॥१॥ हे उषे ! यह श्रेष्ठ स्तोत्र
स्तुत हैं। तुम इन्हें स्वीकार करने को यहाँ आगमन करो। यज्ञ करने वाले
जमान श्रेष्ठ सामग्री लेकर दानशील होता हुआ यज्ञ करता है ॥२॥ हम
अन्न को एकत्र कर उत्कृष्ट पदार्थों को दान करने की इच्छा कर रहे हैं। हम
इस यज्ञ को सूत्र के समान बढ़ाते हैं। हे उषा देवी ! यह यज्ञ हम तुम्हें
प्रदान करते हैं ॥३॥ रात्रि की बहिन उषा है। उसने रात्रि के घोर अन्धकार
को दूर कर दिया और श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त होकर अपने रथ को चलाया ॥४॥३०

१७३ सूक्त

(ऋषि-ध्रुवः। देवता-राज्ञःस्तुतिः। छन्दः-अनुष्टुप्)

आ त्वाहार्षमन्तरेधि ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः।
विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु मा त्वद्राष्ट्रमधि भ्रशत् ॥१
इहैवैधि माप च्योष्ठाः पर्वतइवाविचाचलिः।
इन्द्रइवेह ध्रुवस्तिष्ठेह राष्ट्रमु धारय ॥२
इममिन्द्रो अदीधरद् ध्रुवं ध्रुवेण हविषा।
तस्मै सोमो अधि ब्रवत्तस्मा उ ब्रह्मणस्पतिः ॥३
ध्रुवा द्यौर्ध्रुवा पृथिवी ध्रुवासः पर्वता इमे।
ध्रुवं विश्वमिदं जगद् ध्रुवो राजा विशामयम् ॥४
ध्रुवं ते राजा वरुणो ध्रुवं देवो बृहस्पतिः।
ध्रुवं त इन्द्रश्चाग्निश्च राष्ट्रं धारयतां ध्रुवम् ॥५
ध्रुवं ध्रुवेण हविषाभि सोमं मृशामसि।
अथो त इन्द्र. केवलीर्विशो बलिहृतस्करत् ॥६॥३१

हे राजन् ! तुम राष्ट्र के अधिपति बनाए गए हो। तुम इ
स्वामी बनो। तुम स्थिर मति, अटल विचार और दृढ़ कार्यों के करने
होओ। तुम्हारी प्रजा तुम्हारे प्रति अनुरक्त रहे। तुम्हारे राष्ट्र का अमंगल
हो ॥१॥ हे राजन् ! तुम पर्वत के समान अटल होकर यहीं निवास करो। तु

हे राजन् ! जो हमारे विपरीत पक्ष वाले हैं, जो हमारी हिंसा की अभिलाषा करने वाले शत्रु, सेना एकत्र कर संग्राम के लिए आते हैं और जो हमसे वैर करते हैं, तुम उन सबको हरा कर भगाओ ॥२॥ हे राजन् ! तुमने सविता देव की अनुकूलता प्राप्त की है। सोम भी तुम्हारे प्रति अनुकूल हुए हैं। सब प्राणियों ने तुम्हारे प्रति अपनी अनुकूलता प्रकट की है। अतः तुम इस विश्व में सब के प्रिय हुए हो ॥३॥ हे देवगण ! इन्द्र जिस अन्न के द्वारा कर्मों में प्रवृत्त होकर अन्नवान्, ऐश्वर्यवान् और श्रेष्ठ हुए हैं, उसी अन्न के द्वारा मैं भी यज्ञानुष्ठान के द्वारा शत्रुओं से मुक्ति पा सका हूँ ॥४॥ मैंने अपने शत्रुओं को मार डाला, अब मेरे शत्रु नहीं रहे। मैं विपत्तियों का निवारण कर राज्य का अधिपति होगया हूँ। इस देश के सब प्राणियों और राज्याधि- [३२]
कारियों आदि का भी मैं स्वामी बना हूँ ॥५॥

सूक्त १७५

(ऋषिः—ऊर्ध्वग्रावार्बुदः । देवता—ग्रावाणः । छन्दः—गायत्री)

प्र वो ग्रावाणः सविता देवः सुवतु धर्मणा । धूर्षु युज्यध्वं सुनुत ॥१
ग्रावाणो अप दुच्छुनामप सेधत दुर्मतिम् । उस्राः कर्तन भेषजम् ॥ २
ग्रावाण उपरेष्वा महीयन्ते सजोषसः । वृष्णो दधतो वृष्ण्यम् ॥ ३
ग्रावाणः सविता नु वो देवः सुवतु धर्मणा ।
यजमानाय सुन्वते ॥ ४ । ३३

हे सोम के निष्पीड़नकारी पाषाणो ! सवितादेव तुम्हें अपने बल
सोमाभिषव कर्म में प्रयुक्त करें। फिर तुम अपने कर्म में लगकर सोम-
को सिद्ध करो ॥१॥ हे पाषाणो ! दुःख के सब कारणों को हमसे पृथक् कर
कुमति को हमारे निकट से दूर भगाओ। गौओं का दुग्ध हमारे लिए औष
रूप हो ॥२॥ परस्पर मिले हुए पाषाण, एक विस्तृत पाषाण के सब
सुशोभित हैं। रस का वर्षण करने वाले सोम पर वे पाषाण अपना
प्रदर्शित करते हैं ॥३॥ हे पाषाणो ! सविता देव सोम-याग करने वाले यज
... सोमाभिषव कर्म में तुम्हें नियुक्त करें ॥४॥

१७६ सूक्त

(ऋषिः—सूनुरार्भवः । देवता—ऋभवः, अग्निः । छन्द—अनुष्टुप्, गायत्री)

प्र सूनव ऋभूणां बृहन्नवन्त वृजना ।
क्षामा ये विश्वधायसोऽश्नन्धेनुं न मातरम् ॥ १
प्र देवं देव्या धिया भरता जातवेदसम् । हव्या नो वक्षदानुषक् ॥ २
अयमु ष्य प्र देवयुर्होता यज्ञाय नीयते ।
रथो न योरभीवृतो घृणीवाञ्चेतति त्मना ॥ ३
अयमग्निरुरुष्यत्यमृतादिव जन्मनः ।
सहसश्चित्सहीयान्देवो जीवातवे कृतः ॥ ४ । ३४

जब ऋभुगण कर्म-क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए, तब जैसे बछड़े अपनी जननी गौ को घेर कर खड़े होते हैं, वैसे ही विश्व को धारण करने के लिए भूमंडल को घेर कर खड़े होगए ॥१॥ हे स्तोता! अग्नि अविनाशी हैं। उन्हें देवताओं के योग्य स्तोत्र से अपने अनुकूल करो। वह विधिपूर्वक हमारे यज्ञीय-द्रव्य को देवताओं के पास पहुँचावें ॥२॥ यह अग्नि वही हैं, जो देवताओं के पास जाते हैं। यह होता हैं। इन्हें यज्ञ कर्म की कामना से स्थापित किया जाता है। यह रथ के समान ही हव्य-वाहक हैं। यह अपनी श्रेष्ठ ज्वालाओं से युक्त हैं। यह यज्ञ की सम्पन्नता के ज्ञाता ऋत्विजों द्वारा घिरे रहते हैं ॥३॥ अग्नि का प्राकट्य अमृत के समान उपकारी है। यह अपने उपासकों के रक्षक हैं। यह बलवानों में भी बलवान हैं। यह परम आयु को बढ़ाने के लिए

तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति ॥ २
अपश्यं गोपामनिपद्यमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम् ।
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्तः ॥ ३ । २५

मेधावी जनों ने एक पतंग को देखा और मन में विचार किया कि उस पर आसुरी माया का प्रभाव पड़ चुका है। ज्ञानी जनों ने कहा कि यह समुद्र के समान परमात्मा में विलीन होना चाहता है। तब उन्होंने विधाता के तेज में प्रविष्ट होने की कामना की ॥१॥ मन ही मन शब्द को धारण करते हुए पतंग को गर्भकाल में ही गंधर्व ने वाणी की शिक्षा दी। यह वाणी दिव्य एवं बुद्धि की अधिष्ठात्री है। यही स्वर्ग का सुख प्राप्त कराती है। सत्य मार्ग पर चलने वाले मेधावी जन इस वाणी की सदा रक्षा करते हैं ॥२॥ इन्द्रियों के पालनकर्त्ता प्राण का कभी नाश नहीं होता। वह कभी पास और कभी दूर तथा विभिन्न मार्गों में विचरण करता रहता है। वह कभी एक-एक वस्त्र धारण करता है और कभी अनेक वस्त्रों को एक साथ पहनता है। इस प्रकार उसका जगत में आवागमन बारम्बार लगा रहता है ॥३॥ [२५]

१७८ सूक्त

(ऋषि—अरिष्टनेमिस्तार्क्ष्यः । देवता—तार्क्ष्यः । छन्द—त्रिष्टुप्)

त्यमू षु वाजिनं देवजूतं सहावानं तरुतारं रथानाम् ।
अरिष्टनेमिं पृतनाजमाशुं स्वस्तये तार्क्ष्यमिहा हुवेम ॥ १
इन्द्रस्येव रातिमाजोहुवानाः स्वस्तये नावमिवा रुहेम ।
उर्वी न पृथ्वी बहुले गभीरे मा वामेतौ मा परेतो रिषाम ॥ २
सद्यश्चिद्यः शवसा पञ्च कृष्टीः सूर्यइव ज्योतिषापस्ततान ।
सहस्रसाः शतसा अस्य रंहिर्न स्मा वरन्ते युवतिं न शर्याम् ॥ ३ । २६

जिस महान् पराक्रमी गरुण को सोम के लाने के लिए देवताओं ने भेजा था, जो विपक्षियों का जीतने वाला, शत्रुओं के रथों को वशीभूत करने वाला, सेनाओं को संग्राम भूमि की ओर प्रेरित करने वाला है तथा जिसके

रथ को कोई हिंसित नहीं कर सकता, उसी तार्क्ष्य का हम कल्याण की इच्छा करते हुए आह्वान करते हैं ॥१॥ हम तार्क्ष्य (गरुड़) की दान-शक्ति का आह्वान करते हैं। जैसे इन्द्र से हम उनके दान की याचना करते हैं, वैसे ही तार्क्ष्य से करते हैं। हम अपने कल्याण के लिए और विपत्ति से नौका के समान पार पाने के निमित्त उनकी दान-शक्ति का आश्रय ग्रहण करते हैं। हे आकाश-पृथिवी! तुम महान्, सर्व व्यापक और गंभीर हो। हम तुम्हारे आश्रय में रहकर यात्रा-मार्ग में मृत्यु को कदापि प्राप्त न हों ॥२॥ सूर्य जैसे अपने तेज द्वारा वर्षा के जल की वृद्धि करते हैं। वैसे ही तार्क्ष्य ने चार वर्णों और निषाद को शीघ्र ही ऐश्वर्य से भर दिया। उन तार्क्ष्य की गति हजारों धनों के देने वाली है, जैसे बाण अपने लक्ष्य की ओर चलता है तब उसे कोई रोक नहीं सकता ॥३॥ [३६]

१७६ सूक्त

(ऋषि—शिविरौशीनरः, प्रतर्दनः काशिराजः, वसुमना रौहिदश्वः।
देवता—इन्द्रः। छन्दः—त्रिष्टुप्)

उत्तिष्ठताव पश्यतेन्द्रस्य भागमृत्वियम्।
यदि श्रातो जुहोतन यद्यश्रातो ममत्तन ॥ १
श्रातं हविरो ष्विन्द्र प्र याहि जगाम सूरो अध्वनो विमध्यम्।
परि त्वासते निधिभिः सखायः कुलपा न व्राजपतिं चरन्तम् ॥ २
श्रातं मन्य ऊधनि श्रातमग्नौ सुश्रातं मन्ये तदृतं नवीयः।
माध्यन्दिनस्य सवनस्य दध्नः पिबेन्द्र वज्रिन्पुरुकृज्जुषाणः ॥ ३ । ३७

हे ऋत्विजो! उठकर इन्द्र के योग्य यज्ञ-भाग को प्रस्तुत करो। यदि यज्ञीय द्रव्य का पाक हो चुका है तो यज्ञ करो और यदि अभी अपक्व है तो उसके पाक-कर्म को शीघ्रता से पूर्ण करो ॥१॥ हे इन्द्र! हव्य का पाक हो चुका है। तुम हमारे पास आगमन करो। सूर्य अपने दैनिक मार्ग में आधे से कुछ कम मार्ग की यात्रा कर चुके हैं। जैसे कुल की रक्षा करने वाले पुत्र इधर-उधर जाने वाले गृहस्वामी के आगमन की प्रतीक्षा करते हैं, उसी प्रकार

१८१ सूक्त

(ऋषि—प्रथो वासिष्ठः, सप्रथो भारद्वाजः, घर्मः सौर्यः । देवता—विश्वेदेवाः । छन्द—त्रिष्टुप्)

प्रथश्च यस्य सप्रथश्च नामानुष्टुभस्य हविषो हविर्यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णो रथन्तरमा जभारा वसिष्ठः ॥ १
अविन्दन्ते अतिहितं यदासीद्यज्ञस्य धाम परमं गुहा यत् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोर्भरद्वाजो बृहदा चक्रे अग्नेः ॥ २
तेऽविन्दन्मनसा दीध्याना यजुः ष्कन्नं प्रथमं देवयानम् ।
धातुर्द्युतानात्सवितुश्च विष्णोरा सूर्यादभरन्घर्ममेते ॥ ३ ॥ १६

वसिष्ठ वंशज प्रथ और भरद्वाज-वंशज सप्रथ हैं । इनमें से वसिष्ठ तेजस्वी सविता, विष्णु और धाता के निकट से रथन्तर साम को ले आए हैं । यह अनुष्टुप् छन्द वाला मन्त्र घर्म नामक हवि का शोधन करने वाला और श्रेष्ठ है ॥१॥ जिस बृहत् साम द्वारा यज्ञानुष्ठान किया जाता है तथा जो तिरोहित था, उस बृहत् को सविता आदि देवताओं ने प्राप्त किया था । तेजस्वी सविता, धाता, अग्नि और विष्णु के पास से उस बृहत् को भरद्वाज ले आए ॥२॥ अभिषेक की क्रिया को सम्पन्न करने वाला घर्म (यजुर्मंत्र) यज्ञ के कार्य में मुख्य रूप से उपयोगी है । धाता आदि देवताओं ने इसे ध्यान के द्वारा प्राप्त किया था । धाता, विष्णु और सूर्य के पास से इस बृहत् को पुरोहितगण ले आए ॥३॥ [१६]

१८२ सूक्त

(ऋषि—तपुर्मूर्धा बार्हस्पत्यः । देवता—बृहस्पतिः छन्द—त्रिष्टुप्)

बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः पुनर्नेषदघशंसाय मन्म ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ १
नराशंसो नोऽवतु प्रयाजे शं नो अस्त्वनुयाजो हवेषु ।
क्षिपदशस्तिमप दुर्मतिं हन्नथा करद्यजमानाय शं योः ॥ २

हो ॥२॥ मैं होता हूँ, वृषादि को फलयुक्त करता हूँ । मैं अन्य प्राणियों को भी अपत्यवान करता हूँ । मैं पृथिवी पर प्रजोत्पादन कर्म करता हूँ और यज्ञानुष्ठान द्वारा पुत्र उत्पन्न करने में समर्थ हूँ ॥३॥ [४१].

१८४ सूक्त

(ऋषि—त्वष्टा गर्भकर्ता विष्णुर्वा प्राजापत्यः। देवता—लिङ्गोक्ताः (गर्भार्थाशीः)। छन्द—अनुष्टुप्)

विष्णुर्योनिं कल्पयतु त्वष्टा रूपाणि पिंशतु ।
आ सिञ्चतु प्रजापतिर्धाता गर्भं दधातु ते ॥ १
गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥ २
हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ । ४२

विष्णु इस नारी को अपत्यवती करें । त्वष्टा इसे प्रजनन योग्य बनावें । प्रजापति इसे गर्भ-शक्ति दें और धाता इसे गर्भ धारण योग्य बनायें ॥१॥ हे सिनीवाली, हे सरस्वती ! इसके गर्भ की रक्षा करो । हे अश्विनीकुमारो ! तुम स्वर्णिम कमल से अलंकृत होते हो । तुम इस नारी के गर्भ का पालन करो ॥ हे पत्नी ! अश्विनीकुमारों ने तुम्हारे जिस गर्भस्थ शिशु की रक्षा के लिए सुवर्णमय दो अरणियों को परस्पर घिसा है, दशवें मास में प्रसव होने पर उसी शिशु को हम यहाँ बुलाते हैं ॥३॥ [४२]

१८५ सूक्त

(ऋषि—सत्यधृतिर्वारुणिः । देवता-अदितिः (स्वस्त्ययनम्) । छन्द-गायत्री)

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः । दुराधर्षं वरुणस्य ॥१
नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु । ईशे रिपुरघशंसः ॥ २

१८९ सूक्त

(ऋषि—सार्पराज्ञी। देवता—सार्पराज्ञी सूर्यो वा। छन्द—गायत्री)

गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः ॥ १

(अ)न्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन्महिषो दिवम् ॥ २

(त्रिं)शद्धाम वि राजति वाक्पतङ्गाय धीयते।

प्रति वस्तोरह द्युभिः ॥ ३। ४७

महान् तेजस्वी और गतिपरायण सूर्य उदित होकर अपनी मातृभूत-पूर्व दिशा से मिलते हैं। फिर वे अपने पिता आकाश की ओर गमन करते हैं ॥ १ ॥ सूर्य के देह से प्रकाश निकलता है। वह प्रकाश इनके प्राण के मध्य से प्रकट हुआ है। इन्होंने महान् होकर व्योम को व्याप्त कर लिया है ॥ २ ॥ सूर्य के तीसों स्थान सुशोभित हैं। यह सूर्य गतिमान हैं। इनके लिए स्तुतियों का पाठ होता है। यह अपनी रश्मियों से अलंकृत हुए नित्यप्रति प्रकाशित होते हैं ॥ ३ ॥ [४७]

१९० सूक्त

(ऋषि—अघमर्षणो माधुच्छन्दसः। देवता—भाववृत्तम्। छन्द—अनुष्टुप्)

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।

ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥१

समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।

अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ २

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ३। ४८

तेजोमय तप के द्वारा यज्ञ और सत्य की उत्पत्ति हुई। फिर दि(न)

और रात्रि उत्पन्न हुए। इसके पश्चात् जल से परिपूर्ण समुद्र उत्पन्न हुआ ॥ १ ॥ जल से परिपूर्ण समुद्र से संवत्सर की उत्पत्ति हुई। ईश्वर ने दिवस-रात्रि की रचना की। निमिष आदि से युक्त विश्व के ईश्वर ही अधिपति हैं ॥ २ ॥ प्राचीनकाल के अनुसार ही ईश्वर ने सूर्य, चन्द्र, स्वर्गलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष की रचना की ॥ ३ ॥ [४८]

१९१ सूक्त

(ऋषि-संवननः। देवता-अग्नि, संज्ञानम्। छन्द-अनुष्टुप्, त्रिष्टुप्)

संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर ॥ १

सङ्गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते ॥ २

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि ॥ ३

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति ॥ ४ । ४९

हे अग्ने! तुम कामनाओं की वर्षा करने वाले हो। तुम सब प्राणियों में निवास करते हो। तुम्हीं यज्ञ-वेदी पर प्रदीप्त होते हो। तुम हमें धन प्रदान करो ॥ १ ॥ हे स्तोताओ! तुम एकत्र होओ। समान रूप से स्तोत्र का उच्चारण करो। तुम समान मन वाले होओ। जैसे देवगण समान मति वाले होकर यज्ञ में हविरन्न ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम भी समान मति वाले होकर धनादि ग्रहण करने वाले होओ ॥ २ ॥ इन स्तोताओं के स्तोत्र समान हों। यह एक साथ यहाँ आवें। इनके मन भी समान हों। हे पुरोहितो,

"वेदों के पाठ से यही तात्पर्य निष्पन्न होता है कि मनुष्य मोक्ष को अपने जीवन का लक्ष्य मानकर ऐसा व्यवहार करें कि जिससे स्वयं दीर्घ-जीवन प्राप्त कर सकें और किसी भी प्राणी की आयु तथा भोगों में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न न हो, प्रत्युत वर्णाश्रम के द्वारा समाज का ऐसा संगठन हो कि सरलता से सब की रक्षा होती रहे और शिक्षा तथा दीक्षा से समस्त प्राणी समुदाय मोक्षाभिमुखी बना रहे। आर्य जाति की शिक्षा और सभ्यता उपर्युक्त उद्देश्य से ओत-प्रोत है। यही कारण है कि हमारी यह शिक्षा और सभ्यता अत्यन्त प्राचीन होने पर और अनेक प्रकार के संकटों और विपत्तियों का सामना करते हुये भी आज जीवित है। इससे सहज ही में यह अनुमान हो सकता है कि वेदों की सभ्यता में अपनी रक्षा कर लेने की पूरी योग्यता है और चिरजीवी रहने की पूर्ण शक्ति है।"

—वैदिक सम्पत्ति

आवरण मुद्रक : अग्रवाल प्रेस, मथुरा।